विराटपर्व विषयसूची

विषय पृष्ठ

* पाण्डवप्रवेशपर्व *

१ अज्ञातवास किसप्रकार कियाजाय इसका विचार १
२ अज्ञातवास किसप्रकार कियाजाय इसका विचार ४
३ अज्ञातवास किसप्रकार किया जाय इसका विचार ८
४ अज्ञातवासके विषयमें धौम्यका उपदेश ११
५ शमीके वृक्ष पर शस्त्रोंको रखना १८
६ दुर्गास्तोत्र २२
७ कंकका राजसेवा स्वीकार करना २६
८ भीमसेनका रसोइया बनना ३०
९ द्रौपदीका सैरन्ध्री बनना ३२
१० सहदेवका गोपाल बनना ३७
११ अर्जुनका हीजड़ा बनना ३९
१२ नकुलका अश्वपाल बनना ४२

* समयपालनपर्व *

१३ ब्रह्ममहोत्सव और जीमूतवध ४४

* कीचकवधपर्व *

१४ कीचकका कामान्ध होना ४९
१५ कीचक और सुदेष्णाकी युक्ति ५६
१६ सूर्यका द्रौपदीकी रक्षा ५९
१७ भीमकी पाकशालामें द्रौपदीका जाना ६६
१८ द्रौपदीका भीमसेनको आवेश दिलाना ६८
१९ द्रौपदीका पाण्डवोंका दुःख वर्णन करना ७२
२० द्रौपदीका समयकी महिमा गाना ७८
२१ भीमसेनका द्रौपदीको धीरज देना ८२
२२ कीचकका मारा जाना ८८
२३ कीचकके भाइयोंका मारा जाना १००

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२४	विराट नगरीमें घबराहट	१०४

✻ गोहरण पर्व ✻

२५	दुर्योधनका प्रयास	१०८
२६	पाण्डवोंका पता लगानेकी युक्ति	११०
२७	द्रोणाचार्यका विचार	११२
२८	भीष्मजीका विचार	११४
२९	कृपाचार्यका विचार	११८
३०	मत्स्य देश पर चढाई	१२०
३१	राजा विराटका रणके लिये उद्योग	१२३
३२	त्रिगर्त और मत्स्योंका युद्ध	१२७
३३	रातमें युद्ध, राजा विराटका बन्दी होना	१३१
३४	राजा विराटका उपकार मानना	१३८
३५	कौरव सेनाकी चढाई	१४०
३६	उत्तरका घमण्ड	१४३
३७	बृहन्नलाका सारथी बनना	१४६
३८	उत्तरका घबड़ाना	१५०
३९	कौरवसेनामें घबराहट	१५७
४०	शमीवृक्षके समीपकी घटना	१५९
४१	शमी परसे अस्त्रोंका उतारना	१६०
४२	पाण्डवोंके शस्त्रोंका वर्णन	१६१
४३	अर्जुनका पाण्डवोंके शस्त्रोंका वर्णन करना	१६४
४४	अर्जुनके दश नाम	१६६
४५	उत्तर और अर्जुनका संवाद	१६९
४६	अर्जुनका टंकारशब्द	१७४
४७	कौरवोंका घबड़ाना	१७८
४८	कर्णकी घमण्ड भरी बात	१८३

अध्याय	विषय	पृष्ठ
४९	कृपाचार्यकी सम्मति	१८३
५०	अश्वत्थामाकी सम्मति	१८९
५१	भीष्मपितामहके वचन	१९३
५२	तेरह वर्षका वर्णन	१९६
५३	दुर्योधनके ऊपर अर्जुनका कोप	१९९
५४	कर्णके साथ अर्जुनका युद्ध	२०२
५५	घोर संग्राम	२०८
५६	संग्राम देखनेको देवताओंका आना	२१५
५७	कृपाचार्यके साथ संग्राम	२१७
५८	द्रोणाचार्यके साथ संग्राम	२२२
५९	अश्वत्थामाके साथ युद्ध	२३१
६०	अर्जुनका कर्णको ताना मारना	२३३
६१	भीष्म पितामहके साथ युद्धका उत्साह	२३७
६२	अर्जुनका घोर संग्राम	२४२
६३	घमसान युद्ध	२४५
६४	भीष्मजीके साथ युद्ध	२४७
६५	दुर्योधनको ताना देना	२५२
६६	हारना और मूर्छित होना	२५५
६७	अर्जुनकी विजय	२५९
६८	राजा विराटकी विजय और आनन्द	२६३
६९	उत्तरका देवपुत्रका पराक्रम कहना	२७३

वैवाहिकपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ
७०	पाण्डवोंका प्रकट होना	२७६
७१	राजा विराटकी पांडवोंके साथ मित्रता	२७९
७२	राजकुमारी उत्तराका विवाह	२८४

॥ विराटपर्वकी विषयसूची समाप्त ॥

* श्रीहरि

महाभारत

विराट पर्व

पाण्डवप्रवेश पर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच । कथं विराटनगरे मम पूर्वपितामहाः अज्ञातवासमुषिता दुर्योधनभयार्दिताः ॥ २ ॥ पतिव्रता महाभागा सततं ब्रह्मवादिनी । द्रौपदी च कथं ब्रह्मन्नज्ञाता दुःखिताऽवसत् ॥३॥ वैशम्पायन उवाच । यथा विराटनगरे तव पूर्वपितामहाः । अज्ञातवासमुषितास्तच्छृणुष्व नराधिप ॥४॥ तथा स तु वरं लब्ध्वा धर्मो धर्मभृतां वरः । गत्वाश्रमं ब्राह्मणेभ्य आचख्यौ सर्वमेव तत् ॥५॥ कथयित्वा तु तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिरः । अरणीसहितं तस्मै ब्राह्मणाय न्यवेदयत् ॥ ६ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा धर्मपुत्रो महामनाः । सन्निवर्त्यानुजान् सर्वा-

भगवान् नारायण नरोंमें उत्तम नर भगवान् तथा वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको नमस्कार करके इतिहासादिक ग्रंथोंकी व्याख्या का आरम्भ करे ॥ १ ॥ जनमेजयने पूछा कि–हे ब्रह्मन् ! हमारे पितामह (परबाबा) पाण्डव दुर्योधनके भयसे पीड़ा पाकर किसप्रकार विराट नगरमें छुपकर रहे थे ॥ २ ॥ और हे ब्रह्मन् ! महाभाग्यशाली ब्रह्मवादिनी दुःखिनी और पतिव्रता द्रौपदी भी किस प्रकार छिपकर रही थी ! सो कहिये ॥ ३ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे राजन् ! आपके पूर्वपितामह पाण्डव विराट नगरमें जिस प्रकार छिपकर रहे थे सो तुम सुनो ॥ ४ ॥ धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर यक्षसे वर पाकर आश्रममें गए और उन्होंने ब्राह्मणोंको वे सब बातें सुनाईं । ५ । ब्राह्मणोंसे वे सब बातें कहकर उन्होंने अरणी सहित अग्निमंथन करने का यंत्र ब्राह्मणको दिया ॥ ६ ॥ इसके पीछे हे भारत ! उदार चित्त

निति होवाच भारत ॥ ७ ॥ द्वादशेमानि वर्षाणि राज्यविप्रोषिता वयम्। त्रयोदशोऽयं सम्प्राप्तः कृच्छ्रात् परमदुर्वसः ॥ ८ ॥ स साधु कौन्तेय इतो वासमर्जुन रोचय। संवत्सरमिमं यत्र वसेमाविदिताः परैः ९ अर्जुन उवाच। तस्यैव वरदानेन धर्मस्य मनुजाधिप। अज्ञाता विचरिष्यामो नराणां नात्र संशयः ॥ १० ॥ तत्र वासाय राष्ट्राणि कीर्त्तयिष्यामि कानिचित्। रमणीयानि गुप्तानि तेषां किञ्चित् स्म रोचय ११ सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून्। पाञ्चालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः १२ दशार्णा नवराष्ट्राश्च मल्लाः शाल्वा युगन्धराः। कुन्तिराष्ट्रञ्च विपुलं सुराष्ट्रावन्तयस्तथा ॥१३॥ एतेषां कतमो राजन् निवासस्तव रोचते। यत्र वत्स्यामहे राजन् सम्वत्सरमिमं वयम् ॥१४॥ युधिष्ठिर उवाच। श्रुतमेतन्महाबाहो यथा स भगवान् प्रभुः। अब्रवीत् सर्वभूतेशस्तत्तथा न तदन्यथा १५ अवश्यन्त्वेव वासार्थं रमणीयं शिवं

वाले धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर सब भाइयोंको अपने पास बुलाकर इस प्रकार कहने लगे कि—॥ ७ ॥ हमको राज्यसे बाहर हुए आज बारह वर्ष बीत गए और अब तेरहवाँ वर्ष लगेगा उसमें हमको बड़ी सम्हाल रख महादुःखके साथ छुपकर रहना होगा ॥८॥ इसलिये हे कुन्तीपुत्र सत्पुरुष अर्जुन ! दूसरे पुरुष हमको पहिचान न सकैं इस प्रकार हमको इस तेरहवें वर्षमें यहाँसे किसी अन्य स्थानमें जाकर रहना चाहिये, ऐसे किसी निवास स्थानको पसन्द करो ॥ ९ ॥ अर्जुनने कहा कि—हे महीप ! धर्म्मराजके दिये हुए वरदानके प्रभावसे मनुष्य हमको नहीं पहिचान सकेंगे इसकारण आप पृथ्वी पर फिरें इसमें सन्देह न करें १० अब मैं आपको बहुतसे छुपेहुए रमणीय स्थान रहनेके लिये बताता हूं उनमेंसे आप किसी एकको पसन्द करलीजिये.।११। कुरु देशके आसपास पंचाल, चेदि, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर, विशाल कुन्तीराष्ट्र सुराष्ट्र और अवन्ति नामके देश हैं ये सब देश रमणीय हैं और इनमें बहुतसा अन्न उत्पन्न होता है।१२।१३। हे राजन् ! इन देशोंमेंसे किस देशमें रहना आपको अच्छा लगता है आप जिस देशको बतलावें उस देशमें हम गुप्तरीतिसे इस तेरहवें वर्षमें वास करे १४ युधिष्ठिर बोले हे महाबाहु अर्जुन ! सब प्राणियोंके अधिपति धर्मराजने जो कुछ कहा है वह मैंने सुना है और उसप्रकार ही करना चाहिये, उसके विपरीत काम करनेमें लाभ नहीं होगा ॥१५॥ हम सबोंको इकट्ठे होकर रहनेके लिये रमणीक और सुखकारक शुभ-

सुखम् समग्य सहितैः सर्वैर्वस्तव्यमकुतोभयैः १६ मत्स्यो विराटो बलवानभिरक्षोऽथ पांडवान्। धर्मशीलो वदान्यश्च वृद्धश्च सततं प्रियः १७ विराटनगरे तात सम्वत्सरमिमं वयम्। कुर्वन्तस्तस्य कर्माणि विहरिष्याम भारत ॥१८॥ यानि यानि च कर्माणि तस्य वक्ष्यामहे वयम्। आसाद्य मत्स्यं तत् कर्म प्रमूत कुरुनन्दनाः ॥ १९ ॥ अर्जुन उवाच। नरदेव कथं तस्य राष्ट्रे कर्म करिष्यसि। विराटनगरे साधो रंस्यसे केन कर्मणा ॥ २० ॥ मृदुर्वदान्यो ह्रीमांश्च धार्मिकः सत्यविक्रमः। राजंस्त्वमापदाकृष्टः किं करिष्यसि पाण्डव ॥ २१ ॥ न दुःखमुचितं किंचिद्राजा वेद यथा जनः। सइमामापदं प्राप्य कथं घोरान्तरिष्यसि २२ युधिष्ठिर उवाच। शृणुध्वं यत् करिष्यामि कर्म वै कुरुनन्दनाः। विराटमनुसम्प्राप्य राजानं पुरुषर्षभाः ॥ २३ ॥ सभास्तारो भविष्यामि तस्य राज्ञो महात्मनः। कंको नाम द्विजो भूत्वा मताक्षः प्रियदेवनः ॥ २४ ॥ वैदूर्यान् काञ्चनान् दान्तान् फलैर्ज्योतिरसैः सह। कृष्णाक्षाँल्लोहिता-

स्थानका अवश्य विचार करना चाहिये फिर निर्भय होकर हम सब तहाँ रहेंगे १६ तुम्हारे कहे हुए देशोंमें मत्स्य देशका विराट राजा बलवान् है, पांडवोंसे प्रीति करता है धर्मशील उदार अवस्थामें वृद्ध और सदा प्रीति रखनेवाला है॥१७॥ हे भारत ! हमको उस विराट राजाके कार्य करके वह एक वर्ष विराट नगरमें विहार करके बिताना ठीक है ॥१८॥ हे कुरुवंशियों! अब तुम मुझे बताओ कि-हम मत्स्यदेशके राजाके पास जाकर क्या २ सेवा करनेको कहें ॥ १९ ॥ अर्जुनने बूझा कि-हे महात्मा राजन् ! तुम विराट् राजाके नगरमें क्या कार्य करके अपने दिनों को सुखसे बिताओगे ॥ २० ॥ तुम कोमल उदार लज्जाशील धार्मिक और सत्यपराक्रमी हो तो भी हे राजन् ! अब तुम विपत्तिमें आपड़े हो, अतः अब तुम क्या काम करोगे ? ॥ २१ ॥ साधारण मनुष्यकी समान किसी प्रकारका दुःख तुम्हें हो यह अयोग्य है तो भी तुम ऐसी भयङ्कर विपत्तिमें आपड़े हो तो उस विपत्तिसे किस प्रकार तरोगे ! ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि-हे पुरुष श्रेष्ठ कुरुनन्दनों ! मैं विराट् राजाके पास जाकर जो काम करूँगा उस कामको तुम सुनो ! मैं पाशोंकी विद्याको जाननेवाला तथा खेल पर प्रीति करनेवाला कंक नामका ब्राह्मण बनकर उस महात्मा राजाका सभासद् बनूँगा ॥ २४ ॥ और चौपड़के कोष्ठकों पर रंग बिरंगी पट्टियों पर भूरे पीले लाल और धौले रङ्गकी मनोहर हाथी दांतकी गुट्टोंको काले और

क्षांश्च निर्घस्यामि मनोरमान् ॥२५॥ विराटराजं रमयन् सामात्यं सहबान्धवम् । न च मां वेत्स्यते कश्चित्तोषयिष्ये च तं नृपम् ॥२६॥ आसं युधिष्ठिरस्याहं पुरा प्राणसमः सखा । इति वक्ष्यामि राजानं यदि मां सोऽनुयोक्ष्यते ॥२७॥ इत्येतद्वो मयाख्यातं विहरिष्याम्यहं तथा । वृकोदर विराटे त्वं रंस्यसे केन हेतुना ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
युधिष्ठिरादिमन्त्रणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

भीमसेन उवाच । पौरोगवो ब्रुवाणोऽहं बल्लवो नाम भारत । उपस्थास्यामि राजानं विराटमिति मे मतिः ॥ १ सूपानस्य करिष्यामि कुशलोऽस्मि महानसे । कृतपूर्वाणि यान्यस्य व्यञ्जनानि सुशिक्षितैः ॥२॥ तानप्यभिभविष्यामि प्रीतिं संजनयन्नहम् । आहरिष्यामि दारूणां निचयान्महतोऽपि च ॥ ३ ॥ यत् प्रक्ष्य विपुलं कर्म राजा संयोक्ष्यते स माम् । अमानुषाणि कुर्वाणस्तानि कर्माणि भारत॥४॥राजस्तस्यापरे

लाल फाँसे फैंककर उनको लाऊँगा ॥ २५ ॥ और विराट् राजा उसके मंत्री और सम्बन्धियोंको खिलाकर प्रसन्न करूँगा, इस प्रकार करने से मुझे कोई न पहचानेगा ॥ २६ ॥ यदि राजा मुझसे पूँछेगा कि–तुम कौन हो ? तो मैं कहूँगा कि–पहिले मैं राजा युधिष्ठिरका प्राण समान मित्र था ॥२७॥ मैं विराट नगरमें किस प्रकार कार्य करके दिन बिताऊँगा वह बात कहकर मैंने तुम्हें सुनादी हे वृकोदर ! विराट नगरमें तुम क्या काम करके विहार करोगे ॥ २८ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ।

भीमसेनने कहा कि-हे भरतवंशी राजन् ! मेरा यह विचार है कि विराट राजाके पास जाकर यह कहूँगा कि-मेरा नाम बल्लव है और मैं पाकशालाका रसोइया हूँ, यह कहकर विराट राजाकी नौकरी करूँगा ॥ १ ॥ मैं रसोईके काममें चतुर हूं इसलिये भोजनभवनमें जा दाल, शाक आदि बनाऊँगा तथा उसको बहुत रसोइयोंने जो पहिले भाजी आदि व्यंजन बनाए होंगे उनको नीचा दिखानेवाले भोजन बनाऊँगा और अपने ऊपर राजाका प्रेम उत्पन्न करूँगा, और रसोईके लिये लकड़ियोंके बड़े २ गट्ठोंको भी ले आया करूँगा २-३ऐसे अद्भुत कर्मको देखकर राजा मुझको रसोइयेके काम पर रखलेगा और हे भारत ! मैं विराट नगरमें ऐसे२ काम करूँगा कि-जिनको अन्य मनुष्य करही न सकें ॥४॥ जिससे राजाके अन्य सेवक मेरा राजाकी बराबर मान करेंगे, और तिससे मैं भक्ष्यादिक भोजन पेय तथा रसका स्वामी

प्रेष्या मंस्यन्ते मा यथा नृपम् । भक्ष्यान्नरसपेयानां भविष्यामि तथेश्वरः ॥५॥ द्विपा वा बलिनो राजन् वृषभा वा महाबलाः । विनिग्राह्या यदि मया निग्रहीष्यामि तानपि ॥ ६ ॥ ये च केचिन्नियोत्स्यन्ति समाजेषु नियोधकाः । तानहं हि नियोत्स्यामि रतिं तस्य विवर्द्धयन् । ७ । न त्वेतान् युध्यमानान् वै हनिष्यामि कथञ्चन । तथैतान् पातयिष्यामि यथा यास्यन्ति न क्षयम् ॥८॥ आरालिको गोविकर्त्ता सूपकर्त्ता नियोधकः । आसं युधिष्ठिरस्याहमिति वक्ष्यामि पृच्छतः ॥ ९ ॥ आत्मानमात्मनः रक्षंश्चरिष्यामि विशांपते । इत्येतत्प्रतिजानातु विहरिष्याम्यहं यथा ॥१०॥ युधिष्ठिर उवाच । यमग्निर्ब्राह्मणो भूत्वा समागच्छन्नृणां वरम् । दिधक्षुः खाण्डवं दावं दाशार्हसहितं पुरा ॥११॥ महाबलं महाबाहुमजितं कुरुनन्दनम् । सोऽयं किङ्कर्म कौन्तेयः करिष्यति धनञ्जयः॥१२ योऽयमासाद्य तं दावं तर्पयामास पावकम् । विजित्यैकरथेनेन्द्रं हत्वा पन्नगराक्षसान् ॥ १३ ॥ वासुकेः सर्पराजस्य स्वसारं हृतवांश्च यः ।

हो जाऊँगा ॥ ५ ॥ हे राजन्! बलवान् हाथी तथा बैलोंको सिखाकर ठीक करनेका काम मुझे सौंपा जायगा तो मैं उनको भी सिखाकर ठीक करूँगा ॥६॥ और यदि सभामें कोई मल्ल मेरे साथ युद्ध करना चाहेंगे तो मैं सभामें उनके साथ युद्ध करके भी विराट राजाको प्रसन्न करूँगा ॥ ७ ॥ उन युद्ध करनेवाले मल्लोंको मैं किसी दाँवसे मार नहीं डालूँगा किन्तु मैं उनको पृथ्वीपर इस प्रकार पटकूँगा कि-जिससे वह मरे नहीं ॥ ८ ॥ कदाचित् राजा मुझसे पूँछेगा कि-तू कौन है, तब मैं उससे कहूंगा कि-मैं राजा युधिष्ठिरका आरालिक (हाथियोंको शिक्षा देने वाला) गोविकर्त्ता (गद्य पद्य बनाने वाला) सूपकर्त्ता (रसोइया) और नियोधक (महायोधा) था ॥९॥ हे राजन् ! इस प्रकार मैं अपने वास्तविक रूपको छिपाकर विराट नगरमें विहार करूँगा, मैं इनमेंसे किसी एक प्रकारसे विराट नगरमें समय विताऊँगा इसलिये मैंने आपसे निश्चितरूपसे कह दिया है ॥ १० ॥ युधिष्ठिर कहने लगे, कि-पहिले अग्नि खाण्डववनको जलानेकी इच्छासे ब्राह्मणका रूप धारण कर श्रीकृष्णके साथ बैठेहुए पुरुष श्रेष्ठ महाबली महाबाहु,अजित कुरुनन्दन अर्जुनके पास गया था ;वह कुन्तीकुमार अर्जुन विराट नगरमें क्या कार्य करेगा ॥११-१२॥ जिस अर्जुनने दावानलके पास जा एक रथसे इन्द्रको पराजित कर दैत्य तथा पन्नगोंको नष्ट करके अग्निको तृप्त किया था ॥ १३ ॥ जिस अर्जुनने सर्पराज वासुकिकी बहिनका

श्रेष्ठो यः प्रतियोधानां सोऽर्जुनः किं करिष्यति ॥ १४ ॥ सूर्यः प्रतपतां श्रेष्ठो द्विपदां ब्राह्मणो वरः । आशीविषश्च सर्पाणामग्निस्तेजस्विनां वरः ॥१५॥ आयुधानां वरं वज्रं ककुद्मी च गवां वरः । ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठः पर्जन्यो वर्षतां वरः१६धृतराष्ट्रश्च नागानां हस्तिष्वैरावणो वरः । पुत्रः प्रियाणामधिको भार्या च सुहृदां वरा ।१७। यथैतानि विशिष्टानि जात्यां जात्यां वृकोदर । एवं युवा गुडाकेशः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्१८ सोऽयमिन्द्रादनवरो वासुदेवान्महाद्युतिः । गाण्डीवधन्वा बीभत्सुः श्वेताश्वः किं करिष्यति ॥ १९ ॥ उषित्वा पञ्च वर्षाणि सहस्राक्षस्य वेश्मनि । अस्त्रयोगे समासाद्य स्ववीर्यान्मानुषाद्भुतम् । दिव्यान्यस्त्राणि चाप्तानि देवरूपेण भास्वता ।२०। यं मन्ये द्वादशं रुद्रमादित्यानां त्रयोदशम् । वसूनां नवमं मन्ये ग्रहाणां दशमं तथा ॥२१॥ यस्य बाहू समौ दीर्घौ ज्याघातकठिनत्वचौ । दक्षिणे चैव सव्ये च गवामिव वहः कृतः ॥ २२ ॥ हिमवानिव शैलानां समुद्रः सरितामिव । त्रिदशानां

हरण किया था तथा जो अर्जुन शत्रु योधाओंके सन्मुख टक्कर लेनेमें श्रेष्ठ है वह अर्जुन क्या काम करेगा ॥१४॥ जैसे तपाने वाली तेजस्वी वस्तुओंमें सूर्य श्रेष्ठ है वा मनुष्योंमें जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ है सर्पोंमें जैसे विषैला सर्प श्रेष्ठ है, तेजस्वी वस्तुओंमें जैसे अग्नि श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ आयुधोंमें जैसे वज्र श्रेष्ठ है बैलोंमें जैसे ककुद् (ऊँचे कन्धे) वाला बैल श्रेष्ठ है; नदियोंमें जैसे समुद्र श्रेष्ठ है, वर्षा करनेवाले मेघोंमें जैसे पर्जन्य श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ हाथियोंमें जैसे धृतराष्ट्र हाथी श्रेष्ठ है, देवहस्तियोंमें जैसे ऐरावत हाथी श्रेष्ठ है .प्रिय वस्तुओंमें जैसे पुत्र श्रेष्ठ है, हितैषियोंमें जैसे स्त्री श्रेष्ठ है, हे वृकोदर ऊपर कही हुई वस्तुएँ जैसे अपनी २ जातिमें श्रेष्ठ गिनी जाती हैं, ऐसे ही वह युवा अर्जुन सकल धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ है१७-१८इन्द्र और श्रीकृष्णके समान बड़ी कान्तिवाला, गाण्डीव धनुषधारी श्वेत घोड़ोंके रथवाला, वह अर्जुन विराटनगरमें क्या काम करेगा. जिसने इन्द्रके भवनमें पाँच वर्षतक रहकर अपने पराक्रमसे मनुष्योंको आश्चर्यमें डालनेवाली अस्त्रविद्या सीखी थी तथा तेजस्वी और विषय रूपवाले जिस अर्जुनने दिव्यशस्त्र सम्पादन किये थे २० और मैं जिसको ग्यारह रुद्रोंमें बारहवाँ रुद्र मानता हूं, बारह आदित्योंमें तेरहवाँ आदित्य मानता हूँ आठ वसुओंमें नवमा वसु मानता हूं और नवग्रहोंमें दशवाँ ग्रह मानता हूं ॥ २१ ॥ जिसको भुजा एक समान तथा लम्बी हैं, जिसके हाथकी खाल प्रत्यञ्चाके

यथा शक्रो वसूनामिव हव्यवाट् ॥ २३ ॥ मृगाणामिव शार्दूलो गरुडः पततामिव । वरः सन्नह्यमानानां सोऽर्जुनः किं करिष्यति ॥२४॥ अर्जुन उवाच । प्रतिज्ञां षण्ढकोऽस्मीति करिष्यामि महीपते । ज्याघातौ हि महान्तौ मे संवर्तुं नृप दुष्करौ ॥२५॥ वलयैश्छादयिष्यामि बाहू किणकृताविमौ । कर्णयोः प्रतिमुच्याहं कुण्डले ज्वलनप्रभे ॥२६॥ पिनद्धकम्बुः पाणिभ्यां तृतीयां प्रकृतिं गतः । वेणीकृतशिरा राजन्नाम्ना चैव बृहन्नला ॥ २७ ॥ पठन्नाख्यायिकाश्चैव स्त्रीभावेन पुनः पुनः । रमयिष्ये महीपालमन्यांश्चान्तःपुरे जनान् ॥ २८ ॥ गीतं नृत्यं विचित्रञ्च वादित्रं विविधं तथा । शिक्षयिष्यामहं राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः ॥ २९ ॥ प्रजानां समुदाचारं बहुकर्म कृतं वदन् । छादयिष्यामि कौन्तेय माययात्मानमात्मना ॥ ३० ॥ युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका ।

आघातसे कड़ी होगयी हैं और जैसे जुआ खेंचनेसे बैलके कन्धे पर ठेंठ पड़जाती तैसेही धनुषकी डोरी खेंचनेसे जिसके बाएँ दाएँ हाथोंमें ठेंठें पड़गई हैं और जो पर्वतोंमें हिमाचलकी समान देवताओंमें इन्द्रकी समान नदियोंमें समुद्रकी समान, वसुओंमें बलिदान ग्रहण करनेवाले अग्निकी समान पशुओंमें सिंहकी समान और पक्षियोंमें गरुड़की समान वह अर्जुन विराट नगरमें क्या काम करेगा ॥२३-२४॥ अर्जुनने कहा कि-हे राजन् ! मैं राजा विराटके पास जाकर प्रतिज्ञा करूँगा कि-मैं हिजड़ा हूँ, हे राजन् ! मेरी भुजाओंके ऊपर जो धनुषकी डोरी की ठेंठें पड़ी हैं उनको ढकना कठिन है ॥२५॥ तो भी मैं हाथीदांतकी बनी हुई चूड़ियोंसे अपने हाथकी ठेंठोंको छिपाऊँगा और दोनों कानोंमें अग्निकी समान कान्तिवाले दो कुण्डल पहरूँगा॥२६॥ हाथोंमें शंखके कड़े पहरूँगा और मस्तक पर चोटी गूँथ हीजड़ेका रूप धारणकरके बृहन्नला नाम (धारण) रक्खूँगा ॥ २७ ॥ और स्त्रियोंके स्वभावके अनुकूल प्राचीन राजाओंके चरित्रोंको गाकर वारंवार राजाके तथा अन्तःपुरमें रहनेवाले दूसरे मनुष्योंके चित्तोंको आनन्दित करूँगा॥२८॥ और हे राजन्! विराटकी स्त्रियोंको तथा नगरीकी स्त्रियोंको विचित्र गीत नृत्य तथा नाना प्रकारके बाजे सिखाऊँगा ॥ २९ ॥ और प्रजाके किए हुए उत्तम प्रकारके उदार कार्योंकी बहुत प्रशंसा करूँगा, हे कुन्तीपुत्र ! मैं इस प्रकार नपुंसकका रूप धारण करके अपने रूपको छिपाये रहूंगा ॥३०॥ हे पाण्डव ! कदाचित् राजा मुझसे बूझेगा कि-तू कौन है, तब मैं उसको उत्तर दूँगा कि-मैं पहिले राजा युधिष्ठिरके

उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टो राजा च पाण्डव ॥३१॥ एतेन विधिना छन्नः कृतकेन यथा नलः । विहरिष्यामि राजेन्द्र विराटभवने सुखम् ॥३२॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि युधिष्ठिरादिमन्त्रणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच । इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीरस्तथार्जुनो धर्मभृतां वरिष्ठः । वाक्यं तथासौ विरराम भूयो नृपोऽपरं भ्रातरमाबभाषे ॥१॥ युधिष्ठिर उवाच । किं त्वं नकुल कुर्वाणस्तत्र तात चरिष्यसि । कर्म तत्त्वं समाचक्ष्व राज्ये तस्य महीपतेः । सुकुमारश्च शूरश्च दर्शनीयः सुखोचितः ॥ २ ॥ नकुल उवाच । अश्वबन्धो भविष्यामि विराटनृपतेरहम् । सर्वथा ज्ञानसम्पन्नः कुशलः परिरक्षणे ॥ ३ ॥ ग्रन्थिको नाम नाम्नाहं कर्मैतत् सुप्रियं मम । कुशलोस्म्यश्वशिक्षायां तथैवाश्वचिकित्सने । प्रियाश्च सततं मेऽश्वाः कुरुराज यथा तव ॥ ४ ॥ ये मामामन्त्रयिष्यन्ति विराटनगरे जनाः । तेभ्य एवं प्रवक्ष्यामि विहरिष्याम्यहं यथा ॥ ५ ॥ पाण्डवेन पुरा तात अश्वेष्वधिकृतः पुरा । विराटनगरे छन्न-

महलमें द्रौपदीकी सेविका होकर रही थी ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! मैं इस प्रकार बनावटी ढंगसे, जैसे राखमें अग्नि छुपी रहती है। तैसे ही विराट राजाके घरमें अपने स्वरूपको छिपाकर सुखसे विहार करूँगा॥३२ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! पुरुषोंमें महाबली और धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ अर्जुन इस प्रकार कहकर मौन होगए, तब राजा युधिष्ठिरने दूसरे भाईसे बूझना प्रारम्भ किया ॥ १ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि-हे तात नकुल ! तुम सुकुमार शूर, वीर, दर्शनीय और सुख भोगने योग्य हो, अतः कहो, कि-तुम विराट राजाके नगरमें क्या कार्य करके विहार करोगे ? वह कार्य मुझे बताओ ॥ २ ॥ नकुलने कहा कि मुझे घोड़ोंके विषयमें अच्छा ज्ञान है, घोड़ोंकी रक्षा करनेमें; घोड़ोंको सिखाकर चतुर करनेमें तैसेही घोड़ोंकी चिकित्सा करनेमें मैं कुशल हूँ और हे कुरुराज ! जैसे आपको घोड़े प्यारे हैं ऐसेही मुझको भी घोड़ों से अधिक प्रेम है, सार यह है कि-अश्वसम्बन्धी कार्य मुझको बहुत प्रिय है अतः मैं ग्रन्थिक नाम धारण करके राजा विराटके पास जाऊँगा और उनके यहां अश्वपाल बनकर रहूँगा ॥ ३-४ ॥ और विराट नगरमें जो लोग मुझसे बूझेंगे कि-तुम कौन हो तो मैं उत्तर दूँगा कि-पहिले पाण्डवोंने मुझको घोड़ोंका अध्यक्ष बनाया था, इस

चरिष्यामि महीपते ॥६॥ युधिष्ठिर उवाच । सहदेव कथं तस्य समीपे विहरिष्यसि । किं वा त्वं कर्म कुर्वाणः प्रच्छन्नो विहरिष्यसि ॥ ७ ॥ सहदेव उवाच । गोसंख्याता भविष्यामि विराटस्य महीपतेः । प्रतिषेद्धा च दोग्धा च संख्याने कुशलो गवाम् ८ तन्तिपाल इति ख्यातो नाम्नाहं विदितस्त्वथ । निपुणश्च चरिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ।९। अहं हि सततं गोषु भवता प्रहितः पुरा । तत्र मे कौशलं सर्वमवबुद्धं विशाम्पते ॥१०॥ लक्षणं चरितं चापि गवां यच्चापि मङ्गलम् । तत्सर्वं मे सुविदितमन्यच्चापि महीपते ॥ ११ ॥ वृषभानपि जानामि राजन् पूजितलक्षणान् । येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ॥१२॥ सोऽहमेवं चरिष्यामि प्रीतिरत्र हि मे सदा । न च मां वेत्स्यते कश्चित्तोषयिष्ये च पार्थिवम् ॥ १३ ॥ युधिष्ठिर उवाच । इयं हि नः प्रिया भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । मातेव परिपाल्या च पूज्या ज्येष्ठेव च स्वसा ॥ १४ ॥ केन स्म द्रौपदी कृष्णा कर्मणा विचरिष्यति । न हि

प्रकार उत्तर देकर हे राजन् । मैं विराट नगरमें छिपकर रहसकूँगा।६। तदनन्तर युधिष्ठिरने सहदेवसे पूछा कि-हे सहदेव! तुम विराट नगरमें क्या कार्य करके छुपे हुए रहोगे ॥ ७ ॥ सहदेवने उत्तर दिया, कि-मैं उद्धत गौओंको रोकनेमें दूध दुहनेके कार्यमें, चतुर हूँ तथा गौओंकी परीक्षा करनेमें भी चतुर हूँ । अतः विराट राजाके पास तंतिपाल नामसे गौओंका परीक्षक बनकर बड़ी चतुराईसे अपने स्वरूपको छिपाकर विराट नगरमें निवास करूँगा और फिरूँगा अतः आप अपने मनमें (कुछभी) सन्ताप न करें ॥ ८-९ ॥ हे राजन् ! पहिले आपने मुझे गौओंके ऊपर नियत किया था,उस समय जैसी चतुरता मैंने दिखाई थी उस सबको आप जानते ही हैं, ॥ १० ॥ हे राजन् ! गौओंके मङ्गलकारक जो कोई चिन्ह अथवा चरित्र होसकते हैं । उन सबको मैं भले प्रकारसे जानता हूँ । तथा गौओंकी और अन्य सब रीतियोंको भी मैं पूर्णरूपसे जानता हूँ ॥ ११ ॥ और मैं प्रशंसा योग्य लक्षणों वाले वैलोंको भी पहिचानता हूँ, कि-जिन वैलोंके मूत्र सूँघनेसे वन्ध्या स्त्रीके भी गर्भ रह सकता है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! मुझे गौ-पालन पर सदा प्रेम है, अतः मैं ऐसा ही करूँगा ? मैं राजाको प्रसन्न करूँगा तथा ग्वालियोंके वेशमें इसप्रकार छिपकर रहूँगा कि—कोई मुझे पहिचान न सकेगा ।१३। युधिष्ठिरने कहा, कि-यह अपनी प्यारी भार्या द्रौपदी हमको प्राणोंसे भी अधिक मान्य है, यह माताकी समान

किञ्चिद्विजानाति कर्म कर्तुं यथा स्त्रियः ॥१५॥ सुकुमारी च बाला च राजपुत्री यशस्विनी । पतिव्रता महाभागा कथन्नु विचरिष्यति १६ माल्यगंधानलंकारान्वस्त्राणि विविधानि च । एतान्येवाभिजानाति यतो जातासि भामिनी ॥ १७ ॥ द्रौपद्युवाच । सैरंध्र्यो रक्षिता लोके भुजिष्याः सन्ति भारत। नैवमन्याः स्त्रियो यान्ति इति लोकस्य निश्चयः। साहं ब्रुवाणा सैरंध्री कुशला केशकर्मणि ॥ १८ ॥ युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका। उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टा राज्ञा च भारत १९ आत्मगुप्ता चरिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २० ॥ सुदेष्णां प्रत्युपस्थास्ये राजभार्यां यशस्विनीम्। रक्षयिष्यति मां प्राप्तां मा भूत्ते दुःखमीदृशम्॥२१॥ युधिष्ठिर उवाच । कल्याणं भाषसे कृष्णे कुले जातासि भामिनी । न पापमभिजानासि साध्वी साधुव्रते स्थिता ॥२२॥ यथा

पालन करने योग्य है और बड़ी बहिनकी समान पूजनीय है ॥ १४ ॥ अतः यह द्रुपदकुमारी कृष्णा क्या कार्य करके विराट नगरमें दिनोंको वितावेगी ? सामान्य स्त्रियोंकी समान यह किसी कार्यको करना नहीं जानती ॥ १५ ॥ इसका शरीर कोमल है, अवस्थामें बाला है, राजाकी पुत्री यशस्विनी पतिव्रता और बड़ी भाग्यवती है यह क्या कार्य करके विराट नगरमें दिन वितावेगी ॥ १६ ॥ यह द्रौपदी जबसे उत्पन्न हुई है तबसे पुष्प, चन्दनादिक सुगंधित पदार्थ आभूषण और अनेक प्रकारके वस्त्रोंके सम्बन्धकी ही बातें जानती है ॥ १७ ॥ द्रौपदीने कहा कि-हे भरतवंशी राजन् ! इस संसारमें स्वतन्त्र दासियें जो दूसरों के यहाँ सेवा करती हैं वह सैरंध्री नामसे पुकारी जाती हैं परन्तु श्रेष्ठ कुलकी स्त्रियें इसप्रकारका कार्य नहीं करती हैं ऐसा लोगोंका विचार है, अतः मैं सैरंध्री बनूंगी और विराट राजाके पास जाकर कहूँगी कि-मैं बाल काढ़नेमें चतुर हूँ, इसप्रकार कहकर मैं उनके यहाँ रहूँगी १८ हे भरतवंशी राजन् ! यदि राजा मुझसे बूझेंगे कि-तू कौन है और कहाँ रही थी तो मैं उनसे कहूँगी कि-मैं राजा युधिष्ठिरके घरमें उनकी स्त्री द्रौपदीकी दासी थी, और उनके घरमें रहती थी, इसप्रकार मैं दासीके वेशमें छिपकर विराट राजाकी स्त्री सुदेष्णाकी सेवामें रहूँगी ॥ १९ ॥ २० ॥ और वह रानी मेरा पालन करेगी इसलिये आप मेरे विषयमें चिन्ता न करें ॥२१॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-हे कल्याणि स्त्री ! तू जो कहती है वह तेरे योग्य और सुखकारक है तू उत्तम कुल में उत्पन्न हुई है साध्वी है, और सत्पुरुषोंके आचारोंको वर्तती है अतः

न दुहृदः पापाः भवन्ति सुखिनः पुनः। कुर्यास्तत्त्वं हि कल्याणि लक्षयेयुर्न ते यथा ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
युधिष्ठिरादिमंत्रणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर उवाच । कर्माण्युक्तानि युष्माभिर्यानि यानि करिष्यथ । मम चापि यथाबुद्धिरुचिता विधिनिश्चयात् ॥ १॥ पुरोहितोऽयमस्माकमग्निहोत्राणि रक्षतु । सूदपौरोगवैः सार्धं द्रुपदस्य निवेशने ॥ २ ॥ इन्द्रसेनमुखाश्च मे रथानादाय केवलान् । यान्तु द्वारावतीं शीघ्रमिति मे वर्त्तते मतिः ॥ ३ ॥ इमाश्च नार्यो द्रौपद्याः सर्वाश्च परिचारिकाः । पञ्चालानेव गच्छन्तु सूदपौरोगवैः सह ॥ ४ ॥ सर्वैरपि च वक्तव्यं न प्राज्ञायन्त पाण्डवाः । गताः ह्यस्मानपाहाय सर्वे द्वैतवनादिति ॥५॥ वैशम्पायन उवाच । एवं तेऽन्योऽन्यमामन्त्र्य कर्माण्युक्त्वा पृथक् पृथक् । धौम्यमामन्त्रयामासुः स च तान्मन्त्रमब्रवीत् ॥ ६ ॥ धौम्य उवाच । विहितं पाण्डवाः सर्वं ब्राह्मणेषु सुहृत्सु च । याने प्रहरणे चैव

दुराचारको नहीं जानती है॥ २२ ॥ तो भी हे कल्याणि ! वे दुष्टहृदय वाले पापी शत्रु जिसप्रकार तुझे पहिचाने नहीं तैसे ही तू वर्तना कि-जिससे शत्रु] पीछे सुखी न हों ॥२३॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर कहते हैं कि-दैवके बुरे परिणामके कारण जो २ कार्य करने हैं वह २ कार्य तुमने मुझे कह सुनाए और मैंने भी अपनी बुद्धि के अनुसार अपना कर्तव्य कह सुनाया ॥ १ ॥ अब अपने पुरोहित धौम्यको सारथी और रिसालदारोंके साथ राजा द्रुपदके घर जानेदो, जिससे कि-वे तहाँ जाकर हमारे अग्निहोत्रकी रक्षा करें ॥ २ ॥ यह इन्द्रसेन तथा अन्य पुरुष इस खाली रथको ही लेकर अब द्वारकाको जायँ, यह मेरा विचार है ॥ ३ ॥ और ये स्त्रियें तथा द्रौपदीकी टहलनियें सब सारथी और रिसालोंके साथ पाञ्चालकी ओर होजायँ और इन सबोंसे कोई हमारे सम्बन्धमें बूझे तो उन सबोंको उत्तर देना चाहिये, कि-पाण्डव हम सबोंको छोड़ द्वैतवनमेंसे न जाने कहाँ चले गए इसकी हम तो कुछ खबर नहीं है ॥ ५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-इसप्रकार उन्होंने परस्पर एक दूसरेके करनेके कार्योंका निश्चय करलिया तदनन्तर इस विषयमें उन्होंने अपने पुरोहित धौम्यका विचार बूझा तब धौम्यने अपना विचार जताते हुए इसप्रकार कहा६ धौम्यने कहा, हे भारत ! ब्राह्मणादि स्नेही पालकी इत्यादि वाहन

तथैवाग्निषु भारत ॥ ७ ॥ त्वया रक्षा विधातव्या कृष्णायाः फाल्गुनेन च । विदितं वो यथा सर्वं लोकवृत्तमिदं तव ॥ ८ ॥ विदिते चापि वक्तव्यं सुहृद्भिरनुरागतः । एष धर्मश्च कामश्च अर्थश्चैव सनातनः ९ अतोऽहमपि वक्ष्यामि हेतुमत्र निबोधत । हन्तेमां राजवसतिं राजपुत्रा ब्रवीम्यहं ॥ १० ॥ यथा राजकुलं प्राप्य सर्वान्दोषांस्तरिष्यथ । दुर्वसं चैव कौरव्य जानता राजवेश्मनि ॥ ११ ॥ अमानितैर्मानितैर्वा ह्यज्ञातैः परिवत्सरम् । ततश्चतुर्दशे वर्षे चरिष्यथ यथासुखं ॥ १२ ॥ दृष्टद्वारो लभेद् द्रष्टुं राजस्वेपु न विश्वसेत् । तदेवासनमन्विच्छेद्यत्र नाभिपतेत्परः ॥ १३ ॥ यो न यानं न पर्यङ्कं न पीठं न गजं रथम् । आरोहेत् सम्मतोऽस्मीति स राजवसतिं वसेत् ॥ १४ ॥ यत्र यत्रैनमासीनं शंके-

---

हथियार तथा अग्निके सम्बन्धमें जैसी व्यवस्था की है यह सब आपने शास्त्रोक्त रीतिसे की है ॥ ७ ॥ परन्तु आपको तथा अर्जुनको इस द्रौपदीकी रक्षा सावधानीसे करनी होगी तुम सब लौकिक व्यवहारों को जानते हो तो भी स्नेहियोंको प्रीतिपूर्वक स्नेहियोंसे लौकिकव्यवहारकी बातें करनी चाहियें क्योंकि–लौकिक व्यवहारसे ही धर्म अर्थ और कामकी रक्षा होती है, अतः मैं भी तुमसे कहता हूं तुम मेरे कहनेके प्रयोजनकी ओर ध्यान दो। हे कुरुवंशी राजपुत्रों ! व्यापारको जाननेवाले पुरुषोंको भी राजाके घरमें रहना बड़ा ही कठिन पड़जाता है, अतः मैं तुमसे राजाके घरमें किस प्रकारसे रहना चाहिए इस विषयमें कहूंगा उसको सुनो, मेरे कथनके अनुसार बर्ताव करनेसे तुम राजाके घरमें रहते हुए भी सब सङ्कटोंके पार उतर जाओगे अर्थात् राजाके घरमें सुखसे रहोगे और तुमको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होगा ॥ ८-११ ॥ तुमको मान मिले या अपमान परन्तु यह तेरहवाँ वर्ष तो छिपकर कहीं न कहीं विताना ही होगा तदनन्तर चौदहवें वर्षमें तुम प्रकट होकर सुखसे हिर फिर सकोगे ॥ १२ ॥ जब राजासे मिलनेको जाना हो तब द्वारपालसे राजाकी आज्ञा मँगवाकर जाना परन्तु आज्ञा न पाकर एकायकी राजासे नहीं मिलना राजाओं का विश्वास न करना और जिस आसन पर कोई प्रतिष्ठित पुरुष न बैठता हो उस आसन पर ही बैठनेकी इच्छा करना, जिससे कोई उठावे नहीं ॥१३ ॥ जो पुरुष, मैं राजाका सब प्रकारसे मान्य हूं ऐसा विचार कर राजाकी पालकी आदि याने शय्या, आसन, हाथी, और रथों पर बैठनेकी इच्छा नहीं करता वह राजमन्दिरमें रहसकता

रन् दुष्टचारिणः । न तत्रोपविशेद्यो वै स राजवसतिं वसेत् ॥ १५ ॥ न चानुशिष्याद्राजानमपृच्छन्तं कदाचन । तूष्णीं त्वेनमुपासीत काले समभिपूजयेत् ॥१६॥ असूयन्ति हि राजानो जनाननृतवादिनः । तथैव चावमन्यन्ते मन्त्रिणं वादिनं मृषा ॥ १७ ॥ नैषां दारेषु कुर्वीत मैत्रीं प्राज्ञः कथञ्चन । अन्तःपुरचरा ये च द्वेष्टि यानहिताश्च ये ॥ १८ ॥ विदिते चास्य कुर्वीत कार्याणि सुलघून्यपि । एवं विचरतो राज्ञि न क्षतिर्जायते क्वचित् ॥ १९ ॥ गच्छन्नपि परां भूमिमपृष्टो ह्यनियोजितः । जात्यन्ध इव मन्येत मर्यादामनुचिन्तयन् ॥ २० ॥ न हि पुत्रं न नप्तारं न भ्रातरमरिन्दमाः । समतिक्रान्तमर्यादं पूजयन्ति नराधिपाः ॥ २१ ॥ यत्नाच्चोपचरेदेनमग्निवद्देववच्चिह । अनृतेनोपचीर्णो हि हन्यादेव न संशयः ॥ २२ ॥ यच्च भर्त्तानुयुंजीत तत्तदेवानुवर्त्तयेत् ।

है ॥ १४ ॥ जहाँ२ बैठनेसे राजाके दुष्ट विचार वाले दूत अपने ऊपर शंका करें उस स्थान पर न बैठे, वही पुरुष राजभवनमें रहसकता है ॥ १५ ॥ राजा किसी बातमें सम्मति न लेय तो भी किसी दिन इस कार्यको इस प्रकार करिये ऐसा उनसे न कहो परन्तु चुप रहकर चञ्चलता रहित हो राजाकी सेवा करना और जब पराक्रम करनेका समय आवे तब पराक्रम कर राजाका सत्कार करना ॥ १६ ॥ राजा मिथ्या बोलने वाले मनुष्यसे द्वेष करते हैं तैसे ही असत्य कहनेवाले (चापलूस) मन्त्रीका भी तिरस्कार करते हैं ॥१७॥ चतुर मनुष्यको किसी दिन भी राजाकी रानियोंके साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये, तथा जो पुरुष अन्तःपुरमें रहनेवाले हों उनसे तथा राजा जिनसे शत्रुता रखता हो तथा जो राजाके शत्रु हों उनके साथ मित्रता न करना ॥ १८ ॥ छोटे२ कार्य भी राजाको जताकर करना इसप्रकार राजाके सम्बन्धमें वर्ताव करनेसे किसी प्रकार भी हानि नहीं होती है ॥१९॥ राजा उत्तम दशामें हो तो भी बिना पूँछे अथवा बिना कहे राजाकी मर्यादाका विचार करके जन्मान्धकी समान वर्ताव करे अर्थात् राजाके बिना कहे न बोले और आसन न देने पर बैठे नहीं किन्तु राजाकी आज्ञाकी बाट देखे ॥ २० ॥ अर्थात् शत्रुओंको दमन करने वाले राजा अपनी मर्यादाको भङ्ग करनेवाले पुत्र पौत्र अथवा अपने भाईका भी मान नहीं करते हैं ॥ २१ ॥ इस संसारमें यत्नके साथ देवता और अग्निकी समान राजाकी सेवा करनी चाहिए परन्तु जो कपट धारण कर राजाकी सेवा करता है वह अवश्य ही मारा जाता

प्रमादमवलेपञ्च कोपञ्च परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥ समर्थनासु सर्वासु हितं
च प्रियमेव च । सम्वर्णयेत्तदेवास्य प्रियादपि हितं भवेत् ॥ २४ ॥
अनुकूलो भवेच्चास्य सर्वार्थेषु कथासु च । अप्रियञ्चाहितं यत्स्यात्त-
दस्मै नानुवर्णयेत् ॥ २५ ॥ नाहमस्य प्रियोऽस्मीति मत्वा
सेवेत पंण्डितः । अप्रमत्तश्च सततं हितं कुर्यात् प्रियञ्च तत् ॥ २६ ॥
नास्यानिष्टानि सेवेत नाहितैः सह सम्वदेत् । स्वस्थानान्न विकम्पेत
स राजवसतिं वसेत्॥२७॥दक्षिणं वाथ वामं वा पार्श्वमासीत पण्डितः
रक्षिणां ह्यात्तशस्त्राणां स्थानं पश्चाद्विधीयते ॥२८ ॥ नित्यं हि प्रतिषि-
द्धन्तु पुरस्तादासनं महत् । न च संदर्शने किंचित्प्रवृत्तमपि संजपेत्२९
अपि ह्येतद्दरिद्राणां व्यलीकस्थानमुत्तमम्। न नृपाभिहितं राज्ञां मनुष्येषु
प्रकाशयेत् ॥ ३० ॥ असूयन्ति हि राजानो नराननृतवादिनः । तथैव

है ॥२२॥ राजा जिस२ कार्यके लिए आज्ञा देय अथवा पूछे तब उस२
आज्ञाका पालन करे तथा उस२ ही बातका उत्तर देय, परन्तु कार्य
करनेके समय घमण्ड अथवा कोप न करे ॥ २३ ॥ सकल कार्योंकी
परीक्षाके समय अन्तमें सुखदायक और सुननेसेभी सुख देनेवाला
वचन बोले उसमें प्रियवचनको छोड़कर जो हितकारक वचन हो उस
को कहे परंतु अहितकारी प्रिय वचन कभी न कहै ॥२४॥ सब विष-
योंमें और सब बातोंमें राजाके अनुकूल रहै और जो बात राजाको
प्रिय लगे तथा अहितकारी हो वह राजाके सामने नहीं कहे२५ तैसे ही
चतुर मनुष्य मैं राजाका प्यारा हूं यह विचार कर असावधानीसे राजा
को सेवा न करे परन्तु नित्य सावधान रहकर राजाका जो प्रिय तथा
हितकारक कार्य हो उसको करे ॥२६॥ जो पुरुष राजाकी अनिष्ट करने
वाली बातोंमें नहीं पड़ता है, राजाके शत्रुओंके साथ बातें नहीं करता
है और राजाके बताये हुए स्थानसे नहीं हटता है वह ही राजमन्दिरमें
रहसकता है ॥ २७ ॥ चतुर पुरुष राजाके दाहिनी अथवा बाईं ओर
बैठे और जो शस्त्रधारी अङ्गरक्षक हों वह राजाके पिछली ओर बैठें२८
राजाके सामने शूरवीर तथा पण्डिताईका बड़ा आसन बिछाना शास्त्रमें
सर्वथा निषिद्ध है तथा अपने सामने राजसभामें कोई गुप्त बात हो उस
को बाहर न कहै क्योंकि-ऐसा करनेसे दरिद्रको भी अत्यन्त अपमान
सहना पड़ता है तब राजाका अपमान हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या
है राजाने जो कुछ अप्रिय बात कही हो उसको दूसरोंके सामने प्रकट
न करे ॥ ३० ॥ क्योंकि दूसरे राजे मिथ्यावादी राजाओंका और पंडित-

चावमन्यन्ते नरान्पण्डितमानिनः ॥ ३१ ॥ शूरोऽस्मीति न दृप्तः स्याद् बुद्धिमानिति वा पुनः । प्रियमेवाचरन्राज्ञः प्रियोभवति भोगवान्॥३२॥ ऐश्वर्यं प्राप्य दुष्प्रापं प्रियं प्राप्य च राजतः । अप्रमत्तो भवेद्राज्ञः प्रियेषु च हितेषु च ॥३३॥ यस्य कोपो महाबाधः प्रसादश्च महाफलः । कस्तस्य मनसापीच्छेदनर्थं प्राज्ञसम्मतः ॥ ३४ ॥ न चोष्ठौ न भुजौ जानू न च वाक्यं समाक्षिपेत् । सदा वाचञ्च वातञ्च ष्ठीवनञ्चाचरेच्छनैः ।३५। हास्यवस्तुषु चान्यस्य वर्त्तमानेषु केषुचित्। नातिगाढं प्रहृष्येत न चाप्युन्मत्तवद्धसेत् ॥३६॥ न चातिधैर्येण चरेद् गुरुतां हि व्रजेत्ततः । स्मितं तुमृदुपूर्वेण दर्शयेत प्रसादजम् ॥३७॥ लाभे न हर्षयेद्यस्तु न व्यथेद्योऽवमानितः । असम्मूढश्च यो नित्यं स राजवसतिं वसेत् ॥३८॥ राजानं राजपुत्रं वा सम्वर्णयति यः सदा । अमात्यः पण्डितो भूत्वा स चिरं तिष्ठति प्रियः ॥ ३९ ॥ प्रगृहीतश्च योऽमात्यो निगृहीतस्त्वकारणैः । न

मानी पुरुषका अपमान करते हैं ॥३१॥ मैं शूरवीर हूँ बुद्धिमान् हूँ यह गर्व भी राजाके सामने न करे परन्तु राजाको प्रिय लगने वाले कार्य-करे जिससे राजाका प्रिय होजाय और जिससे सम्पूर्ण भोग्यपदार्थों का भोगनेवाला बने ॥ ३२ ॥ जो राजाके पाससे कठिनसे मिले ऐसे ऐश्वर्यको पाने पर राजाके हितकारी और प्रिय कार्योंकी ओर मनुष्य सावधानीसे दृष्टि रक्खे ॥ ३३ ॥ जिसका कोप अतिदुःख देने वाला है तथा जिसकी कृपासे बड़ेभारी फलकी आशा होती है ऐसे राजा का, बुद्धिमानोंका मान्य कौनसा चतुर पुरुष मनसे भी अनिष्ट चाहेगा? पुरुषको राजाके सामने दोनों हाथ, दोनों ओठ, दोनों भुजा दोनों घुटने और वाणीको नियममें रखना चाहिए, सर्वदा अधोवायु तथा थूकना यह काम धीरसे करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अन्य किसीका हास्य होता हो तब बहुत दाँत निकालकर नहीं हँसे तथा उन्मत्तकी समान भी नहीं हँसे ॥३६॥ तथा अत्यन्त धैर्यसे भी न बैठे ऐसा करनेसे लोगोंमें अपनी गुरुता जतातेहुए मूर्खता प्रकट नहीं होती है अर्थात् लोग कहते हैं कि-यह तो जड़सा मालूम पड़ता है परन्तु ऐसे अवसरमें कोमलता के साथ प्रमादरहित होकर मन्द हास्य दिखावे॥३७॥ जो मनुष्य लाभ होनेसे प्रसन्न नहीं होते हैं, अपमानसे खिन्न नहीं होते हैं और जो नित्य सेवामें सावधान रहते हैं वह ही राजमहलमें रहसकते हैं ॥३८॥ जो विद्वान् मंत्री सर्वदा राजाकी और राजपुत्रोंकी प्रशंसा किया करते हैं वह बहुत काल तक राजाके प्रिय बने रहते हैं ॥३९॥ राजाने प्रथम

निर्वदति राजानं लभते सम्पदं पुनः ॥४० ॥ प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च गुणवादी विचक्षणः । उपजीवी भवेद्राज्ञो विषये योऽपि वा भवेत् ॥ ४१ ॥ अमात्यो हि बलाद्भोक्तुं राजानं प्रार्थयेत यः । न स तिष्ठेच्चिरं स्थानं गच्छेच्च प्राणसंशयम्४२श्रेयः सदात्मनो दृष्ट्वा परं राजा न सम्वदेत् । विशेषयेच्च राजानं योग्यभूमिषु सर्वदा ॥ ४३ ॥ अम्लानो बलवाञ्छूरो छायेवानुगतः सदा । सत्यवादी मृदुर्दान्तः स राजवसतिं वसेत् ।४४। अन्यस्मिन् प्रेष्यमाणे तु पुरस्ताद्यः समुत्पतेत् । अहं किं करवाणीति स राजवसतिं वसेत् ॥४५॥ आन्तरे चैव बाह्ये च राज्ञो यश्चाथ सर्वदा आदिष्टे नैव कम्पत स राजवसतिं वसेत् ॥ ४६ ॥ यो वै गृहेभ्यः प्रवसन् प्रियाणां नानुसंस्मरेत् । दुःखेन सुखमन्विच्छेत् स राजवसतिं

जिस मन्त्रीपर अनुग्रह किया हो, तदनन्तर विना कारण ही राजा उस मन्त्रीको दण्ड देय तब भी वह उस राजाकी निन्दा न करे तो वह फिर राजाकी सम्पत्तिको प्राप्त होता है अर्थात् राजाकी सेवामें पहुँच सकता है ॥ ४० ॥ जो पुरुष राजाकी आजीविकासे निर्वाह करता हो अथवा जो राजाके देशमें रहता हो वह मनुष्य प्रत्यक्ष वा परोक्षमें राजाके गुण गावे तो उसे चतुर पुरुष जानो ४१ जो मन्त्री बलात्कारसे राजाको अपने वशमें लानेके लिये कुछका कुछ समझाता है वह मन्त्री बहुत समय तक अपनी पदवी पर नहीं टिकसकता किन्तु उसका जीवन भी संकटमय होजाता है ॥४२॥ अपने लाभको देखकर सर्वदा अपने राजाको शत्रुके साथ लड़ाना नहीं चाहिये किन्तु संधि विग्रहादि उपयोगी स्थलोंमें अपने राजोकी शत्रुओंसे अधिक उन्नतिके लिये प्रयत्न करे ॥४३॥ जो पुरुष सर्वदा उत्साह शक्तिवाला, बुद्धिबलशाली, शूरवीर, सत्यवादी, शान्तस्वभाव, जितेन्द्रिय, और छायाकी समान नित्य राजाके पीछे फिरनेवाला होता है वह पुरुष ही राजभवनमें रह सकता है ॥ ४४ ॥ राजा किस कार्यके लिये अन्य पुरुषको आज्ञा देय उस समय जो पुरुष, मुझे किस कार्यकी आज्ञा है, यह कहता हुआ खड़ा होजाता है वह ही राज-मन्दिरमें रह सकता है ॥ ४५ ॥ राजा जिस पुरुषको अपनी तथा रानियोंकी रक्षा करनेके कार्यकी आज्ञा देता है, अथवा किसी बाहरके सामन्त राजाको पराजित करनेकी आज्ञा देता है उस समय जो पुरुष विना विचलित हुए उस कार्यको करता है वह ही राजमन्दिरमें रहसकता है ॥४६॥ जो पुरुष अपने घरसे देशान्तरमें जाता है और अपने सुहृद

वसेत् ॥ ४७ ॥ समवेषं न कुर्वीत नोच्चैः सन्निहितो वसेत् । न मंत्रं बहुधा कुर्यादेवं राज्ञः प्रियो भवेत् ॥ ४८ ॥ न कर्मणि नियुक्तः सन् धनं किंचिदपि स्पृशेत्। प्राप्नोति हि हरन्द्रव्यं बंधनं यदि वा वधम्४९ यानं वस्त्रमलंकारं यच्चान्यत् संप्रयच्छति । तदेव धारयेन्नित्यमेवं प्रियतरो भवेत् ॥ ५० ॥ एवं संयम्य चित्तानि यत्नतः पाण्डुनन्दनः । सम्वत्सरमिमं तात तथा शीलो बुभूषतः । अथ स्वविषयं प्राप्य यथाकामं चरिष्यथ ॥५१॥ युधिष्ठिर उवाच । अनुशिष्टाः स्म भद्रन्ते नैतद्वक्तास्ति कश्चन । कुन्तीमृते मातरं नो विदुरं वा महामतिम् ॥ ५२ ॥ यदेवानन्तरं कार्यं तद्भवान् कर्त्तुमर्हति । तारणाय स्वदुःखस्य प्रस्थानाय जयाय च ॥ ५३ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्ततो राज्ञा धौम्योथ द्विजसत्तमः । अकरोद्विधिवत्सर्वं प्रस्थाने यद्विधीयते ॥५४॥

स्त्री पुत्र आदिका स्मरण नहीं करता है किन्तु मित्रोंके वियोगसे उत्पन्न हुए दुःखको सहकर होनहार सुखको चाहता है वह राजभवनमें रह सकता है ॥४७॥ जो मनुष्य राजाके सामने राजाकेसे कपड़े नहीं पहिनता है राजाके सामने बहुत नहीं हँसता है तथा दूसरे पुरुषसे बहुत समयतक छुपी रीतिसे बातचीत नहीं करता है वह राजाका प्यारा होजाता है ॥४८॥ जिस पुरुषको राजाने किसी कार्यपर नियत किया हो वह मनुष्य कुछ भी धन (रिश्वत) न लेय क्योंकि-घूंस लेनेसे या तो कारागारमें सड़ना पड़ता है अथवा फाँसी मिलती है ॥ ४९ ॥ राजा पालकी आदि सवारी, वस्त्र, आभूषण, और दूसरा जो कुछ भेंटमें देय उसको सदा पहिरे क्योंकि ऐसा करनेसे पुरुष राजाका बहुत प्यारा होजाता है ।५०। हे तात ! पाण्डवों तुम नियमसे अपने मनको वशमें रख इस तेरहवें वर्षमें वर्ताव करना और ऐश्वर्यकी इच्छा न करना तथा तेरह वर्ष पूरे होनेके अनन्तर अपनी इच्छानुसार अपने देशमें जाकर वर्ताव करना ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि-आपका कल्याण हो आपने जो उपदेश दिया है ऐसा उपदेश माता कुन्तीके सिवाय और महाबुद्धिमान् विदुरजीके सिवाय दूसरा कोई नहीं देसकता अब हमको इस दुःखसे छुड़ानेके लिये, हमारे प्रस्थानके तथा हमारी विजयके लिये जो कार्य करना हो उसको सुखसे करिये५२-५३ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय! इसप्रकार धर्मराजने महाश्रेष्ठ ब्राह्मण धौम्यसे कहा तब उन्होंने प्रयाणकालमें जो२ कार्य करने चाहिये, वह२ कार्य शास्त्रविधिके अनुसार करना प्रारंभ किये५४तब पांडवोंको संपत्तिकी

तेषां समिध्यतानग्नीन्मंत्रवच्च जुहाव सः।समृद्धिवृद्धिलाभाय पृथिवीविजयाय च ॥ ५५ ॥ अग्नीन् प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणांश्च तपोधनान्। याज्ञसेनीं पुरस्कृत्य षड़ेवाथ प्रवव्रजुः ॥५६॥ गतेषु तेषु वीरेषु धौम्योऽथ जयतांवरः। अग्निहोत्राण्युपादाय पञ्चालानभ्यगच्छत ॥५७॥ इन्द्रसेनादयश्चैव यथोक्ताः प्राप्य यादवान्। रथानश्वांश्च रक्षन्तः सुखमूषुः सुसंवृताः ॥ ५८ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
धौम्योपदेशे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच। ते वीरा बद्धनिस्त्रिंशास्तथा बद्धकलापिनः। बद्धगोधांगुलित्राणाः कालिन्दीमभितो ययुः॥१॥ ततस्ते दक्षिणं तीरमन्वगच्छन् पदातयः। निवृत्तवनवासा हि स्वराष्ट्रं प्रेप्सवस्तदा। वसन्तो गिरिदुर्गेषु वनदुर्गेषु धन्विनः ॥२॥ विध्यन्तो मृगजातानि महेष्वासा महाबलाः। उत्तरेण दशार्णांस्ते पञ्चालान् दक्षिणेन च३अन्तरेण यकृल्लोमान् शूरसेनांश्च पाण्डवाः। लुब्धा ब्रुवाणा मत्स्यस्य विषयं

वृद्धिके लिये, तथा पृथिवीकी विजयके लिये, अग्निको प्रज्वलित किया और मन्त्रोंको पढ़कर उसमें होम किया, होम होनेके अनन्तर पांचों पाण्डवों तथा छठी द्रौपदीने खड़े होकर अग्निदेवकी तथा तपोधन ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणाकी, तब पाण्डव द्रौपदीको आगे करके गुप्तवास करनेके लिये तहांसे चलेगए ॥ ५५-५६ ॥ जब शूरवीर पाण्डव गुप्तवास करनेके लिए चलेगए तब पुरोहितश्रेष्ठ धौम्य पुरोहित भी अग्निहोत्रके पात्र तथा अग्निको लेकर पांचालदेशको चलेगए ॥५७॥ और इन्द्रसेन आदि सारथी भी पाण्डवोंके कथनानुसार द्वारिकापुरीको गए, तहां रथ तथा घोड़ोंको रक्षा करने लगे और मनकी बातको गुप्त रख आनन्दमें रहने लगे ॥ ५८ ॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि-तदनन्तर महाधनुर्धारी महापराक्रमी पाण्डव अपना राज्य पानेकी इच्छासे वनवाससे लौटे और उन्होंने हाथमें चमड़ेके मोजे ढाल तलवार तथा बाण धारण करे और अस्त्र शस्त्रोंसे भरेहुए भाथे (तरकस) भी कन्धोंपर धरकर पैरों २ यमुना नदीकी ओरको चलदिए, वह यमुना नदीके दक्षिणी किनारेको अपने पीछे छोड़कर दशार्ण देश और दक्षिण दिशाकी ओर पांचालदेशको छोड़ यकृल्लोम तथा शूरसेन देशके बीचमेंको होकर किसी समय पर्वतकी दुर्गम गुफाओंमें, किसी समय वनमें निवास करते २ और

प्राविशन् वनात् ॥४॥ धन्विनो बद्धनिस्त्रिंशा विवर्णाः श्मश्रुधारिणः । ततो जनपदं प्राप्य कृष्णा राजानमब्रवीत् ॥ ५ ॥ पश्यैकपद्यो दृश्यन्ते क्षेत्राणि विविधानि च । व्यक्तं दूरे विराटस्य राजधानी भविष्यति । वसामेहापरां रात्रिं बलवान् मे परिश्रमः ॥ ६ ॥ युधिष्ठिर उवाच । धनञ्जय समुद्यम्य पाञ्चालीं वह भारत । राजधान्यां निवत्स्यामो विमुक्ताश्च वनादितः ॥७॥ वैशम्पायन उवाच । तामादायार्जुनस्तूर्णं द्रौपदीं गजराडिव । संप्राप्य नगराभ्यासमवतारयदर्जुनः ॥ ८ ॥ स राजधानीं संप्राप्य कौन्तेयोऽर्जुनमब्रवीत् । क्वायुधानि समासज्य प्रवेक्ष्यामः पुरं वयम् ॥ ९ ॥ सायुधाश्च प्रवेक्ष्यामो वयं तात पुरं यदि । समुद्वेगं जनस्यास्य करिष्यामो न संशयः ॥ १० ॥ गाण्डीवञ्च महद् गाढं लोके च विदितं नृणाम् । तच्चेदायुधमादाय गच्छामो नगरं वयम् । क्षिप्रमस्मान्

मृगया करते २ आगेको चलनेलगे, वनमें रहनेसे उनके शरीर काले पड़गए थे, मुखपर डाढी बढगई थी तथा धनुष और तलवारोंको धारण कियेहुए थे, इस कारण उनको कोई पहिचान नहीं सकता था तथापि व्याधे कहलाते हुए वे वनभूमिको लांघ मत्स्यदेशमें पहुँचगये मत्स्य देशमें पहुँचने पर द्रौपदीने राजा युधिष्ठिरसे कहा ॥ १-५ ॥ मैं बहुत थक गई हूँ, यह देखो सामने खेतमें छोटे २ बहुतसे मार्ग तथा अनेकों प्रकारके खेत दीखरहे हैं, इससे ज्ञात होता है कि-राजा विराट की राजधानी यहांसे दूर होगी, अतः आजकी रात्रिमें यहां ही रह जायँ तो ठीक है ॥६॥ यह सुन युधिष्ठिरने कहा कि-हे भारत अर्जुन द्रौपदी थकगई है अतः तुम द्रौपदीको प्रयत्नसे उठाकर लेचलो जिस से हम आज ही वनवाससे छूटकर राजधानीमें निवास करें ॥ ७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं-हे जनमेजय ! युधिष्ठिरकी आज्ञा पाते ही, जैसे हस्तिराज बडी हथिनीको उठालेय तैसे ही अर्जुन द्रौपदीको अपने कन्धेपर बैठाकर चलने लगा और वह जब नगरके पास पहुँचा तब उसने द्रौपदीको भूमि पर उतार दिया ॥ ८ ॥ इस प्रकार विराटकी राजधानीके पास आगये तब धर्मराजने अर्जुनसे कहा कि—हमको नगरमें प्रवेश करनेसे पहिले अपने आयुध कहां छोडने चाहिये हे तात! यदि हम आयुधों सहित नगरमें प्रवेश करेंगे तो इस नगरके मनुष्यों के मनमें बडी घबडाहट होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ और तुम्हारा यह गाण्डीव धनुष बडा दृढ जगत्के सब लोगोंका पहिचाना हुआ है जब हम इस धनुषको लेकर नगरमें आवेंगे तब मनुष्य हम

विजानीयुर्मनुष्या नात्र संशयः ११ ततो द्वादश वर्षाणि प्रवेष्टव्यं वने पुनः। एकस्मिन्नपि विज्ञाते प्रतिज्ञातं हि नस्तथा १२ अर्जुन उवाचाद्यं कूटे मनुष्येन्द्र गहना महती शमी। भीमशाखा दुरारोहा श्मशानस्य समीपतः १३ न चापि विद्यते कश्चिन्मनुष्य इति मे मतिः। योऽस्मान्निदधतो द्रष्टो भवेच्छस्त्राणि पांडवाः १४ उत्पथे हि वने जाता मृगव्यालनिषेविते। समीपे च श्मशानस्य गहनस्य विशेषतः १५ समाधायायुधं शम्यां गच्छामो नगरं प्रति। एवमत्र यथायोगं विहरिष्याम भारत ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच। एवमुक्त्वा स राजानं धर्मराजं युधिष्ठिरम्। प्रचक्रमे निधानाय शस्त्राणां भरतर्षभ ॥१७॥ येन देवान्मनुष्यांश्च सर्वांश्चैकरथोऽजयत्। स्फीतान् जनपदांश्चान्यानजयत् कुरुपुङ्गवः ॥ १८ ॥ तदुदारं महाघोषं सपत्नबलसूदनम्। अपज्यमकरोत् पार्थो गाण्डीवं सुभयङ्करम् ।१९। येन वीरः कुरुक्षेत्रमभ्यरक्षत् परन्तपः।

को अवश्य पहिचान जायँगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ और ऐसा होगा तो हमको फिर दूसरी बार बारह वर्ष तक वनमें रहना होगा, क्यों कि-हमने यह प्रतिज्ञा की है कि—हममेंसे कोई भी एक पहिचाननेमें आजायगा तो फिर सबके सब बारह वर्ष तक वनमें रहेंगे, अतः गुप्त रहनेकी आवश्यकता है ॥ १२ ॥ अर्जुनने कहा कि—हे राजन्! इस श्मशानके समीपमें टीले पर एक शमीका झड़दार वृक्ष है, उसकी शाखाएँ बड़ी भयङ्कर हैं और उस पर चढना बहुत कठिन है ॥ १३ ॥ और हे पाण्डवों! मेरा ऐसा विचार है कि-यहांपर ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो हमको शस्त्र छिपाकर धरतेहुए देखलेय १४ और यह शमीका वृक्ष पशु तथा हिंसक जीवोंसे बसा हुआ है तथा मार्गसे दूर जङ्गलमें उगा हुआ है और क्या कहूँ यह एक भयंकर श्मशानके समीप खडा है, हे भरतवंशी राजन्! आप इस शमीवृक्षपर आयुध छिपाकर उद्विग्नताको छोड़ नगरमें जाइये और तहाँ करने योग्य कार्य करके दिनोंको बिताइये १६ वैशम्पायन कहते हैं कि-भरतवंशश्रेष्ठ-अर्जुनने इसप्रकार धर्मराज युधिष्ठिरसे कहकर अस्त्र रखना प्रारम्भ किया ॥ १७ ॥ पहिले कुरुवंशश्रेष्ठ अर्जुनने केवल एक ही रथमें बैठकर बड़ीभारी गर्जना करनेवाले जिस धनुषसे देवताओंको, सब मनुष्योंको और सम्पत्ति वाले नगरोंको जीता था ऐसे बड़ी गर्जना करनेवाले बड़ीभारी सेनाको नष्ट करनेवाले महाभयङ्कर और उदार गाण्डीव धनुषकी प्रत्यञ्चा उतार ली ॥१८-१९॥ परन्तप शूर

अमुञ्चद्धनुषस्तस्य ज्यामक्षय्यां युधिष्ठिरः ॥ २० ॥ पञ्चालान् येन संग्रामे भीमसेनोऽजयत् प्रभुः। प्रत्यषेधद् बहूनेकः सपत्नांश्चैव दिग्जये २१ निशम्य यस्य विस्फारं व्यद्रवन्त रणात् परे। पर्वतस्येव दीर्णस्य विस्फोटमशनेरिव ॥ २२ ॥ सैन्धवं येन राजानं पर्यामृषितवानथ । ज्यापाशं धनुषस्तस्य भीमसेनोऽवतारयत् २३ अजयत्पश्चिमामाशां धनुषा येन पाण्डवः । माद्रीपुत्रो महाबाहुस्ताम्रास्यो मितभाषिता ॥ २४ ॥ तस्य मौर्वीमपाकर्षच्छूरः संक्रन्दनो युधि । कुले नास्ति समो रूपे यस्येति नकुलः स्मृतः ॥ २५ ॥ दक्षिणां दक्षिणाचारो दिशं येनाजयत् प्रभुः । अपज्यमकरोद्वीरः सहदेवस्तदायुधम् ॥२६॥ खड्गांश्च दीप्तान् दीर्घांश्च कलापांश्च महाधनान् । विपाठान् क्षुरधारांश्च धनुर्भिर्निदधुः सह ॥२७॥ वैशम्पायन उवाच । अथान्वशासन्नकुलं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । आरोहेमां शमीं वीर धनूंष्येतानि निक्षिप ॥२८ ॥ तानुपारुह्य

राजा युधिष्ठिरने:जिस धनुषसे कुरुक्षेत्रकी रक्षाकी थी उस महाधनुषको:अटूट प्रत्यञ्चा उतार डाली ॥ २० ॥ और दिग्विजयके समय जिस धनुषसे महाबलवान् भीमसेनने अकेले ही पाञ्चालराज तथा और बहुतसे शत्रुओंको पराजित किया था तथा वज्रसे फटते हुए पर्वतमें जैसा शब्द होता है वैसा शब्द करते हुए जिस धनुषकी टंकारसे शत्रु रणभूमिसे भागजाते थे और जिस धनुषसे सिंधुराजको हराया था उस धनुषसे भीमने प्रत्यञ्चा उतार ली ॥ २१ ॥ २३ ॥ लाल २ मुँह वाले, मीठा बोलनेवाले, महाभुज, शूरवीर, माद्री पुत्र जो युद्धमें शत्रुओंको त्रास देते थे, और कुलमें:जिनके रूपको समान किसीका रूप नहीं था इसीसे जिनका नाम नकुल पड़ा था उन्होंने जिस धनुषसे शत्रुओंको ललकारकर बुलाया था और पश्चिम दिशाको जीता था उस धनुषकी प्रत्यञ्चा उतार डाली ॥ २४-२५ ॥ सदाचरणवाले सहदेवने जिस धनुषसे दक्षिण दिशाको जीता था उस धनुषकी प्रत्यंचा अलग कर धनुषसे उतार ली ॥२६॥ इसप्रकार सबोंने धनुषकी प्रत्यंचाएँ उतार दीं तदनन्तर अपनी २ चमकती हुई तलवारें बाण रखनेके बहुमूल्य तरकस तथा छुरीकी समान तेज धार वाले बाणोंको धनुषोंके साथ इकट्ठा करके बाँध दिया ॥ २७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-साधारण शस्त्रोंको धनुषोंके साथ बाँधनेके अनन्तर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने नकुलसे कहा कि-हे वीर नकुल ! तू इस शमीके वृक्ष पर चढ़जा और इन धनुषोंको इसके ऊपर धर दे ॥ २८ ॥ तब नकुल उस शमीके वृक्ष पर

नकुलो धनूंषि निदधे स्वयम् । यानि तान्यवकाशानि दिव्यरूपाण्यमन्यत ॥ २९ ॥ यत्र चापश्यत स वै तिरो वर्षाणि वर्षति । तत्र तानि दृढैः पाशैः सुगाढं पर्यबन्धत ॥३०॥ शरीरञ्च मृतस्यैकं समबध्नन्त पाण्डवाः । विवर्जयिष्यन्ति नरा दूरादेव शमीमिमाम् ॥३१॥ आबद्धं शवमत्रेति गन्धमाघ्राय पूतिकम् । अशीतिशतवर्षेयं माता न इति वादिनः ॥३२॥ कुलधर्मोयमस्माकं पूर्वैराचरितोपि वा । समासज्ज्याथ वृक्षेस्मिन्निति वै व्याहरन्ति ते ॥३३॥ आगोपालविपालेभ्य आचक्षाणाः परन्तप । आजग्मुर्नगराभ्यासं पार्थाः शत्रुनिबर्हणाः ॥ ३४ ॥ जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः । इति गुह्यानि नामानि चक्रे तेषां युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥ ततो यथाप्रतिज्ञाभिः प्राविशन्नगरं महत् । अज्ञातचर्यां वत्स्यन्तो राष्ट्रे वर्षं त्रयोदशम् ॥३६॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि पुरप्रवेशे
अस्त्रसंस्थापने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

वैशंपायन उवाच । विराटनगरं रम्यं गच्छमानो युधिष्ठिरः । अस्तु-

चढ़ गया और उस वृक्षकी जो सुन्दर खोखले देखनेमें आईं कि-जिन में वरसतेमें सामनेसे पानी नहीं पहुँचसकता था किंतु ओड़ा वरसता था ऐसी खोखलोंमें धनुषोंको रखकर दृढ़ डोरीसे चारों ओरसे वृक्ष में बाँधदिया तदनन्तर पाण्डवोंने एक मृत मनुष्यके शव (लहाश) को भी उस वृक्षसे बाँधदिया इसके बाँधनेका यह ही कारण था कि-उसकी दुर्गन्धिसे मनुष्य इस शमीको दूरसे ही छोड़ जायँगे अर्थात् इसकेपास न जायँगे ॥ २९–३१ ॥ पांडव जिस समय अपने शस्त्र आदि शमीके वृक्षसे बाँध रहे थे, उस समय ग्वालिये तथा बकरी चरानेवाले इनसे बूझने लगे कि - तुम शमीके वृक्ष पर क्या बाँधरहे हो ? तब परन्तप पाण्डवोंने यह उत्तर दिया कि–यह हमारी माता है, यह एकसौ अस्सी वर्षकी बुढ़िया थी इसको मरने पर हम अपनी कुलकी रीतिके अनुसार इस शमीके वृक्षसे बाँधेजाते हैं, ऐसा ही हमारे बड़े करते थे, इसप्रकार उत्तर दे शत्रुनाशी पांडव विराटनगरमें आगए ॥३२–३४॥ राजा युधिष्ठिरने आपसमें सबोंके गुप्त नाम जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल ये रक्खे, ॥ ३५ ॥ तदनन्तर पाण्डव अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तेरहवें वर्षमें छिप कर रहनेकी इच्छासे बड़ेभारी विराटनगरमें घुसे ॥ ३६ ॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय ! राजा युधिष्ठिरने रमणीय

म मनसा देवीं दुर्गां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ १ ॥ यशोदागर्भसम्भूतां नारायणवरप्रियाम्। नन्दगोपकुले जातां मांगल्यां कुलवर्धिनीम् ॥ २ ॥ कंसविद्रावणकरीमसुराणां क्षयङ्करीम् । शिलातटविनिक्षिप्तामाकाशं प्रति गामिनीम् ॥ ३ ॥ वासुदेवस्य भगिनीं दिव्यमाल्यविभूषिताम् । दिव्याम्बरधरां देवीं खड्गखेटकधारिणीम् ॥ ४ ॥ भारावतरणे पुण्ये ये स्मरन्ति सदा शिवाम् । तान् वै तारयते पापात् पंके गामिव दुर्बलाम् ॥ ५ ॥ स्तोतुं प्रचक्रमे भूयो विविधैः स्तोत्रसम्भवैः । आमन्त्र्य दर्शनाकांक्षी राजा देवीं सहानुजः ॥ ६ ॥ नमोस्तु वरदे कृष्णे कुमारि ब्रह्मचारिणि । बालार्कसदृशाकारे पूर्णचन्द्रनिभानने ॥ ७ ॥ चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रे पीनश्रोणि पयोधरे । मयूरपिच्छवलये केयूरांगदधारिणि ८ भासि देवि यथा पद्मा नारायणपरिग्रहा । स्वरूपं ब्रह्मचर्यं च विशदं तव खेचरि ॥ ९ ॥ कृष्णच्छविसमा कृष्णा संकर्षणसमानना । बिभ्रती

विराटनगरमें जाते समय दुर्गा देवीके दर्शन करनेकी इच्छासे अपने भाइयोंके साथ तीनों लोकोंकी स्वामिनी, संकटहारिणी यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हुई, नारायणकी प्यारी, नन्दके कुलमें उत्पन्न हुई मंगलकर्त्री, कुलकी वृद्धि करने वाली, कंसका नाश करनेवाली, असुरोंका नाश करनेवाली, कंसके शिलापर पटकनेसे आकाशमें उड़ जानेवाली, वासुदेवकी बहिन, दिव्य पुष्पोंकी मालासे सुशोभित, दिव्य वस्त्रधारिणी तलवार और खेटक धारण करनेवाली, पृथ्वीका भार उतारने वाली, पुण्यदायिनी, कल्याणमूर्त्ति, सर्वदा स्मरण करने वालोंको कीचड़मेंसे गौओंकी समान पापमेंसे उद्धार करनेवाली दुर्गा देवीका स्मरण किया, तदनन्तर स्तोत्रोंमें वर्णन करेहुए अनेक प्रकारके नामोंसे वारम्वार देवीको सम्बोधन कर उसकी स्तुति करने लगे ॥ १-६ ॥ युधिष्ठिर स्तुति करने लगे कि—हे वरदेनेवाली कुमारी, ब्रह्मचारिणी, बालसूर्यकी समान आकारवाली, पूर्णचन्द्रके समान मुख वाली, देवी कृष्णा आपको नमस्कार है ॥ ७ ॥ हे चतुर्भुजे, चार मुखों वाली, पीनश्रोणि, पीनस्तनी, मयूरपिच्छके कंकणवाली, मुकुट और बाजूबन्द धारण करने वाली देवी ! जैसे नारायणकी स्त्री पद्मा शोभा पाती है इसी प्रकार तुम शोभा पाती हो ॥ ८ ॥ हे आकाशविहारिणी देवि ! आपका स्वरूप और ब्रह्मचर्य शुद्ध है, आपके शरीरका वर्ण श्याम है अतएव आप कृष्णा कहलाती हो, आपका मुख बलदेवजीके मुखकी समान है ॥९॥ इन्द्रध्वजाकी समान आपकी लम्बी

विपुलौ बाहू शक्रध्वजसमुच्छ्रयौ ॥ १० ॥ पात्री च पंकजी घंटी स्त्री विशुद्धा च या भुवि । पाशम्धनुर्महाचक्रं विविधान्यायुधानि च ११ कुण्डलाभ्यां सुपूर्णाभ्यां कर्णाभ्यां च विभूषिता । चन्द्रविस्पर्धिना देवि मुखेन त्वं विराजसे ॥ १२ ॥ मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना । भुजङ्गाभोगवासेन श्रोणिसूत्रेण राजता ॥ १३ ॥ विभ्राजसे चाबद्धेन भोगेनेवेह मन्दरः । ध्वजेन शिखिपिच्छानामुच्छ्रितेन विराजसे । कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं पावितं त्वया ॥ १४ ॥ तेन त्वं स्तूयसे देवि त्रिदशैः पूज्यतेपि च । त्रैलोक्यरक्षणार्थाय महिषासुरनाशिनि । प्रसन्ना मे सुरश्रेष्ठे दयां कुरु शिवा भव ॥ १५ ॥ जया त्वं विजया चैव संग्रामे च जयप्रदा । ममापि विजयं देहि वरदा त्वञ्च साम्प्रतम् ॥ १६ ॥ विन्ध्ये चैव नगश्रेष्ठे तव स्थानं हि शाश्वतम् । कालि कालि महाकालि सीधुमांसपशुप्रिये ॥ १७ ॥ कृतानुयात्रा भूतैस्त्वं वरदा कामचारिणी । भारावतारे ये च त्वां संस्मरिष्यन्ति

भुजायें वर तथा अभय देनेवाली होनेसे श्रेष्ठ गिनी जाती हैं तथा आप अपनी दूसरी भुजाओंमें खप्पर, कमल, घंटा धनुष पाश महाचक्र तथा और भी अनेकों प्रकारके आयुधोंको धारण कर रही हो१०॥११ हे देवि ! तुम चन्द्रमाको लज्जित करनेवाले मुखसे शोभा पाती हो तथा विचित्र मुकुटसे शोभित केशपाशसे दिपती हो१२और हे देवि ! चारों ओर सर्पोंसे घिराहुआ मन्दराचल जैसी शोभा पाता है तैसेही सर्पके शरीरकी समान विस्तारवाली कटिमेखलासे तुम शोभा पाती हो ॥ १३ ॥ मयूरपिच्छकी ऊँची ध्वजासे तुम विराज रही हो, ब्रह्मचर्यव्रतधारिणी तुमने स्वर्गलोकको पवित्र किया है इस कारण ही हे देवी ! देवता तुम्हारी पूजा तथा स्तुति करते हैं तुमने तीनों लोकों की रक्षा करनेके लिए महिषासुरको मारा है, हे देवियोंमें श्रेष्ठ देवि ! तुम हमारे ऊपर दया करो, कल्याणकारिणी बनो,प्रसन्न होओ१४।१५ तुम जया ही विजया हो, तथा संग्राममें तुम ही जय देने वाली हो, अतः मुझको भी वरदान देनेवाली तुम विजय दो ॥ १६ ॥ तुम्हारा विंध्य नामक पर्वत पर सनातन (पुराना) स्थान है, हे कालि, ओ कालि, अयि महाकालि ! हे मधु, मांस और पशुओं पर प्रीति करने वाली हे देवि ! ब्रह्मा इत्यादि तुम्हारी भक्ति करते हैं, हे देवि ! इससे ही तुम उनको वरदान देती हो, हे देवि ! जो मनुष्य प्रातःकाल आपका स्मरण करते हैं तथा प्रभातमें आपको प्रणाम करते हैं उन पुरुषों

मानवाः ॥१८॥ प्रणमन्ति च ये त्वां हि प्रभाते तु नरा भुवि । न तेषां दुर्लभं किञ्चित् पुत्रतो धनतोपि वा ॥ १९॥ दुर्गात्तारयसे दुर्गे तत्त्वं दुर्गा स्मृता जनैः । कान्तारेष्ववसन्नानां मग्नानाञ्च महार्णवे ॥ २० ॥ दस्युभिर्वा निरुद्धानां त्वं गतिः परमा नृणाम् ।जलप्रतरणे चैव कांतारेष्वटवीषु च ॥ २१ ॥ ये स्मरन्ति महादेवि न च सीदन्ति ते नराः । त्वं कीर्त्तिः श्रीर्धृतिः सिद्धिर्ह्रीर्विद्या सन्ततिर्मतिः ॥२२॥ सन्ध्या रात्रिः प्रभा निद्रा ज्योत्स्ना कान्तिः क्षमा दया । नृणां च बन्धनं मोहं पुत्रनाशं धनक्षयम् ॥ २३ ॥ व्याधिं मृत्युं भयञ्चैव पूजिता नाशयिष्यसि। सोहं राज्यात् परिभ्रष्टः शरणं त्वां प्रपन्नवान् ॥ २४ ॥ प्रणतश्च यथा मूर्ध्ना तव देवि सुरेश्वरि । त्राहि मां पद्मपत्राक्षि सत्ये सत्या भवस्व नः २५ शरणं भव मे दुर्गे शरण्ये भक्तवत्सले।एवं स्तुता तु सा देवी दर्शयामास पाण्डवम् ॥ २६ ॥ उपगम्य तु राजानमिदं वचनमब्रवीत् । देव्युवाच। शृणु राजन् महाबाहो मदीयं वचनं प्रभो ॥ २७ ॥ भविष्यत्यचिरादेव संग्रामे विजयस्तव । मम प्रसादान्निर्जित्य हत्वा कौरववाहिनीम् ।२८।

को पृथ्वी पर पुत्र धन आदि दुर्लभ नहीं होते हैं ॥ १७-१९ ॥ हे दुर्गे ! तुम दुःखोंमेंसे मनुष्योंको उबारती हो इसीलिए तुमको पुरुष दुर्गा कहते हैं, भयंकर जङ्गलमें मार्ग भूल कर दुःख पातेहुए,तथा महासागरमें डूबते हुए,अथवा चोरोंसे रोके हुए प्राणियोंकी तुम आधार हो पानीमें तैरते समय, जङ्गलमें मार्ग भूलते समय जो मनुष्य तुम्हारा स्मरण करते हैं वे दुःखित नहीं होते हैं, तुम कीर्ति रूप ,लक्ष्मी, धैर्य, सिद्धि, लज्जा, विद्या, संतति, मति, सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा,ज्योत्स्ना,कान्ति, क्षमा और दयारूप हो तुम्हारी पूजा करी होय तो तुम मनुष्योंके बन्धनको,मोहका,पुत्रनाशका,धनक्षयका,मृत्युका और व्याधिका भयका नाश करती हो मैं राज्यसे भ्रष्ट हो चुका हूं और तुम्हारी शरणमें आया हूं२०-२४हे देवि ! हे सुरेश्वरि ! मैं आपको मस्तकसे प्रणाम करता हूं, हे कमलपत्राक्षि ! सत्या देवि ! मुझे बचाओ और हमारे कार्यमें सच्चे रूपसे प्रकट होओ२५हे दुर्गे, हे शरणागतवत्सले, भक्तरक्षिके, मुझे शरणमें रक्खो इस प्रकार युधिष्ठिरने दुर्गा देवीकी स्तुति करी तब दुर्गा देवीने राजा युधिष्ठिरको दर्शन दिया और उसके पास जा इसप्रकार कहनेलगी,देवी कहती है कि हे महाभुज राजन् ! मेरी वाणीको सुनो २६-२७ थोड़े समयके अनन्तर संग्राममें तुम्हारी जीत होगी और हे राजन् ! तुम मेरी कृपासे थोड़े दिनोंमें कौरवोंको

राज्यं निष्कण्टकं कृत्वा भोक्ष्यसे मेदिनीं पुनः । भ्रातृभिः सहितो राजन् प्रीतिं प्राप्स्यसि पुष्कलाम् ॥ २९ ॥ मत्प्रसादाच्च ते सौख्यमारोग्यञ्च भविष्यति । ये च सङ्कीर्त्तयिष्यन्ति लोके विगतकल्मषाः ॥ ३० ॥ तेषां तुष्टा प्रदास्यामि राज्यमायुर्वपुः सुतम् । प्रवासे नगरे चापि संग्रामे शत्रुसङ्कटे ॥ ३१ ॥ अटव्यां दुर्गकान्तारे सागरे गहने गिरौ । ये स्मरिष्यन्ति मां राजन् यथाहं भवता स्मृता ॥ ३२ ॥ न तेषां दुर्लभं किञ्चिदस्मिल्लोके भविष्यति । इदं स्तोत्रवरं भक्त्या शृणुयाद्वा पठेत वा॥३३ तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं यास्यन्ति पाण्डवाः । मत्प्रसादाच्च वः सर्वान् विराटनगरे स्थितान् ॥ ३४ ॥ न प्रज्ञास्यन्ति कुरवो नरा वा तन्निवासिनः । इत्युक्त्वा वरदा देवी युधिष्ठिरमरिन्दमम् । रक्षां कृत्वा च पाण्डूनां तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३५ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
श्रीदुर्गास्तवे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो विराटं प्रथमं युधिष्ठिरो राजा सभायामुपविष्टमाव्रजत् । वैदूर्यरूपान् प्रतिमुच्य काञ्चनानक्षान् स कक्षे परि-

---

नष्ट कर बन्धुओंकी सहायतासे राज्यको शत्रुओंसे रहित कर पृथ्वी पर प्रभुता करोगे और संसारमें लोगोंका बहुत प्रेम प्राप्त करोगे२८-२९ मेरे प्रसादसे तुम सुखी और नीरोग रहोगे । हे राजन् ! जो मनुष्य तुम्हारी समान स्तोत्रसे मेरी स्तुति करेगा उसके पाप नष्ट होजावेंगे और मैं प्रसन्न होकर उसको राज्य,आयु, सुन्दर शरीर तथा पुत्र दूँगी और हे राजन् ! जो मनुष्य प्रवासमें, नगरमें रणमें, निर्जन अरण्यमें, शत्रुसंकटमें भयङ्कर जङ्गलमें,तथा गहन पर्वतपर मेरा स्मरण तेरी समान करेंगे तो उन मनुष्योंको इस संसारमें कोई भी वस्तु दुष्प्राप्य नहीं होगी अर्थात् सहजमें ही मिलजाया करेगी, हे पाण्डवो ! जो २ पुरुष भक्तिसे इस स्तोत्रको सुनेंगे अथवा पढेंगे उनके सब कार्य सिद्ध होंगे हे पाण्डवो ! मेरे आशीर्वादसे विराट नगरमें छिपकर रहते हुए तुमको कौरव या कोई विराट नगरका पुरुष भी नहीं पहिचानेगा इस प्रकार वर देने वाली देवी शत्रुको दमन करने वाले राजा युधिष्ठिरसे कहकर पाण्डवोंकी रक्षा कर तहाँ ही अदृश्य होगई ॥३१-३५॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! तदनन्तर आरम्भमें ही राजा युधिष्ठिर भूरे रंगकी, पीले रंगकी, लाल रङ्गकी, तथा श्वेतवर्ण

गुह्य वाससा ॥ १ ॥ नराधिपो राष्ट्रपतिं यशस्विनं महायशाः कौरववंशवर्द्धनः । महानुभावो नरराजसत्कृतो दुरासदस्तीक्ष्णविषो यथोरगः ॥२॥ बलेन रूपेण नरर्षभो महानपूर्वरूपेण यथामरस्तथा । महाभ्रजालैरिव संवृतो रविर्यथानलो भस्मवृतश्च वीर्यवान् ॥ ३ ॥ तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य पाण्डवं विराटराडिन्दुमिवाभ्रसंवृतम् । समागतं पूर्णशशिप्रभाननं महानुभावं न चिरेण दृष्टवान् ॥ ४ ॥ मन्त्रिद्विजान् सूतमुखान् विशस्तथा ये चापि केचित् परितः समासते । पप्रच्छ कोऽयं प्रथमं समेयिवान् नृपोपमोऽयं समवेक्षते सभाम् ॥ ५ ॥ न तु द्विजोऽयं भविता नरोत्तमः पतिः पृथिव्या इति मे मनोगतम् । न चास्य दासो न रथो न कुञ्जरः समीपतो भ्राजति चायमिन्द्रवत् ॥६॥ शरीरलिङ्गैरुपसूचितो ह्ययं मूर्द्धाभिषिक्त इति मे मनोगतम् । समीपमायाति च मे गतव्यथो यथा गजस्तामरसीं मदोत्कटः ॥ ७ ॥ वितर्कयन्तन्तु नरर्षभस्तथा युधिष्ठिरोऽभ्येत्य विराटमब्रवीत् । सम्राड्

की गुट्टें और फांसोंको एक वस्त्रमें बांध उन्हें बगलमें दबा सभामें बैठे हुए राजा विराटके पास गये ॥ १ ॥ कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाले, कीर्तिमान् महापराक्रमी राजाओंसे मान पाये हुए नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरको सभाकी ओर आते हुए देखकर उनको तीक्ष्ण विषवाले सर्पकी समान दुरासद् घनघोर घटाओंसे छिपाये हुए सूर्यकी समान बादलोंसे ढकेहुए चन्द्रमाकी समान और भस्मसे ढकेहुए अग्निकी समान, तेजस्वी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान उज्वल मुखवाले, अतिरूपवान् बलसंपन्न तथा देवोंकी समान सुरूप देखकर महायशस्वी राजा विराटने सभामें बैठेहुए ब्राह्मण क्षत्रिय,वैश्य, सूत,मन्त्री आदि पुरुषोंसे पूछा कि-राजाके लक्षणोंसे युक्त यह कौन पुरुष सभाकी ओरको देखरहा है, यह पुरुष पहिली वारही आया हुआ प्रतीत होता है, मुझे प्रतीत होता है कि-यह पुरुष ब्राह्मण नहीं है किन्तु कोई राजा है इसके साथ दास, रथादि कोई नहीं है तब भी यह पुरुष इन्द्रसा तेजस्वी दीखता है इसके शरीरके बाहरी आकारसे जाना जाता है कि-यह कोई मूर्द्धाभिषिक्त (किसी राज्यका अधिकारी) क्षत्रिय है, मदमत्त हाथी जैसे निर्भय होकर कमलनीके पास जाता है तिसी प्रकार यह भी निर्भयपनेसे मेरे पास आरहा है ॥ ७ ॥ राजा विराट इस प्रकार तर्क वितर्क कररहे थे कि-इतनेमें ही नरश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने राजा विराटके पास आकर कहा कि-मैं द्विज हूं और दुर्भाग्यके

विजानात्विह जीवनार्थिनं विनष्टसर्वस्वमुपागतं द्विजम् ॥ ८ ॥ इहाहमिच्छामि तत्रानघान्तिके वस्तुं यथाकामचरस्तथा विभो । तमब्रवीत् स्वागतमित्यनन्तरं राजा प्रहृष्टः प्रतिसंगृहाण च ॥९॥ तं राजसिंहं प्रतिगृह्य राजा प्रीत्यात्मना चैवमिदं बभाषे । कामेन ताताभिवदाम्यहं त्वां कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः ॥ १० ॥ गोत्रञ्च नामापि च शंस तत्त्वतः किं चापि शिल्पं तव विद्यते कृतम् ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर उवाच । युधिष्ठिरस्यासमहं पुरा सखा वैयाघ्रपद्यः पुनरस्मि विप्रः । अक्षान् प्रयोक्तुं कुशलोऽस्मि देविनां कंकेति नाम्नास्मि विराट विश्रुतः ॥ १२ ॥ विराट उवाच । ददामि ते हन्त वरं यमिच्छसि प्रशाधि मत्स्यान्वशगो ह्यहं तव । प्रियाश्च धूर्त्ता मम देविनः सदा भवांश्च देवोपम राज्यमर्हति ॥ १३ ॥ युधिष्ठिर उवाच । प्राप्तो विवादः प्रथमं विशाम्पते न विद्यते कञ्चन मत्स्य हीनतः । न मे जितः

कारण मेरा सर्वस्व नष्ट होगया है अतः हे राजन् । मैं आपके पास आजीविकाके लिये आया हूं यह आपको विदित हो ॥ ८ ॥ हे निर्दोष और व्यापक राजन् ! आप जिस प्रकार कहेंगे उसी प्रकार वर्त्ताव करके मैं आपके पास रहना चाहता हूँ यह सुन राजा विराटने प्रसन्न हो उनका सत्कार कर कहा कि-अच्छा तुम यहाँ हो रहो तुम्हें जो काम अच्छा लगे उसे करो ॥ ९ ॥ इस प्रकार कह राजा विराटने राजसिंह युधिष्ठिरको अपने यहाँ ठहराया' इसके अनन्तर प्रेमपूर्वक इस प्रकार बूझा कि-हे तात ! मैं तुमसे प्रीतिपूर्वक बूझता हूँ, कि-तुम किस राजाके देशसे यहाँ आये हो ॥ १० ॥ तुम्हारा गोत्र क्या है तुम्हारा नाम क्या है, और तुमने कौनसा शिल्पका कार्य सीखा है तुम मुझसे ठीक२ कहो ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर कहने लगे कि-हे विराट राजन् ! मैं व्याघ्रपाद गोत्रमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण हूं मैं पहिले युधिष्ठिरका मित्र था, और जुआ खिलानेवालोंमें तथा फांसे फेंकनेमें चतुर हूं तथा कंक नामसे प्रसिद्ध हूं ॥ १२ ॥ राजा विराट बोले कि-तुम जो वर मांगो मैं वह आनन्दसे देनेको उद्यत हूँ अधिक क्या कहूँ मैं भी तुम्हारे अधीन हूँ और तुम मत्स्य देश पर अपनी प्रभुता चलाओ मुझे जुआ खिलानेवाले धूर्त्त लोग सदा प्यारे लगते हैं अतः हे देव समान ! तुम राज्य (भोगने) के भी योग्य हो ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरने उत्तर दिया कि---हे राजन् ! पहिले मेरी यह प्रार्थना है कि-मुझे नीच पुरुषोंसे किसी प्रकार का भी (आपकी ओरसे) विवाद

कश्चन धारयेद्धनं वरो ममैषोऽस्तु तव प्रसादजः ॥ १४ ॥ विराट उवाच । हन्यामवश्यं यदि तेऽप्रियञ्चरेत् प्रव्राजयेयं विषयाद् द्विजांस्तथा । शृण्वन्तु मे जानपदाः समागताः कंको यथाहं विषये प्रभुस्तथा ॥ १५ ॥ समानयानो भवितासि मे सखा प्रभूतवस्त्रो बहुपानभोजनः । पश्येस्त्वमन्तश्च बहिश्च सर्वदा कृतं च ते द्वारमपावृतं मया ॥ १६ ॥ ये त्वानुवदेयुः स्ववृत्तिकर्शिता ब्रूयाश्च तेषां वचनेन मां सदा । दास्यामि सर्वं तदहं न संशयो न ते भयं विद्यते सन्निधौ मम ॥ १७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं स लब्ध्वा तु वरं समागमं विराटराजेन नरर्षभस्तदा । उवास धीरः परमार्चितः सुखी न चापि कश्चिच्चरितं बुबोध तत् ॥ १८ ॥ युधिष्ठिरप्रवेशे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

न करना पड़े, दूसरी प्रार्थना यह है, कि–कोई भी पुरुष खेलतेमें मुझसे हार जाय तब वह दाँवमें रक्खे धनको न लेजाय, किन्तु वह धन मुझे देदेय, आपकी कृपासे मुझे यह दो वर मिलें ऐसा कीजिये १४ विराट बोले हे ब्राह्मण ! कोई भी मनुष्य तुम्हारा अप्रिय करेगा तो मैं उसे अवश्य ही देहान्त दण्ड दूँगा, यदि वह ब्राह्मण होगा तो देशनिकाला देदूंगा, यहाँ इकट्ठे बैठे हुए मेरे सब देशवासियों ! सुनो मैं तुमसे कहता हूं कि–जैसा मैं इस देशका राजा हूं तैसे ही यह कंक भी राजा है ॥ १५ ॥ हे कंक ! आप मेरे मित्र हो अतः तुमको मेरे समान पालकी आदि सवारियें बैठनेके लिए मिलेंगी पहरनेके लिए बहुतसे वस्त्र मिलेंगे और अनेक प्रकारके पेय तथा भोजन मिलेंगे और तुम बाहरके सेना ग्राम आदिका और भीतर धन दारा आदिके सब कार्योंमें ध्यान रखना मैं तुम्हारे लिए सब द्वार खोलता हूँ अर्थात् तुम बे रोक टोक राजमन्दिरमें आसकते हो ॥ १६ ॥ आजीविकाके साधनसे रहित दरिद्र पुरुष जब धनकी प्रार्थना करते हुए तुम्हारे पास आवें तब तुम उनके कहनेके अनुसार सदा चाहे तिस समय तुम मेरे पास आकर उनकी प्रार्थना मुझको सुनाना, मैं उनके कहनेके अनुसार सब वस्तुएँ दूँगा इसमें तुम सन्देह न रखना, तुम मुझसे कहते समय किसी प्रकारका भय मत मानना ॥ १७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय ! इस प्रकार नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरने राजा विराटके साथ बातचीत करके उनसे वरदान लिए और सब प्रकारके सत्कारको प्राप्त कर आनन्दसे रहने लगे और किसी भी पुरुषने उनके इस अज्ञातवासके चरित्रको कुछ नहीं जाना ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथापरो भीमबलः श्रिया ज्वलन्नुपाययौ सिंहविलासविक्रमः । खजाञ्च दर्वीञ्च करेण धारयन्नसिं च कालांगमकोशमव्रणम् ॥ १ ॥ स सूदरूपः परमेण वर्चसा रविर्यथा लोकमिमं प्रकाशयन् । स कृष्णवासा गिरिराजसारवांस्तं मत्स्यराजं समुपेत्य तस्थिवान् ॥ २ ॥ तं प्रेक्ष्य राजा रमयन्नुपागतं ततोऽब्रवीज्जानपदान् समागतान् । सिंहोन्नतं सोऽयमतीव रूपवान् प्रदृश्यते को नु नरर्षभो युवा ॥३॥ अदृष्टपूर्वः पुरुषो रविर्यथा वितर्कयन्नास्य लभामि निश्चयम् । तथाऽस्य चित्तं ह्यपि संवितर्कयन्नरर्षभस्यास्य न यामि तत्त्वतः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वैव चैनं तु विचारयाम्यहं गन्धर्वराजो यदि वा पुरन्दरः । जानीत कोऽयं मम दर्शने स्थितो यदीप्सितं तल्लभतां च माचिरम् ॥५॥ विराटवाक्येन च तेन चोदिता नरा विराटस्य सुशीघ्रगामिनः उपेत्य कौन्तेयमथाब्रुवंस्तदा यथा स राजा वदताच्युतानुजम् ॥६ ॥ ततो विराटं समुपेत्य पाण्डवस्त्वदीनरूपं वचनं महामनाः । उवाच

वैशम्पायन कहते हैं कि--हे जनमेजय ! तदनन्तर भीम पराक्रमी उत्तम प्रकारकी लक्ष्मीसे देदीप्यमान सिंहके विलासकी समान महापराक्रमी और मेरु पर्वतकी समान दृढ शरीर वाला भीमसेन शरीर पर काले कपड़े पहिनकर हाथमें चमचा और खड्ग लिये हुए जैसे सूर्य अपने उत्तम तेजसे संसारको प्रकाशित करते हैं तैसे अपने उत्तम तेजसे सभाको प्रकाशित करता हुआ राजा विराटके पास पहुँचकर खड़ा होगया ॥ १--२ ॥ राजाने उसको देखकर इकट्ठी बैठी हुई सब प्रजाओंको प्रसन्न करते हुए कहा कि यह सिंहकी समान अति ऊँचे खभोंवाला, अत्यन्त रूपवान् जो श्रेष्ठ और युवा पुरुष दीखता है यह कौन है ॥३॥ सूर्यकी समान तेजस्वी इस पुरुषको मैंने कभी देखा नहीं है अब मैं विचार करनेसे भी इसको नहीं पहिचानसका तैसे ही इस पुरुषश्रेष्ठके मनमें क्या विचार है यह भी मैं नहीं जानता ॥४॥ इसको देखते ही मेरे मनमें शंका होती है कि यह इन्द्र होगा अथवा गंन्धर्वराज होगा, हे नागरिक पुरुषों ! यह जो मेरे समान खड़ा है कौन है ? इसकी खोज कर मुझको बताओ और इसको जो वस्तु चाहिए वह बिना विलम्ब देदो ॥ ५ ॥ विराट राजाने इसप्रकार आज्ञा दी कि-तत्काल उतावले चलनेवाले राजा विराटके पुरुष शीघ्रतासे दौड़कर धर्मराज युधिष्ठिरके छोटे भाई कुन्तीपुत्र भीमके पास आए और राजाके कथनानुसार इसप्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥ इतनेमें उदार मनवाला

सूदोस्मि नरेन्द्र बल्लवो भजस्व मां व्यञ्जनकारमुत्तमम् ॥७॥ विराट उवाच । न सूदतां बल्लव श्रद्दधामि ते सहस्रनेत्रप्रतिमो विराजसे । श्रिया च रूपेण च विक्रमेण च प्रभायसे त्वं नृवरो नरेष्विह ॥ ८ ॥ भीम उवाच । नरेन्द्र सूदः परिचारकोस्मि ते जानामि सूपान् प्रथमं च केवलाम् । आस्वादिता ये नृपते पुराऽभवन् युधिष्ठिरेणापि नृपेण सर्वशः ॥ ९ ॥ बलेन तुल्यश्च न विद्यते मया नियुद्धशीलश्च सदैव पार्थिव । गजैश्च सिंहैश्च समेयिवानहं सदा करिष्यामि तवानघ प्रियम् ॥ १० ॥ विराट उवाच । ददामि ते हन्त वरान्महानसे तथा च कुर्याः कुशलं प्रभाषसे । न चैवमन्यत् तव कर्म यत्समं समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि ॥ ११ ॥ यथा हि कामो भवतस्तथा कृतं महानसे त्वं भव मे पुरस्कृतः । नराश्च ये तत्र समाहिताः पुरा भवांश्च तेषा-

---

भीमसेन राजा विराटके पास आया और उनसे इसप्रकार महत्वपूर्ण वचनोंमें कहना आरम्भ किया कि–हे राजन् ! मैं रसोइया हूँ मेरा नाम बल्लव है मुझे तरकारी, भाजी तथा वेसनकी वस्तुएँ भी बनानी आती हैं अतः आप मुझे इस कामपर रख लीजियेगा ॥७॥ विराट बोले कि–बल्लव ! तू कहता है मैं रसोइया हूँ, परन्तु तू रसोइया होगा इस पर मुझको तो विश्वास नहीं होता, तू इन्द्रकी समान तेजस्वी दीखता है, और तेरी कान्ति रूप तथा पराक्रमसे यह मालूम पड़ता है कि–तू मनुष्योंमें कोई महापुरुष है ॥ ८ ॥ भीमने कहा कि–हे राजन् ! मैं आपके यहाँ रसोइयेके कामकी नौकरी करने आया हूँ और मुझे भाँति२ के पदार्थ बनाने आते हैं मेरे पहिले प्रकार २ के पदार्थ राजा युधिष्ठिर ने पूर्णरीतिसे स्वादके साथ खाए थे और हे राजन् ! मैं मल्ल भी हूँ मेरे समान बलवान् तथा मल्लयुद्ध करनेवाला कोई भी नहीं है हे निर्दोष राजन् ! मैं सदा हाथी तथा सिंहोंके साथ युद्ध करके आपका हित करूँगा ॥ १० ॥ राजा विराटने कहा कि–मैं खेदके साथ अर्थात् तू रसोइयेका काम करनेके योग्य नहीं है तब भी तेरे कथनानुसार तेरी प्रार्थनाओंको पूरी करता हूँ और तूने मैं रसोईमें कुशल हूँ इस बातका परिचय दिया है अतः तू यही काम कर परन्तु यह काम तेरे योग्य है यह मैं नहीं मानता किन्तु तू समुद्रपर्यंत पृथिवीका राजा होनेके योग्य है ॥ ११ ॥ तो भी तेरी जैसी इच्छा है उसी प्रकार मैं करता हूँ तू मेरी पाकशालामें प्रधान अधिकारी हो पहिलेसे जो पुरुष तहाँ भोजन बनानेके लिए रक्खे हैं मैं तुझे उनका

मधिपो मया कृतः ॥ १२ ॥ वैशम्पायन उवाच। तथा स भीमो विहितो महानसे विराटराज्ञो दयितोऽभवद् दृढम्। उवास राज्ये न च तं पृथग्जनो बुबोध तत्रानुचराश्च केचन ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
भीमप्रवेशे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः केशान् समुत्क्षिप्य वेल्लिताग्राननिन्दितान्। कृष्णान् सूक्ष्मान् मृदून् दीर्घान् समुद्ग्रथ्य शुचिस्मिता ॥ १ ॥ जुगूहे दक्षिणे पार्श्वे मृदूनसितलोचना। वासश्च परिधायैकं कृष्णा सुमलिनं महत् ॥ २ ॥ कृत्वा वेषं च सैरन्ध्र्यास्ततो व्यचरदार्त्तवत्। तां नराः परिधावन्तीं स्त्रियश्च समुपाद्रवन् ॥ ३ ॥ अपृच्छंश्चैव तां दृष्ट्वा का त्वं किञ्च चिकीर्षसि। सा तानुवाच राजेन्द्र सैरन्ध्र्यहमिहागता ॥ ४ ॥ कर्म चेच्छामि वै कर्तुं तस्य यो मां युयुक्षति। तस्या रूपेण वेषेण श्लक्ष्णया च तथा गिरा। न श्रद्दधत तां दासीमन्नहेतोरु-

---

स्वामी बनाता हूँ ॥१२॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे राजा जनमेजय! इस प्रकार भीमसेन विराट राजाकी पाकशालामें नियत हुआ, इस कारण वह राजा विराटके नगरमें रहने लगा और राजा विराटको बहुत प्यारा होगया परन्तु वहाँ रहने वाले साधारण मनुष्य तथा राजाके कोई सेवक भी भीमसेनको पहिचान नहीं सके ॥१३॥ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय! तदनन्तर पवित्र और मन्दहास्य करने वाली और श्यामनेत्रा, द्रौपदीने अपने सुन्दर श्याम वर्णके सूक्ष्म कोमल तथा अग्रभागमें मुड़ेहुए केशोंको इकट्ठा करके गूँथ कर उनसे दाहिने कन्धेको ढक लिया फिर एक बहुमूल्य बहुत ही मैला कपड़ा पहर सैरन्ध्रीकासा भेष बना दुःखी पुरुषोंकी समान नगरमें भटकने लगी उसको नगरमें इस प्रकार फिरते देख लोग, लुगाई उसके पीछे दौड़ने लगे ॥ १–३ ॥ और उसकी ओर देख कर बूझने लगे कि–तू कौन है? और क्या करना चाहती है? सो हमें बता, लोगोंके ऐसे कथनको सुनकर द्रौपदीने उत्तर दिया मैं सैरन्ध्री (दासी) हूं और आजीविका (नौकरी) के लिए तुम्हारे नगरमें आई हूं ॥ ४ ॥ जो मनुष्य दासीकी समान मुझे अपने घरमें रक्खेगा उसका काम करनेकी मेरी इच्छा है द्रौपदीके ऐसा कहने पर भी लोगों को उसके वेशसे रूपसे तथा मधुर और कोमल वाणीसे यह स्त्री एक

पस्थिताम् ॥ ५ ॥ विराटस्य तु कैकेयी भार्या परमसम्मता । आलोकयन्ती ददृशे प्रासादाद्द्रुपदात्मजाम्॥६॥ समीक्ष्य तथा रूपामनाथामेकवाससम्। समाहूयाब्रवीद्भद्रे का त्वं किं च चिकीर्षसि॥७॥ सा तामुवाच राजेन्द्र सैरन्ध्र्यहमुपागता । कर्म चेच्छाम्यहं कर्तुं तस्य यो मां युयुक्षति ॥ ८ ॥ सुदेष्णोवाच । नैवंरूपा भवन्त्ये यथा वदसि भामिनि । प्रेषयन्तीव वै दासीर्दासांश्च विविधान् बहून् ॥ ९ ॥ नोच्चगुल्फा संहतोरुस्त्रिगम्भीरा षडुन्नता । रक्ता पञ्चसु रक्तेषु हंसगद्गदभाषिणी ॥ १० ॥ सुकेशी सुस्तनी श्यामा पीनश्रोणिपयोधरा । तेन तेनैव सम्पन्ना काश्मीरीव तुरङ्गमी॥११॥ अरालपक्ष्मनयना बिम्बोष्ठी तनुमध्यमा । कम्बुग्रीवा गूढशिराः पूर्णचन्द्रनिभानना॥१२॥ शारदोत्पलपत्राक्ष्या शारदोत्पलगन्धया ।

दासी है और अन्नके लिये घर घर घूमती फिरती है, इस पर विश्वास न हुआ ॥ ५ ॥ इस समय राजा विराटकी परममान्य रानी जो केकयराजकी पुत्री थी, वह सुदेष्णा अपने राजमहलमें खड़ी २ नगरकी चर्चा देख कररही थी, उसने राजमहलमेंसे मार्गमें एक वस्त्र ओढ़े फिरती हुई अद्भुत रूप वाली, निराधार राजा द्रुपदकी पुत्रीको देखा, उस अद्भुत रूपवाली द्रौपदीको देखते ही रानीने उसे अपने पास बुलाकर बूझा कि हे कल्याणि ! तू कौन है ? और तुझे क्या करनेकी इच्छा है ? ॥६॥ तब हे राजेन्द्र ! उस स्त्रीने रानीसे कहा कि-मैं सैरन्ध्री हूं और आजीविका (नौकरी) के लिये इधर आई हूं, जो मनुष्य मुझे काम करनेके लिये रक्खे उसका काम करूँगी, ऐसी मेरी इच्छा है ॥८॥ सुदेष्णा बोली कि हे भामिनी ! तेरे समान रूपवाली स्त्रियें जैसे काम करनेको तू कहती है ऐसे कामको नहीं करती हैं परन्तु वे तो अनेक प्रकारके बहुतसे दास दासियों पर आज्ञा चलनेवाली होती है॥ ९ ॥ तेरे पांवकी एड़ियां नीची हैं तेरी जंघायें परस्पर सटीहुई हैं, तेरा शब्द, बुद्धि, और नाभि गंभीर है तेरी नासिका, नेत्र, कान, स्तन, तथा श्रोणिमण्डल उन्नत . चरणके तलुए, हाथकी हथेली, नेत्रके तारे, होठ, जीभ नख लाल २ हैं, तेरा बोलना हंसकी समान गद्गद् और मधुर है, तेरे केश श्याम और मनोहर हैं शरीर श्यामवर्ण है, और श्रोणिमंडल पुष्ट है, इसप्रकार तू काश्मीर देशकी घोड़ीकी समान अनेक शुभ लक्षणोंसे युक्त है ॥ १०-११ ॥ तेरे नेत्रोंके पलक श्यामवर्णके, और कटि लालवर्णकी है, ओठ बिम्बाफल की समान लाल हैं, कमर पतली है कंठ शंखकी समान गोल है शरीर में इस प्रकार रुधिर भरा हुआ है कि-एक भी नाड़ी नहीं दीखती हैं,

शारदोत्पलसेविन्या रूपेण सदृशी श्रिया१३का त्वं ब्रूहि यथा भद्रे नासि दासी कथञ्चन । यक्षी वा यदि वा देवी गन्धर्वी यदि वाप्सरा ॥ १४ ॥ देवकन्या भुजंगी वा नगरस्याथ देवता । विद्याधरी किन्नरी वा यदि वा रोहिणी स्वयम् ॥ १५ ॥ अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीकाथ मालिनी । इन्द्राणी वारुणी वा त्वं त्वष्टुर्धातुः प्रजापतेः । देव्यो देवेषु विख्यातास्तासां त्वं कतमा शुभे ॥ १६ ॥ द्रौपद्युवाच । नास्मि देवी न गन्धर्वी नासुरी न च राक्षसी । सैरन्ध्री तु भुजिष्यास्मि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते१७ केशान् जानाम्यहं कर्तुं पिंषे साधु विलेपनम् । मल्लिकोत्पलपद्मानां चम्पकानां तथा शुभे ॥ १८ ॥ ग्रथयिष्ये विचित्राश्च स्रजः परशोभनाः । आराधयं सत्यभामां कृष्णस्य महिषीं प्रियाम् ॥१९॥ कृष्णां च भार्यां पाण्डूनां कुरूणामेकसुन्दरीम् । तत्र तत्र चराम्येवं लभमाना सुभोजनम् २० वासांसि यावन्ति लभे तावत्तावद्रमे तथा । मालिनीत्येव मे नाम स्वयं देवी चकार

तेरा मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान है, तेरे नेत्र, शरदृतुके श्याम कमलकी समान रमणीय हैं, तेरे शरीरकी गन्ध शरदृतुके कमलकी सी है, तेरे शरीरकी कान्ति और रूप शरदृतुके कमलकी समान है ॥ १२ ॥ १३ ॥ अतः हे कल्याणि ! तू किसी कारणसे दासीसी नहीं प्रतीत होती, अतः जो सच्ची बात हो उसको कह कि तू कौन है ? तू यक्षकी स्त्री है कि—देवांगना है ? गन्धर्वकी स्त्री है ? कि—अप्सरा है ? देवकन्या है ? कि—नागकन्या है ? नगरकी देवी है ? अथवा तू विद्याधरी है किन्नरी है ? कि साक्षात् चन्द्रपत्नी रोहिणी है ? साक्षात् अलम्बुषा है ? कि मिश्रकेशी है, पुण्डरिका है ? कि इन्द्राणी है? मालिनी है कि वारुणी है विश्वकर्माकी स्त्री है, कि ब्रह्माकी स्त्री है, प्रजापति की स्त्री है, कि—हे कल्याणि ! देवताओंकी प्रसिद्ध स्त्रियोंमेंसे तू कोई प्रसिद्ध स्त्री है यह मुझे बता ॥ १५ ॥ १६ ॥ यह सुन द्रौपदीने कहा कि मै देवी नहीं हूं, गंधर्वी नहीं हूं, असुरपत्नी नहीं हूं तथा राक्षसी भी नहीं हूँ, मैं आपके सामने सचसच कहती हूँ कि मैं दूसरेके घर दासीपन करनेवाली सैरंध्री हूँ ॥ १७ ॥ हे कल्याणि ! मुझे भलीप्रकार केश संहालना, तथा गूंथना आता है और अङ्गराग भी अच्छी प्रकार घिसना जानतीहूँ तथा मालती, उत्पल, पद्म और चम्पाओं की परम रमणीय माला गूंथना जानती हूँ, पहले मैंने श्रीकृष्णकी पटरानी सत्यभामाकी तथा कौरव और पाण्डवोंकी पटरानी अनुपम सुन्दरी द्रौपदीकी सेवाकी थी परन्तु मैं अब पृथक् २ स्थानोंमें दासीपना करके

सा साहमद्यागता। देवि सुदेष्णे त्वन्निवेशनम् ॥ २१ ॥ सुदेष्णोवाच। मूर्ध्नि त्वां वासयेयं वै संशयो मे न विद्यते। न चेदिच्छति राजा त्वां गच्छेत् सर्वेण चेतसा ॥ २२ ॥ स्त्रियो राजकुले याश्च याश्च ताः मम वेश्मनि। प्रसक्तास्त्वां निरीक्षन्ते पुमांसं कं न मोहयेः ॥ २३ ॥ वृक्षांश्चावस्थितान् पश्य य इमे मम वेश्मनि। तेऽपि त्वां सन्नमन्तीव पुमांसं कं न मोहयेः ॥ २४ ॥ राजा विराटः सुश्रोणि दृष्ट्वा वपुरमानुषम्। विहाय मां वरारोहे गच्छेत् सर्वेण चेतसा ॥ २५ ॥ यं हि त्वमनवद्यांगि तरलायतलोचने। प्रसक्तमभिवीक्षेथाः स कामवशगो भवेत् ॥२६॥ यश्च त्वां सततं पश्येत् पुरुषश्चारुहासिनि। एवं सर्वानवद्यांगि स चानंगवशो भवेत् ॥ २७ ॥ अध्यारोहेद्यथा वृक्षान् वधायैवात्मनो नरः। राजवेश्मनि ते सुभ्रु हेतुस्त्वं स्यात्तथा मम ॥२८॥ यथा च कर्कटी गर्भ-

---

सुन्दर भोजन पानेके लिये फिरा करती हूँ ॥१८-२०॥ और मुझे जितने वस्त्र मिलते हैं उनसे अपना निर्वाह कर आनन्दसे दिन व्यतीत करती हूँ। देवी द्रौपदीने आप मेरा नाम मालिनी रक्खा था और हे रानी सुदेष्णा! आजसे मैं तुम्हारे घर पर आपड़ी हूँ ॥ २१ ॥ सुदेष्णाने कहा कि हे कल्याणि! राजा तेरे ऊपर मोहित न हों तो मैं तुझे मस्तक पर धरनेको उद्यत हूँ, इसमें सन्देह नहीं है, परंतु राजा तेरे अलौकिक रूप को देखकर तुझपर चित्तसे मोहित होजायँगे ऐसा मुझे सन्देह होता है ॥ २२ ॥ क्योंकि यहाँ दरबारमें जो स्त्रियें हैं और महलमें जो स्त्रियें हैं वे सब तेरे अलौकिक रूप पर मोहित हो तेरी ओरको ही वार२ निहार रही हैं फिर तू किस पुरुषको मोहित न करेगी? ॥ २३ ॥ मेरे घरके आँगनमें खड़ेहुए इन वृक्षोंको तो देख यह भी मानो तुझे प्रणाम करते हों इस प्रकार झुकरहे हैं, तब तू किस पुरुषको मोहित न करेगी? ॥२४॥ हे सुश्रोणि! हे सुन्दर अवयवों वाली स्त्री! कहीं राजा विराट भी तेरे अलौकिक रूपको देख मुझे छोड़ एकाग्र मनसे तेरे अधीन न होजायँ ॥ २५ ॥ हे निर्दोषांगी! हे चपल विशालनेत्रे! तेरे ऊपर आसक्त हुए जिस पुरुष पर तेरी दृष्टि पड़जाय वह क्या विना मोहित हुए बच जायगा? अर्थात् अवश्य ही कामाधीन होगा ॥ २६ ॥ हे सुन्दर हास्यवाली स्त्री! तब जो मनुष्य सर्वदा सर्वांगसुन्दरी तुझ को देखा करे वह कामवश होजाय इसमें क्या आश्चर्य है ॥ २७ ॥ हे सुन्दर भौं वाली स्त्री! जैसे मनुष्य अपना नाश करनेके लिये जिस डाली पर बैठा होता है उसे काट कर अपनी बड़ीभारी हानि करलेता है

माधत्ते मृत्युमात्मनः । तथाविधमहं मन्ये वासं तव शुचिस्मिते ॥ २९ ॥ द्रौपद्युवाच । नास्मि लभ्या विराटेन न चान्येन कदाचन । गन्धर्वाः पतयो मह्यं युवानः पञ्च भामिनी ॥ ३० ॥ पुत्राः गन्धर्वराजस्य महासत्त्वस्य कस्यचित् । रक्षन्ति ते च मां नित्यं दुःखचारास्तथा ह्यहम् ३१ यो मे न दद्यादुच्छिष्टं न च पादौ प्रधावयेत् । प्रीणेरंस्तेन वासेन गन्धर्वाः पतयो मम ॥ ३२ ॥ यो हि मां पुरुषो गृध्येद्यथान्याः प्राकृताः स्त्रियः । तामेव निवसेद्रात्रिं प्रविश्य च परां तनुम् ॥ ३३ ॥ न चाप्यहं चालयितुं शक्या केनचिदङ्गने । दुःखशीला हि गन्धर्वास्ते च मे बलवत्प्रियाः ॥ ३४ ॥ प्रच्छन्नाश्चापि रक्षन्ति ते मां नित्यं शुचिस्मिते । सुदेष्णोवाच । एवं त्वां वासयिष्यामि यथा त्वां नन्दिनीच्छसि ॥ ३५ ॥ न च पादौ न चोच्छिष्टं स्प्रक्ष्यसि त्वं कथञ्चन । वैशम्पायन उवाच ।

तैसे ही मैं भी तुझ को राजमहलमें रखकर बड़ी आपत्तिमें पड़ जाऊँगी कर्कटी (कानखजूरी) वा खच्चरीका गर्भ धारणकरना जैसे उसके नाश का कारण होता है तैसेही हे शुचिस्मिते! मैंभी तुझे अपने घरमें रखना अपने नाशका कारण समझती हूँ ॥ २८-२९ ॥ द्रौपदीने कहा, कि-हे भामिनी! राजा विराट अथवा दूसरा कोई भी पुरुष मुझे अयोग्य कार्य करनेके लिए अपने अधीन नहीं करसकता क्योंकि-मेरे पति पाँच तरुण गन्धर्व हैं ॥ ३० ॥ वे एक महा बलवान् गन्धर्वराजके पुत्र हैं और नित्य मेरी रक्षा किया करते हैं अतः मुझे कोई दूसरे दुःख नहीं दसकते ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य मुझे दासी विचार कर उच्छिष्ट नहीं देते हैं तथा मुझसे अपने पैर नहीं धुलवाते हैं वे मेरे साथ इसप्रकारके वर्ताव करनेसे मेरे गन्धर्व पति उन पर प्रसन्न रहते हैं ॥ ३२ ॥ परन्तु जो कोई पुरुष दूसरी साधारण स्त्रियोंकी समान मुझे भी साधारण स्त्री मानकर मेरे ऊपर बलात्कार करनेकी इच्छा करता है उसको मेरे पाँचे पति रात्रिमें मार डालते हैं ॥ ३३ ॥ हे स्त्रि! किसी पुरुषमें भी मुझे शीलसे भ्रष्ट करनेकी शक्ति नहीं है क्योंकि-मेरे प्रियतम गन्धर्व महाबलवान् और दुःख सहनेवाले हैं ॥ ३४ ॥ और हे सुहासिनी! वे छिपकर मेरी सदा रक्षा करते हैं, सुदेष्णाने कहा कि-हे नन्दिनि! यदि ऐसा ही है तो मैं तुझे अपने घरमें तेरी इच्छानुसार रखलूँगी ३५ और तू किसी दिन भी किसीकी जूठन मत छूना तथा किसीके पैर भी मत धोना, वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय! राजा विराटकी रानी सुदेष्णाने इसप्रकार द्रौपदीको समझा अपने घरमें दासी

एवं कृष्णा विराटस्य भार्यया परिसान्त्विता ॥३६॥ उवास नगरे तस्मिन् पतिधर्मवती सती। न चैनां वेद तत्रान्यस्तत्त्वेन जनमेजय ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
द्रौपदीप्रवेशे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच। सहदेवोऽपि गोपानां कृत्वा वेशमनुत्तमम्। भाषां चैषां समास्थाय विराटमुपयादथ ॥ १ ॥ गोष्ठमासाद्य तिष्ठन्तं भवनस्य समीपतः। राजाथ दृष्ट्वा पुरुषान् प्राहिणोज्जातविस्मयः ॥२॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य भ्राजमानं नरर्षभम्। समुपस्थाय वै राजा पप्रच्छ कुरुनन्दनम् ॥ ३॥ कस्य वा त्वं कुतो वा त्वं किं वा त्वं तु चिकीर्षसि। न हि मे दृष्टपूर्वस्त्वं तत्त्वं ब्रूहि नरर्षभ ॥४॥ सम्प्राप्य राजानममित्रतापनं ततोऽब्रवीन्मेघमहौघनिःस्वनः। वैश्योऽस्मि नाम्नाहमरिष्टनेमिर्गोसंख्य आसं कुरुपुङ्गवानाम् ॥ ५ ॥ वस्तुं त्वयीच्छामि विशां वरिष्ठ तान् राजसिंहान्न हि वेद्मि पार्थान्। न शक्यते जीवितुमन्यकर्मणा न

बनाकर रखलिया ॥ ३६ ॥ पतिव्रता तथा धर्मव्रत पालनेवाली द्रौपदी भी विराटनगरमें रहकर दिन बिताने लगी परन्तु तहाँके किसी भी मनुष्यने द्रौपदीको नहीं पहिचाना ॥ ३७ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥९॥

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय ! सहदेव भी अच्छी प्रकार ग्वालियेका वेष बनाकर ग्वालियोंकी बोली बोलता२ राजा विराटके समीप पहुँचनेको चल दिया ॥ १ ॥ वह राजभवनके समीप स्थित गौशाला पर आकर खड़ा होगया उसको देख राजाके मनमें आश्चर्य हुआ ॥ २ ॥ और राजाने उसका नाम धाम जाननेके लिये उसके पास अपने आदमियोंको भेजा, वे पुरुष सहदेवके पास गए और उन से राजाका संदेशा कहकर राजाके पास लिवा लाये, महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ, कुरुनन्दन, सहदेव राजाके सामने आकर खड़े हुए तब राजाने उनके पास जाकर उनसे पूछा ॥ ३ ॥ तुम किसके मनुष्य हो ! कहाँसे आये हो ? और तुम्हें किस कार्य के करने की इच्छा है ? हे नरर्षभ ! मैंने तुम्हें पहिले कभी नहीं देखा है अतः बताओ तुम कौन हो ? ॥ ४ ॥ इस पर शत्रुओं को पीड़ा देने वाले राजा से सहदेवने बड़े भारी मेघोंके गर्जनकी समान गम्भीर स्वरसे कहा कि—मैं अरिष्टनेमि नामक वैश्य हूँ और कुरुवंशके कुमारोंके यहाँ गौओं का परीक्षक था ॥ ५ ॥ परन्तु हे नृपतिश्रेष्ठ ! वे राजसिंह पाण्डव जाने कहाँ को चले गए यह बात मैं नहीं जानता इसकारण आपके यहाँ नौकरी

च त्वदन्यो मम रोचते नृपः ॥ ६ ॥ विराट उवाच । त्वं ब्राह्मणो यदि वा क्षत्रियोऽसि समुद्रनेमीश्वररूपवानसि । आचक्ष्व मे तत्त्वममित्रकर्षण न वैश्यकर्म त्वयि विद्यते क्षमम् ॥ ७ ॥ कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः किं चापि शिल्पं तव विद्यते कृतम् । कथं त्वमस्मासु निवत्स्यसे सदा वदस्व किञ्चापि तवेह वेतनम् ॥ ८ ॥ सहदेव उवाच । पंचानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः । तस्याष्टशतसाहस्रा गवां वर्गाः शतं शतम् ॥ ९ ॥ अपरे शतसाहस्रा द्विस्तावन्तस्तथापरे । तेषां गोसंख्य आसं वै तन्तिपालेति मां विदुः ॥ १० ॥ भूतं भव्यं भविष्यञ्च यच्च संख्यागतं गवाम् । न मेऽस्त्यविदितं किंचित् समन्ताद्दशयोजनम् ॥ ११ ॥ गुणाः सुविदिताः ह्यासन् मम तस्य महात्मनः । आसीच्च स मया दृष्टः कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥ क्षिप्रञ्च गावो बहुला भवन्ति न तासु रोगो भवतीह कश्चन । तैस्तैरुपायैर्विदितं ममैतदेतानि शिल्पानि मयि स्थितानि ॥ १३ ॥ ऋषभांश्चापि जानामि

करने की इच्छा से आया हूँ क्योंकि—बिना उद्योग करते हुए मनुष्य जी नहीं सकता (भूखे मरजाता है) और मुझे आपके सिवाय दूसरे राजा की नौकरी करना भी अच्छा नहीं लगता है ॥ ६ ॥ राजा विराट ने कहा कि—अरे मनुष्य ! तेरा वेष तो ब्राह्मणकेसा अथवा क्षत्रियकेसा मालूम होता है अथवा तू समुद्र तक जीती हुई पृथ्वीका राज्य करने वाले राजाकी समान मालूम होता है अतः हे शत्रुतापन ! तू मुझसे सच बात कह क्योंकि—तू वैश्य का कार करनेके योग्य नहीं है ॥७॥ तू किस राजाके देशमेंसे आयाहै और तूने कौनसी शिल्पविद्याका अभ्यास किया है तू हमारे यहाँ सदाके लिये किसप्रकार रहसकेगा और कितनी नौकरी लेगा, यह हमें बता ॥८॥ नकुलने कहा कि—पाचों पांडवोंमें बड़े भाई युधिष्ठिर हैं उनके यहाँ गौओंके दश हजार झुण्ड थे उनमेंसे किसी झुण्डमें आठ लाख किसी में दश हजार और किसी झुण्डमें बीस हजार गौएँ थीं मैं उन सब झुण्डोंकी देख रेख रखता था और लोग मुझे तन्तिपाल कहते थे ॥ ९ ॥ चालीस २ कोश तक फिरने वाली गौओंकी भूत भविष्यत् वर्तमानमें जितनी संख्या हो म उसे जान सकता हूँ ॥ १०—११ ॥ और इस विषयके मुझमें जो गुण हैं उन्हें राजा युधिष्ठिर जानते थे और कुरुराज युधिष्ठिर मुझसे संतुष्ट थे ॥ १२ ॥ जिन २ उपायोंसे गौओंकी वृद्धि हो और किसी प्रकार का भी रोग उनको न हो मैं ऐसे उपायोंको जानता हूँ और ऐसी

राजन् पूजितलक्षणान्। येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ॥ १४ ॥ विराट उवाच। शतं सहस्राणि समाहितानि सवर्णवर्णस्य विमिश्रितान् गुणैः पशून् सपालान् भवते ददाम्यहं त्वदाश्रया मे पशवो भवन्त्विह १५ वैशम्पायन उवाच। तथा स राज्ञा विदितो विशाम्पते उवास तत्रैव सुखं नरोत्तमः। न चैनमन्येऽपि विदुः कथंचन प्रादाच्च तस्मै भरणं यथेप्सितम् ॥ १६ ॥ छ छ छ छ

इति महाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
सहदेवप्रवेशे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच। अथापरोऽदृश्यत रूपसम्पदा स्त्रीणामलंकारधरो बृहत् पुमान्। प्राकारवप्रे प्रतिमुच्य कुण्डले दीर्घे च कम्बू परिहाटके शुभे ॥ १ ॥ बाहू च दीर्घान् प्रविकीर्य मूर्धजान् महाभुजो वारणतुल्यविक्रमः। गतेन भूमिं प्रतिकम्पयंस्तदा विराटमासाद्य सभासमीपतः ॥ २ ॥ तं प्रेक्ष्य राजोपगतं सभातले व्याजात् प्रतिच्छन्नमरि-

---

विद्या ही मुझमें निवास करती है ॥ १३ ॥ और हे राजन्? पवित्र तथा शुभलक्षणोंवाले बैलोंको भी मैं पहिचान सकता हूँ कि--जिनके मूत्र सूँघनेसे वन्ध्या स्त्रीके भी संतान होजाय ॥ १४ ॥ विराटने कहा हे गोपाल ! मेरी गोटमें रहने वाली भिन्न २ वर्णमें स्थित एक लाख गौओंका धन है जिनका वर्ण एकसा है और जो अनेकों प्रकारके गुणोंसे युक्त हैं आजसे मैं उन सब पशुओंको और उनके रक्षकोंको आपके अधीन करता हूँ मैं चाहता हूँ कि—मेरे पशु तुम्हारे अधीन रहें ॥ १५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार पुरुषश्रेष्ठ सहदेव, राजा विराटसे मिलकर सुखसे तहां रहने लगा और राजाने उसकी इच्छानुसार उसे वेतन दिया इस प्रकार गोपालका वेश धारण करनेसे राजा तथा दूसरे कोई भी पुरुष सहदेवको न पहिचानसके ॥ १६ ॥ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं कि—तदनन्तर स्त्रियोंके आभूषण धारण किये हुए परम रूपवान् एक और महापुरुष कानोंमें कुण्डल और हाथोंमें शंख तथा सोनेके कड़की चूड़ियां पहिरे हुए मस्तकके केशों को हाथों तक लम्बे डाल कर अपनी चालसे भूमिको दहलाता हुआसा राजभवनके समीप आता हुआ दीखा। वह हाथीकी समान पराक्रमी अर्जुन था, वह राजा विराटकी सभाके सामने आकर खड़ा होगया ॥ १-२ ॥ राजा विराटने उस छद्मवेषी, परम तेजस्वी, शत्रुओं

प्रमाथिनम् । विराजमानं परमेण वर्च्चसा सुतं महेन्द्रस्य गजेन्द्रविक्रमम् ॥ ३ ॥ सर्वान्पृच्छच्च सभानुचारिणः कुतोऽयमायाति पुरा न मे श्रुतः । न चैनमूचुर्विदितं तदा नराः सविस्मयं वाक्यमिदन्नृपोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥ सत्त्वोपपन्नः पुरुषोमरोमपः श्यामो युवा वारणयूथपोपमः आमुच्य कम्बूपरिहाटके शुभे विमुच्य वेणीमपि नह्य कुण्डले ॥ ५ ॥ स्रग्वी सुकेशः परिधाय चान्यथा शुशोभ धन्वी कवची शरी यथा । आरुह्यमानं परिधावतां भयान् सुतैः समो मे भव वा मया समः ॥ ६ ॥ वृद्धो ह्यहं वै परिहारकामः सर्वान् मत्स्यांस्तरसा पालयस्व । नैवंविधाः क्लीबरूपाः भवन्ति कथंचनेति प्रतिभाति मे मनः ॥ ७ ॥ अर्जुन उवाच । गायामि नृत्याम्यथ वादयामि भद्रोऽस्मि नृत्ये कुशलोऽस्मि गीते । त्वमुत्तरायै प्रदिशस्व मां स्वयं भवामि देव्या नरदेव नर्त्तकः ॥८॥ इदन्तु रूपं मम येन किन्तव प्रकीर्त्तयित्वा भृशशोकवर्द्धनम् ।

को नष्ट करनेवाले ! गजेंद्रकी समान पराक्रमी महेंद्रपुत्र अर्जुनको सभाकी ओर आता हुआ देखकर संपूर्ण सभासदोंसे बूझा कि—यह पुरुष कहाँसे आरहा है मैंने पहिले कभी इसे सुना व देखा नहीं है उस समय सभासदोंने उत्तर दिया कि—हम इस पुरुषको नहीं पहिचानते तब तो राजाने आश्चर्यमें होकर अर्जुनसे इस प्रकार कहा कि—तुम सत्वयुक्त गजयूथपतिकी समान, श्यामकान्ति वाले, और देवताकी समान एक तरुण पुरुष हो तुमने हाथमें शोभायमान शंखकी चूडियां और सोनेके कड़े पहिरे हैं, मस्तकके केशोंकी चोटी गूँथली है, और कानोंमें कुण्डल पहिरे हैं ॥ ३-५ ॥ तथापि पालकीमें चढ़कर फिरने वाले, पुरुषोंके बीचमें पुष्पोंकी माला धारण करने वाले, सुन्दर केशोंवाले दो वस्त्र (अङ्गरखा-कुर्ता) पहिरनेवाले और कवच, धनुष तथा बाण धारण करनेवाले मनुष्यकी समान तू दिपता है, मैं अब वृद्ध होगया हूँ और राज्यके भारको किसी कार्य करनेवाले पुरुषको सौंपना चाहता हूँ अतः तुम मेरे पुत्रोंकी समान अथवा मेरे समान होकर सम्पूर्ण मत्स्य देशका पालन करो तुम सरीखे मनुष्य नपुंसक नहीं होते हैं यह मुझे विश्वास है ॥ ६—७ ॥ अर्जुनने उत्तर दिया कि—मैं गाता हूँ, नाचता हूँ, बाजे बजाता हूँ, मैं नृत्यके कार्यमें चतुरहूँ और गानमें भी कुशलहूँ; इस लिये आप मुझे राजकन्या उत्तराको सिखाने के लिये रखलीजिये मैं उसे अपने आप गाना बजाना सिखाऊँगा ॥८॥

बृहन्नलां मां नरदेव विद्धि सुतं सुतां वा पितृमातृवर्जिताम् ॥ ९ ॥ विराट उवाच । ददामि ते हन्त वरं बृहन्नले सुतां च मे नर्त्तय याश्च तादृशीः । इदन्तु ते कर्म समं न मे मतं समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि १० वैशम्पायन उवाच । बृहन्नलां तामभिवीक्ष्य मत्स्यराट् कलासु नृत्येषु तथैव वादिते । संमंत्र्य राजा विविधैः स्वमन्त्रिभिः परीक्ष्य चैनं प्रमदाभिराशु वै ॥ ११ ॥ अपुंस्त्वमप्यस्य निशम्य च स्थिरं ततः कुमारीपुरमुत्ससर्ज तम् । स शिक्षयामास च गीतवादितं सुतां विराटस्य धनञ्जयः प्रभु ॥ १२ ॥ सखीश्च तस्याः परिचारिकास्तथा प्रियश्च तासां स बभूव पाण्डवः ॥ १३ ॥ तथा स सत्रेण धनंजयो वसन् प्रियाणि कुर्वन्सह ताभिरात्मवान् । तथा च तं तत्र न जज्ञिरे जना बहिश्चरा वाप्यथ चान्तरे चराः ॥ १४ ॥ अर्जुनप्रवेशे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

मुझे जिस कर्मसे हिजड़ेका रूप मिला है उसके कहनेका आपसे कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि उसको सुनानेसे मेरे अन्तःकरण पर चोट लगेगी हे राजन् ! आप यह जाने कि मेरा नाम बृहन्नला है और मुझे माता पिता हीन पुत्र अथवा पुत्री जानिये ॥ ९ ॥ राजा विराटने कहा, कि-यद्यपि नृत्य सिखानेका कार्य तुमसे पुरुषको करना उचित नहीं है क्योंकि-तुम्हारी समान पुरुष समुद्र पर्यन्त पृथ्वीका राज्य करने योग्य होते हैं यह मेरा विचार है, तथापि तुम्हारी प्रार्थनाके अनुसार मैं तुम्हें नौकरी देता हूँ तुम मेरी कन्या उत्तरा तथा उसकी समान दूसरी कन्याओंको भी नृत्य करना सिखाओ ॥ १० ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! तदनन्तर मत्स्यराजने बृहन्नलाकी नृत्यमें, संगीतमें और बाजा बजानेमें सब प्रकारसे परीक्षा की और बहुत प्रसन्न हुआ तदनन्तर इसको कन्याके महलमें रखना चाहिये अथवा नहीं इस विषयमें अपने मंत्रियोंकी पृथक् २ सम्मति ली और बहुत सी तरुण स्त्रियोंके द्वारा उसके हिजड़ेपनेकी परीक्षा कराई ॥ ११ ॥ और जब उसके नपुंसकपनेकी परीक्षा होगई तब राजाने उसे कन्याके महलमें भेजा हिजड़ेके रूपमें रहने वाला अर्जुन कन्याके महलमें जा उत्तराको और उसकी सखियोंको तथा दासियोंको नृत्य गीत और बाजेबजानेका अभ्यास करानेलगा जिससे वह अन्तःपुरमें रहने वाली कन्याओंका प्रिय होगया ॥ १२-१३ ॥ मनको वशमें रखनेवाला अर्जुन इस प्रकार कपटका रूप धारण कर कन्याओंके साथ रहने लगा और कन्याओंको बहुत अच्छा लगने लगा इस प्रकार बसनेवाले अर्जुनको बाहरके तथा अन्तःपुरके किसी पुरुषने नहीं पहिचाना ॥१४॥

वैशम्पायन उवाच ॥ अथापरोऽदृश्यत पाण्डवः प्रभुर्विराटराजं तरसा समेयिवान् । तमापतन्तं ददृशे पृथग्जनो विमुक्तमभ्रादिव सूर्यमण्डलम् ॥ १ ॥ स वै हयानैक्षत तांनितस्ततः समीक्षमाणं स ददर्श मत्स्यराट् । ततोऽब्रवीत्ताननुगान्नरेश्वरः कुतोऽयमायाति नरोऽमरोपमः ॥ २ ॥ अयं हयानीक्षति मामकान् दृढं ध्रुवं हयज्ञो भविता विचक्षणः । प्रवेश्यतामेष समीपमाशु मे विभाति वीरो हि यथाऽमरस्तथा ॥ ३ ॥ अभ्येत्य राजानममित्रहाब्रवीज्जयोऽस्तु ते पार्थिव भद्रमस्तु वः । हयेषु युक्तो नृपसम्मतः सदा तवाश्वसूतो निपुणो भवाम्यहम् ॥४॥ विराट उवाच ॥ ददामि यानानि धनं निवेशनं ममाश्वसूतो भवितुं त्वमर्हसि । कुतोऽसि कस्यासि कथं त्वमागतः प्रब्रूहि शिल्पं तव विद्यते च यत् ॥५॥ नकुल उवाच ॥ पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय इसके उपरान्त कुछ काल बीतने पर द्वितीय पाण्डुपुत्र सहदेव अश्वपालका रूप धारण कर मेघमण्डलमेंसे उदय हुए सूर्यकी समान राजा विराटके समीप उतावली चालसे चला आ रहा था कि-मनुष्योंने उसको देखा ॥१॥ वह नगरमें घूमता २ विराट राजाकी घुड़शालके पास आया और चारों ओर घूम कर घोड़ोंको देखने लगा उसको इस प्रकार घोड़ोंके पास घूमता हुआ देख कर राजा विराटने अपने नौकरोंसे बूझा कि-देवताकी समान यह मनुष्य कहाँसे आ रहा है ॥ २ ॥ यह पुरुष मेरे घोड़ोंको बारीकीसे देखता है अतः यह कोई-अश्वशास्त्रको जानने वाला विद्वान् पुरुष होगा, यह मुझको देवताकी समान शूरवीर मालूम होता है अतः तुम शीघ्र ही इसको मेरे पास बुला लाओ ॥ ३ ॥ यह सुन कर राजाके सेवक नकुलको राजाके पास लिवा लाए राजाके पास आकर नकुलने कहा कि-हे पृथ्वीपते ! आपकी जय हो आपका कल्याण हो, मैं अश्वशास्त्रमें सम्पूर्ण रीतिसे कुशल और राजाओंसे सन्मान प्राप्त पुरुष हूं और मैं आपके यहाँ अश्वशिक्षकी करना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ विराटने कहा कि-तुम मेरे यहाँ अश्वशिक्षक होनेके योग्य हो अतः मैं तुमको चढ़नेके लिए घोड़े, निर्वाहके लिए वेतन और रहनेके लिए घर देता हूँ, तुम मेरे यहाँ आनन्दसे रहो परन्तु मैं तुमसे बूझता हूँ कि-तुम कहाँसे आये हो किस लिये आये हो किसके पुत्र हो और तुम किस शिल्पशास्त्रको जानते हो ? यह मुझको बताओ ५ नकुलने कहा कि-हे शत्रुनाशन ! राजा पाण्डुके पाँच पुत्रोंमेंसे बड़े

भ्राता युधिष्ठिरः । तेनाहमश्वेषु पुरा नियुक्तः शत्रुकर्षण ॥६॥ अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयञ्चापि सर्वशः । दुष्टानां प्रतिपत्तिञ्च कृत्स्नञ्चैव चिकित्सितम् ॥ ७ ॥ न कातरं स्यान्मम जातु वाहनं न मेऽस्ति दुष्टा वडवा कुतो हयाः । जनस्तु मामाह स चापि पाण्डवो युधिष्ठिरो ग्रन्थिकमेव नामतः ॥ ८ ॥ विराट उवाच । यदस्ति किञ्चिन्मम वाजिवाहनं तदस्तु सर्वं त्वदधीनमद्य वै । ये चापि केचिन्मम वाजियोजकास्त्वदाश्रयाः सारथयश्च सन्तु मे ॥ ९ ॥ इदं तवेष्टं यदि वै सुरोपम ब्रवीहि यत्ते प्रसमीक्षितं वसु । न तेऽनुरूपं हयकर्म विद्यते प्रभासि राजेव हि सम्मतो मम ॥ १० ॥ युधिष्ठिरस्येव हि दर्शनेन मे समन्तवेदं प्रियमत्र दर्शनम् । कथन्तु भृत्या स विना कृतो वने वसत्यनिन्द्यो रमते च पाण्डवः ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच । तथा स गन्धर्ववरोपमो युवा विराटराजा मुदितेन पूजितः । न चैनमन्येऽपि विदुः कथ-

पुत्र राजा युधिष्ठिरने मुझे पहिले घोड़ोंका अध्यक्ष बनाया था ॥ ६ ॥ मैं घोड़ोंकी जातिको पहिचानता हूँ, उनको शिक्षित कर सकता हूं दोषयुक्त घोड़ोंको निर्दोष बना सकता हूँ तथा घोड़ोंकी सकल चिकित्साको भी जानता हूं मेरा सिखाया हुआ घोड़ा किसी दिन बिगड़ता नहीं है और मेरी सिखाई हुई घोड़ी भी बिगड़ती नहीं है फिर घोड़ोंका तो कहना ही क्या ऐसे गुणयुक्त मुझको राजा युधिष्ठिर और उनके पास रहनेवाले लोग ग्रन्थिक कहते थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ राजा विराट बोले मेरे जो घोड़े और वाहन हैं आजसे मैं उनको तुम्हारे अधीन करता हूँ और मैं अपने घोड़ोंके पुराने अध्यक्ष तथा सारथियोंको तुम्हारे अधीन करता हूँ ॥ ९ ॥ परन्तु हे देवताकी समान ! तू इस अश्वशिक्षकीका कार्य करनेके योग्य नहीं है मेरा ऐसा विचार है परन्तु तुझको अश्वशिक्षकीका कार्य ही अच्छा लगता हो तो बता तू कितना वेतन लेगा ॥ १० ॥ आज तुझको देखनेसे मुझे ऐसा आनन्द होता है जैसे राजा युधिष्ठिरको देखनेसे होता था, अहो पवित्राचरण राजा युधिष्ठिर क्योंकर सेवकोंको त्याग वनमें अकेले फिरते होंगे और किस प्रकार विहार करते होंगे ॥ ११ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय! राजा विराटने इस प्रकार वार्ता करके हर्षसे महागन्धर्व समान, तरुण, कुमार नकुलको अपने यहाँ अश्वशिक्षक बना कर रक्खा, नकुल राजाका तथा अन्य मनुष्योंका प्रिय होकर नगरमें घूमने लगा किन्तु राजाने वा नगरके किसी मनुष्यने उसे पहिचाना नहीं ॥ १२ ॥

ञ्चन प्रियाभिरामं विचरन्तमन्तरा ॥ १२ ॥ एवं हि मत्स्येऽन्यवसन्त पाण्डवा यथा प्रतिज्ञाभिरमोघदर्शनाः । अज्ञातचर्यां व्यचरन् समाहिताः समुद्रनेमीपतयोऽतिदुःखिताः ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
नकुलप्रवेशो द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
॥ समाप्तञ्च पाण्डवप्रवेशपर्व ॥

❀ अथ समयपालनपर्व ❀

जनमेजय उवाच । एवं ते मत्स्यनगरे प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः । अत ऊर्ध्वं महावीर्याः किमकुर्वत वै द्विज ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं मत्स्यस्य नगरे प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः । आराधयन्तो राजानं यदकुर्वत तच्छृणु ॥ २ ॥ तृणबिन्दुप्रसादाच्च धर्मस्य च महात्मनः । अज्ञातवासमेवन्तु विराटनगरेऽवसन् ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरः सभास्तारो मत्स्यानामभवत्प्रियः तथैव च विराटस्य सपुत्रस्य विशाम्पते ॥ ४ ॥ स ह्यक्षहृदयज्ञस्तान् क्रीडयामास पाण्डवः । अक्षवत्यां यथाकामं सूत्रबद्धानिव द्विजान् ॥ ५ ॥ अज्ञातं च विराटस्य विजित्य वसु धर्मराट् । भ्रातृभ्यः पुरुषव्याघ्रो यथार्हं संप्रयच्छति ॥६॥ भीमसेनोऽपि मांसानि

दर्शन करनेसे ही पापोंको नष्ट करनेवाले, सागर पर्यन्तकी पृथिवीके स्वामी पाण्डव, अतीव दुःखदाई अवस्थामें पड़ जानेसे इस प्रकार सावधान हो प्रतिज्ञाके अनुसार राजा विराटके मत्स्यदेशमें अज्ञातवास करके दिन बिताते थे ॥ १३ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

राजा जनमेजयने वैशम्पायनजीसे बूझा कि–हे ऋषे ! इस प्रकार अत्यन्त बलशाली कुरुपुत्रोंने विराटनगरमें छिपकर निवास करनेके उपरान्त क्या किया वह मुझसे कहिए ॥१॥ वैशम्पायन कहते हैं: कि–हे राजा जनमेजय ! इस प्रकार पाण्डव मत्स्यदेशमें छिप कर रहते थे और तहाँ उन्होंने जो कुछ कार्य किया था उसको मैं कहता हूँ तुम सुनो ॥ २ ॥ तृणबिन्दु मुनि और धर्मराजकी कृपासे पाण्डव छुपे हुए विराट नगरमें रहते थे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! हे प्रजानाथ ! उनमेंसे राजा युधिष्ठिर राजा विराटके उनके कुमारके और देशवासियोंके प्रिय सभासद् हुए थे ॥ ४ ॥ वह जुआ खेलनेमें बहुत चतुर थे इस कारण जैसे कोई डोरेमें बँधे हुए पक्षियोंको नचावे वैसे ही द्यूतशालामें विराट आदि जुआ खेलने वालोंको जुआ खिलाते थे॥५॥ और पुरुषव्याघ्र युधिष्ठिर राजा विराटको ज्ञात न हो इस प्रकार जुएमें जीता

भक्ष्याणि विविधानि च । अतिसृष्टानि मत्स्येन विक्रीणीते युधिष्ठिरे ७ वासांसि परिजीर्णानि लब्धान्यन्तःपुरेऽर्जुनः विक्रीणानश्च सर्वेभ्यः पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥८॥ सहदेवोऽपि गोपानां वेषमास्थाय पांडवः। दधिक्षीरं घृतं चैव पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥९॥ नकुलोऽपि धनं लब्ध्वा कृते कर्माणि वाजिनाम् । तुष्टे तस्मिन्नरपतौ पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति १० कृष्णा तु सर्वान् भर्तॄंस्तान्निरीक्षन्ती तपस्विनी । यथा पुनरविज्ञाता तथाचरति भामिनि ॥ ११ ॥ एवं सम्पादयन्तस्ते तदान्योऽन्यं महारथाः । विराटनगरे चेरुः पुनर्गर्भधृता इव ॥ १२ ॥ साशंका धार्त्तराष्ट्रस्य भयात् पाण्डुसुतास्तदा । प्रेक्षमाणास्तदा कृष्णामूषुश्छन्ना नराधिप ॥ १३ ॥ अथ मासे चतुर्थे तु ब्रह्मणः सुमहोत्सवः । आसीत् समृद्धो मत्स्येषु पुरुषाणां सुसम्मतः ॥ १४ ॥ तत्र मल्लाः समापेतुः दिग्भ्यो राजन् सहस्रशः । समाजे ब्रह्मणो राजन् यथा पशुपते

हुआ धन योग्यतानुसार अपने भाइयोंको देदेते थे ॥ ६ ॥ भीमसेन भी राजा विराटसे पारितोषिककी समान प्राप्तहुए मांसके भोजन तथा दूसरे अनेक प्रकारके भोजन बेचकर जो धन मिलता था वह राजा युधिष्ठिरको देदेते थे ॥ ७ ॥ अर्जुन भी अन्तःपुरमेंसे भेंटमें मिले हुए पुराने वस्त्रोंको बेचकर जो धन मिलता था वह अपने भाइयोंको दे देते थे ॥ ८ ॥ पाण्डुपुत्र सहदेवको भी ग्वालियेके वेषमें रहते हुए जो दही, दूध, घी इत्यादि गोरस मिलता था वह अपने भाई पाण्डवोंको देदेता था ॥ ९ ॥ अश्वशिक्षक नकुल भी घोड़ोंकी देख भाल रखकर तथा उनको अच्छी प्रकार शिक्षा देकर राजाको प्रसन्न करता था तथा राजासे धन मिलता था वह अपने भाइयोंको देदेता था ॥१०॥ पतिव्रता और तपस्विनी द्रौपदी भी सदा अपने पतियोंका दर्शन करती हुई और किसीकी पहिचानमें न आतीहुई तहाँ हिरती फिरती थी ॥ ११ ॥ इस प्रकार वे सब महारथी पाण्डव एक दूसरेकी सहायता करते थे और हे राजन् ! सबके सब पाण्डव कौरवोंसे भय खा द्रौपदीकी देखरेख रखतेहुए मानो फिर गर्भवासमें आए हों इस प्रकार छिपकर रहते थे ॥ १२-१३ ॥ तदनन्तर चौथे महीने मत्स्यदेशमें ब्रह्म महोत्सव हुआ इस महोत्सवका मत्स्य देशवाले बहुत आदर करते थे और यह महोत्सव बड़ा श्रेष्ठ गिना जाता था ॥ १४ ॥ हे राजन् ? ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीकी सभामें जैसे अनेक देवता आते हैं और जैसे कैलास पर शंकरजीके पास सहस्रों देवता आते हैं तैसेही इसराजाके

रिव ॥१५॥ महाकाया महावीर्याः कालखञ्जा इवासुराः । वीर्योन्मत्ता बलोदग्रा राज्ञा समभिपूजिताः ॥ १६ ॥ सिंहस्कन्धकटिग्रीवाः स्ववदाता मनस्विनः । असकृल्लब्धलक्षास्ते रंगे पार्थिवसन्निधौ ॥ १७ ॥ तेषामेको महानासीत् सर्वमल्लानथाह्वयत् । आवल्गमानं तं रंगे नोपतिष्ठति कश्चन ॥ १८ ॥ यदा सर्वे विमनसस्ते मल्ला हतचेतसः । अथ सूदेन तं मल्लं योधयामास मत्स्यराट् ॥ १९ ॥ नोद्यमानस्तदा भीमो दुःखे चैवाकरोन्मतिम्। न हि शक्नोति विवृते प्रत्याख्यातुं नराधिपम् २० ततः स पुरुषव्याघ्रः शार्दूलशिथिलश्चरन् । प्रविवेश महारंगं विराटमभिपूजयन् ॥ २१ ॥ बबन्ध कक्षां कौन्तेयस्ततः संहर्षयन् जनम् । ततस्तु वृत्रसंकाशं भीमो मल्लं समाह्वयत् ॥२२॥ जीमूतं नाम तं तत्र मल्लं प्रख्यातविक्रमम् । तावुभौ सुमहोत्साहावुभौ भीमपराक्रमौ २३ मत्ताविव महाकायौ वारणौ षष्टिहायनौ । ततस्तौ नरशार्दूलौ बाहुयुद्ध

महोत्सवमें पृथक् २ दिशाओंसे हजारों मल्ल आ डटे ॥१५॥ यह मल्ल कालखंज नामक राक्षसोंकी समान बड़े शरीर वाले महापराक्रमी और शरीरके बलसे महाउत्कट और महाबलवान् थे राजा उन सबोंका सत्कार करता था वे सिंहकी समान गरदन कन्धे और कमर और उज्ज्वल वर्णके शरीर वाले और प्रसन्न चित्त थे उन्होंने अखाडेमें आ राजाके सामने बार बार विजय पाई थी ॥ १७ ॥ उन मल्लोंमेंसे एक मल्ल बडा था उसने अखाड़ेमें उतर कर लड़नेके लिए एक २ करके सब मल्लोंको पुकारा परन्तु अखाड़ेमें लड़नेके लिए बुलाते हुए उस मल्लके साथ लड़नेको कोई भी मल्ल नहीं उठा १८ इसप्रकार जबसब मल्ल उस महामल्लके सामने निस्तेज होगए और उनका मन उदास होगया तब राजा विराटने अपने पाकशालाके बल्लवको उस मल्लके साथ लड़नेकी आज्ञादी १९ भीमसेनको मैं प्रकट होजाऊँगा इस भयसे लड़नेकी इच्छा नहीं थी परन्तु राजाके कहनेसे उसने मनमें उदासीनतासे लड़नेका विचार किया क्योंकि वह राजासे प्रकटरूपसे मना नहीं कर सकता था ॥२०॥ तदनन्तर वह शनैः २ मल्लके पास अखाड़ेमें आया और राजा विराटको प्रणामकर खड़ा होगया ॥२१॥ तदनन्तर उसने लंगोटा कसकर लोगोंके मनको हर्षाया और वृत्रासुरकी समान बलवान् प्रसिद्ध पराक्रमी जीमूत मल्लको लड़नेके लिये बुलाया वह दोनों उत्साहयुक्त, भयंकर पराक्रमी मदमत्त साठ वर्षके हाथीकी समान मदमत्त पराक्रमी और बड़े शरीर वाले थे वह एक दूसरेको हरानेकी इच्छा

समीयतुः ॥ २४ ॥ वीरौ परमसंहृष्टावन्योऽन्यजयकांक्षिणौ । आसीत् सुभीमः सम्पातो वज्रपर्वतयोरिव ॥ २५ ॥ उभौ परमसंहृष्टौ बलेनातिबलावुभौ । अन्योऽन्यस्यांतरं प्रेप्सू परस्परजयैषिणौ ॥ २६ ॥ उभौ परमसंहृष्टौ मत्ताविव महागजौ । कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च सुसङ्कटैः २७ सन्निपातावधूतैश्च प्रमाथोन्मथनैस्तथा । क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव वराहोद्धूतनिस्वनैः ॥ २८ ॥ तलैर्वज्रनिपातैश्च प्रसृष्टाभिस्तथैव च । शलाकानखपातैश्च पादोद्धूतैश्च दारुणैः ॥ २९ ॥ जानुभिश्चाश्मनिर्घोषैः शिरोभिश्चावघट्टनैः । तद्युद्धमभवद् घोरमशस्त्रं बाहुतेजसा ॥ ३० ॥ बलप्राणेन शूराणां समाजोत्सवसन्निधौ । अरज्यत जनः सर्वः सोत्क्रुष्टनिनदोत्थितः ॥ ३१ ॥ बलिनोः संयुगे राजन् वृत्रवासवयोरिव । प्रक-

करते थे और युद्ध करनेके लिए हर्षमें भरे हुए थे उन दोनोंमें जैसे पर्वत और वज्रमें महाभयानक युद्ध होता है वैसा युद्ध होने लगा ॥ २२--२५ ॥ वह दोनों बलके कारण बहुत हर्षमें भर गए उस समय वह महाबली और हर्षमें भरे हुए मदमत्त गजेंद्रकी समान प्रतीत होते थे वह दोनों एक दूसरेको हरानेकी इच्छासे एक दूसरेके चूकको देखते हुए लड़ने लगे किसी अंगको कोई पकड़ कर दबावे तो उस अङ्गको उसमेंसे बचाना हाथकी मुट्ठियें बांध कर परस्पर प्रहार करना आपसमें अङ्गोंको रगड़ देना उससे एकका दूसरेको दूर फैंक देना पृथ्वी पर पछाड़ कर उसको अच्छे प्रकार दबाना ऊपरको उठा कर भूमि पर पटक देना और उसको दोनों हाथोंसे अत्यन्त रगड़ना, अपने स्थानसे एकाएकी घसीट डालना, दोनों हाथोंकी मुट्ठियें बांध कर छातीमें मारना लड़नेवालेको अपने कंधेपर उठा उलटा मुँह घुमा कर भूमि पर पटक देनेसे गर्जना होना, वज्रपातकी समान दृढ़ थपकी मारना, हाथकी अंगुलियोंको ढीली करके थप्पड़ मारना हाथकी कोनियोंका प्रहार करना, नखोंसे बकोटना भयानक लातें मारना घुटने और माथेको अड़ा देना उससे पत्थरके पटकनेकी समान शब्द होना, तथा प्रकर्षण (खैंचकर अपनी गोदमें घसीटलाना) आकर्षण (खेलते २ एक साथ आपने सन्मुख खैंच लेना) अभ्याकर्ष (ऊपर नीचे और आड़ा खदेड़ना) विकर्षण (एक साथ वेगसे पीछेको धक्का देकर पटक देना) इत्यादि मल्लक्रियाकी सकल रीतियोंसे वह दोनों लड़ रहे थे। महोत्सवमें इकट्ठे होकर बैठे हुए लोगोंके सामने दोनों शूरवीरोंका बाहुबलसे तथा शारीरिक और प्राणबलसे शस्त्रहीन भी वह

र्षणाकर्षणयोरभ्याकर्षणविकर्षणैः ॥ ३२ ॥ आकर्षतुस्तथान्योऽन्यं जानुभिश्चापि जघ्नतुः । ततः शब्देन महता भर्त्सयन्तौ परस्परम् ॥३३॥ व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ। बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥३४॥ चकर्ष दोर्भ्यामुत्पात्य भीमो मल्लममित्रहा। निनदन्तमभिक्रोशन् शार्दूल इव वारणम् ॥ ३५ ॥ समुद्यम्य महाबाहुर्भ्रामयामास वीर्यवान् । ततो मल्लाश्च मत्स्याश्च विस्मयं चक्रिरे परम् ॥३६॥ भ्रामयित्वा शतगुणं गतसत्त्वमचेतनम्। प्रत्यपिंषन्महाबाहुर्मल्लं भुवि वृकोदरः ॥३७॥ तस्मिन् विनिहते वीरे जीमूते लोकविश्रुते । विराटः परमं हर्षमगच्छद्बान्धवैः सह ॥ ३८ ॥ प्रहर्षात् प्रददौ वित्तं बहु राजा महामनाः । वल्लवाय महारंगे यथा वैश्रवणस्तथा॥३९॥एवं स सुबहून् मल्लान् पुरुषांश्च महाबलान् । विनिघ्नन् मत्स्यराजस्य प्रीतिमाहरदुत्तमाम् ४०

युद्ध बड़ा भयंकर होगया था हे राजन् ! वृत्रासुर और इन्द्रकी समान इन दोनों बलवानोंके युद्धमें सब दर्शक विजयी पुरुषको उत्साह उत्पन्न करनेवाले शब्दोंसे उत्साहित करने लगे और आनन्दमें भरगए २६-३२ इस प्रकार युद्ध करने वाले भीमसेन और जीमूत मल्ल जिनकी छातियें चौड़ी थी, हाथ लम्बे थे और जो मल्ल युद्धमें कुशल थे वह जोर २ से ललकार एक दूसरेका अपमान करने लगे तदनन्तर लोहेके दंडेकी समान अपने हाथोंसे एक दूसरेने एक दूसरेको लपेट कर जकड़ लिया ॥३३॥ तदनन्तर जैसे गर्जने वाला सिंह गर्जना करते हुए हाथीको पकड़लेता है तैसे ही महाबाहु शत्रु मर्दन और महापराक्रमी भीमने अपने प्रतिपक्षी मल्लको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और आकाशकी ओरको ऊँचा करकै घुमाना आरंभ किया यह देख कर अन्य मल्ल तथा मत्स्यदेशकी प्रजा परम आश्चर्यमें हुई ॥ ३४-३५ ॥ भीमने उस मल्लको सौ वार घुमाया इससे वह अचेत और प्राणहीनसा होगया वृकोदर महाबाहु भीमने उसको पृथ्वी पर पटक उसका चुर्रा कर डाला ॥ ३६ ॥ इस प्रकार संसारमें प्रसिद्ध जीमूत मल्लको भीमसेनने मार डाला यह देख राजा विराट तथा उसके सम्बंधी परम आनन्दित हुए ३७ और उदारचित्त कुवेरकी समान राजा विराटने हर्षित हो उस रंगभूमिमें बल्लवको बहुतसा धन दिया ३८ इसप्रकार भीमसेनने अखाड़ेमें बहुतसे मल्लोंका तथा बलवान् पुरुषोंका नाश करकै मत्स्यराज विराटको प्रीतिको अपनी ओर अत्यन्त खेंच लिया ॥३९॥ जिस२ समय भीमसेनको अपनी समान कोई बलवान् पुरुष नहीं मिल-

यथास्य तुल्यः पुरुषो न कश्चित्तत्र विद्यते । ततो व्याघ्रैश्च सिंहैश्च द्विरदैश्चाप्ययोधयत् ॥४१॥ पुनरन्तः पुरगतः स्त्रीणां मध्ये वृकोदरः । योध्यते स विराटेन सिंहैर्मत्तैर्महाबलैः ॥ ४२ ॥ बीभत्सुरपि गीतेन स्वनृत्येन च पाण्डवः । विराटं तोषयामास सर्वाश्चान्तः पुरस्त्रियः ४३ अश्वैर्विनीतैर्जवनैस्तत्र तत्र समागतैः। तोषयामास राजानं नकुलो नृपसत्तमम् ॥ ४४ ॥ तस्मै प्रदेयं प्रायच्छत् प्रीतो राजा धनं बहु । विनीतान् वृषभान् दृष्ट्वा सहदेवस्य चाभितः ॥ ४५ ॥ धनं ददौ बहुविधं विराटः पुरुषर्षभः । द्रौपदी प्रेक्ष्य तान् सर्वान् क्लिश्यमानान् महारथान् ॥ ४६ ॥ नातिप्रीतमना राजन् निःश्वासपरमाभवत् । एवं ते न्यवसंस्तत्र प्रच्छन्नाः पुरुषर्षभाः । कर्माणि तस्य कुर्वाणाः विराटनृपतेस्तदा ॥ ४७ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि समयपालनपर्वणि जीमूतवधे
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ समाप्तञ्च समयपालनपर्व ।

अथ कीचकवधपर्व ।

वैशम्पायन उवाच । वसमानेषु पार्थेषु मत्स्यस्य नगरे तदा । महारथेषु छन्नेषु मासा दश समाययुः ॥ १ ॥ याज्ञसेनी सुदेष्णां तु शुश्रू-

---

था तब २ वह शेर, बाघ और हाथियोंके साथ युद्ध करता था ।४०। राजा विराट अन्तःपुरकी स्त्रियोंके सामने किसी २ समय भीमसेनको मदमत्त और महाबलवान् सिंहोंके साथ लड़ाता था ॥४१॥ अर्जुन भी अपने गीत और नृत्योंसे राजा विराटको तथा रनवासकी सब स्त्रियों को प्रसन्न किया करता था ॥ ४२ ॥ नकुल भी तहाँ आप शिक्षित और वेगसे चलने वाले घोड़ोंको अच्छी २ चाल बतलाकर राजा विराटको सन्तुष्ट करता था ॥ ४३ ॥ उससे राजा विराट प्रसन्न हो उसको भी बहुतसा धन तथा वस्त्रादिक भी भेंटमें देता था तैसे ही सहदेवके भी सिखाये हुए बैलोंको देख कर महात्मा राजा विराट उसको भी बहुतसा धन देता था ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! तब भी इन सब महारथियोंको दुःखित होते देखकर द्रौपदीके चित्तमें खेद होता था और वह केवल श्वासें लिया करती थी ॥ ४५ ॥ इसप्रकार महापुरुष पाण्डव विराट राजाका कार्य कर उसके नगरमें छिपकर रहते थे ४६ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! इसप्रकार महारथी पांडवों को विराट नगरमें छिपकर रहते हुए दश महीने बीतगए ॥ १ ॥ और

चरन्ती विशाम्पते । आवसत् परिचारार्हा सुदुःखं जनमेजय ॥२॥ तथा चरन्ती पाञ्चाली सुदेष्णाया निवेशने । तां देवीं तोषयामास तथा चान्तःपुरस्त्रियः ॥ ३ ॥ तस्मिन् वर्षे गतप्राये कीचकस्तु महाबलः । सेनापतिर्विराटस्य ददर्श द्रुपदात्मजाम् ॥४॥ तां दृष्ट्वा देवगर्भाभां चरन्तीं देवतामिव । कीचकः कामयामास कामबाणप्रपीडितः ॥ ५ ॥ स तु कामाग्निसन्तप्तः सुदेष्णामभिगम्य वै। प्रहसन्निव सेनानीरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ नेयं मया जातुपुरेह दृष्टा राज्ञो विराटस्य निवेशने शुभा । रूपेण चोन्मादयतीव मां भृशं गन्धेन जाता मदिरेव भामिनी७ का देवरूपा हृदयंगमा शुभे ह्याचक्ष्व मे कस्य कुतोऽत्र शोभने । चित्तं हि निर्मथ्य करोति मां वशे न चान्यदत्रौषधमस्ति मे मतम् ॥८॥ अहो तवेयं परिचारिका शुभा प्रत्यग्ररूपा प्रतिभाति मामियम् । अयुक्तरूपं

हे राजा जनमेजय ! उस समय राजा यज्ञसेनकी पुत्री द्रौपदी जो दूसरोंसे अपनी सेवा करवानेके योग्य थी वह सदा सुदेष्णाकी सेवा करती थी और परम कष्टसे सुदेष्णाके घरमें रहती थी ॥ २ ॥ और सुदेष्णाके राजमहलमें रहकर वह रानी सुदेष्णाको तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंको प्रसन्न करती थी ॥ ३ ॥ इसप्रकार एक वर्षमेंका बहुतसा समय पूरा होनेको आगया इतनेमें ही एक दिन राजा विराटके महाबली सेनापति कीचकने देवताकी समान कान्तिवाली और दिव्यगर्भसे उत्पन्न हुई द्रौपदीको विराटके घरमें फिरती हुई देखा उसको देखते ही कामाधीन हुआ कीचक उसके ऊपर आसक्त होगया ४-५ और कामानलसे जलता हुआ वह सेनापति सुदेष्णाके पास जाकर मानो हँसता हो इसप्रकार कहनेलगा कि-॥ ६ ॥ अरी सुदेष्णा ! मैंने विराटके घरमें आकर ऐसी सुन्दर लावण्ययुक्त, स्त्री पहिले किसी दिनभी नहीं देखी थी उत्तम प्रकारकी मदिरा जैसे अपनी गंधसे मनुष्यको अत्यन्त उन्मत्त बनाडालती है तैसे ही यह स्त्री मुझको अपने रूपसे अत्यन्त उन्मत्त बनाये डालती है ॥ ७ ॥ हे शोभने ! यह देवसुन्दरीकी समान हृदयहारिणी स्त्री कौन है ? किसकी स्त्री है ? और यहां कहांसे आई है यह मुझे बताओ क्यों कि-यह मेरे मनको मथ कर अपने अधीन कर रही है, अरे ! इस स्त्रीके विना मेरे मनके ताप को दूर करनेवाली दूसरी औषधि ही नहीं है ऐसा मेरा विचार है ८ अरे रे ! तेरी यह शुभ दासी मुझे नवीन यौवन और सौन्दर्यसम्पन्न प्रतीत होती है और यह तेरे जो कार्य करती है उस कामको करनेके

हि करोति कर्म ते प्रशास्तु मां यच्च ममास्ति किंचन ॥ ९ ॥ प्रभूनागाश्वरथं महाजनं समृद्धियुक्तं बहुपानभोजनम् । मनोहरं कांचनचित्रभूषणं गृहं महच्छोभयतामियं मम ॥१०॥ ततः सुदेष्णामनुमन्त्र्य कीचकस्ततः समभ्येत्य नराधिपात्मजाम् । उवाच कृष्णामभिसान्त्वयंस्तदा मृगेन्द्रकन्यामिव जम्बुको वने ॥११॥ का त्वं कस्यासि कल्याणि कुतो वा त्वं वरानने । प्राप्ता विराटनगरं तत्त्वमाचक्ष्व शोभने ॥ १२ ॥ रूपमग्र्यं तथा कांतिः सौकुमार्यमनुत्तमम् । कान्त्या विभाति वक्त्रं ते शशांक इव निर्मलम् ॥ १३ ॥ नेत्रे सुविपुले सुभ्रु पद्मपत्रनिभे शुभे । वाक्यन्ते चारुसर्वांगि परपुष्टरुतोपमम् ॥ १४ ॥ एवंरूपा मया नारी काचिदन्या महीतले । न दृष्टपूर्वा सुश्रोणि यादृशी त्वमनिंदिते ॥१५॥ लक्ष्मीः पद्मालया का त्वमथ भूतिः सुमध्यमे । ह्रीः श्रीः कीर्त्तिरथो कांतिरासां का त्वं वरानने ॥ १६ ॥ अतीव रूपिणी किन्त्वमनंगाग-

सर्वथा अयोग्य है, किन्तु मेरा जो कुछ धन धान्य आदिक है उसकी तथा मेरी यह स्वामिनी बने ॥९॥ मेरे घरमें बहुतसे हाथी घोड़े और रथ हैं बहुतसे मनुष्य हैं, समृद्धि है और खाने पीनेके बहुतसे पदार्थ हैं और वह सुवर्ण तथा चित्रोंसे सुशोभित तथा अतिसुन्दर हैं अतः मेरे ऐसे उत्तम घरको यह स्त्री बड़ी शोभा देगी ॥ १० ॥ सुदेष्णाके साथ इसप्रकार बातचीत कर उसका सत्कार करके कीचक राजपुत्री द्रौपदीके पास आया और जङ्गली गीदड़ सिंहकी कन्याके पास आकर जैसे उसको समझाता हो तैसे २ राजपुत्री द्रौपदीको धैर्य देकर कहने लगा ॥ ११ ॥ हे सुंदरवदनी ! कल्याणि ! तू कौन है ? किसकी पुत्री है ? विराट नगरमें कहाँसे आई है ? यह बात हे सुन्दरी ! तू मुझे बता ॥१२॥ तेरा रूप श्रेष्ठ है कान्ति श्रेष्ठ है और सुकुमारता भी श्रेष्ठ है अरी ! तेरे मुखकी प्रभा चंद्रमाकी समान निर्मल दीखती है ॥१३॥ हे सुंदर भृकुटिवाली स्त्री ! तेरे नेत्र अतिविशाल कमलकी पंखड़ीकी समान और मंगलमय हैं, तथा हे सर्वाङ्गसुन्दरि ! तेरा शब्द कोयलके शब्दकी समान है ॥ १४ ॥ हे सुन्दर नितम्बवाली और शुद्ध स्त्री! मैंने पृथिवीपर पहिले कभी तेरी समान रूपवती कोई स्त्री नहीं देखी है ॥ १५ ॥ हे सुन्दर कमरवाली स्त्री ! क्या तू कमलवासिनी लक्ष्मी है ? क्या तू विभूति है ? अथवा हे सुन्दर वदनी स्त्री ! तू ह्री, लज्जा श्री, कान्ति या कीर्त्ति है ? इनमेंसे तू कौनसी देवी है ॥१६॥ अथवा क्या अतिरूपवती तू अनंग कामदेवके अङ्गोंके साथ विलास करने

विहारिणि । अतीव भ्राजसे सुभ्रु प्रभेवेन्दोरनुत्तमा ॥ १७ ॥ अपि चेक्षणपक्ष्मणां स्मितज्योत्स्नोपमं शुभम् । दिव्यांशुरश्मिभिर्वृत्तं दिव्यकान्तिमनोरमम् ॥ १८ ॥ निरीक्ष्य वक्त्रचन्द्रं ते लक्ष्म्यानुपमया युतम् । कृत्स्ने जगति को नेह कामस्य वशगो भवेत् ॥ १९ ॥ हारालंकारयोग्यौ तु स्तनौ चोभौ सुशोभनौ । सुजातौ सहितौ लक्ष्म्या पीनौ वृत्तौ निरन्तरौ ॥ २० ॥ कुड्मलाम्बुरुहाकारौ तव सुभ्रु पयोधरौ । कामप्रतोदाविव मां तुदतश्चारुहासिनि ॥२१॥ वलीविभंगचतुरं स्तनभारविनामितम् । कराग्रसम्मितं मध्यं तवेदं तनुमध्यमे ॥२२॥ दृष्ट्वैव चारु जघनं सरित्पुलिनसन्निभम् । कामव्याधिरसाध्यो मामप्याक्रामति भामिनि ॥ २३ ॥ जज्वाल चाग्निमदनो दावाग्निरिव निर्दयः । त्वत्संगमाभिसंकल्पविवृद्धो मां दहत्ययम् ॥२४॥ आत्मप्रदानवर्षेण संगमाम्भोधरेण च । शमयस्व वरारोहे ज्वलन्तं मन्मथानलम् ॥ २५ ॥ मच्चित्तोन्मादनकरा मन्मथस्य शरोत्कराः । त्वत्संगमाशानिशितास्तीव्राः शशि-

---

वाली रति रानी है ? हे सुन्दर भौंवाली ! तू चन्द्रमाकी श्रेष्ठ प्रभाकी समान अत्यन्त प्रकाशित हो रही है ॥ १७ ॥ नेत्रके पलकोंकी शनैः २ पलक चलाने रूपी प्रभासे मनको आनन्द देनेवाले, दिव्य प्रभाकी किरणों से घिरेहुए, दिव्य कान्तिसे मनोहर, अनुपम सौंदर्यशाली तेरे इस मुखचन्द्र को देखकर संसार में कौन पुरुष कामके अधीन नहीं होगा ॥ १८–१९ ॥ तेरे यह दोनों स्तन शोभायमान, उन्नत, कान्तिमान् पुष्ट; कमलकी कलीके समान गोल मध्यमें भरे हुए अर्थात् एक दूसरेसे अड़े हुए हैं और हार तथा आभूषण धारण करने योग्य, हैं हे सुंदर हास्यवाली स्त्री! तेरे यह दोनोंस्तन कामके कोड़ेकी समान मेरे मर्मस्थानको तोड़े डालते हैं ॥ २०–२१ ॥ हे सूक्ष्म कटिवाली स्त्री ! त्रिवलीकी तीन रेखाओंसे सुन्दर दीखती हुई, और स्तनोंके भारसे झुकती हुई यह तेरी कमर बेंतकी समान पतली है ॥ २२ ॥ और हे भामिनि ! नदीके तटकी समान तेरी इन जंघाओंको देखकर असाध्य काम रोग मुझे अत्यन्त पीड़ा देता है ॥२३॥ अरे यह निर्दयी कामानल दावाग्निकी समान सुलग उठा है और यह अग्नि तेरे समागमरूपी संकल्पसे वृद्धि पाकर मुझे बहुत ही जला रहा है ॥ २४ ॥ इसकारण हे सुन्दरांगि ! तू समागम रूपी मेघसे तथा आत्मसमर्पणरूपी जलकी वर्षासे इस बलती हुई कामाग्निको शान्त कर ॥२५॥ हे चन्द्रवदनी ! कामके बहुतसे बाण तीक्ष्ण हैं और तेरे साथ समागम करनेकी आशा

गिभानने । मत्तां विदार्य हृदयमिदं निर्दयवेगिताः ॥२६॥ प्रविष्टा ह्यसितापांगि प्रचण्डाश्चण्डदारुणाः । अत्युन्मादसमारम्भाः प्रीत्युन्मादकरा मम । आत्मप्रदानसम्भोगैर्मामुद्धर्तुमिहार्हसि ॥२७॥ चित्रमाल्याम्बरधरा सर्वाभरणभूषिता । कामं प्रकामं सेव त्वं मया सह विलासिनी २८ नार्हसीहासुखं वस्तुं सुखार्हा सुखवर्जिता । प्राप्नुह्यनुत्तमं सौख्यं मत्तस्त्वं मत्तगामिनि ॥२९॥ स्वादून्यमृतकल्पानि पेयानि विविधानि च । पिबमाना मनोज्ञानि रममाणा यथासुखम् ॥३०॥ भोगोपचारान् विविधान् सौभाग्यं चाप्यनुत्तमम् । पानं पिब महाभागे भोगैश्चानुत्तमैः शुभैः ॥३१॥ इदं हि रूपं प्रथमं तवानघे निरर्थकं केवलमद्य भामिनि । अधार्यमाणा स्रगिवोत्तमा शुभा न शोभसे सुन्दरि शोभना सती ३२ त्यजामि दारान्मम ये पुरातना भवन्तु दारास्तव चारुहासिनि । अहं च ते सुन्दरि दासवत् स्थितः सदा भविष्ये वशगो वरानने ॥ ३३ ॥

से और भी तीक्ष्ण होगए हैं वह कामके बाण मेरे मनको उन्मत्त करे डालते हैं ओ श्याम कटाक्षवाली स्त्री ! यह प्रचण्ड और दारुण बाण निर्दयी हो वेगसे मेरे हृदयको चीर कर भीतर घुसगए हैं और उन्होंने मुझे अत्यन्त उन्माद तथा प्रेमके अधीन कर दिया है अतः आत्मसमर्पण करके तथा संभोग देकर तुझे मेरा उद्धार करना चाहिये २६–२७ हे विलासिनि ! तू अनेक प्रकारकी पुष्पमालाएँ तथा वस्त्र पहर कर तथा अनेकों प्रकारके आभूषणोंसे सजकर मेरे साथ अच्छी प्रकार कामकी सेवा कर ॥ २८ ॥ तू सुख भोगनेके योग्य है तो भी यहाँ पर सुखसे रहित है अतः तेरा यहाँ रहना ठीक नहीं है अरी ओ मत्तगामिनि ! तू मेरे पाससे अच्छेसे अच्छे सुखोंको प्राप्त कर ॥ २९ ॥ और अमृतकी समान स्वादिष्ट तथा मनको रुचने वाले अनेकों प्रकारके पीनेके रसोंको पी और इच्छामें आवे तैसे विहार कर ।३०। हे महाभागे ! तू अनेक प्रकारके ऐश्वर्य भोगेगी, उत्तम सौभाग्यको पावेगी अनेक प्रकारके रसोंका पान करेगी तथा उत्तम प्रकारके श्रेष्ठ सुखोंको भोगेगी ॥ ३१ ॥ हे निर्दोष भामिनि ! तेरी यह पहिली तरुणावस्था है वह केवल व्यर्थ हो चली जा रही है सुन्दरि ! पुष्पोंकी श्रेष्ठ और सुन्दर माला पहिरनेके योग्य होती हैं परन्तु उसका उपभोग न करनेसे वह कुम्हला जाती है अतः तू भी सौंदर्यवाली है परन्तु विना भोगके अच्छी नहीं मालूम होती है ॥ ३२ ॥ हे सुन्दर हास्यवाली स्त्री ! यदि तू कहे तो मैं अपनी पहिली स्त्रियोंको छोड़दूँ अथवा उन सब स्त्रियों

द्रौपद्युवाच । अप्रार्थनीयामिह मां सूतपुत्राभिमन्यसे । विहीनवर्णां सैरन्ध्रीं बीभत्सां केशकारिणीम् ॥ ३४ ॥ परदारास्मि भद्रन्ते न युक्तं तव साम्प्रतम् । दयिताः प्राणिनां दारा धर्मं समनुचिन्तय ॥ ३५ ॥ परदारे न ते बुद्धिर्जातु कार्या कथञ्चन । विवर्जनं ह्यकार्याणामेतत् सत्पुरुषव्रतम् ॥ ३६ ॥ मिथ्याभिगृध्नो हि नरः पापात्मा मोहमास्थितः । अयशः प्राप्नुयाद् घोरं महद्वा प्राप्नुयाद्भयम् ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्तु सैरन्ध्र्या कीचकः काममोहितः । जानन्नपि सुदुर्बुद्धिः परदाराभिमर्शने ॥ ३८ ॥ दोषान् बहून् प्राणहरान् सर्वलोकविगर्हितान् । प्रोवाचेदं सुदुर्बुद्धिर्द्रौपदीमजितेन्द्रियः ॥ ३९ ॥ नार्हस्येवं वरारोहे प्रत्याख्यातुं वरानने । मां मन्मथसमाविष्टं त्वत्कृते चारुहासिनि ॥ ४० ॥ प्रत्याख्याय च मां भीरु वशगं प्रियवादि-

---

को तेरी दासी बनाऊँ और हे सुन्दरि ! हे सुन्दरवदनी ! मैं भी सदा तेरा दास समान रहकर तेरे अधीन रहूँगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार द्रौपदी से बहुत कुछ विनती करी तब द्रौपदीने कहा कि-हे सूतपुत्र ! तू यह समझले कि—मैं तेरी याचनाके योग्य नहीं हूं क्योंकि-मैं एक नीचे वर्णकी स्त्री हूँ, सैरन्ध्री (सेविका) हूँ, बीभत्स रूप वाली और बाल काढने वाली तथा परस्त्री हूँ, इस कारण तुझे मेरी प्रार्थना नहीं करनी चाहिये, तेरा कल्याण हो, सब प्राणियोंको अपनी स्त्रियें प्रिय होती हैं उसी नियमके अनुसार मैं भी अपने पतियोंकी प्यारी हूँ। अतः तू धर्मका विचार करके बोल ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तुझे कभी भी परस्त्रीके विषयमें विचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि—नीच कार्यका त्यागना ही सत्पुरुषोंका व्रत है ॥ ३६ ॥ केवल पापी पुरुष ही मिथ्या विषय की ओर ध्यान देते हैं और मोहके अधीन हो भयंकर अपयश प्राप्त करते हैं अथवा बड़ी आपत्तिमें पड़ जाते हैं ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! जब द्रौपदीने इस प्रकार कहा तब कामसे मोहित दुष्टबुद्धि कीचक कि-जो "परस्त्रीके साथ समागम करनेमें सब लोगोंसे धिक्कार पाना और प्राण हरणादिक बहुतसे दोष हैं" ऐसा जानता था तो भी उस इन्द्रियोंके अधीन हुए दुरात्मा कीचकने द्रौपदीसे कहा कि-॥ ३८ ॥ ३९ ॥ अरी ओ सुन्दर अङ्ग और मुख वाली स्त्री ! मुझे इस प्रकार स्पष्ट निषेध कर देना तुझे योग्य नहीं है क्योंकि-हे चारुहास्यवाली ! मैं तेरे लिये कामके वशमें होगया हूँ ४० हे भीरु ! और श्याम कटाक्षवाली स्त्री! मैं तेरे अधीन होगया हूँ और

नम् । नूनं त्वमसितापाङ्गि पश्चात्तापं करिष्यसि ॥ ४१ ॥ अहं हि सुभ्रु राज्यस्य कृत्स्नस्यास्य सुमध्यमे । प्रभुर्वासयिता चैव वीर्ये चाप्रतिमः क्षितौ ॥ ४२ ॥ पृथिव्यां मत्समो नास्ति कश्चिदन्यः पुमानिह । रूपयौवनसौभाग्यैर्भोगैश्चानुत्तमैः शुभैः ॥ ४३ ॥ सर्वकामसमृद्धेषु भोगेष्वनुपमेष्विह । भोक्तव्येषु च कल्याणि कस्माद्दास्ये रता ह्यसि ॥ ४४ ॥ मया दत्तमिदं राज्यं स्वामिन्यसि शुभानने । भजस्व मां वरारोहे भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ ४५ ॥ एवमुक्ता तु सा साध्वी कीचकेनाशुभं वचः । कीचकं प्रत्युवाचेदं गर्हयन्त्यस्य तद्वचः ॥ ४६ ॥ सैरन्ध्र्युवाच । मा सूतपुत्र मुह्यस्व माद्य त्यक्ष्यस्व जीवितम् । जानीहि पञ्चभिर्घोरैर्नित्यं मामभिरक्षिताम् ॥ ४७ ॥ न चाप्यहं त्वया लभ्या गन्धर्वाः पतयो मम । ते त्वां निहन्युः कुपिताः साध्वलं मा व्यनीनशः ॥ ४८ ॥ अशक्यरूपं पुरुषैरध्वानं गन्तुमिच्छसि । यथा

तेरी इच्छानुसार बोल रहा हूँ तो भी तू मुझसे निषेध करती है परन्तु स्मरण रख कि–पीछेसे तुझे अवश्य पछताना पड़ेगा ॥४१॥ हे सुभ्रु ! हे सुन्दर कटिवाली स्त्री ! मैं इस सम्पूर्ण देशका स्वामी हूं, देशमें प्रजाको बसानेवाला हूँ और इस पृथिवी पर मेरे समान शरीरबल-सम्पन्न कोई नहीं है॥४२॥इस पृथिवी पर मेरी समान दूसरा कोई भी पुरुष रूपवान् यौवनशाली सौभाग्यवान् तथा उत्तम प्रकारके शुभ ऐश्वर्योंको भोगनेवाला नहीं है ॥४३॥ हे कल्याणि ! तुझे सब प्रकारसे पूर्ण समृद्धि वाले उत्तमोत्तम वैभव भोगनेको मिलते हैं तो भी तू उन सबका तिरस्कार करके दासीपने पर क्यों प्रेम रखती है ? ४४ हे सुन्दरवदनी! मैं तुझे यह राज्य देता हूँ तू मेरी पटरानी बनहे वरारोहे ! मेरी सेवा कर तथा उत्तमोत्तम वैभवोंको भोग ॥४५॥ कीचकने इस प्रकार पतिव्रता द्रौपदीसे अशुभ बात कही तब उन वचनोंका अनादर करती हुई द्रौपदीने कीचकको फिर उत्तर दिया ४६ सैरन्ध्री बोली कि-हे सूतपुत्र ! तू कामके वेगसे मोहित मत हो और अपने प्राणोंको वृथा ही नष्ट न कर, क्योंकि–सुन पाँच भयंकर पुरुष सदा चारों ओरसे मेरी रक्षा करते हैं ऐसा तू जानले४७जिस मार्गमें पुरुष नहीं जासकते उस ही मार्गमें चलनेकी तू इच्छा करता है परन्तु तू मुझे कभी नहीं पासकेगा क्योंकि–यदि मेरे पति गन्धर्व कोप करेंगे तब तुझे मार डालेंगे इस कारण इस बातका विचार ही छोड़दे वृथा मृत्युके मुखमें न जा ४८ जैसे समुद्रके एक किनारे पर बैठाहुआ कोई

निश्चेतनो बालः कूलस्थः कूलमुत्तरम् । तर्त्तुमिच्छति मन्दात्मा तथा त्वं कर्त्तुमिच्छसि ॥ ४९ ॥ अन्तर्महीं वा यदि वोर्ध्वमुत्पतेः समुद्रपारं यदि वा प्रधावसि । तथापि तेषां न विमोक्षमर्हसि प्रमाथिनो देवसुता हि खेचराः ॥ ५० ॥ त्वं कालरात्रीमिव कश्चिदातुरः किं मां दृढं प्रार्थसेऽद्य कीचक । किं मातुरङ्के शयितो यथा शिशुश्चन्द्रं जिघृक्षुरिव मन्यसे हि माम् ॥ ५१ ॥ तेषां प्रियां प्रार्थयतो न ते भुवि गत्वा दिवं वा शरणं भविष्यति । न वर्तते कीचक ते दृशाशुभं या ते न संजीवनमर्थयेत सा ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
कीचककृष्णासंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रत्याख्यातो राजपुत्र्या सुदेष्णां कीचकोब्रवीत् ।

मन्दबुद्धि शक्तिहीन बालक दूसरे किनारे पर जाना चाहे तैसे ही तू भी मन्दबुद्धि है क्योंकि-तू ऐसे कार्यको करना चाहता है ॥४९॥ मेरे ऊपर कुदृष्टि करनेके पीछे तू आकाशमें उड़कर जायगा, पातालमें घुस जायगा अथवा समुद्रके परलीपार भाग जायगा तब भी आकाशचारी शत्रुमर्दन देवपुत्र मेरे पति तेरा पीछा नहीं छोड़ेंगे ॥ ५० ॥ अरे ओ कीचक ! जैसे कोई रोगी मनुष्य जीनेसे घबड़ा कर मृत्युके लिए किसी कालरात्रिसे प्रार्थना करता है तैसेही आज तू मेरे पास आग्रहसे किसलिए प्रार्थना कर रहा है ? अरे ! माताकी गोदमें सोया हुआ अनजान बालक जैसे चन्द्रमाको पकड़नेकी इच्छा करता है तिसी प्रकार तू भी मुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करता है ॥ ५१ ॥ अरे कीचक! तू गन्धर्वोंकी स्त्रीसे प्रार्थना कर रहा है, परन्तु ऐसा करनेके अनन्तर यदि तू पृथ्वीके ऊपर अथवा आकाशमें भी भाग जायगा तो तहाँ भी कोई तेरी रक्षा नहीं कर सकेगा, अरे कीचक ! तू कामांध होगया है इससे तेरी बुद्धि कि-जो परस्त्रीके त्यागरूपी सदाचारसे अपने जीवनको बचा सके ऐसी नहीं है अर्थात् तेरी बुद्धि शुभेच्छावाली नहीं है परंतु इससे तेरा मरण ही होगा ॥ ५२ ॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार राजकुमारी द्रौपदीने कीचकका तिरस्कार किया तब मर्यादाको लाँघ घोर कामके वशमें हुआ कीचक सुदेष्णाके पास जा इसप्रकार कहने लगा ॥१॥

अमर्य्यादेन कामेन घोरेणाभिपरिप्लुता ॥ १ ॥ यथा कैकेयि सैरन्ध्री समेयात्तद्विधीयताम्। येनोपायेन सैरन्ध्री भजेन्मां गजगामिनी । तं सुदेष्णे परीप्सस्व प्राणान् मोहात् प्रहासिषम् ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच। तस्य सा बहुशः श्रुत्वा वाचं विलपतस्तदा । विराटमहिषी देवी कृपां चक्रे मनस्विनी ॥ ३ ॥ स्वमर्थमभिसन्धाय तस्यार्थमनुचिन्त्य च । उद्वेगञ्चैव कृष्णायाः सुदेष्णा सूतमब्रवीत् ॥ ४ ॥ पर्वणि त्वं समुद्दिश्य सुरामन्नञ्च कारय । तत्रैनां प्रेषयिष्यामि सुराहारीं तवान्तिकम् ॥ ५ ॥ तत्र सम्प्रेषितामेनां विजने निरवग्रहे । सान्त्वयेथा यथाकामं सान्त्वमाना रमेद्यदि ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्तः स विनिष्क्रम्य भगिन्या वचनात्तदा । सुरामाहारयामास राजार्हां सुपरिस्कृताम् ॥ ७ ॥ भक्ष्यांश्च विविधाकारान् बहूंश्चोच्चावचांस्तदा । कारयामास कुशलैरन्नं पानं सुशोभनम् ॥ ८ ॥ तस्मिन् कृते तदा देवी कीचकेनोपमन्त्रिता । सुदेष्णा प्रेषयामास सैरन्ध्रीं कीचकालयम् ॥ ९ ॥ सुदेष्णोवाच

कि—हे कैकयी जिस उपायसे गजगामिनी सैरन्ध्री मेरे पास आवे और वशमें होकर मेरी सेवा करे ऐसी ही युक्ति तू कर नहीं तो मैं मोहमें पड़कर अपने प्राणोंको त्याग दूंगा ॥ २ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार बहुत बार विलाप करते हुए कीचककी बात सुन कर मनस्विनी विराट् की पटरानीने उसके ऊपर कृपा करी पहिले उसने अपने कार्य का मनमें विचार किया, तदनन्तर कीचक के कार्यका विचार किया और अन्तमें कीचक को सैरन्ध्री से मिलाने के लिये क्या उपाय किया जाय ? इसको विचार कर सूत से कहा, कि—॥ ३-४ ॥ भाई ! तू किसी पर्वके दिन मदिरा तथा अनेक प्रकार के भोजन तयार कराना, तब मैं उस दिन मदिरा लेने के बहाने से सैरन्ध्री को तेरे पास भेजूँगी ॥ ५ ॥ जब मैं सैरन्ध्री को तेरे पास तहाँ भेजूँ तब एकान्त और निर्विघ्न स्थानमें जिस प्रकार सैरन्ध्री तेरे ऊपर प्रसन्न होजाय उसी प्रकार तू अपनी इच्छानुसार उसे समझा लेना वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! अपनी बहिन के ऐसे वचन सुन उसी समय कीचक तहाँ से अपने घर गया और उसने राजाके पीने योग्य उत्तम प्रकार की मदिरा तयार कराई तथा राँधने में चतुर मनुष्यों से अनेकों प्रकार के बढ़िया बढ़िया पकवान्न तथा स्वादिष्ट अन्न और पीनेके पदार्थ तयार कराए । तदनन्तर अपनी बहिन को भोजन करनेके लिए निमन्त्रण किया, तब सुदेष्णाने पहिले सोची हुई युक्ति

उत्तिष्ठ गच्छ सैरन्ध्रि कीचकस्य निवेशनम्। पानमानय कल्याणि पिपासा मां प्रबाधते ॥ १० ॥ सैरन्ध्र्युवाच। न गच्छेयमहं तस्य राजपुत्रि निवेशनम्। त्वमेव राज्ञि जानासि यथा स निरपत्रपः ॥११॥ न चाहमनवद्यांगि तव वेश्मनि भामिनी। कामवृत्ता भविष्यामि पतीनां व्यभिचारिणी ॥ १२ ॥ त्वं चैव देवि जानासि यथा स समयः कृतः। प्रविशन्त्या मया पूर्वं तव वेश्मनि भामिनि ॥ १३ ॥ कीचकस्तु सुकेशान्ते मूढो मदनदर्पितः। सोऽवमंस्यति मां दृष्ट्वा न यास्ये तत्र शोभने१४ सन्ति बह्व्यस्तव प्रेष्या राजपुत्रि वशानुगाः। अन्यां प्रेषय भद्रन्ते स हि मामवमंस्यते ॥ १५ ॥ सुदेष्णोवाच। नैव त्वां जातु हिंस्यात्स इतः सम्प्रेषितां मया। इत्युक्त्वा प्रददौ पात्रं सपिधानं हिरण्मयम् ॥ १६ ॥ सा शङ्कमाना रुदती दैवं शरणमीयुषी। प्रातिष्ठत सुराहारी कीचकस्य निवेशनम् ॥ १७ ॥ सैरन्ध्र्युवाच। यथाहमन्यं भर्तृभ्यो नाभिजानामि

के अनुसार सैरन्ध्री से कीचक के घर जानेको कहा ॥ ८-९ ॥ सुदेष्णा बोली, कि—अरी कल्याणि! सैरन्ध्री! उठ खड़ी हो और कीचकके यहाँ जाकर मेरे लिये अच्छी पीनेकी वस्तु ला क्योंकि—मुझे बहुत ही प्यास लग रही है ॥ १० ॥ सैरन्ध्री ने कहा, कि—हे राजपुत्रि! हे रानी! मैं उसके घर नहीं जाऊँगी, क्योंकि—तुम आप ही जानती हो कि—वह बड़ा निर्लज्ज है ॥ ११ ॥ हे पवित्र अङ्गवाली स्त्री! मैं आपके महलमें रह अपने पतियों से विमुख हो व्यभिचार के मार्गमें स्वच्छन्द होकर बर्ताव नहीं करूँगी ॥ १२ ॥ हे देवि! मैंने आपके घरमें आने से पहिले ही तुम्हारे साथ जो प्रतिज्ञा करली है उसको तुम जानती हो फिर भी तुम मुझे उसके घर क्यों भेजती हो ॥ १३ ॥ सुन्दर हैं केशोंकी लटें जिसकी ऐसी हे स्त्रि! यदि तहाँ मैं जाऊँगी तो कामोन्मत्त मन्दबुद्धि कीचक मुझे देखते क्षण ही मेरी लज्जा ले लेगा, अतः हे शोभने! मैं तहाँ नहीं जाऊँगी ॥ १४ ॥ हे राजपुत्री! आपकी अधीनतामें काम करने वाली और भी बहुतसी दासियें हैं उनमेंसे किसी दूसरीको तहाँ भेज दीजिये ईश्वर आपका कल्याण करै यदि मैं तहाँ जाऊँगी तो वह अवश्य ही मेरी लज्जा उतार लेगा ॥ १५ ॥ सुदेष्णाने कहा, कि—मैं तुझे यहाँसे भेजती हूँ, अतः वह कभी भी तेरा अपमान नहीं करेगा इस प्रकार कहकर उसने सैरन्ध्रीके ही हाथमें सुवर्णके ढक्कन वाला पात्र देदिया ॥ १६ ॥ सैरन्ध्री उस पात्रको हाथमें ले शंका करती हुई और रोती २ मदिरा लेनेके लिए कीचकके घरको

कञ्चन । तेन सत्येन मां प्राप्तां मा कुर्यात् कीचको वशे ॥ १८ ॥ वैशम्पायन उवाच । उपातिष्ठत सा सूर्यं मुहूर्तमबला ततः । स तस्यास्तनुमध्यायोः सर्वं सूर्योऽवबुद्धवान् ॥१९॥ अन्तर्हितं ततस्तस्या रक्षो रक्षार्थमादिशत् । तच्चैनां नाजहात्तत्र सर्वावस्थास्वनिन्दिताम् ॥ २० ॥ तां मृगीमिव संत्रस्तां दृष्ट्वा कृष्णां समीपगाम् । उदतिष्ठन् मुदा सूतो नावं लब्ध्वेव पारगः ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीसुराहरणे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

कीचक उवाच ॥ स्वागतं ते सुकेशान्ते सुव्युष्टा रजनी मम । स्वामिनी त्वमनुप्राप्ता प्रकुरुष्व मम प्रियम् ॥ १ ॥ सुवर्णमाला कम्बूश्च कुण्डले परिहाटके । नानापत्तनजे शुभ्रे मणिरत्नञ्च शोभनम् ॥ २ ॥ आहरन्तु च वस्त्राणि कौशिकान्यजिनानि च । अस्ति मे शयनं दिव्यं

ओरको मार्ग में सूर्यदेवकी आराधना करती हुई चलने लगी ॥ १७ ॥ सैरन्ध्री दोनों हाथ जोड़ कर बोली कि–"मै अपने पतिओंके सिवाय दूसरे किसी पुरुष को नहीं चाहती हूँ, उस सत्यसे जब मैं कीचकके यहाँ पहुचूँ तब कीचक मुझे अपने वशमें न कर सके यह मेरी प्रार्थना है ॥ १८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे जनमेजय ! तदनन्तर उस बालाने एक मुहूर्त तक सूर्यकी स्तुति करके अपनी पीड़ा निवेदन की, सूर्यने भी सूक्ष्म कटिवाली उस स्त्रीकी सब दुःखकी बातें ध्यानमें लीं और उन्होंने द्रौपदी की अदृश्य रूपसे रक्षा करनेके लिये एक राक्षसको आज्ञा दी, वह राक्षस पवित्र द्रौपदीका किसी समय त्याग न करता हुआ उसके पास ही रहने लगा ॥ १९ ॥ २० ॥ डरी हुई मृगीकी समान भयभीत हुई द्रौपदीको अपने पास आई हुई देख परली पार जानेकी इच्छा वाला मनुष्य जैसे नौका मिलनसे आनन्दित होता है इसीप्रकार सूतपुत्र कीचक भी द्रौपदीको आई हुई देख हर्षमें भर कर खड़ा होगया ॥ २१ ॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

कीचकने कहा, कि—सुन्दर हैं अग्रभाग जिनके ऐसे केशोंवाली हे स्त्री ! तू अच्छी आई, मेरी आजकी रात्रि आनन्द में कटेगी। ओ मेरी स्वामिनी पटरानी ! तू आज आई है अतः मेरी इच्छानुसार काम कर ॥ १ ॥ तेरे लिए मैं अपने मनुष्योंको आज्ञा देता हूँ कि–वह सोनेकी मालायें, हाथी दाँतके कंगन चूड़ियें सुवर्णकी पट्टियोंसे जड़े और चमकदार अनेकों देशोंमें बने हुए कुण्डल शोभायमान मणि-

त्वदर्थमुपकल्पितम्। एहि तत्र मया सार्द्धं पिबस्व मधुमाधवीम् ॥ ३ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ अप्रैषीद्राजपुत्री मां सुराहारीं तवांतिकम्। पानमाहर मे क्षिप्रं पिपासा मेऽति चाब्रवीत् ॥ ४ ॥ कीचक उवाच ॥ अन्या भद्रे नयिष्यंति राजपुत्र्याः प्रतिश्रुतम्। इत्येनां दक्षिणे पाणौ सूतपुत्रः परामृपत् ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ यथैवाहं नाभिचरे कदाचित् पतीन्मदाद्वै मनसापि जातु। तेनैव सत्येन वशीकृतं त्वां द्रष्टास्मि पापं परिकृष्यमाणम् ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स तामभिप्रेक्ष्य विशालनेत्रां जिघृक्षमाणः परिभर्त्सयंतीम्। जग्राह तामुत्तरवस्त्रदेशे स कीचकस्तां सहसा क्षिपन्तीम् ॥७॥ प्रगृह्यमाणा तु महाजवेन मुहुर्विनिःश्वस्य च राजपुत्री। तया समाक्षिप्ततनुः स पापः पपात शाखीव निकृत्तमूलः ॥८॥ सा गृहीता विधुन्वाना भूमावाक्षिप्य कीचकम्। सभां शरणमागच्छद्यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ तां कीचकः प्रधावन्तीं केशपाशे परामृपत्। अथैनां पश्यतो

तथा रत्न जड़े हुए आभूषण, रेशमी वस्त्र तथा मृगचर्म तेरे लिये ले आवें, तेरे लिए यह दिव्य शय्या तय्यार करा रक्खी है इस कारण तू इस दिव्य शय्या पर बैठ और तहाँ महुएके फूलों से बनी मदिरा का पान कर ॥ २-३ ॥ यह सुन द्रौपदीने कहा, कि—"मुझे राजपुत्री रानीने तेरे पाससे मदिरा लेनेको भेजा है और उसने कहा है कि मुझे बड़ी प्यास लगरही है अतः तू शीघ्र ही पीनेका पदार्थ ले आ इस लिए मुझे तहाँ शीघ्र ही पहुँचना है, कीचकने कहा कि—हे कल्याणि! राजपुत्रीकी मंगाई हुई मदिराको दूसरी दासियें ले जावेंगी यह कहकर सूतपुत्रने उसका दहिना हाथ पकड़ा ॥ ४-५ ॥ तब द्रौपदी बोली कि—मैंने किसी दिन भी उद्धततासे चित्तमें भी अपने पतियों पर बुरा भाव नहीं विचारा है अर्थात् मैं उनको ही इष्टदेवता जानती हूँ उस ही सत्य से मैं तुझ पापीको पृथिवी पर घसिटता हुआ देखूँगी ॥६॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—तदनन्तर विशालनेत्रा द्रौपदी उसका तिरस्कार करने लगीं तथा उसके हाथमेंसे छूटनेके लिए एकाएकी झटके देने लगी तब कीचकने उसे पकड़नेकी इच्छासे बड़े वेगसे दौड उसकी साडीका पल्ला पकड़ लिया और उसको खैंचा तब तुरन्त ही राजकन्या द्रौपदीने उस पापी कीचकके धक्का मारा उससे कीचक जड़से कटे हुए वृक्षकी समान भूमि पर गिर पड़ा ॥ ७—८ ॥ कीचकसे पकड़ी हुई द्रौपदी काँपती काँपती कीचकको भूमि पर गिरा कर जहाँ सभामें युधिष्ठिर बैठे थे तहाँ को दौड़ कर सभाकी शरणमें गई ॥ ९ ॥ इतनेमें ही कीच-

राज्ञः पातयित्वा पदावधीत् ॥१०॥ तस्या योसौ तदार्केण राक्षसः सन्नियोजितः। स कीचकमपोवाह वातवेगेन भारत ॥ ११ ॥ स पपात तदा भूमौ रक्षोबलसमाहतः। विघूर्णमानो निश्चेष्टश्छिन्नमूल इव द्रुमः १२ तांश्चासीनौ ददृशतुर्भीमसेनयुधिष्ठिरौ। अमृष्यमाणौ कृष्णायाः कीचकेन पराभवम् ॥ १३ ॥ तस्य भीमो वधं प्रेप्सुः कीचकस्य दुरात्मनः। दन्तैर्दन्तांस्तदा रोषान्निष्पिपेष महामनाः ॥ १४ ॥ धूमच्छाया ह्यभजतां नेत्रे चोच्छ्रितपक्ष्मणी। सस्वेदा भृकुटी चोग्रा ललाटे समवर्तत ॥ १५ ॥ हस्तेन ममृदे चैव ललाटं परवीरहा। भूयश्च त्वरितः क्रुद्धः सहसोत्थातुमैच्छत ॥ १६ ॥ अथावमृद्नाद् गुष्ठमङ्गुष्ठेन युधिष्ठिरः। प्रबोधनभयाद्राजा भीमं तं प्रत्यषेधयत् ॥ १७ ॥ तं मत्तमिव मातंगं वीक्षमाणं वनस्पतिम्। स तमावारयामास भीमसेनं युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥ आलोकयसि किं वृक्षं सूद दारुकृतेन वै। यदि ते दारुभिः कृत्यं बहिर्वृक्षा निगृह्य-

---

कर दौड़ती हुई द्रौपदीकी चोटी पकड़ ली और राजाके देखते हुये पृथिवी पर गिरा कर उसके लातें मारी ॥ १० ॥ उस समय सूर्यने जिस राक्षसको द्रौपदीके पीछे रक्षा करनेके लिए गुप्तरूपसे नियत किया था उसने हे भारत! पवनकी समान वेगसे कीचकको दूर फेंक दिया ११ राक्षसके बलका धक्का लगने पर कीचक कांप गया और जड कटनेसे जैसे वृक्ष भूमि पर गिर पड़ता है तैसे निश्चेष्ट होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ १२ ॥ उस समय राजसभामें युधिष्ठिर तथा भीम बैठ थे, उन्होंने दुःखिता द्रौपदीको तथा द्रौपदीके कीचकसे हुए तिरस्कारको देखा और वह उस अन्यायको सहन नहीं करसके अर्थात् उनके मनमें क्रोध उत्पन्न होगया ॥ १३ ॥ उस ही समय उदार मनवाले भीमसेनने कीचकको ठौर मारदेनेका विचार किया वह क्रोधमें भर अपने दाँतों को परस्पर पीसने लगा ॥ १४ ॥ उसके ऊँचे पलकों वाले नेत्रोंमेंसे धुएँ की छायाएँ निकलने लगीं और ललाट तथा उग्र भ्रकुटि पसीनसे भीज गई ॥ १५ ॥ परन्तु वीर तथा शत्रुओंका संहार करनेकी इच्छावाले भीमसेनने अपना अभिप्राय गुप्त रखनेके लिये हाथसे मस्तकका पसीना पूँछडाला तो भी वह फिर क्रोधावेशमें आगया और एकायकी उठनेकी इच्छा करने लगा ॥१६॥ उसही समय युधिष्ठिरने प्रकट होजानेके भय से अपने हाथके अंगूठेसे भीमके पैरके अंगूठेको दबाकर उसको ऐसा करनेसे रोकदिया ॥१७॥ तो भी भीम मदमत्त हाथीकी समान समीपमें के बड़े वृक्षको उखाड़नेकी इच्छासे उस महावृक्षकी ओरको देखनेलगा

ताम् ॥ १९ ॥ सा सभाद्वारमासाद्य रुदती मत्स्यमब्रवीत्। अवेक्षमाणा सुश्रोणी पतीस्तान्दीनचेतसः ॥ २० ॥ आकारमभिरक्षंती प्रतिज्ञाधर्मसंहिता। दह्यमानेव रौद्रेण चक्षुषा द्रुपदात्मजा ॥ २१ ॥ द्रौपद्युवाच। येषां वैरी न स्वपिति षष्ठेऽपि विषये वसन्। तेषां मां मानिनीं भार्या सूतपुत्रः पदावधीत् ॥ २२ ॥ ये दद्युर्न च याचेयुर्ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः। तेषां मां मानिनीं भार्य्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥ २३ ॥ येषां दुन्दुभिनिर्घोषो ज्याघोषः श्रूयतेऽनिशम्। तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत् २४ ये च तेजस्विनो दान्ता बलवन्तोऽतिमानिनः। तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥ २५ ॥ सर्वलोकमिमं हन्युर्धर्मपाशसितास्तु ये। तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥ २६ ॥ शरणं ये प्रपन्नानां भवन्ति शरणार्थिनाम्। चरन्ति लोके प्रच्छन्नाः क्व नु तेऽद्य महारथाः२७

युधिष्ठिरने उसको निषेध करते हुए उसके वास्तविक क्रोधको छिपाने के लिये कहा कि-॥ १८ ॥ अरे ओ वल्लव ! तू क्या लकड़ी काटनेके लिये इस महावृक्षकी ओर को देखरहा हैं ? यदि तुझे काष्ठकी आवश्यकता हो तो तू बाहरसे लकड़ी काट लाना ॥ १९ ॥ युधिष्ठिर इस प्रकार कहरहे थे कि-इतनेमें ही सुन्दर कमरवाली द्रौपदी रोती २ सभा के द्वारके पास आ अपने खिन्न मनवाले पतियोंकी ओरको देखती हुई अपने गुप्त अभिप्रायको छिपाती हुई, प्रतिज्ञाके धर्ममें बँधीहुई और अपने भयङ्कर नेत्रोंसे स्वयं जलीजाती हो इस प्रकार देखती हुई, मत्स्यराजसे इस प्रकार कहनेलगी ॥ २०—२१ ॥ द्रौपदीने कहा कि-जिनका वैरी छठे देशमें भी अर्थात् बहुत दूरभी रहता हो तो भी वे सुखके साथ नहीं सो सकते ऐसे पुरुषोंकी मैं मान्य स्त्री हूं, उसके इस कीचक ने लात मारी है ॥ २२ ॥ जो सत्यवादी तथा ब्राह्मणोंके रक्षक हैं और जो याचक नहीं हैं किन्तु दाता हैं उनकी मैं मानवती स्त्री हूं उसके इस कीचकने लात मारी है ॥ २३ ॥ जिनकी प्रत्यंचाकी ध्वनि दुंदुभिकी समान नित्य गर्जना किया करती है उनकी मैं मानिनी स्त्री हूं, उसके इस सूतपुत्र कीचकने लात मारी है ॥ २४ ॥ जो तेजस्वी भीतर और बाहरकी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, बलवान् और अतिमानी है उनकी मैं मान्य स्त्री हूँ उसको इस सूतपुत्रने लातोंसे ताड़ित किया है २५ जो सकल जगत्का नाश कर सकते हैं और जो नित्य धर्मकी पाशमें बंधेहुए रहते हैं उनकी मैं मान्या स्त्री हूँ; उसके इस सूतपुत्रने लात मारी है ॥ २६ ॥ जो शरणागत और शरणार्थियोंके नित्य एक शरण्य हैं

कथन्ते सूतपुत्रेण वध्यमानां प्रियां सतीम् । मर्षयन्ति यथा क्लीबा बलवन्तोऽमितौजसः ॥ २८ ॥ क्व नु तेषाममर्षश्च वीर्यन्तेजश्च वर्त्तते । न परीप्सन्ति ये भार्यां वध्यमानां दुरात्मना ॥ २९ ॥ मयात्र शक्यं किङ्कर्त्तुं विराटे धर्मदूषके । यः पश्यन्मां मर्षयति वध्यमानामनागसम् ॥ ३० ॥ न राजा राजवत्किञ्चित् । समाचरति कीचके दस्यूनामिव धर्मस्ते नहि संसदि शोभते ॥३१॥ नाहमेतेन युक्तं वै हन्तुं मत्स्य तवान्तिके । सभासदोऽत्र पश्यन्तु कीचकस्य व्यतिक्रमम् ॥ ३२ ॥ कीचको न च धर्मज्ञो न च मत्स्यः कथञ्चन । सभासदोऽप्यधर्मज्ञा य एनं पर्य्युपासते ॥ ३३ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं विधैर्वचोभिः सा तदा कृष्णाश्रुलोचना । उपालभत राजानं मत्स्यानां वरवर्णिनी ॥ ३४ ॥ विराट उवाच । परोक्षं

वे महारथी क्या अभी जगत्में छिपकर फिरते हैं ॥ २७ ॥ अरे रे ! वे महाबलवान् और अपार प्राणबलवाले मेरे पति अपनी प्रियतमाको सूतपुत्रकी लात खाती हुई अपनी दृष्टिसे देखते हैं तब भी वे नपुंसककी समान इस अनर्थको क्यों सहन कर रहे हैं ॥ २८ ॥ हाय हाय उनका क्रोध, वीर्य और तेज कहाँ जाता रहा कि—जो यह दुरात्मा सूतपुत्र उनकी प्रियतमाको माररहा है तब भी वह उसकी रक्षा करनेकी इच्छा नहीं करते ? अधिक तो क्या परन्तु धर्मको दूषित करनेवाला यह विराट राजा खड़ा है, इसलिये मैं क्या करसकती हूँ यह राजा विराट मुझ निरपराधिनी स्त्रीको पिटती हुई देखता है तोभी कीचकको रोकता नहीं है किन्तु शीतल चित्तसे सहन कर रहा है फिर मैं अबला क्या करूँ, ॥ २९—३० ॥ यह राजाकी समान कीचक पर राजधर्म नहीं चलाता है किन्तु बैठा २ देखरहा है । अरे राजा ! तेरा यह लुटेरोंकेसा धर्म राजसभामें शोभा नहीं पाता है किन्तु सभाको कलङ्कित करता है हे मत्स्यराज ! यह सूतपुत्र तुम्हारे सामने राजसभामें मुझे मारे यह योग्य नहीं है हे सभासदो ! तुम इस कीचकके अपराधकी ओर दृष्टि डालो ॥ ३२ ॥ इस कीचकको किसी प्रकारके धर्मका ज्ञान नहीं है, और मत्स्यराजको भी किसी प्रकारके धर्मका ज्ञान नहीं है तैसे ही यह सभासद् भी धर्मको नहीं जानते क्यों कि—ये भी धर्मको न जाननेवाले इस राजाकी सेवा करते हैं ॥ ३३ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार सुन्दर है शरीरका वर्ण जिसका ऐसी द्रौपदीने रोते २ बहुतसी बातें कहकर मत्स्य देशके राजा विराटको बहुत ही ताने दिये ॥ ३४ ॥ इस पर विराटने उत्तर दिया कि—तुम दोनोंके मध्य

नाभिजानामि विग्रहं युवयोरहम् । अर्थतत्त्वमभिज्ञाय किन्तु स्यात् कौशलं मम ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततस्तु सभ्या विज्ञाय कृष्णां भूयाभ्यपूजयन् । साधु साध्विति चाप्याहुः कीचकं च व्यगर्हयन् ॥३६॥ सभ्या ऊचुः । यस्येयं चारुसर्वाङ्गी भार्या स्यादायतेक्षणा । परो लाभस्तु तस्य स्यान्न च शोचेत् कथञ्चन ।३७। नहीदृशी मनुष्येषु सुलभा वरवर्णिनी । नारी सर्वानवद्यांगी देवीं मन्यामहे वयम् ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन उवाच॥ एवं संपूजयन्तस्ते कृष्णां प्रेक्ष्य सभासदः । युधिष्ठिरस्य कोपात्तु ललाटे स्वेद आगमत् ॥३९॥ अथाब्रवीद्राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम् । गच्छ सैरन्ध्रि मात्र स्थाः सुदेष्णाया निवेशनम् ॥ ४० ॥ भर्त्तारमनुरुंधंत्यः क्लिश्यन्ते वीरपत्नयः । शुश्रूषया क्लिश्यमानाः पतिलोकं जयन्त्युत ॥ ४१ ॥ मन्ये न कालं क्रोधस्य पश्यन्ति पतयस्तव । तेन त्वां नाभिधावन्ति गन्धर्वाः सूर्य्यवर्च्चसः ॥ ४२ ॥ अकालज्ञासि सैरन्ध्रि

में जो कलह हुआ है वह मेरी दृष्टिके सामने नहीं हुआ अतः उसके स्वरूपको मैं नहीं जानता हूँ, इसलिये मैं तुम्हारी वातका रहस्य विना समझे झूठे सच्चेका क्या निर्णय कर सकता हूँ, ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–तदनन्तर द्रौपदीकी सव वातें सुन सभासदोंने उनके कलहको जाना और द्रौपदीकी प्रशंसा करके कहनेलगे कि—हे स्त्री ! तूने वहुत ही अच्छा किया और कीचकको धिक्कार देते हुए ॥ ३६ ॥ सभासदोंने कहा कि–यह विशालनेत्रा, सर्वांगसुन्दरी जिस पुरुषकी भार्या होगी उस पुरुषको वड़ा भाग्यशाली समझो उस मनुष्यको कभी शोकातुर नहीं होना चाहिये किंतु उसको वड़ा लाभ होना चाहिये ३७ सुन्दर वर्णवाली और सर्वाङ्गसुन्दरी ऐसी स्त्री मनुष्योंमेंसे मिलना दुर्लभ है हम तो इसको देवी मानते हैं ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय! इस प्रकार सभासद् कृष्णाको देख उसकी प्रशंसा करनेलगे परन्तु उस समय क्रोधके कारण युधिष्ठिरके मस्तक पर पसीना आ गया ॥३९॥ तदनन्तर कुरुपुत्र युधिष्ठिरने अपनी प्रिया पटरानी द्रौपदीसे कहा कि अरी सैरंध्री ! अव तू यहाँ पर खड़ी न हो किन्तु सुदेष्णाके राजभवनमें चली जा ॥४०॥ पतियोंके अनुकूल रहने वाली वीर नारियें पतिकी सेवा करतेमें कष्ट उठाती हैं परन्तु इससे ये पतिव्रतायें पति जिस लोकमें जाता है उस लोकमें जाती है अर्थात् स्वर्ग पाती है ४१ मैं मानता हूं कि–सूर्यकी समान तेजस्वी तेरे पति गंधर्व यह समय क्रोध करनेका नहीं है ऐसा समझ रहे हैं इस लिए वे दौड़के आकर

शैलूषीव विरोदिषि। विघ्नं करोषि मत्स्यानां दीव्यतां राजसंसदि ४३ गच्छ सैरन्ध्रि गंधर्वा करिष्यन्ति तव प्रियम्। व्यपनेष्यन्ति ते दुःखं येन ते विप्रियं कृतम् ॥ ४४ ॥ सैरन्ध्र्युवाच। अतीव तेषां घृणिनामर्थेहं धर्मचारिणी। तस्य तस्यैव ते वध्या येषां ज्येष्ठोक्षदेविता ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन उवाच। इत्युक्त्वा प्राद्रवत् कृष्णा सुदेष्णाया निवेशनम्। केशान्मुक्त्वा च सुश्रोणी संरम्भाल्लोहितेक्षणा ॥ ४६ ॥ शुशुभे वदनं तस्या रुदन्त्याः सुचिरं तदा। मेघलेखाविनिर्मुक्तं दिवीव शशिमण्डलम् ४७ सुदेष्णोवाच। कस्त्वावधीद्वरारोहे कस्माद्रोदिषि शोभने। कस्याद्य न सुखं भद्रे केन ते विप्रियं कृतम् ॥ ४८ ॥ द्रौपद्युवाच। कीचको मावधीत्तत्र सुराहारीं गतान्तव। सभायां पश्यतो राज्ञो यथैव विजने वने ४९ सुदेष्णोवाच ॥ घातयामि सुकेशान्ते कीचकं यदि मन्यसे। योसौ त्वां

तेरी सहायता नहीं करते हैं॥४२॥ हे सैरंध्री! तू अवसरको नहीं जानती है इसी लिए नटनीकी समान निर्ल्लज्ज बन कर रोरही है और राजसभामें द्यूत खेलते हुए मत्स्यराजके खेलनेमें विघ्न डालती है ॥ ४३ ॥ हे सैरंध्री! अब तू अपने स्थान पर चली जा गंधर्व तेरा प्रिय कार्य करेंगे और जिसने तुझे दुःख दिया होगा उसको नष्ट कर देंगे ॥ ४४ ॥ द्रौपदीने कहा कि–जिन गन्धर्वोंकी मैं पत्नी हूँ वे गंधर्व बड़े दयालु हैं, गंधर्वोंमें बड़ा गंधर्व पासे खेलनेमें बड़ा चतुर है और वे गन्धर्व मेरे शत्रुका नाश करेंगे ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय! युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहकर क्रोधसे लाल २ नेत्रवाली और सुन्दर कमरवाली द्रौपदी अपने केशोंको खुले हुए रख कर ही रोती रोती सुदेष्णाके राजमहलमें दौड़ कर गई ॥ ४६ ॥ उस समय बहुत काल तक रोनेके कारण द्रौपदीका मुख बादलोंसे रहित हुआ चन्द्रमा जैसे आकाशमें शोभा पाता है तैसे शोभित होरहा था ॥ ४७ ॥ उसको देखकर सुदेष्णाने कहा कि–हे सुन्दर अवयवों वाली वरानने! तुझे किसने मारा है तू किस लिए रोरही है हे कल्याणी! आज किसका सुख नष्ट हुआ है? और किसने तेरा अप्रिय किया है! ॥ ४८ ॥ द्रौपदीने कहा कि मैं आज कीचकके यहाँ तुम्हारे लिए मदिरा लेने गई थी तहाँ कीचक मुझसे चाहे सो कहने लगा तहाँसे भाग कर राजसभाकी ओर गई वह मेरे पीछे पड़गया और जैसे कोई किसीको निर्जन वनमें मारता हो तैसे उसने मुझे राजाके देखते हुए सभामें मारा है! ॥ ४९ ॥ सुदेष्णा बोली कि–हे सुन्दर केशोंवाली! जो कामांध कीचक तुझ दुर्लभ नारीका अप-

कामसम्मत्तो दुर्लभामवमन्यते ॥ ५० ॥ सैरन्ध्र्युवाच ॥ अन्ये चैनं वधिष्यन्ति येषामागः करोति सः। मन्ये चैवाद्य सुव्यक्तं यमलोकं गमिष्यति ॥ ५१ ॥ छ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीपरिभवे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच॥ सा हता सूतपुत्रेण राजपत्नी यशस्विनी। वधं कृष्णा परीप्सन्ती सेनावाहस्य भामिनी ॥ १ ॥ जगामावासमेवाथ सा तदा द्रुपदात्मजा। कृत्वा शौचं यथान्यायं कृष्णा सा तनुमध्यमा ॥ २ ॥ गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा। चिन्तयामास रुदती तस्य दुःखस्य निर्णयम् ॥ ३॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं कार्यं भवेन्मम। इत्येवं चिंतयित्वा सा भीमं वै मनसागमत् ॥ ४ ॥ नान्यः कर्त्ता ऋते भीमान्ममाद्य मनसः प्रियम्। तत उत्थाय रात्रौ सा विहाय शयनं स्वकम् ॥ ५॥ प्राद्रवन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती। भवनं भीमसेनस्य क्षिप्रमायतलोचना ॥ ६ ॥ दुःखेन महता युक्ता मानसेन मन-

मान किया करता है उसे यदि तेरी इच्छा होगी तो प्राणदण्ड दिलवाऊँगी ॥ ५० ॥ यह सुन कर सैरंध्रीने कहा कि—तुम्हे उसे मरवाना नहीं पड़ेगा परन्तु उसने जिनका अपराध किया है वे लोग ही उसे मारेंगे मेरा विचार है कि—वह गंधर्वोंकी मारसे आज ही प्राणोंको त्याग यमलोकको जायगा ॥ ५१ ॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार सूतपुत्र कीचक ने जब द्रौपदीके लातमारी तब श्यामवर्णा यशस्विनी राजकुमारी द्रौपदी उसको नष्ट करनेका विचार करने लगी ॥ १ ॥ सभामेंसे अपने रहनेके घरमें जानेके अनन्तर पतली कमरवाली द्रौपदीने स्नान कर अपने ओढ़ने तथा पहिरनेका वस्त्र धोडाला और नियमानुसार शुद्ध हो रोते २ अपने दुःखका विचार करने लगी ॥ २–३ ॥ कि—मैं अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ! मेरा कार्य अब किस प्रकार सिद्ध होगा ? ऐसा मनमें विचार करके उसने अपनी रक्षा रूपी कार्यका सम्पूर्ण भार भीमसेनके ऊपर रक्खा ॥ ४ ॥ उसने विचार किया कि—भीमसेन के सिवाय दूसरा कोई मेरे मनको रुचता काम नहीं कर सकेगा इस लिये उनके पास जाकर अपने मनकी बात कहूँ ऐसा मनमें विचार कर रात्रिके समय अपनी शय्या परसे उठ कर खड़ी होगई ॥ ५ ॥ विशालनेत्रा, पतिवाली सती द्रौपदी पतिसे मिलनेकी इच्छासे भीमसेन

स्विनी। सैरन्ध्र्युवाच। तस्मिन् जीवति पापिष्ठे सेनावाहे मम द्विषि ७ तत्कर्म कृतवानद्य कथं निद्रां निषेवसे। वैशम्पायन उवाच। एवमुक्त्वाथ तां शालां प्रविवेश मनस्विनी ॥ ८ ॥ यस्यां भीमस्तथा शेते मृगराडिव निःश्वसन्। तस्या रूपेण तां शालां भीमस्य च महात्मनः॥९॥ सम्मूर्च्छितेन कौरव्य प्रजज्वाल च तेजसा। सा वै महानसं प्राप्य भीमसेनं शुचिस्मिता ॥ १० ॥ सर्वश्वेतेव माहेयी वने जाता त्रिहायणी। उपातिष्ठत पांचाली वाशितेव नरर्षभम् ॥ ११ ॥ सा लतेव महाशालं फुल्लं गोमतितीरजम्। परिष्वजत पांचाली मध्यमं पाण्डुनन्दनम् ॥ १२ ॥ बाहुभ्यां परिरभ्यैनं प्राबोधयदनिन्दिता। सिंहं सुप्तं वने दुर्गे मृगराजवधूरिव१३ भीमसेनमुपाश्लिष्य हस्तिनीव महागजम्। वीणेव मधुरालापा गांधारं साधु मूर्छती। अभ्यभाषत पांचाली भीमसेनमनिन्दिता ॥ १४ ॥ उत्ति-

---

की पाकशालाकी ओर शीघ्रतासे गई ॥ ६ ॥ और मानसिक महादुःखसे भरी हुई मनस्विनी द्रौपदी भीमके घरमें प्रवेश करती हुई बोली, कि-मुझे लातोंसे मारनेवाला मेरा शत्रु वह पापी सेनापति अभी जीवित है तो भी तुम निद्रा कैसे लेरहे हो ॥ ७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! इसप्रकार कहती २ मनस्विनी द्रौपदी जैसे वनमें सोता हुआ सिंह घुर्राटे लेता है तैसे निद्रावश हुआ भीम जिस घरमें निद्राके वश में हो घुर्राटे ले रहा था उस घरमें पहुन्च गई, हे कुरुवंशी राजन् ! उस समय महात्मा भीमसेनके तेजसे तथा द्रौपदीके रूपसे भीमका घर अत्यन्त समृद्धिमान् हुआसा दिपनेलगा, पवित्र हास्यवती द्रौपदी रसोई घरमें पहुंचगई उस समय वह मानो वनमें उत्पन्न हुई तीन वर्षकी गौरवर्णवाली गौ रजोदर्शन होनेसे कामातुर होकर जैसे श्रेष्ठ बैलके पास जाती है अथवा जलमें उत्पन्न हुई बगली रजोदर्शन होनेपर कामातुर हो जैसे अपने पतिके पास जाती है तैसे ही सर्वांगसुन्दरी पांचाली भी अपने पति भीमके पास जाकर खडी होई ॥ ८-११ ॥ और जैसे लता गोमती नदीके तीर पर उत्पन्न हुए बडे भारी प्रफुल्लित हुए शालके वृक्षको लिपट जाती है उसी प्रकार पांचालीने भी पांडुके दूसरे पुत्र भीमसेनको आलिङ्गन किया ॥ १२ ॥ और दुर्गम वनमें सिंहनी जैसे अपने स्वामी सिंहको जगाती है तैसे ही पवित्र आचार वाली द्रौपदी आलिङ्गन करनेके पीछे अपने पति भीमसेनको जगाने लगी ॥ १३ ॥ हथिनी जैसे महाहस्तीका आलिङ्गन करती है तैसे ही उसने भीमका आलिङ्गन किया और गांधार स्वरको अलापती वीणा जैसे मधुरालाप

छोत्तिष्ठ किं शेषे भीमसेन यथा मृतः । नामृतस्य हि पापीयान् भार्यामालभ्य जीवति ॥ १५ ॥ सा सम्प्रहाय शयनं राजपुत्र्या प्रबोधितः । उपातिष्ठत मेघाभः पर्यंके सोपसंग्रहे ॥ १६ ॥ अथाब्रवीद्राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम् । केनास्यर्थेन संप्राप्ता त्वरितेव ममांतिकम् ॥१७॥ न ते प्रकृतिमान् वर्णः कृशा पाण्डुश्च लक्ष्यसे । आचक्ष्व परिशेषेण सर्वं विद्यामहे यथा ॥ १८ ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं द्वेष्यं वा यदि वाऽप्रियम् । यथावत् सर्वमाचक्ष्व श्रुत्वा ज्ञास्यामि यत् क्षमम् ॥ १९ ॥ अहमेव हि ते कृष्णे विश्वास्यः सर्वकर्मसु । अहमापत्सु चापि त्वां मोक्षयामि पुनः पुनः ॥ २० ॥ शीघ्रमुक्त्वा यथाकामं यत्ते कार्यं विविक्षितम् । गच्छ वै शयनायैव पुरा नान्येन बुध्यते ॥ २१ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीभीमसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

द्रौपद्युवाच । अशोच्यत्वं कुतस्तस्या यस्या भर्त्ता युधिष्ठिरः । जानन् सर्वाणि दुःखानि किं मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १ ॥ यन्मां दासीप्रवादेन

करती है तैसे पवित्र चरित्रवाली द्रौपदी भी मधुरआलाप करके भीमसेनसे कहने लगी ॥ १४ ॥ कि–हे भीमसेन ! उठो, उठो मरेहुए मनुष्य की समान क्यों सोरहे हो ? कोई भी पापी पुरुष जीतेहुए पुरुषकी स्त्री को आलिङ्गन करनेके अनन्तर जीता नहीं रहता है ॥ १५ ॥ राजकुमारी के ऐसे वचनोंको सुन मेघकी समान श्यामवर्ण वाला भीम जगकर गद्दोंवाले पलँग पर बैठा होगया ॥१६॥ और उस कुरुपुत्रने अपनी प्रिया पटरानी राजकन्या द्रौपदीसे कहा कि–अरी प्रिया ! तू घबडाई हुई मेरे पास किस कामके लिये आई है ॥ १७ ॥ तेरे शरीरका रङ्ग बदल गया है और शरीर दुर्बल तथा फीका पडगया है मैं तेरी सब बातोंको जिस प्रकार जानसकूं उसी प्रकार जो कुछ हुआ हो वह सब मुझे सुना १८ तुझ पर सुख अथवा दुःख और बुरा या भला जो कुछ बीताहो वह सब मेरे सामने कह कि–उसको सुनकर मैं उसके लिये उचित उपाय करूँ ॥ १९ ॥ हे कृष्णे ! मैं ही सब कार्योंमें तेरा परम विश्वासपात्र हूँ, और मैं ही तुझको बारम्बार अनेक आपत्तियोंसे छुटाता हूँ ॥ २० ॥ इस लिये तेरी जिस कामके करनेकी इच्छा हो वह सब काम इच्छानुसार शीघ्रही मेरे सामने कहदे और दूसरा कोई जानने न पावे उससे पहिले ही अपने स्थान पर सोनेको चली जा ॥ २१ ॥ सत्रहवां अध्याय समाप्त

द्रौपदीने कहा कि–हे भीमसेन! जिस स्त्रीका युधिष्ठिर भर्ता हो उस

प्रातिकामी तदानयत् । सभापरिषदो मध्ये तन्मां दहति भारत ॥ २ ॥ पार्थिवस्य सुता नाम कानुजीवति मादृशी । अनुभूयेदृशं दुःखमन्यत्र द्रौपदीं प्रभो ३ वनवासगतायाश्च सैन्धवेन दुरात्मना । परामर्शो द्वितीयो वै सोढुमुत्सहते तु का ॥४॥ मत्स्यराज्ञः समक्षन्तु तस्य धूर्त्तस्य पश्यतः । कीचकेन परामृष्टा कानुजीवति मादृशी ५ एवं बहुविधैः क्लेशैः क्लिश्यामानां च भारत । न मां जानासि कौन्तेय किं फलं जीवितेन मे ६ योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम भारत । सेनानीः पुरुषव्याघ्र श्यालः परमदुर्मतिः ॥७॥ स मां सैरन्ध्रिवेषेण वसन्तीं राजवेश्मनि । नित्यमेवाह दुष्टात्मा भार्या मम भवेति वै ८ तेनोपमन्त्रमाणाया वधार्हेण सपत्नहन् । कालेनेव फलं पक्वं हृदयं मे विदीर्यते ॥ ९ ॥ भ्रातरञ्च विगर्हस्व ज्येष्ठं दुर्द्यूतदेविनम् । यस्यास्मि कर्मणा प्राप्ता दुःखमेतदनन्तकम् ॥ १० ॥

स्त्रीको सुख कहाँसे होसकता है तुम सब दुःखोंको जानते हो तब भी मुझसे किसलिये बूझते हो ॥१॥ हे भारत ! दुर्योधनकी सभामें प्रातिकामी मुझे दासीके नामसे पुकारकर सभासदोंके बीचमें ले आया था उस समयका दुःख मेरे हृदयको जलाकर भस्म किये डालता है ॥ २ ॥ हे स्वामिन् ! नाथ ! मेरी समान दुःखोंको सहकर मुझ द्रौपदीके सिवाय कोई दूसरी राजकुमारी क्या जीती रह सकती है ॥३॥ और वनमें रहते समय दुरात्मा सिन्धुराजने मेरा हरण करके जो तिरस्कार किया था उसको कौनसी स्त्री सहन कर सकती है ॥४॥ और यहाँभी धूर्त राजा विराटके देखते हुएही कीचकने मुझे लातोंसे मारकर मेरा अपमान किया है अतः मेरीसी दूसरी कौन स्त्री जीती रह सकती है ५ हे भारत ! इस प्रकार मैं अनेकों प्रकारके दुःखोंसे पीडा पातीहूँ, तबभी तुम मेरी सुधि नहीं लेते हो अतः हे कौन्तेय ! अब मेरे जीनेसे क्या प्रयोजन है ॥ ६ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! कीचक नामका एक पुरुष है वह राजा विराटका साला तथा सेनापति है और वह बडा दुष्टबुद्धि है ॥ ७ ॥ मैं राजा विराटके यहाँ सैरंध्रीका वेश धारण करके सदा कार्य करती हूँ वह दुष्टात्मा पुरुष तहाँ आकर निरन्तर मुझसे विनती करता है कि— तू मेरी स्त्री बनजा ॥ ८ ॥ हे शत्रुओंका नाश करनेवाले प्राणपते ! वह नाशकरनेके योग्य पुरुष प्रतिदिन अपनी स्त्री होनेके लिये मेरी विनती करा करता है इस कारण समय पाकर पका हुआ फल जैसे फटजाता है इसी प्रकार बहुतसे दुःखोंसे पका हुआ मेरा हृदय फटा जाता है इस कारण कपटका द्यूत खेलने वाले अपने भाईको तुम उलाहना दो

को हि राज्यं परित्यज्य सर्वस्वं चात्मना सह । प्रव्रज्यायैव दीव्येत विना दुर्द्यूतदेविनम् ॥ ११ ॥ यदि निष्कसहस्रेण यच्चान्यत्सारवद्धनम् । सायं प्रातरदेविष्यदपि सम्वत्सरान् बहून् ॥ १२ ॥ रुक्मं हिरण्यं वासांसि यानं युग्यमजाविकम् । अश्वाश्वतरसंघाश्च न जातु क्षयमावहेत् ॥ १३ ॥ सोऽयं द्यूतप्रवादेन श्रियः प्रत्यवरोपितः । तूष्णीमास्ते तथा मूढः स्वानि कर्माणि चिन्तयन् ॥ १४ ॥ दशनागसहस्राणि हयानां हेममालिनाम् । यं यान्तमनुयान्तीह सोऽयं द्यूतेन जीवति ॥ १५ ॥ रथाः शतसहस्राणि नृपाणाममितौजसाम् । उपासन्त महाराजमिन्द्रप्रस्थे युधिष्ठिरम् ॥ १६ ॥ शतं दासीसहस्राणां यस्य नित्यं महानसे । पात्रीहस्ता दिवारात्रमतिथीन् भोजयन्त्युत ॥ १७ ॥ एष निष्कसहस्राणि प्रदाय ददतां वरः । द्यूतजेन ह्यनर्थेन महता समुपाश्रितः १८ एनं हि स्वरसम्पन्ना बहवः सूतमागधाः । सायं प्रातरुपातिष्ठन् सुमृष्ट-

---

क्योंकि—उनकी करतूतसे ही मैं इस अनन्त दुःखको भोग रही हूँ १० दूषित जुएको खेलने वाले राजा युधिष्ठिरके सिवाय दूसरा कौन राजा अपने राज्यको तथा अपने शरीर सहित सर्वस्वको त्याग वनमें वसने के लिए जुआ खेलनेकी होड़ करेगा ॥ ११ ॥ जो तुम्हारे भाई प्रातः और सायंकाल भी एक हजार सोनेकी मोहरोंसे खेलते तब भी उनके पाससे सोना, चांदी, वस्त्र, हाथी, घोड़ा इत्यादिक यान, रथ आदि वाहन ढोर डंगर बकरा, भेड़ घोड़े खच्चरी आदिक इतना अधिक धन था कि—वह बहुत वर्षों तक खेलते तब भी समाप्त नहीं होता १२ परन्तु राजा युधिष्ठिर जुआ खेलकर लक्ष्मीहीन हो बैठे और अब मूर्खकी समान अपने कार्य्य पर पश्चात्ताप करतेहुए चुप बैठे हैं ॥ १४ ॥ सुवर्ण की जञ्जीरोंवाले दश हजार हाथी तथा घोडे जिन राजा युधिष्ठिरकी सवारीमें आगे पीछे चलते थे वह ही यह राजा युधिष्ठिर आज जुएसे अपनी रोटियाँ चलाते हैं ॥ १५ ॥ और इन्द्रप्रस्थमें लाखों रथ तथा लाखों महाबली राजे जिन राजा युधिष्ठिरकी सेवा करते थे ॥ १६ ॥ जिनके भोजन गृहमें एक लाख दासी हाथोंमें सुवर्ण की थालियें ले रात दिन अतिथियों को भोजन कराती थीं ॥ १७ ॥ और जो महा दाता राजा युधिष्ठिर पहिले सदा एक हजार मुहरों का दान करते थे, वह युधिष्ठिर अब जुए से कमाये हुए महा अनर्थकारी धन से अपनी आजीविका चलाते हैं ॥ १८ ॥ पहिले कानों में चमकते हुए कुण्डलों को धारण करने वाले मधुर कण्ठ वाले सूत मागध-

मणिकुण्डलाः ॥ १९ ॥ सहस्रमृषयो यस्य नित्यमासन् सभासदः। तपः श्रुतोपसम्पन्नाः सर्वकामैरुपस्थिताः ॥ २० ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातका गृहमेधिनः। त्रिंशद्दासीक एकैको यान् विभर्ति युधिष्ठिरः २१ अप्रतिग्राहिणाञ्चैव यतीनामूर्ध्वरेतसाम्। दश चापि सहस्राणि सोऽयमास्ते नरेश्वरः ॥ २२ ॥ आनृशंस्यमनक्रोशं सम्विभागस्तथैव च। यस्मिन्नेतानि सर्वाणि सोऽयमास्ते नरेश्वरः ॥ २३ ॥ अन्धान् वृद्धांस्तथाऽनाथान् बालान् राष्ट्रेषु दुर्गतान् विभर्त्ति विविधान् राजा धृतिमान् सत्यविक्रमः। सम्विभागमना नित्यमानृशंस्याद्युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥ स एष निरयं प्राप्तो मत्स्यस्य परिचारकः। सभायां देविता राज्ञः कंको ब्रूते युधिष्ठिरः ॥ २५ ॥ इन्द्रप्रस्थे निवसतः समये यस्य पार्थिवः। आसन् बलिभृतः सर्वे सोऽद्यान्यैर्भृतिमिच्छति ॥ २६ ॥ पार्थिवाः पृथिवीपाला यस्यासन्वशवर्त्तिनः। स वशे विवशो राजा परेषामद्य वर्त्तते२७

गण प्रातः और सायंकाल को जिनके गुणगान करते थे ॥ १९ ॥ तथा तपस्वी वेदपाठी और जिनकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी होगई हैं ऐसे हजारों ऋषि नित्य जिनकी सभाके सभासद् रहते थे ॥२०॥ और अट्ठासी हजार स्नातक गृहस्थ कि-जिनमेंके एक२ की सेवामें तीस२ दासियें लगी रहती थीं ऐसे स्नातक ब्राह्मणोंका जो राजा पालन करते थे ॥ २१ ॥ और जो दान न लेने वाले दश हजार ऊर्ध्वरेता यतियोंका भी पोषण करते थे वह ही यह युधिष्ठिर आज छिपेहुए वेश से रहते हैं ॥२२॥ कामलता, दया तथा किसी वस्तुके विभाग कर देने पर जो शेष रहे उसको ही ग्रहण करना, जिनमें यह सब गुण रहते हैं वह ही यह राजा युधिष्ठिर आज गुप्त वेशसे रह रहे हैं ॥२३॥ और जो धैर्य सम्पन्न, सत्यपराक्रमी तथा हरएक वस्तुका विभाग कर देनेपर उसको उपयोगमें लानेवाले राजा युधिष्ठिर, दयालुतासे अपने देशमें रहनेवाले अन्धे, लूले अनाथ बालक तथा दुःखी आदि बहुतसे मनुष्योंका पोषण करते थे वह राजा युधिष्ठिर आज छिपेहुए रहते हैं२४ और वह आज राजा विराटके नौकर हो राजसभामें कहते हैं कि-मैं कंक नामधारी राजा युधिष्ठिरके साथ जुआ खेलने वाला ब्राह्मण हूँ२५ इन्द्रप्रस्थमें रहते समय सब राजा नियमानुसार जिन राजा युधिष्ठिर को भेटें देते थे वह आज दूसरों से अपनी आजीविका का निर्वाह करना चाहते हैं ॥ २६॥ जिन राजा के आधीन बड़े२ भूपाल रहते थे वह राजा आज परतन्त्र होकर दूसरों के अधीन पड़े हैं ॥ २७ ॥ जो

प्रताप्य पृथिवीं सर्वां रश्मिवानिव तेजसा । सोऽयं राज्ञो विराटस्य सभास्तारो युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥ यमुपासन्त राजानः सभायामृषिभिः-सह । तमुपासीनमद्यान्यं पश्य पाण्डव पाण्डवम् ॥ २९ ॥ सदस्य समुपासीनं परस्य प्रियवादिनम् । दृष्ट्वा युधिष्ठिरं कोपो वर्द्धते मामसंशयम् ॥ ३० ॥ अतदर्हं महाप्राज्ञं जीवितार्थेऽभिसंस्थितम् । दृष्ट्वा कस्य न दुःखं स्याद्धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ३१ ॥ उपास्ते स्म सभायां यं कृत्स्ना वीरवसुन्धरा । तमुपासीनमप्यन्यं पश्य भारत भारतम् ॥ ३२ ॥ एवं वहुविधैर्दुःखैः पीड्यमानामनाथवत् । शोकसागरमध्यस्थां किं मां भीम न पश्यसि ॥ ३३ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीभीमसम्वादे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

द्रौपद्युवाच । इदन्तु मे महद्दुःखं यत् प्रवक्ष्यामि भारत । न मेऽभ्यसूया कर्तव्या दुःखादेतद् ब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥ सूदकर्मणि हीने त्वमसमे

सूर्यकी समान अपने तेजसे पृथिवी को तपाते थे वह आज राजा विराट की सभाके एक सभासद् वने हुए हैं ॥ २८ ॥ हे भीम ! राजसभामें जिन राजा युधिष्ठिर की ऋषि और राजे सेवा करते थे वह ही आज कुछ से कुछ होगये हैं यह तुम देखलो ॥ २९ ॥ मैं युधिष्ठिर को सभामें सभासद् बन कर बैठ हुए और दूसरोंके चित्त को प्रिय लगनेवाली बातें करते हुए जब देखती हूँ तब मुझे निश्चय ही क्रोध चढ आता है ॥ ३० ॥ महाबुद्धिशाली धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर अपनी आजीविकाके लिये दूसरेके यहाँ रहते हैं कि-जो उनकी प्रतिष्ठाके अनुकूल नहीं है यह देखकर किसको दुःख न होगा ॥ ३१ ॥ हे वीर भारत ! सभामें सम्पूर्ण पृथिवीके राजे जिनकी सेवा करते थे वह भरतवंशी राजा युधिष्ठिर इस सभामें बैठ हैं परन्तु मानो यह वह नहीं हैं ऐसा प्रतीत होता है तुम उनकी ओरको देखो ॥ ३२ ॥ ऐसे२ अनेकों दुःखोंसे मैं अनाथ की समान वहुत ही दुःखित होती हूँ और शोकसमुद्रमें डूबीहुई हूँ हे भीमसेन ! तुम सुध क्यों नहीं लेते ॥ ३३ ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

द्रौपदीने कहा कि-हे भरतवंशी राजन् ! मैं जो कुछ आपसे कहना चाहती हूँ, उसको सुनकर आपके चित्तमें बडा दुःख होगा परन्तु दुःखकी मारी हुई मैं वह सब आपसे कहती हूँ; उससे आप मेरे ऊपर क्रोधित न होना ॥ १ ॥ हे भरतवंश श्रेष्ठ राजन् ! आपने जो रसोइये

विराटस्य बल्लवं त्वां विदुर्जनाः। प्रेष्यत्वं समनुप्राप्तं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३॥ यदा महानसे सिद्धे विराटमुपतिष्ठसि। ब्रुवाणो बल्लवः सूदस्तदा सीदति मे मनः ॥ ४ ॥ यदा प्रहृष्टः सम्राट् त्वां संयोधयति कुञ्जरैः। हसन्त्यन्तः पुरे नार्यो मम तूद्विजते मनः ॥५॥ शार्दूलैर्महिषैः सिंहैरागारे योध्यसे यदा। कैकेय्याः प्रेक्षमाणायास्तदा मे कश्मलं भवेत् ॥ ६ ॥ तत उत्थाय कैकेयी सर्वास्ताः प्रत्यभाषत। प्रेष्याः समुत्थिताश्चापि कैकेयीन्ताः स्त्रियोऽब्रुवन् ॥ ७ ॥ प्रेक्ष्य मामनवद्याङ्गीं कश्मलोपहतामिव। स्नेहात् संवासजाद्धर्मात् सूदमेषा शुचिस्मिता ८ योध्यमानं महावीर्यमिमं समनुशोचति। कल्याणरूपा सैरन्ध्री बल्लवश्चापि सुन्दरः ॥ ९ ॥ स्त्रीणां चित्तं च दुर्ज्ञेयं युक्तरूपौ च मे मतौ। सैरन्ध्री प्रियसंवासान्नित्यं करुणवादिनी ॥१०॥ अस्मिन् राजकुले चेमौ

का अधीश्वर और इनका कार्य करना स्वीकार किया है और तुम अपने को बल्लव नामका रसोइया बतलाते हो, यह बात किसके शोककी न बढ़ावेगी ? ॥ २ ॥ लोग आपको राजा विराटका बल्लव नामका रसोइया जानते हैं और आपको राजाका दासपना मिला है भला इससे अधिक मुझे क्या दुःख होगा ? ॥ ३ ॥ जब भोजन गृहमें सब प्रकारके भोजन बन जाते हैं, तब आप राजा विराटके पास जाकर कहते हैं कि-मैं बल्लव नामका रसोइया आपको भोजन करनेको बुलाने आया हूं, यह सुन कर मैं मनही मनमें जल कर भस्म होती हूँ ॥ ४ ॥ और राजा जब आनन्दमें होता है तब आपको अन्तःपुरकी सब रानियों के सामने तुम्हारा हाथियोंके साथ युद्ध कराता है और उस समय अन्तःपुरकी सब स्त्रियें तो हँसती हैं परन्तु मेरा मन तो व्याकुल ही होता है ॥ ५ ॥ जब आप सिंह बाघ और भैंसोंके साथ लड़ते हैं और सुदेष्णा बैठी २ देखती हैं तब भी मेरे मनमें खेद होता है ॥ ६ ॥ उस समय सर्वांग सुन्दरी मुझको उदास देख कर सुदेष्णा अपनी संपूर्ण दासियोंसे और दासियें अपनी रानी सुदेष्णासे कहती हैं कि-यह पवित्र हास्यवाली स्त्री स्नेहके कारण तथा सहवासके परिचयके कारण जब महापराक्रमी बल्लवको युद्ध करता हुआ देखती है तब शोक करती है, सैरंध्री स्वयं रूपवती है और बल्लभ भी रूपवान् है, जोड़ी तो ठीक है ॥७-९॥ स्त्रियोंके चित्तकी बात सहजमें नहीं पहिचानी जाती वास्तवमें यह दोनों एकसे रूप वाले हैं यह मेरा विचार है और यह सैरंध्री तथा बल्लभ सदा उस राजा युधिष्ठिरके साथ रहते थे उस.

तुल्यकालनिवासिनौ। इति ब्रुवाणा वाक्यानि सा मां नित्यमतर्जयत् ११ क्रुध्यन्तीं माञ्च सम्प्रेक्ष्य समशङ्कत मां त्वयि। तस्यां तथा ब्रुवन्त्यां तु दुःखं मां महदाविशत् ॥ १२ ॥ त्वय्येवं निरयप्राप्ते भीमे भीमपराक्रमे। शोके यौधिष्ठिरे मग्ना नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ १३ ॥ यः स देवान्मनुष्यांश्च सर्वांश्चैकरथोऽजयत्। सोऽयं राज्ञो विराटस्य कन्यानां नर्तको युवा ॥ १४ ॥ योऽतर्पयदमेयात्मा खाण्डवे जातवेदसम्। सोऽन्तःपुरगतः पार्थः कूपेऽग्निरिव संवृतः ॥ १५ ॥ यस्माद्भयममित्राणां सदैव पुरुषर्षभात्। स लोकपरिभूतेन वेषेणास्ते धनञ्जयः १६ यस्य ज्याक्षेपकठिनौ बाहू परिघसन्निभौ। स शंखपरिपूर्णाभ्यां शोचन्नास्ते धनञ्जयः ॥१७॥ यस्य ज्यातलनिर्घोषात् समकम्पन्त शत्रवः। स्त्रियो गीतस्वनं तस्य मुदिताः पर्युपासते ॥१८॥ किरीटं सूर्यसङ्काशं

स्नेहके कारण और इस राजमहलमें भी यह दोनों एक समयसे ही साथ २ रहते हैं, उस स्नेहके कारण वल्लव जब २ हाथी आदिके साथ युद्ध करता है, तब २ सैरंध्री करुणायुक्त बातें कहती है: ऐसे २ वाक्यों को कहकर नित्यप्रति सुदेष्णा मेरा अपमान किया करती है १०-११ और जब मुझे कोप करते देखती है तब आप पर मेरा शुभ प्रेम है ऐसा संदेह करती है और ऐसी ही बातें कहती हैं जिनको सुनकर मेरे मन में बहुत ही दुःख होता है ॥ १२ ॥ भयंकर-पराक्रमी भीम ! तुम जब इस प्रकार परवश होकर बैठे हो तब राजा युधिष्ठिरके शोकसागरमें डूबी हुई मैं जीना नहीं चाहती ॥१३॥ और जिस तरुण अर्जुनने अकेले ही रथमें बैठ कर दूसरे किसीकी सहायताके बिना संपूर्ण देवता और मनुष्योंको पराजित किया था वह ही यह तरुण अर्जुन आज राजा विराटकी कन्याओंको नाचना गाना सिखाता है ॥ हे पृथापुत्र ! जिस महाबलशाली अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त किया था आज वही अर्जुन कूपमें गिरी हुई अग्निकी समान राजा विराटके भवनमें रहता है ॥१५॥ और जिस महापुरुषसे सदा शत्रुओंको बड़ा भारी भय रहता था वह अर्जुन अब लोकमें तिरस्कार पाने वाले नपुंसकका वेश धारण करके अन्तःपुरमें रहता है ॥ १६ ॥ जिसकी परिघकी समान विशाल भुजाएँ धनुषकी प्रत्यञ्चा खैंचनेसे कड़ी होगई हैं वह अर्जुन आज दोनों हाथोंमें हाथी दांतकी चूड़ियाँ पहरकर बैठा २ शोक किया करता है ॥ १७ ॥ जिस अर्जुनके धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टंकार सुन कर शत्रु भी काँप जाते थे उस अर्जुनके मधुर गीतोंको अब स्त्रियें आनन्दसे

यस्य मूर्द्धन्यशोभन्त । वेणीविकृतकेशान्तः सोऽयमद्य धनञ्जयः ॥ १९ ॥ तं वेणीकृतकेशान्तं भीमधन्वानमर्जुनम् । कन्यापरिवृतं दृष्ट्वा भीम सीदति मे मनः ॥ २० ॥ यस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि समस्तानि महात्मनि । आधारः सर्वविद्यानां स धारयति कुण्डले ॥२१॥ स्प्रष्टुं राजसहस्राणि तेजसोऽप्रतिमानि वै । समरे नाभ्यवर्त्तन्त वेलामिव महार्णवः ॥ २२ ॥ सोऽयं राज्ञो विराटस्य कन्यानां नर्त्तको युवा । आसते वै प्रतिच्छन्नः कन्यानां परिचारकः ॥ २३ ॥ यस्य स्म रथघोषेण समकम्पत मेदिनी । सपर्वतवना भीम सहस्थावरजङ्गमा ॥ २४॥ यस्मिन् जाते महाभागे कुन्त्याः शोको व्यनश्यत । स शोचयति मामद्य भीमसेन तवानुजः ॥२५॥ भूषितं तमलङ्कारैः कुण्डलैः परिहाटकैः । कम्बुपाणिनमायान्तं दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥ २६ ॥ यस्य नास्ति समो वीर्ये कश्चिदुर्व्यां धनुर्द्धरः । सोऽद्य कन्यापरिवृतो गायन्नास्ते धनञ्जयः ॥ २७ ॥ धर्मे शौर्ये च सत्ये च जीवलोकस्य सम्मतम् । स्त्रीवे-

---

सुनती हूँ ॥ १८ ॥ अरे रे ! जिस अर्जुनके मस्तक पर सूर्यकी समान चमकता हुआ मुकुट दीखता था उस ही अर्जुनका मस्तक अब गूँथी हुई चोटीसे विरूप होगया है और भयंकर धनुषधारी यह अर्जुन अब माथे पर चोटी गूँथ कर कन्याओंसे घिरा हुआ जब बैठता है तो इस को देख कर हे भीम ! मेरा चित्त खिन्न होता है ॥ १९-२० ॥ जिस महात्माके पास सम्पूर्ण दिव्यअस्त्र हैं और जिसमें सब विद्याएँ रहती हैं वह अर्जुन अब कानोंमें कुण्डल पहिर कर बैठा है ॥ २१ ॥ और समुद्र जैसे अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता है तैसे ही युद्धमें हजारों महातेजस्वी राजा भी जिसको नहीं रोक सकते थे अब वह अर्जुन नपुंसकके वेषमें छिपकर राजा विराटकी कन्याओंको नाचना सिखाता है और उसका दास बन कर रहता है ॥ २२-२३ ॥ हे भीम ! जिसके रथकी घरघराहटसे पर्वत और वनों सहित स्थावर जंगम सब पृथ्वी कांपती थी ॥ २४ ॥ और जिस महाभाग्यशालीके जन्मसे कुन्तीके मनमें अथाह आनन्द हुआ था हे भीम ! वह ही तुम्हारा छोटा भाई अर्जुन आज मुझे शोकातुर करता है ॥ २५ ॥ यह अर्जुन जब कानोंमें सुवर्णके कुण्डल तथा शरीर पर आभूषणोंको पहिरता है और हाथमें शंखकी चूड़िया पहिर मेरे पास आता है तब उसके विकृत रूपको देख मेरे मनमें बहुत खेद होता है ॥२६॥ इस पृथिवीके ऊपर कोई भी धनुर्धर अर्जुनकी समान पराक्रमी नहीं है वह अर्जुन आज

शविकृतम् पार्थं दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥२८॥ यदा ह्येनं परिवृतं कन्याभिर्देवरूपिणम्। प्रभिन्नमिव मातङ्गं परिकीर्णं करेणुभिः ॥२९॥ मत्स्यमर्थपतिं पार्थं विराटं समुपस्थितम्। पश्यामि तूर्यमध्यस्थं दिशो नश्यन्ति मे तदा॥३०॥ नूनमार्या न जानाति कृच्छ्रं प्राप्तं धनञ्जयम्। अजातशत्रुं कौरव्य मग्नं दुर्द्यूतदेविनम् ॥३१॥ तथा दृष्ट्वा यवीयांसं सहदेवं गवाम्पतिम्। गोषु गोवेषमायान्तं पाण्डुभूतास्मि भारत ॥ ३२ ॥ सहदेवस्य वृत्तानि चिन्तयन्ती पुनः पुनः। न निद्रामभिगच्छामि भीमसेन कुतो रतिम् ॥ ३३ ॥ न विन्दामि महाबाहो सहदेवस्य दुष्कृतम्। यस्मिन्नेवं विधं दुःखं प्राप्नुयात् सत्यविक्रमः ॥ ३४ ॥ दूयामि भरतश्रेष्ठ दृष्ट्वा ते भ्रातरं प्रियम्। गोषु गोवृषसङ्काशं मत्स्येनाभिनिवेशितम् ॥ ३५ ॥ संरब्धं रक्तनेपथ्यं गोपालानां पुरोगमम्। विराटमभि-

कन्याओंसे घिरकर गीत गाता है ॥२७॥ सम्पूर्ण मनुष्य धर्ममें, शूरता में, तथा सत्यमें जिसको अद्वितीय जानते हैं उस अर्जुनको जब मैं स्त्रीके विकृत वेशमें देखती हूँ तब अपने मनमें जल जाती हूँ ॥ २८ ॥ मद टपकाने वाला हाथी जैसे हथिनियोंके समूहसे घिरा होता है तैसे ही आस पास बैठी हुई कन्याओंसे घिरे हुए देवसमान अर्जुनको नृत्य मंदिरमें अर्थपति राजा विराटकी सेवा करते हुए देखती हूं तब शोकसे अन्धी हो भयभीत होजाती हूँ और उस समय मुझे दिशाएँ नहीं सूझतीं ॥ २९-३० ॥ निश्चय ही इस खोटे द्यूतके खेलने वाले कुरुपुत्र युधिष्ठिर और अर्जुन ऐसी बुरी दशामें हैं इस बातका सासूजीको तो भान भी न होगा ॥३१॥ और हे भारत ! आपके छोटे भाई सहदेवको गोपालका वेश धारण कर गौओंके साथ आता हुआ देखती हूँ तब मेरा शरीर दुःखसे फीका पड़जाता है ॥३२॥ हे भीम ! जब मैं सहदेवके सम्पूर्ण चरित्रोंका बार २ स्मरण करती हूं तब मुझे निद्रा भी नहीं आती फिर तो सुख कहाँसे मिलै ॥ ३३ ॥ हे महाबाहो ! सहदेव सत्यपराक्रमी हैं उन्होंने किसी समय भी पाप किया हो यह मेरे ध्यानमें नहीं आता फिर न जाने किस पापकर्मसे वह ऐसा दुःख भोगते हैं ३४ हे भरतवंशश्रेष्ठ! बैलकी समान ऊँचे और दृढ़ शरीरवाले तुम्हारे छोटे भाईको राजा विराटने गौओं तथा गोपालोंके ऊपर नियुक्त किया है उनको जब मैं गौओंके तथा सांडके साथ आता देखती हूँ तब मेरा मन खिन्न होता है ॥३५॥ तैसे ही जब वह लाल वस्त्र धारण कर हाथमें कोड़ा लिये हुए उतावली चालसे सब ग्वालियोंके आगे चलते हैं

मन्वन्तमथ मे भवति ज्वरः ॥३६॥ सहदेवं हि मे वीर नित्यमार्या प्रशंसति । महाभिजनसम्पन्नः शीलवान् वृत्तवानिति ॥ ३७ ॥ ह्रीनिषेवी मधुरवाक् धार्मिकश्च प्रियश्च मे । स तेऽरण्येषु वोढव्यो याज्ञसेनि क्षपास्वपि ॥ ३८ ॥ सुकुमारश्च शूरश्च राजानं चाप्यनुव्रतः। ज्येष्ठापचायिनं वीरं स्वयं पाञ्चालि भोजयेः ॥ ३९ ॥ इत्युवाच हि मां कुन्ती रुदती पुत्रगृद्धिनी । प्रव्रजन्तं महारण्यं तं परिष्वज्य तिष्ठती ॥४०॥ तं दृष्ट्वा व्यापृतङ्गोषु वत्सचर्मक्षपाशयम् । सहदेवं युधां श्रेष्ठं किन्नु जीवामि पांडव ॥ ४१ ॥ यस्त्रिभिर्नित्यसम्पन्नो रूपेणास्त्रेण मेधया । सोऽश्वबन्धो विराटस्य पश्य कालस्य पर्य्ययम् ॥४२॥ अभ्यकीर्यन्त वृन्दानि दामग्रन्थिमुदीक्ष्य तम् । विनयन्तञ्जवेनाश्वान् महाराजस्य पश्यतः ४३ अपश्यमेनं श्रीमन्तं मत्स्यं भ्राजिष्णुमुत्तमम् । विराटमुपतिष्ठन्तं दर्श-

और राजा विराटसे मिल प्रणामपूर्वक अभिनन्दन करते हैं उस समय मुझे ज्वरसा चढ़ आता है ॥ ३६ ॥ नित्य सासूजी मुझसे मेरे इन ही सहदेवकी नित्य प्रशंसा किया करती थीं कि-यह पुत्र योग्य और बड़े भारी कुटुम्बवाला, शीलवान् तथा सदाचरणसम्पन्न है ।३७। उन्होंने वनको चलते समय मुझसे कहा था कि-यह कुमार लज्जा शील, मधुरभाषी, धर्मशील और मुझको प्यारा है हे याज्ञसेनि ! जब वनमें रात्रिके समय तुम चलोगी उस समय यह नहीं चल सकेगा इस कारण मार्गमें इसका ध्यान रखना यह कुमार बहुत ही सुकुमार और शूर वीर है तथा बड़े भाइयोंकी पूजा करने वाला है अतः हे पांचालि ! तुम अपने आप ही इस वीर सहदेवको नित्य भोजन कराना और सम्हाल रखना, इस प्रकार महावनको प्रवास करते समय सहदेवको अपने हृदयसे लगाकर खड़ी हुई और पुत्र पर प्रेम रखनेवाली कुन्तीजीने रोते २ मुझसे कहा था ॥३८-४०॥ उस महाशूर वीर सहदेवको गौओंकी सेवा करनेमें तत्पर तथा रात्रिको बछड़ोंको चर्म पर सोता हुआ देखती हूं तो हे पाण्डव ! मुझे जीती रहनेकी इच्छा कैसे हो ? ४१ और जो नित्य रूपमें, और अस्त्रविद्या तथा बुद्धिमें अद्वितीय गिने जाते हैं वह नकुल राजा विराटके यहाँ घोड़ोंके शिक्षकका काम करते हैं तुम इस कालके फेर फारको तो देखो ॥ ४२ ॥ जिस नकुलको देखकर पहिले हजारों शत्रु भाग जाते थे वह पुरुष अश्वशिक्षक बन राजा विराटके सामने खड़ा होकर घोड़ोंको चालें सिखाता है और राजा विराटको सेवामें उपस्थित होकर उनको अनेक प्रकारके घोड़े

यन्तश्च वाजिनः ॥ ४४ ॥ किन्नु मां मन्यसे पार्थ सुखिनीति परन्तप । एवं दुःखशताविष्टा युधिष्ठिरनिमित्ततः ॥ ४५ ॥ अतः प्रतिविशिष्टानि दुःखान्यन्यानि भारत । वर्त्तन्ते मयि कौन्तेय वक्ष्यामि शृणु तान्यपि ४६ युष्मासु ध्रियमाणेषु दुःखानि विविधान्युत । शोषयन्ति शरीरं मे किं नु दुःखमतः परम् ॥ ४७ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीभीमसंवादे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

द्रौपद्युवाच । अहं सैरन्ध्रिवेषेण चरन्ती राजवेश्मनि । शौचदास्मि सुदेष्णाया अक्षधूर्त्तस्य कारणात् ॥ १ ॥ विक्रियां पश्य मे तीव्रां राजपुत्र्याः परन्तप । आत्मकालमुदीक्षन्ती सर्वं दुःखं किलान्तवत् ॥ २ ॥ अनित्या किल मर्त्यानामर्थसिद्धिर्जयाजयौ । इति कृत्वा प्रतीक्षामि भर्तॄणामुदयं पुनः ॥ ३ ॥ चक्रवत् परिवर्त्तन्ते ह्यर्थाश्च व्यसनानि च । इति कृत्वा प्रतीक्षामि भर्तॄणामुदयं पुनः ॥ ४ ॥ य एव हेतुर्भवति पुरु-

---

दिखाता है, ऐसे शोभायमान महातेजस्वी नकुलको जब मैं देखती हूँ तो मेरे मनमें बड़ा खेद होता है ॥ ४३-४४ ॥ हे कुन्तीपुत्र परन्तप ! ऐसी दशामें तुम किस प्रकार सुख मानते हो ? मैं इस प्रकार राजा युधिष्ठिरके कारण अनेकों दुःखोंमें डूब गई हूँ ॥ ४५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! इनसे भी अधिक जिन दुःखोंको मैं सहती हूँ वह सब दुःख भी मैं तुमसे कहती हूँ, सुनो ॥ ४६ ॥ तुम सबोंके जीते हुए बहुतसे दुःख मेरे शरीरको सोखे डालते हैं इससे अधिक कष्ट और क्या होगा ? ॥ ४७ ॥ उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ छ ॥

द्रौपदीने फिर कहा कि अक्षधूर्त राजा युधिष्ठिरके जुएके कारण मुझे सैरंध्रीका वेश धारण कर सदा राजमहलमें रहना पड़ता है और सुदेष्णाके हाथ पैर धोनेके लिए मट्टी और स्नान करनेके लिये जल लाकर देना पड़ता है ॥ १ ॥ हे परन्तप ! तुम मुझ राजपुत्रीकी भयंकर दुर्दशाको तो देखो परन्तु दुःख कुछ अमर नहीं रहता है उसका भी समय पाकर नाश होजाता है इसकारण ही मैं अपने सुखकारक समयके उदयकी बाट देखा करती हूँ ॥ २ ॥ मनुष्योंकी कार्यसिद्धि तथा जय और पराजय कुछ सदा तो होती ही नहीं है किन्तु क्रमसे जय, विजय तथा लाभ हानि हुआ करते हैं यह विचार कर ही मैं अपने स्वामियोंके उदयकी बाट देखती हूँ ॥ ३ ॥ मनुष्योंकी प्रयोजनसिद्धि अथवा दुःख चक्रकी समान घूमा करते हैं यह विचार कर

यस्य जयावहः। पराजये च हेतुश्च स इति प्रतिपालये। किं मां न प्रति जानीषे भीमसेन मृतामिव ॥ ५ ॥ दत्वा याचन्ति पुरुषा हत्वा वध्यन्ति चापरे। पातयित्वा च पात्यन्ते परैरिति च मे श्रुतम् ॥ ६ ॥ न दैवस्यातिभारोऽस्ति न चैवास्यातिवर्त्तनम्। इति चाप्यागमं भूयो दैवस्य प्रतिपालये ॥ ७ ॥ स्थितं पूर्वं जलं यत्र पुनस्तत्रैव गच्छति। इति पर्यायमिच्छन्ती प्रतीक्षे उदयं पुनः ॥ ८ ॥ दैवेन किल यस्यार्थः सुनीतोऽपि विपद्यते। दैवस्य चागमे यत्नस्तेन कार्यो विजानता ॥ ९ ॥ यत्तु मे वचनस्यास्य कथितस्य प्रयोजनम्। पृच्छ मां दुःखितां तत्त्वं

हो मैं अपने स्वामियोंके फिर उदय होनेकी बाट देखा करती हूँ ॥४॥ एक समय मनुष्यको जिस हेतुसे जय प्राप्त होती है दूसरी समय उस ही कारणसे पराजय भी होता है अतः जो समय अब दुर्योधन का है वही समय कभी हमारा भी होगा, यही विचार कर मैं उदय कालकी बाट देखती हुई बैठी हूँ तो भी हे भीमसेन ! मैं मरीहुई सी होगई हूँ इसकी सुध तुम किसलिए नहीं लेते हो ॥५॥ कालकी बलिहारी है, जो दाता एक समय हजारों याचकोंको यथेच्छ पदार्थ देता है वही दूसरे समयमें याचक बन घर २ भीख माँगताहुआ भटकता फिरता है जो एक समय अपने शत्रुओंका नाश करता है दूसरे समय में वे ही शत्रु उसे नष्ट कर देते हैं, जो एक समय अपने शत्रुओंको राज्यसिंहासनसे भ्रष्ट करता है दूसरे समयमें वे ही शत्रु राज्यासनसे उसे भ्रष्ट करदेते हैं यह मेरे सुननेमें आया है ॥ ६॥ दैवको कोई कार्य दुष्कर नहीं है इससे वह जो विचारता है वही करता है उसकी अनिवार्य आज्ञाका कोई भी उल्लंघन नहीं करसकता यही विचार कर मैं अनिवार्य दैवाज्ञाको वारम्वार अपने शिर पर चढ़ाती हूँ और उदय कालकी बाट देखा करती हूँ ॥ ७ ॥ और जहाँ पहिले जल होता है और कालवश वहां सूखा होगया हो तो भी कालान्तरमें वहाँ पर ही जल इकट्ठा मिलता है और कालान्तरमें सूखा हुआ तालाव फिर भर जाता है इस प्रकार ही हमारे कालमें भी समय पाकर फेरफार होगा यह इच्छा करतीहुई मैं उदयकी ओर देखती हूँ ॥ ८ ॥ जिस मनुष्यकी सम्पत्ति उत्तम न्यायसे रक्षित होनेपर भी प्रारब्धसे नष्ट होजाय तो समझदार मनुष्यको प्रारब्धको अनुकूल बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये ॥ ९ ॥ परन्तु मेरा आपसे इन बातोंके कहनेका प्रयोजन क्या है ? इसको जाननेकी तुम्हारी इच्छा हो तो तुम मुझ

पृष्टा चात्र ब्रवीमि ते ॥ १० ॥ महिषी पाण्डुपुत्राणां दुहिता द्रुपदस्य च । इमामवस्थां सम्प्राप्ता मदन्या का जिजीविषेत् ॥ ११ ॥ कुरून् परिभवेत् सर्वान् पञ्चालानपि भारत । पाण्डवेयांश्च सम्प्राप्तो मम क्लेशो ह्यरिन्दम ॥ १२ ॥ भ्रातृभिः श्वशुरैः पुत्रैर्बहुभिः परिवारिता । एवं समुदिता नारी का त्वन्या दुःखिता भवेत् ॥१३॥ नूनं हि बालया धातुर्मया वै विप्रियं कृतम् । यस्य प्रसादाद् दुर्नीतं प्राप्तास्मि भरतर्षभ ॥ १४ ॥ वर्णावकाशमपि मे पश्य पाण्डव यादृशम् । तादृशो मे न तत्रासीत् दुःखे परमके तदा ॥१५॥ त्वमेव भीम जानीषे यन्मे पार्थ सुखं पुरा । साहन्दासीत्वमापन्ना न शान्तिमवशा लभे ॥ १६॥ नादैविकमहं मन्ये यत्र पार्थो धनञ्जयः । भीमधन्वा महाबाहुरास्तेच्छन्न इवानलः ॥ १७ ॥ अशक्या वेदितुं पार्थ प्राणिनां वै गतिर्नरैः । विनिपातमिमं मन्ये युष्माकं ह्यविचिन्तितम् ॥ १८ ॥ यस्या मम मुख-

---

दुःखिनीसे बूझ देखो तब मैं तुमसे यहाँ ही कहूँ ॥ १० ॥ मैं राजा पाण्डुके पुत्रोंकी पटरानी हूँ राजा द्रुपदकी बेटी हूँ, तो भी मेरी ऐसी दशा हुई है कहो क्या कोई ऐसी दुःख दशामें पड़ीहुई स्त्री जीवित रहना चाहेगी ॥ ११ ॥ हे भारत ! हे शत्रुओंको ताप देनेवाले ! मेरे ऊपर पड़ाहुआ यह दुःख कौरव पाण्डव और पाञ्चाल सबको कष्टसे दबादेगा ॥ ११ ॥ भाई, ससुर बहुतसे पुत्र वाली दूसरी कौन स्त्री ऐसे कष्ट सहन करेगी ? ॥ १२ ॥ तथा सुख ऐश्वर्य वाली मैंने निश्चय ही बाल्यावस्थामें विधाताका अप्रिय क्रिया होगा कि— जिसके प्रसादसे हे भरतवंशी राजन् ! मैं इस दुःख को प्राप्त हुई हूं ॥ १४ ॥ हे पाण्डव ! जब मैं महा दुःखसे वनमें रहती थी उस समय स्वतन्त्र रहनेसे मेरे शरीरकी जो कान्ति थी वह कान्ति अब नष्ट होगई है तुम वर्णकी ओरको जरा देखो तो सही ॥ १५ ॥ हे पृथापुत्र भीमसेन! पहिले मुझे जो सुख था उसको केवल तुम ही जानते हो परंतु उस सुखको भोगनेवाली मैं आज परवश होकर दासीपनेका कार्य करती हूँ तो भी मुझे शान्ति नहीं मिलती ॥१६॥ यह सब प्रारब्धकी लीला है मैं ऐसा मानती हूँ। क्योंकि जिस दुःखके समयमें महाबाहु धनुषधारी अर्जुन छिपीहुई अग्निकी समान गुप्त होकर बैठे हैं ॥१७॥ हे पृथापुत्र ! प्राणियोंको भविष्यमें कैसा सुख या दुःख मिलेगा इसको मनुष्य नहीं जान सकते तुम्हारा जो यह तिरस्कार हुआ है वह भी मेरी समझमें अचानक ही होगया है ॥ १८ ॥ इन्द्रकी समान तुम

प्रेक्षा यूयमिन्द्रसमाः सदा। सा प्रेक्षे मुखमन्यासामवराणां वरा सती ॥ १९॥ पश्य पाण्डव मेऽवस्थां यथा नार्हामि वै तथा। युष्मासु ध्रियमाणेषु पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ २० ॥ यस्याः सागरपर्यन्ता पृथिवी वशवर्तिनी। आसीत्साद्य सुदेष्णायाः भीताहं वशवर्तिनी २१ यस्याः पुरःसरा आसन् पृष्ठतश्चानुगामिनः। साहमद्य सुदेष्णायाः पुरः पश्चाच्च गामिनी ॥ २२ ॥ इदन्तु दुःखं कौन्तेय ममासह्यं निबोध तत्। या न जातु स्वयं पिंषे गात्रोद्वर्तनमात्मनः। अन्यत्र कुन्त्या भद्रन्ते सा पिनष्म्यद्य चन्दनम् ॥ २३ ॥ पश्य कौन्तेय पाणी मे नैवाभूतां हि यौ पुरा। इत्यस्य दर्शयामास किणवन्तौ करावुभौ ॥ २४ ॥ बिभेमि कुन्त्या या नाहं युष्माकं वा कदाचन। साद्याग्रतो विराटस्य भीता तिष्ठामि किङ्करी ॥२५॥ किं नु वक्ष्यति सम्राण्मां वर्णकः सुकृतो न वा। नान्यपिष्टं हि मत्स्यस्य चन्दनं किल रोचते ॥२६॥ वैशम्पायन

सदा मेरे मुखकी ओरको देखा करते थे वही सती श्रेष्ठ स्त्री मैं अब दूसरोंका मुख देखा करती हूँ ॥ १९ ॥ हे पाण्डव ! तुम विद्यमान हो तो भी मैं अनुचित रीतिसे दुर्दशाको भोगती हूँ अतः तुम कालके लौटफेरकी ओर देखो तो सही ॥ २० ॥ समुद्र तकको सब पृथ्वी जिसके अधीन थी वह मैं आज सुदेष्णाकी एक नौकरनी बनी और उससे डरा करती हूँ २१ जिसके आगे पीछे हजारों दास चलते थे वही मैं आज सुदेष्णाके आगे और कभी पीछे चलती हूँ २२ और हे कुन्तीपुत्र ! दूसरा यह दुःख मुझे और भी असह्य पीड़ा देता है उसको सुनो पहिले मैं कुन्तीजीको छोड़कर अपने लिए भी चन्दनका अङ्गराग नहीं घिसती थी वह मैं आज यहाँ राजाके लिए चन्दनका अङ्गराग घिसा करती हूं २३ हे कुन्तीपुत्र! देखो ! मेरे ये हाथ पहिले ऐसे नहीं थे परन्तु अब इनमें ठेटें पड़गई हैं यह कहकर चन्दन घिसनेसे ठेटें पड़े हुए अपने दोनों हाथ भीमसेनको दिखाये ॥२४॥ और कहा, कि-जो मैं पहिले तुमसे तथा सासू कुन्तीजीसे भी नहीं डरतीथी वह मैं आज राजा विराटके सामने भयभीत होकर दासी बनी खड़ी रहती हूँ ॥ २५ ॥ और मनमें विचार किया करती हूं कि-मैंने चन्दन अच्छा घिसा है या नहीं ? इसके लिये आज राजा मुझसे क्या कहेंगे ? मत्स्यदेशके राजा विराटको दूसरेका घिसा हुआ चन्दन अच्छा नहीं लगता है किन्तु मेरा ही घिसा हुआ चन्दन अच्छा लगता है २५ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! इस प्रकार भीमसेनको स्त्री द्रौपदीने अपने

उवाच । सा कीर्त्तयन्ती दुःखानि भीमसेनस्य भामिनी । रुरोद शनकैः कृष्णा भीमसेनमुदीक्षती ॥ २७ ॥ सा बाष्पकलया वाचा निःश्वसन्ती पुनः पुनः । हृदयं भीमसेनस्य घट्टयन्तीदमब्रवीत् ॥२८॥ नालं कृतं मया भीम देवानां किल्विषं पुरा । अभाग्या यत्र जीवामि कर्तव्ये सति पांडव ॥ २९ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततस्तस्या करौ सूक्ष्मौ किणबद्धौ वृकोदरः । मुखमानीय वै पत्न्या रुरोद परवीरहा ॥ ३० ॥ तौ गृहीत्वा च कौन्तेयो बाष्पमुत्सृज्य वीर्यवान् । ततः परमदुःखार्त्त इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ छ छ छ

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदी-
भीमसंवादे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

भीमसेन उवाच । धिगस्तु मे बाहुबलं गाण्डीवं फाल्गुनस्य च । तत्ते रक्तौ पुरा भूत्वा पाणी कृतकिणाविमौ ॥ १ ॥ सभायान्तु विराटस्य करोमि कदनं महत् । तत्र मे कारणं भाति कौन्तेयो यत् प्रतीक्षते ॥ २ ॥ अथवा कीचकस्याहं पोथयामि पदा शिरः । ऐश्वर्यमद-

---

दुःख कहकर सुनाए और भीमसेनकी ओरको देखती हुई धीरे २ रोने लगी ।२७। तथा बार बार श्वास लेकर अकुलाती हुई वाणीसे भीमके हृदयको कंपाती हुई फिर इस प्रकार कहने लगी कि—हे भीम ! पहिले मैंने देवताओंका जरा भी अपराध नहीं किया है फिर भी मैं इतनी पीड़ा पाती हूँ ? हे पाण्डव ! मुझ अभागिनीको जिस समय मरना है मैं उस समयकी बाट देख रही हूँ ॥ २८–२९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि द्रौपदीके ऐसे हृदयभेदक विलापपूर्ण वचनोंको सुनकर शत्रुओंका नाश करनेवाला वृकोदर अपनी स्त्री द्रौपदीके चन्दन घिसनेसे ठेटें पडेहुए दोनों हाथोंको अपने दोनों हाथोंसे पकड़ मुख पर धरके सुबकर कर रोने लगा और तदनन्तर दुःखसे अत्यन्त आतुर हुआ भीमसेन द्रौपदीसे इस प्रकार कहने लगा ॥ ३० ॥ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥ छ छ छ छ ॥

भीमसेनने कहा कि–हे द्रौपदी ! मेरे भुजबलको भी धिक्कार है और अर्जुनके गाण्डीव धनुषको भी धिक्कार है क्योंकि–तेरे हाथोंकी जो हथेलियें पहिले लाल २ वर्णकी थी वह आज दूसरेका काम करनेसे घायल होगई हैं ॥ १ ॥ कीचक जिस समय लातें मार रहाथा उस समय ही मैं सभामें बैठेहुए राजा विराटको मारडालता किन्तु ज्येष्ठ-बन्धु युधिष्ठिरने अभी प्रकट न होजाना ऐसा संकेत करते हुए मेरे

मत्तस्य क्रीडन्निव महाद्विपः ॥ ३ ॥ अपश्यन्त्वां यदा कृष्णे कीचकेन पदा हताम् । तदैवाहं चिकीर्षामि मत्स्यानां कदनं महत् ॥ ४ ॥ तत्र मां धर्मराजस्तु कटाक्षेण न्यवारयत् । तदहं तस्य विज्ञाय स्थित एवास्मि भामिनि ॥५॥ यच्च राष्ट्रात् प्रच्यवनं कुरूणामवधश्च यः । सुयोधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ॥ ६ ॥ दुःशासनस्य पापस्य यन्मया नाहृतं शिरः । तन्मे दहति गात्राणि हृदि शल्यमिवार्पितम् मा धर्मं जहि सुश्रोणि क्रोधं जहि महामते ॥ ७ ॥ इमन्तु समुपालम्भं त्वत्तो राजा युधिष्ठिरः । शृणुयाद्यदि कल्याणि कृत्स्नं जह्यात् स जीवितम् ॥ ८ ॥ धनंजयो वा सुश्रोणि यमौ वा तनुमध्यमः । लोकान्तरगतेष्वेषु नाहं शक्ष्यामि जीवितुम् ॥९॥ पुरा सुकन्या भार्या च भार्गवं च्यवनं वने । वल्मीकभूतं शाम्यन्तमन्वपद्यत भामिनी ॥ १० ॥ नारायणी चेन्द्रसेना रूपेण यदि ते श्रुता । पतिमन्वचरद्वृद्धं पुरावर्षसह-

मुखकी ओर देखा था इसकारणसे ही मैंने उसे नहीं मारा था २ नहीं तो मैं क्रीड़ा करतेहुए बड़े हस्तीकी समान ऐश्वर्य मदसे मत्त हुए कीचकके मस्तकको पैरसे कुचल ही डालता हे कृष्णे ! जब कीचकसे लातें खाते हुए तुझे देखाथा तबही मैंने मत्स्यराज तथा उसके मनुष्यों का संहार करनेकी इच्छाकी थी ४ परन्तु राजा युधिष्ठिरने मेरी ओर कटाक्ष करके मुझे ऐसा करनेसे रोकदिया इस कारण ही हे भामिनी ! मैं उनके अभिप्रायको जानकर बैठरहा था ॥५॥ वास्तवमें हमने अपने देशसे पदभ्रष्ट होने परभी कौरवोंका नाश नहीं किया और दुर्योधन, कर्ण सुबलपुत्र शकुनि तथा पापी दुःशासनके मस्तक नहीं काट डाले यह सारी बातें मेरे हृदयमें काँटासी साल रही हैं और मेरे अङ्गोंको जलाये डालती हैं ! हे सुश्रोणि ! तू अपने धर्मको न त्यागना किन्तु हे बुद्धिमती तू अपने क्रोधको जीतना ॥ ६–७ ॥ यदि राजा युधिष्ठिर तुम्हारे ऐसे आक्षेपको सुनेंगे तो वह निश्चयही प्राणोंको त्याग देंगे।८। अथवा हे सुश्रोणि कल्याणि ! अर्जुन,नकुल तथा सहदेव भी यदि तेरे इस आक्षेपको सुनेंगे तो वे भी अवश्य अपने प्राणोंको त्याग देंगे और जब वह नष्ट होजायँगे तब मैं भी जीवित नहीं रहसकूँगा ॥ ९ ॥ सुनो पहिले भृगुपुत्र च्यवन वनमें शान्तरसमें लीन होकर रहते थे और उन के शिर पर वमई बनगई थी तब भी सुकन्या नामकी एक राजकन्या वनमें रह कर उनकी सेवा करती थी १० इसहीप्रकार पहिले मुद्गलमुनि पत्नी नारायणी और लक्ष्मीकी समान इन्द्रसेना अधिक रूपके कारण

त्रिणम् ॥ ११ ॥ दुहिता जनकस्यापि वैदेही यदि ते श्रुता । पतिमन्वचरत्सीता महारण्यनिवासिनम् ॥ १२ ॥ रक्षसा निग्रहं प्राप्य रामस्य महिषी प्रिया । क्लिश्यमानापि सुश्रोणी राममेवान्वपद्यत ॥ १३ ॥ लोपामुद्रा तथा भीरु वयोरूपसमन्विता । अगस्त्यमन्वयाद्धित्वा कामान् सर्वानमानुषान् ॥१४॥ द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनिन्दिता । सावित्र्यनुचचारैका यमलोकं मनस्विनी ॥ १५ ॥ यथैताः कीर्तिता नार्यो रूपवत्यः पतिव्रताः । तथा त्वमपि कल्याणि सर्वैः समुदिता गुणैः ॥१६॥ मा दीर्घं क्षम कालन्त्वं मासमर्द्धञ्च सम्मितम् । पूर्णे त्रयोदशे वर्षे राज्ञो राज्ञी भविष्यसि ॥ १७ ॥ द्रौपद्युवाच । आर्त्तयैतन्मया भीम कृतं वाष्पप्रमोचनम् । अपारयन्त्या दुःखानि न राजानमुपालभे ॥१८॥ किमुक्तेन व्यतीतेन भीमसेन महाबल । प्रत्युपस्थितकालस्य कार्यस्यानन्तरो भव ॥ १९ ॥ ममेह भीम कैकेयी रूपाभिभवशङ्कया । नित्यमुद्विजते

यदि तेरे सुननेमें आई हो तो ध्यान दे वह निरन्तर हजार वर्षके बुड्ढे अपने पतिकी सेवा किया करती थी ॥११॥ राजा जनककी पुत्री सीता का भी वृत्तान्त तूने सुना होगा यह भी महावनमें रहने वाले अपने पति रामकी सेवा करती थी ॥१२॥ इतनेमें ही रावण, रामकी प्रिया पटरानी सीताको हरकर लंकामें लेगया था हे सुश्रोणि ! वहाँ सीता ने बहुतही दुःख भोगे थे और पीछे फिर अपने पति रामसे ही आकर मिली थी ॥ १३ ॥ और हे भीरु ! लोपामुद्रा नामक तरुणी और रूपसम्पन्न स्त्री भी अपनी सब अमानुषिक कामनाओंको त्याग अगस्त्य की सेवामें लगी रहती थी ॥१४॥ मनस्विनी और पवित्र आचारवाली सावित्री भी, जब द्युमत्सेनका पुत्र सत्यवान् मरगया और यमराज उस को लेजाने लगे तब वह अकेली ही यमके पीछे २ यमलोकमें जानेको उद्यत होगई थी ॥१५॥ हे कल्याणि ! जिस प्रकार इन रूपवती प्रतिव्रता स्त्रियोंका वर्णन किया है उसही प्रकार हे कल्याणि ! तू भी सर्व गुणोंसे युक्त है ॥१६॥ तुझे अब बहुत समय बिताना नहीं है तेरह वर्ष पूरे होनेमें केवल डेढ़ महीना रहगया है डेढ़ मासके बाद तेरहवाँ वर्ष पूरा हुआ कि-तू महारानी होगी ॥१७॥ द्रौपदी बोली हे भीम ! मेरे ऊपर इतने अधिक दुःख पड़े हैं कि-जिनको सह नहीं सकी और उनसे मैं बहुत ही घबड़ाने लगी तब मैं रोती हूँ परन्तु मैं राजा युधिष्ठिरको उलाहना नहीं देती हूं ॥ १८ ॥ हे महाबली भीमसेन ! जो बात बीत गई उसके कहनेसे ही क्या फल है ! अतः इस समय जो कार्य करने

राजा कथं नेयादिमामिति ॥२०॥ तस्या विदित्वा तं भावं स्वयं चानृतदर्शनः। कीचकोऽयं सुदुष्टात्मा सदा प्रार्थयते हि माम् ॥२१॥ तमहं कुपिता भीम पुनः कोपं नियम्य च। अब्रुवं काममंमूढमात्मानं रक्ष कीचक ॥ २२ ॥ गंधर्वाणामहं भार्या पञ्चानां महिषी प्रिया। ते त्वां निहन्युः कुपिताः शूराः साहसकारिणः ॥ २३ ॥ एवमुक्तः सुदुष्टात्मा कीचकः प्रत्युवाच ह। नाहं बिभेमि सैरंध्रि गन्धर्वाणां शुचिस्मिते २४ शतं शतसहस्राणि गन्धर्वाणामहं रणे। समागतं हनिष्यामि त्वं भीरु कुरु मे क्षणम् ॥ २५ ॥ इत्युक्ते चाब्रुवं मत्तं कामातुरमहं पुनः। न त्वं प्रतिबलश्चैषां गन्धर्वाणां यशस्विनाम् ॥२६॥ धर्मे स्थितास्मि सततं कुलशीलसमन्विता। नेच्छामि कञ्चिद्वध्यन्ते तेन जीवसि कीचक २७ एवमुक्तः स दुष्टात्मा प्राहसत् स्वनवत्तदा। अथ मां तत्र कैकेयी प्रेष-

---

का अवसर है उसके लिए तुम उद्यत होजाओ ॥ १९ ॥ हे भीमसेन ! कैकयी भी मेरे अनुपम सौंदर्यसे पराजित होगई है और शंकासे नित्य घबड़ा कर यह विचारा करती है कि-राजा विराट इस स्त्रीके पास क्यों ? नहीं जाते होंगे ? ॥ २० ॥ सुदेष्णाका ऐसा भाव समझ कर जिसका दर्शन भी पापदायक है ऐसा दुष्टात्मा कीचक सर्वदा मेरे आगे प्रार्थना किया करता है ॥ २१ ॥ हे भीम ! मुझे कीचकके ऊपर क्रोध आगया था तो भी मैंने अपने क्रोधको दबा कर उससे कहा था कि-तू कामसे मूढ हुई अपनी आत्माकी रक्षा कर ॥२२॥ हे कीचक ! मैं पाँच गंधर्वोंकी प्यारी स्त्री और पटरानी हूँ इस प्रकार ? यदि साहसी शूरवीर वे गंधर्व तेरे ऊपर क्रोध करेंगे तो तेरा नाश ही कर डालेंगे २२ इस प्रकार मैंने कीचकको बहुत ही समझाया तब दुष्टात्मा पापी कीचकने मुझसे कहा कि-हे पवित्र और मंद हास्यवाली दासी ! मैं गंधर्वोंसे नहीं डरता हूँ ॥ २४ ॥ युद्धभूमिमें लाखों गंधर्व भी मेरे साथ-लड़नेको आवेंगे तो भी मैं (अकेला) उनको मार डालूँगा, हे भीरु स्त्रि ! तू भयरहित होकर मुझको स्वीकार कर ॥ २५ ॥ इस प्रकार उसने मुझसे कहा तब मैंने मदमत्त और कामसे व्याकुल हुए कीचकसे कहा कि-तू यश वाले गंधर्वोंकी समान बलवान् नहीं है ॥ २६ ॥ और मैं सदा धर्माचरणसे रहने वाली हूं, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हूं और सुशीला हूँ अतः मेरे कारणसे किसीका नाश हो यह मैं नहीं चाहती अत एव हे कीचक ! तू अभी तक जीता जागता है ॥ २७ ॥ इस प्रकार जब मैंने दुरात्मा कीचकसे कहा तब वह गर्ज कर हँसने

यत् प्रणयेन तु ॥ २८ ॥ तेनैव देशिता पूर्वं भ्रातृप्रियचिकीर्षया । सुरामानय कल्याणि कीचकस्य निवेशनात् ॥ २९ ॥ सूतपुत्रस्तु मां दृष्ट्वा महत् सान्त्वमवर्त्तयत् । सान्त्वे प्रतिहते क्रुद्धः परामर्शमनाभवत् ॥३०॥ विदित्वा तस्य सङ्कल्पं कीचकस्य दुरात्मनः । तथाहं राजशरणं जवेनैव प्रधाविता ॥३१॥ सन्दर्शने तु मां राज्ञः सूतपुत्रः परामृशत् । पातयित्वा तु दुष्टात्मा पदाहन्तेन ताडिता ॥ ३२ ॥ प्रेक्षन्ते स्म विराटस्तु कंकस्तु वहवो जनाः । रथिनः पीठमर्दाश्च हस्त्यारोहाश्च नैगमाः ३३ उपालब्धो मया राजा कंकश्चापि पुनः पुनः । ततो न वारितो राज्ञा न तस्याविनयः कृतः ॥ ३४ ॥ योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम सारथिः । त्यक्तधर्मा नृशंसश्च नरस्त्रीसम्मतः प्रियः ॥३५॥ शूरोऽभिमानी पापात्मा सर्वार्थेषु च मुग्धवान्। दारामर्शी महाभाग लभतेऽर्थान् वहूनपि ॥ ३६ ॥ आहरेदपि वित्तानि परेषां क्रोशतामपि । न तिष्ठते

लगा, तदनन्तर कैकयीने अपने भाईके ऊपर प्रेम होनेके कारण मुझे उसके महलमें भेजा था ॥ २८ ॥ कीचकने पहिले ही अपनी वहिनको समझा लिया था कि-मेरे यहाँ किसी वस्तुको लेनेके लिये तू सैरंध्री को भेज देना, इस संकेतके अनुसार ही सुदेष्णाने भी अपने भाईका हित करनेकी इच्छासे मुझे आज्ञा दी कि हे कल्याणि ! तू कीचकके घर जाकर मेरे लिए मदिरा लेआ ॥२९॥ यह सुनकर मैं मदिरा लेनेके लिए कीचकके यहाँ गई, मुझे देख कर वह सूतपुत्र वहुतही शान्तिके वर्त्तावसे समझाने लगा परन्तु मैंने उसकी मीठी वातोंका अनादर किया तब वह क्रोधमें होकर मेरा शील भंग करनेका विचार करने लगा ॥३०॥ मैं दुष्टात्मा कीचकका भाव जान गई थी इसकारण झट पट दौडती २ राजाकी शरणमें आई ॥ ३१ ॥ परन्तु कीचक तहाँ भी मेरे पीछे आया और उस दुष्टात्माने राजाके सामने ही मुझे पृथ्वी पर गिरा कर लातें मारीं ॥३२॥ उस सभामें वैठे हुए विराट, कंक, नगरके वहुतसे मनुष्य, रथी महावत और नगरके मनुष्योंने प्रत्यक्ष देखा था ॥३३॥ मैंने सभामें वैठे हुए राजाको और कंकको वार २ उलाहने दिए परन्तु राजाने उसे रोका नहीं और तुमने भी उसे दण्ड नहीं दिया ॥ ३४ ॥ यह दुष्टात्मा कीचक राजा विराटको युद्धमें सहायता देनेवाला धर्म हीन क्रूर तथा राजा रानीका मुहचढा और प्रिय है ३५ और हे महाभाग भीम ! वह शूर वीर अभिमानी पापी और स्त्रैण (व्यभिचारी) होनेसे सव वातोंमें मूढ होगया है तथा राज्यमेंसे वहुत

स्म सन्मार्गे न च धर्मं बुभूषति ॥ ३७ ॥ पापात्मा पापभावश्च कामबाणवशानुगः । अविनीतश्च दुष्टात्मा प्रत्याख्यातः पुन पुनः ॥ ३८ ॥ दर्शने दर्शने हन्याद्यदि जह्यां च जीवितम् । तद्धर्मे यतमानानां महान् धर्मो नशिष्यति ॥ ३९ ॥ समयं रक्षमाणानां भार्या वो न भविष्यति । भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ॥४०॥ प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः । आत्मा हि जायते तस्यां तेन जायां विदुर्बुधाः ॥ ४१ ॥ भर्त्ता तु भार्यया रक्ष्यः कथंजायान्ममोदरे । वदतां वर्णधर्मांश्च ब्राह्मणानामिति श्रुतः ॥४२॥ क्षत्रियस्य सदा धर्मो नान्यः शत्रुनिबर्हणात् । पश्यतो धर्मराजस्य कीचको माम्पदावधीत् ॥ ४३ ॥ तव चैव समक्षे वै भीमसेन महाबल।त्वया ह्यहं परित्राता तस्माद् घोराज्जटासुरात् ॥ ४४ ॥ जयद्रथन्तथैव त्वमजैषीर्भ्रातृभिः सह । जहीममपि

सा धन भी पाता है ॥ ३६ ॥ प्रजाके मनुष्य रोते ही रह जाते हैं और वह उनका धन लूट लेता है, वह सदाचारके मार्गमें नहीं चलता है तथा धर्म करना भी नहीं चाहता है ॥ ३७ ॥ वह पापी मन और पापी विचार वाला कीचक कामके बाणके अधीन हुआ, अविनयी तथा दुष्टात्मा है, मैंने उसे अनेकों बार धिक्कार दिया है ॥ ३८ ॥ तो भी वह जब २ मुझे देखेगा तब २ ही मारेगा तथा अयोग्य प्रार्थना करेगा इस लिए अब मुझे अपने प्राणोंको त्याग देना ही उचित है, परन्तु यदि मैं प्राणोंको त्याग दूँ तो तुम जिस धर्मका आचरण करनेके लिए प्रयत्न कर रहे हो वह महान् धर्म नष्ट होजावेगा अर्थात् तुम्हारी शूरता व्यर्थ होजायगी ॥ ३९ ॥ और जो तुम वनवासकी मर्यादाकी रक्षा करोगे तो तुम्हारी स्त्रीकी मृत्यु होगी और इससे तुम्हारी प्रजा (सन्तति) का नाश होजायगा क्योंकि-स्त्रीकी रक्षा करनेसे सन्ततिकी रक्षा होती है और सन्तानकी रक्षा करनेसे अपनी रक्षा होती है, अपना आत्मा ही स्त्रीके उदरमें गर्भरूप होकर जन्मता है इसीसे विद्वान् स्त्रीको जाया कहते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ पति मेरे पेटमें किस प्रकार जन्म लेकर पुत्रके रूपमें अवतार लेगा ऐसा विचार कर स्त्रियोंको अपनी रक्षा सब प्रकारसे करनी चाहिये, इस प्रकार धर्मोपदेश करनेवाले ब्राह्मणोंके मुखसे मैंने ब्राह्मणादि वर्णोंके धर्म सुने हैं ॥ ४२ ॥ क्षत्रियोंका धर्म सदा शत्रुओंका नाश करना यही है दूसरा नहीं है परन्तु हे महाबल भीमसेन ! तुम्हारे और राजा युधिष्ठिरके देखते हुए ही कीचकने बीच सभामें मुझे लातोंसे मारता तो भी तुमने उसमें कुछ भी नहीं किया

पापिष्ठं योऽयं मामवमन्यते ॥ ४५ ॥ कीचको राजवाल्लभ्याच्छोककृन्मम भारत । तमेवं कामसंमत्तं भिन्धि कुम्भमिवाश्मनि ॥ ४६ ॥ यो निमित्तमनर्थानां बहूनां मम भारत । तं चेज्जीवन्तमादित्यः प्रातरभ्युदयिष्यति ॥ ४७ ॥ विषमालोड्य पास्यामि मा कीचकवशङ्गमम् । श्रेयो हि मरणं मह्यम्भीमसेन तवाग्रतः ॥ ४८ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा प्रारुदत् कृष्णा भीमस्योरःसमाश्रिता । भीमश्च ताम्परिष्वज्य महत् सान्त्वं प्रयुज्य च ४४ आश्वासयित्वा बहुशो भृशमार्त्तां सुमध्यमाम् । हेतुतत्त्वार्थसंयुक्तैर्वचोभिर्द्रुपदात्मजाम् ॥५०॥ प्रमृज्य वदनं तस्याः पाणिनाश्रुसमाकुलम् । कीचकं मनसागच्छत् सृक्किणी परिसंलिहन् । उवाच चैनां दुःखार्त्तां भीमः क्रोधसमन्वितः ॥ ५१ ॥ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीसान्त्वनेएकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

और हे भीम ! तुमने भयंकर जटासुरसे तो मुझे वचाया था ४३:४४ और सिंध देशका राजा जयद्रथ मुझे हरकर लेगया था उस समय भी तुमने भाइयोंके साथ होकर उसको हराया था सो अव यह पापिष्ठ मेरा अपमान करता है, अतः तुम अव इसको भी मार डालो ॥ ४५ ॥ हे भारत ! यह कीचक राजाका वहुत ही मुँहचढ़ा होनेसे मुझे दुख दिया करता है अतः जैसे घड़ेको पत्थर पर पटक कर फोड़ देते हैं तैसे ही आप कामके मदसे मत्त हुए इस कीचकको मारिये ॥ ४६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यदि यह सूर्योदय पर्यन्त जीता रहेगा तो मुझपर वहुतसी आपत्तियें डालेगा ॥ ४७ ॥ उस समय मैं कीचकके वशमें नहीं जाऊँगी परन्तु विष घोलकर पीजाऊँगी क्यों कि-हे भीम ! कीचकके अधीन होनेकी अपेक्षा तुम्हारे सामने मरना ही अच्छा है ४८ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! इस प्रकार कहकर द्रौपदी भीमसेनकी छाती पर गिरपड़ी और रोने लगी तव भीमसेनने उसको छातीसे चिपटा और युक्तियें वताकर यथा वहुतसे सच्ची वातोंके दृष्टान्त सुनाकर शांत करदिया ॥ ४९ ॥५०॥ तदनन्तर भीमने आँसुओंसे भीजे हुए उसके मुखको हाथसे पोंछकर साफ किया और तदनन्तर अपने दोनों गालोंमें जीभ फिरा २ कर कीचकको दुर्गति वनाने का वह अपने मनमें विचार करने लगा और विचारकरनेके अनन्तर क्रोधमें भरे हुए भीमने दुःखसे व्याकुल हुई द्रौपदीसे इस प्रकार कहा ॥ ५१ ॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

भीमसेन उवाच । तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वम्भीरु भाषसे । अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सह बांधवम् ॥ १ ॥ अस्या प्रदोषे शर्वर्याः कुरुष्वानेन संगतम् । दुःखं शोकं च निर्धूय याज्ञसेनि शुचिस्मिते २ यैषा नर्त्तनशालेह मत्स्यराजेन कारिता । दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम् ॥ ३ ॥ तत्रास्ति शयनं दिव्यं दृढांगं सुप्रतिष्ठितम् । तत्रास्य दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान् पितामहान् ॥ ४ ॥ यथा च त्वां न पश्येयुः कुर्वाणां तेन सम्विदम् । कुर्यास्तथा त्वं कल्याणि यथा सन्निहितो भवेत् ॥ ५ ॥ वैशम्पायन उवाच । तथा तौ कथयित्वा तु बाष्पमुत्सृज्य दुःखितौ । रात्रिशेषं तमत्युग्रं धारयामासतुर्हृदि ॥ ६ ॥ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय कीचकः । गत्वा राजकुलायैव द्रौपदीमिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥ सभायां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदाऽहनम् । न चैवा-

---

भीमसेनने कहा, कि—हे कल्याणि ! तथा भीरु द्रौपदी ! तू जैसा कह रही है मैं वैसा ही करूँगा अधिक क्या कहूँ परन्तु मैं आज ही उस कीचकको बन्धुओं सहित मार डालूँगा ॥१॥ हे पवित्र हास्यवाली द्रौपदी ! तू दुःख तथा शोकको छिपाकर, आनेवाले सायंकालके समय कीचक से कहना कि—"मुझे तुम एकान्तमें नृत्यशालामें मिलना" मत्स्यराजने अभी जो नृत्यशाला बनवाई है उसमें दिनमें तो कन्याएँ नृत्य सीखती हैं और रात्रिको अपने घर चली जाती हैं ॥ ३ ॥ उस नृत्यशालामें लकड़ीका एक दिव्य तथा दृढ़ पलँग बिछा है वहाँ तू कीचकसे मिलनेके लिये कहना और कीचक जब वहाँ संकेतके अनुसार आवेगा तब मैं उसे उसके पिता, पितामह आदि मरेहुए पूर्वपुरुषों का दर्शन कराऊँगा अर्थात् यमपुरी पहुँचा दूँगा ॥ ४ ॥ परन्तु हे कल्याणि ! तू उसके साथ इसप्रकार गुप्त रीतिसे बातचीत करना, कि—दूसरा कोई भी तुझे उसके साथ बातें करते न देख लेय तथा उसके साथ तू इस प्रकार बातें करना कि—वह रात्रिमें समय पर तहाँ आ ही जाय ॥ ५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इसप्रकार दुःखी भीमसेन तथा द्रौपदीने बात चीत करनेके पीछे कुछ देर आँसू बहाये और इस बातको अपने मनमें गुप्त रखकर दोनोंजनोंने बचीहुई सहा उग्र रात्रि बहुत ही व्याकुलतासे काटी ॥ ६ ॥ वह रात्रि बीतगई और प्रातःकाल हुआ तब कीचक उठा और उसने शरीरको स्वच्छ कर राजभवनमें जाकर द्रौपदीसे इसप्रकार कहा, कि—अरी ओ ! मैंने राजसभा में ही राजाके सामने पृथ्वी पर गिराकर तुझे लातोंसे मारा था, तू मुझ

लभसे त्राणमभिपन्ना बलीयसा ॥८॥ प्रवादेनेह मत्स्यानां राजा नाम्नायमुच्यते । अहमेव हि मत्स्यानां राजा वै वाहिनीपतिः ॥ ९ ॥ मां सुखं प्रतिपद्यस्व दासो भीरु भवामि ते । अन्हाय तव सुश्रोणि शतं निष्कान् ददाम्यहम् ॥ १० ॥ दासीशतञ्च ते दद्यां दासानामपि चापरम् । रथं चाश्वतरीयुक्तमस्तु नौ भीरु संगमः ॥ ११ ॥ द्रौपद्युवाच । एवं मे समयं त्वद्य प्रतिपद्यस्व कीचक । न त्वां सखा वा भ्राता वा जानीयात् संगतं मया ॥ १२ ॥ अनुप्रवादाद्भीतास्मि गन्धर्वाणां यशस्विनाम् । एवं मे प्रतिजानीहि ततोऽहं वशगा तव ॥ १३ ॥ कीचक उवाच । एवमेतत् करिष्यामि यथा सुश्रोणि भाषसे । एको भद्रे गमिष्यामि शून्यमावसथं तव ॥ १४ ॥ समागमार्थं रम्भोरु त्वया मदनमोहितः । यथा त्वां नैव पश्येयुर्गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ॥ १५ ॥ द्रौपद्युवाच । यदेतन्नर्तनागारं मत्स्यराजेन कारितम् । दिवात्र कन्या नृत्यन्ति

से बलवान् पुरुषके हाथमें आपड़ी है अब तेरी कोई भी रक्षा नहीं कर सकेगा ॥ ७-८ ॥ यह राजा विराट तो मत्स्यदेशका नाम मात्रका ही राजा कहाता है परन्तु वास्तवमें मैं ही मत्स्य देशका राजा हूँ और सेनापति भी हूँ ॥ ९॥ अतः हे भीरु स्त्री ! तू आनन्दके साथ मुझे स्वीकार करेगी तो मैं तेरा दास बनकर रहूँगा और हे सुश्रोणि ! मैं तुझे प्रतिदिन सोनेकी सौ मुहरें दूँगा ॥ १० ॥ तेरी सेवाके लिये सौ दासी तथा सौ दास दूँगा और खच्चरोंसे जुड़ेहुए रथ भी तेरी सेवामें दूँगा अतः हे भीरु स्त्रि ! हम दोनोंमें परस्पर समागम हो ॥ ११ ॥ द्रौपदी बोली कि—हे कीचक ! तुझे आजसे मेरे एक नियमका पालन करना होगा और मैं तुझसे जिस गुप्त सङ्केत की बात कहती हूँ वह यह है, कि—हमारे इस मेलकी बातको तेरे मित्र तथा बन्धु भी न जानने पावें ॥ १२ ॥ मैं यशस्वी गन्धर्वोंके निन्दावादसे डरती हूँ हे कीचक ! तू मेरे इस एक नियमको स्वीकार करनेकी प्रतिज्ञा करे तो मैं तेरे आधीन होकर रहूँ ॥ १३ ॥ कीचकने कहा कि—हे सुश्रोणि ! तू जिस प्रकार कहती है मैं उसी प्रकार करूँगा हे रम्भोरु ! तेरे समागमके लिये मैं कामसे मोहित होगया हूँ अतएव सूर्यकी समान तेजस्वी गन्धर्व जिस प्रकार तुझे देख नहीं सकेंगे उस ही प्रकार मैं अकेला ही तेरे साथ समागम करनेको तेरे बतलाए हुये स्थान में आऊँगा ॥१४-१५॥ द्रौपदी बोली कि—हे कीचक ! राजा विराटने अभी एक नृत्यशाला बनवाई है उसमें दिनके समय कन्याएं नृत्य सीखा करती हैं और

रात्रौ यान्ति यथागृहम् ॥ १६ ॥ तमिस्रे तत्र गच्छेथा गन्धर्वास्तन्न जानते । तत्र दोषः परिहृतो भविष्यति न संशयः ॥ १७ ॥ वैशम्पायन उवाच । तमर्थमपि जल्पन्त्याः कृष्णायाः कीचकेन ह । दिवसार्धं समभवन्मासेनैव समं नृप ॥ १८ ॥ कीचकोऽथ गृहं गत्वा भृशं दर्पपरिप्लुतः । सैरन्ध्रीरूपिणं मूढो मृत्युं तन्नावबुद्धवान् ॥ १९ ॥ गन्धाभरणमाल्येषु व्यासक्तः स विशेषतः । अलञ्चक्रे तदात्मानं सत्वरः काममोहितः२० तस्य तत् कुर्वतः कर्म कालो दीर्घ इवाभवत् । अनुचिन्तयतश्चापि तामेवायतलोचनाम्॥२१॥ आसीदभ्यधिका चापि श्रीः श्रियं प्रमुमुक्षतः । निर्वाणकाले दीपस्य वर्तीमिव दिधक्षतः ॥ २२ ॥ कृतसम्प्रत्ययस्तस्याः कीचकः काममोहितः । नाजानाद्दिवसं यान्तं चिन्तयानः समागमम् ॥ २३ ॥ ततस्तु द्रौपदी गत्वा तदा भीमं महानसे । उपातिष्ठत कल्याणी कौरव्यं पतिमन्तिकम् ॥ २४ ॥ तमुवाच सुकेशान्ता

रात्रि को अपने२ घर चली जाती हैं ॥ १६ ॥ अतः तू अन्धेरी रात हो जाय तब तहाँ आना कि-जिससे गन्धर्व भी हमारी इस करतूतको न जान सकें और ऐसा करनेसे मैं भी लोकनिन्दासे बच जाऊंगी १७ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे राजा जनमेजय ! द्रौपदीके इसप्रकार बातचीत करनेके पीछे द्रौपदीको वह एक दिन एक मासकी समान मालूम हुआ तदनन्तर कीचक भी हर्षमें भर कर अपने घर चला गया परन्तु वह मूर्ख कीचक यह नहीं समझ सका कि-यह सैरन्ध्री मेरी मृत्युरूप है ॥ १९ ॥ उसने अगर चन्दनके सुगन्धित लेप अपने शरीर पर लगाये गहने तथा पुष्पोंकी मालाएं पहिर लीं कामसे मोहितहुए कीचकने शीघ्रही अपने शरीरको अच्छीप्रकार सजालिया ॥२०॥ और विशाल नेत्रा द्रौपदीका चिन्तवन करते हुए तथा उसके लिए शृंगार सजाते हुए वह दिन बहुत समयकी समान मालूम होने लगा ॥ २१ ॥ दीपक जब बुझनेको होता है तब पहिले वह अपनी बत्तीको जलाना चाहता है उससे जैसे उसका प्रकाश बढ़ता है तैसे ही राज्यलक्ष्मीको त्यागने की इच्छावाले कीचककी शोभा आज बहुत बढ़गई थी ॥ २२ ॥ स्त्रीके ऊपर पूर्ण विश्वास करनेवाले तथा कामसे मोहितहुये कीचकने द्रौपदीके समागमके विचार ही विचारमें सारा दिन बिता डाला और वह दिन किधर चला गया यह उसे मालूम भी नहीं पड़ा ॥२३॥ कल्याणी द्रौपदी कीचकके साथ प्रतिज्ञा करनेके पीछे रसोई घरमें अपने प्राणपति कुरुपुत्र भीमके पास जाकर खड़ी होगई ॥ २४ ॥ और सुन्दर

कीचकस्य मया दत्तः । संगमो नर्तनागारे यथावोचः परन्तप ॥ २५ ॥ शून्यं स नर्तनागारमागमिष्यति कीचकः । एको निशि महाबाहो कीचकं तं निषूदय ॥ २६ ॥ तं सूतपुत्रं कौन्तेय कीचकं मददर्पितम् । गत्वा त्वं नर्तनागारं निर्जीवं कुरु पाण्डव ॥ २७ ॥ दर्पाच्च सूतपुत्रोऽसौ गन्धर्वानवमन्यते । तं त्वं प्रहर्ता श्रेष्ठ ह्रदान्नागमिवोद्धर ॥ २८ ॥ अश्रु दुःखाभिभूताया मम मार्जस्व भारत । आत्मनश्चैव भद्रन्ते कुरु मानं कुलस्य च ॥ २९ ॥ भीमसेन उवाच । एवं करिष्यहं भद्रे, यथा त्वं भीरु भाषसे । स्वागतं ते वरारोहे यन्मां वेदयसे प्रियम् । न ह्यन्यं कञ्चिदिच्छामि सहायं वरवर्णिनि ॥ ३० ॥ या मे प्रीतिस्त्वयाख्याता कीचकस्य समागमे । हत्वा हिडिम्बं सा प्रीतिर्ममासीद्वरवर्णिनि ॥ ३१ ॥ सत्यं भ्रातृंश्च धर्मं च पुरस्कृत्य ब्रवीमि ते । कीचकं निहनिष्यामि वृत्रं देवपतिर्यथा ॥३२॥ तं गह्वरे प्रकाशे वा पोथ-

---

केशोंकी लटोंवाली उस स्त्रीने प्रणाम करके कहा कि-हे परन्तप! तुमने मुझसे जिस प्रकार कहा था उस ही प्रकार मैंने रात्रिमें समागमके लिये कीचकसे नृत्यशालामें आनेको कहा है ॥ २५ ॥ हे महाबाहो! कीचक नियमानुसार आज रात्रिके समय सूनी नृत्यशालामें अकेला आवेगा इससे तुम उसे आज ही ठौर मारदेना ॥ २६ ॥ हे पाण्डुपुत्र! आज रातको तुम नृत्यशालामें जाकर कामके गर्वीले सूतपुत्र कीचकको अवश्य ही मार डालना ॥ २७ ॥ वह सूतपुत्र गर्वसे मत्त होकर उन्मत्त गन्धर्वोंका अपमान करता है अतः हे श्रेष्ठ योधा! श्रीकृष्णजीने जैसे यमुनाजीमेंसे कालिय सर्पका उद्धार किया था वैसे ही तुम भी आज कीचकका उद्धार करना ॥ २८ ॥ और हे भारत! इस दुःखसे घबड़ाई हुई मुझ स्त्रीके आँसू पोंछो; अपना हित करो तथा अपने कुलके मानको बढ़ाओ ॥ २९ ॥ भीमसेन बोला कि—हे सुन्दरांगि! तू अच्छी आई है वरांगि! तूने जो कुछ मुझसे कहा है वह मेरा हित ही है मैं दूसरे किसीकी सहायताको नहीं चाहता ॥ ३० ॥ तूने कीचकसे मिलकर मुझे जो आनन्द उत्पन्न किया है ऐसा ही आनन्द मुझे हिडिम्बासुरको मारते समय हुआ था ॥ ३१ ॥ मैं तेरे आगे धर्म, सत्य तथा भाइयोंकी शपथ खाकर कहता हूं कि—इन्द्रने जैसे वृत्रासुरको मारडाला था इसी प्रकार मैं कीचकको मारडालूँगा ॥ ३२ ॥ मैं कीचकको एकान्तमें अथवा मनुष्योंसे परिपूर्ण (प्रकाश) स्थानमें मारडालूँगा और मत्स्य देशका दूसरा जो कोई मनुष्य उसकी ओर से चढकर

यिष्यामि कीचकम्। अथ चेदपि योत्स्यन्ति हिंसे मत्स्यानपि ध्रुवम् ३३ ततो दुर्योधनं हत्वा प्रतिपत्स्ये वसुन्धराम्। कामं मत्स्यमुपास्तां हि कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥ द्रौपद्युवाच। यथा न संत्यजेथास्त्वं सत्यं वै मत्कृते विभो। निगूढस्त्वं तथा पार्थ कीचकं तं निषूदय ॥ ३५ ॥ भीमसेन उवाच। एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे। अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सह बान्धवैः ॥ ३६ ॥ अदृश्यमानस्तस्याथ तमस्विन्यामनिन्दिते। नागो बिल्वमिवाक्रम्य पोथयिष्याम्यहं शिरः। अलभ्यामिच्छतस्तस्य कीचकस्य दुरात्मनः ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन उवाच। भीमोऽथ प्रथमं गत्वा रात्रौ छन्न उपाविशत्। मृगं हरिरिवादृश्यः प्रत्याकांक्षत कीचकम् ॥ ३८ ॥ कीचकश्चाप्यलंकृत्य यथाकाममुपागमत्। तां वेलां नर्त्तनागारं पाञ्चालीसंगमाशया ॥ ३९ ॥ मन्यमानः स सङ्केतमागारं संप्रविश्य च। स तद्वेश्म परितः तमसा सम्वृतं महत् ॥ ४० ॥ पूर्वा-

---

आवेगा तो मैं उसको भी अवश्य ही मार डालूँगा ॥ ३३ ॥ और पीछे से दुर्योधन को मारकर पृथ्वीका राज्य प्राप्त करूँगा भले ही कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर अपनी इच्छानुसार राजा विराटकी सेवा किया करें द्रौपदी बोली कि—हे समर्थ भीम ! तुम मेरे लिए सत्यका त्याग न करना अर्थात् प्रकट न हो जाना परन्तु हे पार्थ ! तुम कौन हो यह कोई न जान सके इस प्रकार छिप कर तुम कीचकका नाश करना ॥३५॥ भीमसेन बोला कि—हे भीरु ! तू जिस प्रकार कहती है मैं ऐसा ही करूँगा परन्तु आज ही कीचक तथा उसके बान्धवोंको मार डालूँगा हे पवित्र स्त्री ! हाथी जैसे बिल्वफलको कुचलकर टुकड़े२ कर देता है तैसे ही मैं भी अन्धेरी रात्रिमें तुझ अलभ्य नारी को चाहने वाले दुष्टात्मा कीचकको पृथ्वी पर पटक कर वह मुझे देखने भी न पावे इस प्रकार उसके मस्तकको फोड डालूँगा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! तदनन्तर अन्धेरी रात्रि होनेसे पहिले ही भीमसेन नृत्यशाला में जाकर छिप गया और सिंह जैसे गुफामें छिप कर हरिण की बाट देखता है तैसे ही भीमसेन कीचककी बाट देखने लगा ॥ ३८ ॥ कीचक भी चन्दन आदिका लेप लगा पुष्पमाला तथा भूषण आदिसे सज कर समय होते ही अपनी इच्छानुसार द्रौपदी के साथ समागम करनेकी इच्छा से नृत्यशाला की ओरको चला ॥ ३९ ॥ तथा नृत्यशालाके पास आकर तथा उसको संकेतस्थान जानकर उसके भीतर गया इस नृत्यशालामें चारों ओरसे घोर अन्ध-

गतं ततस्तत्र भीममप्रतिमौजसम् । एकान्तावस्थितं चैनमाससाद सुदुर्मतिः ॥ ४१ ॥ शयानं शयने तत्र सूतपुत्रः परामृशत् । जाज्वल्यमानं कोपेन कृष्णाधर्षणजेन ह ॥ ४२ ॥ उपसंगम्य चैवैनं कीचकः काममोहितः । हर्षोन्मथितचित्तात्मा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४३ ॥ प्रापितन्ते मया वित्तं बहुरूपमनन्तकम् । यत् कृतं धनरत्नाढ्यं दासीशतपरिच्छदम् ॥ ४४ ॥ रूपलावण्ययुक्ताभिर्युवतीभिरलंकृतम् । गृहं चान्तः पुरं सुभ्रु क्रीडारतिविराजितम् । तत्सर्वं त्वां समुद्दिश्य सहसाहमुपागतः ॥ ४५ ॥ अकस्मान्मा प्रशंसन्ति सदा गृहगताः स्त्रियः । सुवासा दर्शनीयश्च नान्योऽस्ति त्वादृशः पुमान् ॥ ४६ ॥ भीमसेन उवाच दिष्ट्या त्वं दर्शनीयोऽथ दिष्ट्यात्मानं प्रशंससि । ईदृशस्तु त्वया स्पर्शः स्पृष्टपूर्वो न कर्हिचित् ॥ ४७ ॥ स्पर्शं वेत्सि विदग्धस्त्वं कामधर्मविचक्षणः । स्त्रीणां प्रीतिकरो नान्यस्त्वत्समः पुरुषस्त्विह ॥ ४८ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः । सहसो-

---

कार छा रहा था और तहाँ अनुपम प्राणबल वाला भीमसेन प्रथमसे ही आकर एकान्तमें बिछी हुई एक लकडीकी चौकी पर सो रहा था इस समय भीमसेन अपनी पतिव्रता स्त्री का अनादर होनेसे बहुत ही क्रोधमें भर रहा था कामसे मोहित कीचक उस घोर अन्धकारमें धीरे धीरे भीमकी शय्या के पास पहुँचा और अपने हाथसे भीमके अङ्गको छूकर हर्षमें उन्मत्त होगया और हँसते२ बोला ॥ ४०–४३ ॥ कि—हे सुन्दर भ्रकुटि वाली स्त्रि ! मुझे तेरा रूप रूपी जो अगाध धन मिला है वह धन ही अनन्त है मैं धन रत्न सैंकड़ों दासियें घरकी सामग्री, रूप और लावण्यवाली स्त्रियों से शोभायमान घर तथा विलास और रति आदिसे भूषित घर तथा अन्तःपुर आदि जो कुछ मैंने पाया है वह मैं तुझे देता हूँ और मैं एकायकी तेरे पास ही चला आया हूं ॥ ४४—४५ ॥ प्रसंग पाकर मेरे घरकी स्त्रियें मेरी प्रशंसा करने लगती हैं कि—तुम्हारे समान सुन्दर वस्त्र पहिरने वाला और रूपवान् कोई भी पुरुष नहीं है ॥ ४६ ॥ उस समय भीम ने स्त्रीकी समान धीमे स्वरसे कहा, कि—तू रूपवान् है यह बात तो ठीक है और अपनी प्रशंसा कर रहा है यह भी ठीक ही है परन्तु मेरी समझमें तूने मुझसी स्त्रीका स्पर्श भी पहिले किसी दिन नहीं किया है ॥ ४७ ॥ तू कामशास्त्रमें निपुण और चतुर है तथा स्त्रियोंको तेरी समान कोई दूसरा पुरुष प्रेम उत्पन्न करनेवाला नहीं है ४८

त्पत्य कौन्तेयः प्रहस्येदमुवाच ह ॥ ४९ ॥ अद्य त्वां भगिनी पापं कृष्यमाणं मया भुवि । द्रक्ष्यतेऽद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महागजम् ॥ ५० ॥ निरावाधा त्वयि हते सैरन्ध्री विचरिष्यति । सुखमेव चरिष्यन्ति सैरन्ध्र्याः पतयः सदा ॥ ५१ ॥ ततो जग्राह केशेषु माल्यवत्सु महाबलः । स केशेषु परामृष्टो वलेन वलिनाम्वरः ॥ ५२ ॥ आक्षिप्य केशान्वेगेन वाह्वोर्जग्राह पाण्डवम् । वाहुयुद्धं तयोरासीत् क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥ ५३ ॥ वसन्ते वासिताहेतोर्वलवद्गजयोरिव । कीचकानान्तु मुख्यस्य नराणामुत्तमस्य च ॥ ५४ ॥ वालिसुग्रीवयोर्भ्रात्रोः पुरेव कपिसिंहयोः । अन्योऽन्यमपि संरब्धौ परस्परजयैषिणौ ॥ ५५ ॥ ततः समुद्यम्य भुजौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ । नखदंष्ट्राभिरन्योऽन्यं घ्नतः क्रोधविषोद्धतौ ॥ ५६ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार वात चीत करनेके अनन्तर भयंकर पराक्रमी महावाहु कुन्तीपुत्र भीमसेन एक साथ छलाँग मार कर खडा होगया और हँस कर प्रकट रूपसे कहने लगा कि—। ४९ । सिंह जैसे वड़े पर्वतकी समान हाथीको पृथिवीके ऊपर घसीटता है तैसे ही आज तुझ पापीको मार कर मैं पृथिवीके ऊपर तुझे घसीटूँगा और तेरी वहिन देखेगी ॥ ५० ॥ और सैरन्ध्री तेरे मरजानेसे आनन्दमें दिनोंको वितावेगी तैसे ही उसके पति भी सदा सुखसे दिनोंको वितावेंगे ॥ ५१ ॥ इस प्रकार कह कर महावली भीमसेनने कीचकके पुष्पोंसे युक्त केशोंको पकड़ कर उसको पृथ्वी पर देमारा। ५२ परन्तु इतनेमें ही कीचकने जोर करके अपनी चोटी उसके हाथमेंसे छुटाली और दोनों हाथोंसे भीमको पकड़ लिया तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए दोनों पुरुषसिंहोंमें वाहुयुद्ध होनेलगा ॥ ५३ ॥ जैसे वसन्त ऋतुमें महावली दो हाथी एक ऋतुमती हथिनीके लिये युद्ध करते हों वैसे ही कीचकोंमें ज्येष्ठ कीचक तथा महापुरुष भीमका युद्ध होने लगा ॥ ५४ ॥ और एक दूसरेके ऊपर क्रोधमें भर कर परस्पर एक दूसरेका पराजय करनेकी इच्छासे वानरश्रेष्ठ वाली और सुग्रीवमें जैसा युद्ध हुआ था तैसे ही दोनों एक दूसरेके ऊपर क्रोधमें भरगए और युद्धमें दूसरेको हरानेकी इच्छासे आपसमें युद्ध करने लगे ॥ ५५ ॥ और जैसे पाँच मस्तकवाले सर्प क्रोधरूपी विषसे उद्धत हो अपने फनोंको ऊँचा कर युद्ध करते हैं तैसे ही भीम और कीचक भी क्रोध रूपी विषसे उद्धत बनकर अपनी भुजाओंको ऊँची करके नखरूपी डाढ़ोंसे परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ५६ ॥ लड़ते २ बलवान् कीचकने वेगसे

वेगेनाभिहतो भीमः कीचकेन बलीयसा । स्थिरप्रतिज्ञः स रणे पदान्न चलितः पदम् ॥ ५७ ॥ तावन्योऽन्यं समाश्लिष्य प्रकर्षन्तौ परस्परम् । उभावपि प्रकाशेते प्रवृद्धौ वृषभाविव ॥ ५८ ॥ तयोर्ह्यासीत् सुतुमुलः सम्प्रहारः सुदारुणः । नखदन्तायुधवतोर्व्याघ्रयोरिव दृप्तयोः ५९ अभिपत्याथ बाहुभ्यां प्रत्यगृह्णादमर्षितः । मातंग इव मातंगं प्रभिन्नकरटामुखम् ॥ ६० ॥ स चाप्येनं तदा भीमः प्रतिजग्राह वीर्यवान् । तमाक्षिपत् कीचकोऽथ बलेन बलिनां वरः ॥ ६१ ॥ तयोर्भुजविनिष्पेषादुभयोर्बलिनोस्तदा । शब्दः समभवद् घोरो वेणस्फोटसमो युधि ६२ अथैनमाक्षिप्य बलाद् गृहमध्ये वृकोदरः । धूनयामास वेगेन वायुश्चण्ड इव द्रुमम् ॥ ६३ ॥ भीमेन च परामृष्टो दुर्बलो बलिना रणे । प्रास्पन्दत यथाप्राणं विचकर्ष च पाण्डवम् ॥ ६४ ॥ ईषदाकलितं चापि क्रोधाद् द्रुतपदं स्थितम् । कीचको बलवान् भीमं जानुभ्यामा-

---

भीम पर प्रहार किया परन्तु दृढ़प्रतिज्ञा वाला भीमसेन एक पैर भी पीछेको नहीं हटा ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वह एक दूसरेको पकड़ कर अपनी ओरको खेंचने लगे इस समय युद्ध करतेहुए वह दोनों तरुण बिजारकी समान मालूम होते थे ॥ ५८ ॥ और मदमत्त हुए दो व्याघ्र जैसे नख और दाँत रूपी आयुधोंसे युद्ध करते हैं तैसे भीम और कीचकमें महादारुण और तुमुल युद्ध होन लगा ॥ ५९ ॥ क्रोधमें भरा हुआ एक हाथी, जैसे गंडस्थलमेंसे मद टपकाते हुए सामनेके हाथीको पकड़ लेता है तैसे ही क्रोधमें भरा हुआ कीचक मदमत्त भीमकी ओरको दौड़कर गया और उसको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया ॥ ६० ॥ तब महापराक्रमी भीमसेनने भी दोनों हाथोंसे उसे पकड़ लिया परन्तु महाबली कीचक बल करकै उसके हाथोंमेंसे छूटगया ॥ ६१ ॥ इस समय दोनों बलवानोंकी भुजओंके परस्पर अड़नेसे युद्धमें बाँस फटनेसे जैसा कड़ाका होता है तैसे भयंकर कड़ाके भड़ाके होने लगे । ६२ । तदनन्तर भयंकर वेगसे चलने वाला वायु जैसे वृक्षको टेढ़ा तिरछा झुका देता है तैसे ही भीमसेनने उसको दोनों हाथोंसे पकड़ कर नृत्यशालामें वेगसे घुमाया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार बलवान् भीमसेनने निर्बल कीचकको युद्धमें खूब ही झगझोड़ा तो भी कीचक अपने बलके अनुसार रणमें पराक्रम करने लगा और भीमको पकड़ कर पृथिवी पर पटकनेके लिये खैंचने लगा ॥ ६४ ॥ और बलवान् कीचकने क्षणभरको अपने वशमें करे हुए और क्रोधके मारे अपने स्थान

क्षिपद्भुवि ॥ ६५ ॥ पातितो भुवि भीमस्तु कीचकेन बलीयसा । उत्पपाताथ वेगेन दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ६६ ॥ स्पर्द्धया च बलोन्मत्तौ तावुभौ सूतपाण्डवौ । निशीथे पर्यकर्षेतां बलिनौ निर्जने स्थले ॥६७॥ ततस्तद्भवनं श्रेष्ठं प्राकम्पत मुहुर्मुहुः । बलवच्चापि संक्रुद्धावन्योऽन्यं प्रतिगर्जतः ॥ ६८ ॥ तलाभ्यां स तु भीमेन वक्षस्यभिहतो बली । कीचको रोषसन्तप्तः पदान्न चलितः पदम् ॥ ६९ ॥ मुहूर्तं तु स तं वेगं सहित्वा भुवि दुःसहम् । बलादहीयत तदा सूतो भीमबलार्दितः ७० तं हीयमानं विज्ञाय भीमसेनो महाबलः । वक्षस्यानीय वेगेन ममर्द्दैनं विचेतसम् ॥ ७१ ॥ क्रोधाविष्टो विनिःश्वस्य पुनश्चैनं वृकोदर । जग्राह जयतां श्रेष्ठः केशेष्वेव तदा भृशम् ॥ ७२ ॥ गृहीत्वा कीचकं भीमो विरराज महाबलः । शार्दूलः पिशिताकांक्षी गृहीत्वेव महामृगम् ७३ तत एनं परिश्रान्तमुपलभ्य वृकोदरः । योधयामास बाहुभ्यां पशुं रस-

---

से हट कर खड़े हुए भीम को दोनों घुटनों की चोट देकर पृथिवी पर गिरा दिया ॥ ६५ ॥ इस प्रकार बलवान् कीचक ने भीमको पृथिवी पर पटक दिया परन्तु भीम दण्डधारी यमको समान शीघ्र ही उठकर खड़ा होगया ॥ ६६ ॥ और स्वभावसे ही बलवान् होने पर भी स्पर्धा के कारण अधिक बलवान् हुए भीम और कीचक उस निर्जन नृत्यशालामें रात्रिके समय एक दूसरेको वेगसे रगड़ने लगे ॥ ६७ ॥ और अत्यन्त क्रोधमें भर कर दोनों जने गर्जना करने लगे इससे वह बड़ी भारी नृत्यशाला गुंजारने लगी ॥ ६८ ॥ थोड़े पल पीछे भीमने बलवान् कीचकको छातीमें हथेलीका प्रहार किया तिससे कीचक क्रोध के मारे गरम होगया परन्तु जहाँ खड़ा था वहाँसे एक पग भी पीछे को नहीं हटा ॥ ६९ ॥ वह पृथिवी पर खड़ा रहा और दुस्सह मारके वेगको दो घड़ी तक सहन करता रहा परन्तु भीमके प्रबल प्रहारसे पीड़ा पाकर वह उस समय निर्बल होगया ॥ ७० ॥ महाबलवान् भीमने इस प्रकार कीचकको निर्बल देखकर चेतना रहित अवस्थामें ही उसको पकड़ कर पृथिवी पर पटक दिया उसका मस्तक उसकी नाभिमेंको दबाकर उसको जोरसे मसलने लगा ॥ ७१ ॥ और फिर क्रोधमें भरे हुए महाबलवान् भीमने कीचककी चोटीको जोरसे पकड़ कर जमीन पर पछाड़ दिया ॥ ७२ ॥ उस समय मांसकी इच्छावाला सिंह जैसे बड़े भारी मृगको पकड़ कर शोभायमान होता है तैसे ही भीमसेन महाबली कीचकको पछाड़ कर शोभा पाने लगा ॥ ७३ ॥

नया यथा ॥ ७४ ॥ नदन्तञ्च महानादं भिन्नभेरीसमस्वनम् । भ्रामयामास सुचिरं विस्फुरन्तमचेतसम् ॥ ७५ ॥ प्रगृह्य तरसा दोर्भ्यां कण्ठं तस्य वृकोदरः । अपीडयत कृष्णायास्तदा कोपोपशान्तये ॥ ७६ ॥ अथ तम्भग्नसर्वांगं व्याविद्धनयनाम्बरम् । आक्रम्य च कटीदेशे जानुना कीचकाधमम् । अपीडयत बाहुभ्यां पशुमारममारयत् ॥ ७७ ॥ तं विषीदन्तमाज्ञाय कीचकं पाण्डुनन्दनः । भूतले भ्रामयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ७८॥ अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुर्भार्यापहारिणम् । शांतिं लब्धास्मि परमां हत्वा सैरन्ध्रिकण्टकम् ॥ ७९ ॥ इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीरस्तं कीचकं क्रोधसरागनेत्रः । अस्रस्तवस्त्राभरणं स्फुरन्तमुद्भ्रान्तनेत्रं व्यसुमुत्ससर्ज ॥ ८० ॥ निष्पिष्य पाणिना पाणिं सन्दष्टौष्ठपुटं बली । समाक्रम्य च संक्रुद्धो बलेन बलिनां वरः ॥ ८१ ॥ तस्य

जब भीमने जाना कि-यह कीचक थक गया है तब जैसे पशुको रस्सी में बाँध लेते हैं तिसीप्रकार दोनों हाथोंसे कीचकको कौलियामें जकड़ लिया ॥ ७४ ॥ तब कीचक फूटे हुए नगाड़ेकी समान खोखला शब्द करके महा गर्जना करने लगा और अचेत होने पर भी तड़फड़ाने लगा इस कारणसे भीमने उसे बहुत समय तक भूमि पर पेंडा बेंडा घुमाया ॥ ७५ ॥ तदनन्तर भीमने एक साथ दोनों हाथोंसे उसका गला पकड़ लिया और द्रौपदीका क्रोध शान्त करनेके लिये उसको दिखाया ॥ ७६ ॥ तदनन्तर जिसके सब अङ्ग चकनाचूर होगए थे तथा जिसकी आँखोंकी पुतलियें बाहर निकल आई थीं ऐसे अधम कीचककी कमरको दोनों घुटनोंसे दबाकर तोड़ने लगा और जैसे कोई हाथसे ढोरको मारता हो तैसे ही उसको मारने लगा ॥ ७७ ॥ उस समय कीचक डकराने लगा तब भीमने उसको पृथ्वीमें चारों ओर घसीट कर उससे इस प्रकार कहा कि-॥ ७८ ॥ आज सैरन्ध्रीको काँटेकी समान दुःखदेनेवाले और मेरी भार्याका हरण करनेवाले तुझको मार कर अपने भाईके ऋणसे छूटूँगा और अत्यन्त शान्तिको प्राप्त करूँगा ॥ ७९ ॥ इस प्रकार कहकर क्रोधसे लाल २ नेत्र वाले महावीर भीमने जिसके शरीर परसे वस्त्र तथा आभूषण गिर गए थे जिसकी आँखें फट गईं थीं तथा जो बार २ बिलबिला रहा था उस कीचकको प्राणहीन करके छोड दिया ॥ ८० ॥ फिर महाबलवान् भीमसेन अपने दोनों हाथोंको परस्पर मसलने लगा दाँतोंसे ओठोंको पीसने लगा और क्रोधसे कीचकके शरीर पर चढ कर जैसे शिव

पादौ च पाणी च शिरोग्रीवां च सर्वशः । काये प्रवेशयामास पशोरिव पिनाकधृक् ॥ ८२ ॥ तं संमथितसर्वांगं मांसपिण्डोपमं कृतम् । कृष्णाया दर्शयामास भीमसेनो महाबलः ॥ ८३ ॥ उवाच च महातेजा द्रौपदीं योषितां वराम् । पश्यैनमेहि पांचालि कामुकोऽयं यथाकृतः ८४ एवमुक्त्वा महाराज भीमो भीमपराक्रमः । पादेन पीडयामास तस्य कायं दुरात्मनः ॥ ८५ ॥ ततोऽग्निं तत्र प्रज्वाल्य दर्शयित्वा तु कीचकम् । पाञ्चालीं स तदा वीर इदं वचनमब्रवीत् ॥ ८६ ॥ प्रार्थयन्ति सुकेशान्ते ये त्वां शीलगुणान्विताम् । एवन्ते भीरु वध्यन्ते कीचकः शोभते यथा ॥ ८७ ॥ तत्कृत्वा दुष्करं कर्म कृष्णायाः प्रियमुत्तमम् । तथा स कीचकं हत्वा गत्वा रोषस्य वै शमम् ॥८८॥ आमन्त्र्य द्रौपदीं कृष्णां क्षिप्रमायान्महानसम् । कीचकं घातयित्वा तु द्रौपदी योषितां वरा । प्रहृष्टा गतसन्तापा सभापालानुवाच ह ॥ ८९ ॥ कीचकोऽयं हतः शेते गन्धर्वैः पतिभिर्मम । परस्त्रीकामसंमत्तस्तत्रागच्छत पश्यत ९०

जैसे पशुके सब अङ्गोंको उसके शरीरमें ही प्रविष्ट कर दिया था तैसे ही भीमने भी बल करके कीचकके हाथ पैर, मस्तक तथा कण्ठ इन सब अवयवोंको शरीरमें ही प्रविष्ट कर दिया ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ इस प्रकार उसके सब अवयवोंका चूरा २ करके कीचकको एक मांसके पिण्डकी समान बना दिया, तदनन्तर महातेजस्वी तथा महाबली भीमने स्त्रियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदीसे कहा कि–अरी द्रौपदी ! यहाँ आ और मैंने इस कामीकी कैसी दुर्दशा बनाई है उसे तू देख, यह कह कर द्रौपदीको कीचककी दशा दिखाई ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार द्रौपदीको कीचककी दुर्दशा दिखाकर भयंकर पराक्रमी भीम उस दुष्टात्मा कीचकके शरीरको अपने पैरोंसे फिर खूँदने लगा ८५ इधर देखो हे सुन्दर केशकी लटोंवाली शील तथा गुण भरी तेरी जो पुरुष दुष्ट अभिप्रायसे प्रार्थना करेंगे तो हे भीरु ! वह भी कीचककी समान मरण पाकर इस गतिको प्राप्त होंगे ८७ इस प्रकार भीमसेन द्रौपदीकी इच्छानुसार महाकठिन कीचकको मारनारूपी कार्य करके क्रोधसे मुक्तहुआ तब द्रौपदीकी अनुमति लेकर तुरत ही रसोई घरको चला गया तथा इस प्रकार कीचकको मरवा कर स्त्रियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदी चित्तमें बहुत ही प्रसन्न हुई और फिर वह सन्तापको त्याग कर बाहर आई ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ और उसने नृत्यमन्दिरकी रक्षा करने वाले पहिरेदारोंसे कहा कि—"मेरे गन्धर्व पतिओंने परस्त्री

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या नर्त्तनागाररक्षिणः। सहसैव समाजग्मुरादायोल्कोः सहस्रशः ॥ ९१ ॥ ततो गत्वाथ तद्वेश्म कीचकं विनिपातितम्। गतासुं ददृशुर्भूमौ रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ९२ ॥ पाणिपादविहीनन्तु दृष्ट्वा च व्यथिता भवन्। निरीक्षन्ति ततः सर्वे परं विस्मयमागताः ९३ अमानुषं कृतं कर्म तं दृष्ट्वा विनिपातितम्। क्वास्य ग्रीवा क्व चरणौ क्व पाणी क्व शिरस्तथा इति स्म तं परीक्षन्ते गन्धर्वेण हतं तदा॥९४॥

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
कीचकवधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच। तस्मिन् काले समागम्य सर्वे तत्रास्य बान्धवाः। रुरुदुः कीचकं दृष्ट्वा परिवार्य समन्ततः ॥ १ ॥ सर्वे हृष्टरोमाणः सन्त्रस्ताः प्रेक्ष्य कीचकम्। तथा सम्भिन्नसर्वांगं कूर्मं स्थल इवोद्धृतम् ॥ २ ॥ पोथितं भीमसेनेन तमिन्द्रेणेव दानवम्। संस्कारयितुमिच्छन्तो बहिर्नेतुं प्रचक्रमुः ॥ ३ ॥ ददृशुस्ते ततः कृष्णां सूतपुत्राः

की चाहनासे मदमत्त हुए कीचकको मार डाला है और वह नृत्यशालामें पड़ा हुआ है सो तुम नृत्यशालामें आओ और देखो ॥९०॥ द्रौपदीके ऐसे कथनको सुन कर नृत्यशालाके रक्षक हाथमें जलती हुई हजारों मसालोंको लेकर नृत्यशालामें एक साथ आगए और देखा तो पृथ्वी पर लोहूलुहान हुआ कीचक मराहुआ दीखा ॥ ९१-९२ ॥ उसको हाथ पैर, कण्ठ इत्यादिसे रहित देख कर सब मनमें खेद करने लगे और बड़े आश्चर्यके साथ उसको देखते ही रहे ॥ ९३ ॥ गन्धर्वोंके मारे हुए कीचकको देखकर उसकी परीक्षा करते हुए वह सब बोल उठे कि—यह कार्य मनुष्यका नहीं है अरे! इसके कण्ठ, हाथ पैर मस्तक इत्यादि अवयव कहाँ गए इस प्रकार मरे हुए कीचकको वह सब परीक्षा करने लगे ॥ ९४ ॥ बाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! तदनन्तर कीचकके सब बान्धव कीचककी मृत्युका समाचार सुनकर उसही समय तहाँ आ गए और कीचकको देखकर उसके चारोंओर बैठकर रोदनश्राद्ध करने लगे १ जलमेंसे सूखी पृथ्वी पर निकाले हुए कछुएकी समान जिसके सब अवयव शरीरमें बैठगए थे ऐसे कीचकको देखकर सबके रोमांच खड़े होगए और सब डरगए॥२॥क्योंकि-जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको कुचल कर मार डाला था तैसेही भीमनेभी कीचकको कुचल कर मार डाला था। तदनन्तर उसका अन्तिम संस्कार करनेकी इच्छासे नगर

समागताः । अदूराच्चानवद्यांगीं स्तम्भमालिंग्य तिष्ठतीम् ॥ ४ ॥ समवेतेषु सर्वेषु तामूचुरुपकीचकाः । हन्यतां शीघ्रमसती यत्कृते कीचको हतः ॥ ५ ॥ अथवा नैव हन्तव्या दह्यतां कामिना सह । मृतस्यापि प्रियं कार्यं सूतपुत्रस्य सर्वथा ॥ ६ ॥ ततो विराटमूचुस्ते कीचकोऽस्याः कृते हतः । सहानेनाऽद्य दह्येम तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ७ ॥ पराक्रमन्तु सूतानां मत्वा राजान्वमोदत । सैरन्ध्र्याः सूतपुत्रेण सह दाहं विशाम्पतिः ॥ ८ ॥ तां समासाद्य वित्रस्तां कृष्णां कमललोचनाम् । मोमुह्यमानां ते तत्र जगृहुः कीचका भृशम् ॥ ९ ॥ ततस्तु ता समारोप्य निबध्य च सुमध्यमाम् । जग्मुरुद्यम्य ते सर्वे श्मशानाभिमुखास्तदा ॥ १० ॥ ह्रियमाणा तु सा राजन् सूतपुत्रैरनिन्दिता । प्राक्रोशन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती ॥ ११ ॥ द्रौपद्युवाच । जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः । ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति

के बाहर लेजानेके लिये उसके बान्धव प्रयत्न करने लगे ॥ ३ ॥ इस समय निर्दोषांगी द्रौपदी कीचककी ल्हाशसे थोड़ी दूर एक थम्भसे लगकर खड़ी थी, उसको इकट्ठे हुए सब सूतपुत्रोंने देखा ॥ ४ ॥ तब कीचकके भाई इकट्ठे हुए सब लोगोंके सामने कह उठे कि-जिसके कारण यह कीचक मारा गया है ऐसी व्यभिचारिणी इस स्त्रीको झट मारडालो अथवा इसको मारनेसे छोडदो क्यों कि-इसको कामी कीचकके साथ जला देना ही ठीक होगा क्यों कि-मरे हुए कीचकका हमें सर्वथा प्रिय करना चाहिये ॥ ६ ॥ फिर कीचकके भाइयोंने राजा विराटसे कहा कि-इस स्त्रीके कारण ही कीचककी मृत्यु हुई है अतः हम इस स्त्रीको कीचकके साथ जलाना चाहते हैं इसके लिये आप हमें आज्ञा दीजिये ॥ ७ ॥ राजा विराटने सूतपुत्रोंके पराक्रमकी ओर ध्यान देकर कीचकके साथ द्रौपदीको जला देनेकी सम्मति देदी ॥ ८ ॥ उस समय कमलकी समान नेत्रोंवाली द्रौपदी भयभीत हो मूर्च्छित होगई कीचकके बंधुओंने द्रौपदीको बलात्कारसे पकड लिया ॥ ९ ॥ और सुंदर कमरवाली द्रौपदीको रस्सीसे बांध कीचकके शवके ऊपर डाल लिया और कीचकके शवको उठाकर वे सब सूतपुत्र श्मशानकी ओरको चलदिये ॥ १० ॥ हे राजन् ! जब पवित्र आचारवाली द्रौपदीको शवके साथ बाँधकर कीचकको श्मशानकी ओर लेजाने लगे तब पतिवाली होने पर भी अनाथ बनीहुई सती द्रौपदी बोली ओ जय ! ओ जयन्त ! ओ विजय ! ओ जयत्सेन ! ओ जयद्बल ! तुम मेरी पुकारको

माम् ॥ १२ ॥ येषां ज्यातलनिर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः । व्यश्रूयत महायुद्धे भीमघोषस्तरस्विनाम् ॥ १३ ॥ रथघोषश्च बलवान् गन्धर्वाणां तरस्विनाम् । ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम् ॥१४॥ वैशम्पायन उवाच । तस्यास्ता कृपणा वाचः कृष्णाया परदेवितम् । श्रुत्वैवाभ्यापतद्भीमः शयनादविचारयन् ॥ १५ ॥ भीमसेन उवाच । अहं शृणोमि ते वाचं त्वया सैरन्ध्रि भाषिताम् । तस्मात्ते सूतपुत्रेभ्यो भयं भीरु न विद्यते ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा स महाबाहुर्विजजम्भे जिघांसया । ततः स व्यायतं कृत्वा वेषं विपरिवर्त्य च ॥ १७ ॥ अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य निर्जगाम बहिस्तदा । स भीमसेनः प्राकारादारुह्य तरसा द्रुमम् ॥ १८ ॥ श्मशानाभिमुखः प्रायाद्यत्र ते कीचका गताः । स लंघयित्वा प्राकारं निःसृत्य च पुरोत्तमात् । जवेन पतितो भीमः सूतानामग्रतस्तदा ॥ १९ ॥ चितासमीपे गत्वा स तत्रापश्यद्वनस्पतिम् । तालमात्रं महास्कन्धं मूर्द्धशुष्कं विशाम्पते ॥ २० ॥

सुनो, यह सूतपुत्र मुझे ल्हासके साथ बाँधकर लिये जाते हैं ॥१२॥ जिन वेगवाले गन्धर्वोंके धनुषोंकी प्रत्यञ्चाका शब्द महायुद्धमें भयंकर कड़ाकेकी समान सुनाई आता है ॥ १३ ॥ और जिन महावेगवान् गन्धर्वोंके रथकी ध्वनि भी महाबलवान् है वह गन्धर्व मेरी पुकारको सुनो, अरे रे यह सूतपुत्र मुझे उठाकर श्मशानमें लियेजाते हैं ॥ १४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-द्रौपदीकी दीन वाणी तथा विलापको सुनते ही भीमसेन विना विचारे शय्यापरसे खड़ा होगया और कहने लगा १५ भीमसेन बोला कि-हे सैरंध्रि स्त्री ! तू जो कुछ कह रही है मैं उसको सुनता हूँ हे भीरु ! तुझे अब कीचकोंकी ओरसे भय नहीं है ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-इस प्रकार कह कर कीचकोंको मारनेको इच्छासे महाबाहु भीमसेन अच्छी प्रकार जंभाई लेकर ठीक होगया और उसने गन्धर्वोंकी समान वेश धारण करलिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर एक साथ वह दीवार परसे दौड़कर नगरके दुर्गपर चढ़गया दुर्गको लाँघ कर महानगरमेंसे बाहर निकल पड़ा और एक वृक्ष पर एकाएकी चढ़ कर द्रौपदीको जिस स्थानपर लियेजाते थे उस स्थानको उसने देखा तदनन्तर जहाँ सब कीचक जाते थे उस श्ममशान भूमिकी ओर दौड़ता दौड़ता गया और सूतपुत्रोंसे पहिले ही जाकर खड़ा होगया ॥ १८ ॥ १९ ॥ भीमने चिताके समीप जाकर ताड़की समान लम्बा, बड़ी बड़ी शाखाओं वाला, ऊपरके भागसे सूखा हुआ वृक्ष

तं नागवदुपक्रम्य बाहुभ्यां परिरभ्य च । स्कन्धमारोपयामास दशव्यामं परन्तपः ॥ २१ ॥ स तं वृक्षं दशव्यामं सस्कन्धविटपं बली । प्रगृह्याभ्यद्रवत् सूतान् दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ २२ ॥ ऊरुवेगेन तस्याथ न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकाः । भूमौ निपातिता वृक्षाः संघशस्तत्र शेरते॥२३॥ तं सिंहमिव संक्रुद्धं दृष्ट्वा गन्धर्वमागतम् । वित्रेसुः सर्वशः सूता विषादभयकम्पिताः॥२४॥ गन्धर्वो बलवानेति क्रुद्ध उद्यम्य पादपम् । सैरन्ध्री मुच्यतां शीघ्रं यतो नो भयमागतम् ॥ २५ ॥ ते तु दृष्ट्वा तदा विद्धं भीमसेनेन पादपम् । विमुच्य द्रौपदीं तत्र प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥ २६ ॥ द्रवतस्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य स वज्री दानवानिव । शतं पञ्चाधिकं भीमः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ २७ ॥ वृक्षेणैतेन राजेन्द्र प्रभञ्जनसुतो बली । तत आश्वासयत् कृष्णां स विमुच्य विशाम्पते ॥ २८ ॥ उवाच च महाबाहुर्पाञ्चालीं तत्र द्रौपदीम् । अश्रुपूर्णमुखीन्दीनां दुर्धर्षः स वृकोदरः ॥ २९ ॥ एवन्ते भीरु वध्यन्ते ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम् । प्रैहि

कौलिया मोटा वृक्ष देखा ॥ २० ॥ परन्तप भीमने दोनों हाथोंसे उस वृक्षको पकड़ कर हस्तीकी समान पृथ्वीमेंसे उखेड़ लिया और वह दण्डधारी यमराजकी समान दश कौलिया मोटे तथा शाखा प्रशाखाओंवाले महावृक्षको कन्धेपर डालकर सूतपुत्रोंके सामने वेगसे दौड़ता २ गया ॥२१-२२॥ इस समय भीमकी जंघाओंके वेगसे बहुत से बड़ पीपल और गूलरके ढेरके ढेर पेड़ पृथिवी पर लम्बे होकर गिर गये थे ॥२३॥ सिंहकी समान कोपायमान होकर अपने ऊपरको झुक कर आतेहुए भीमसेनको देखकर सब कीचक भय तथा खेदसे काँपने लगे, वह सब प्रकारसे भयभीत हो बोल उठे कि-॥ २४ ॥ बलवान् गन्धर्व वृक्ष लेकर क्रोधित हो हमारे ऊपर चढ़ा आता है अतःशीघ्रता से इस सैरंध्रीको खोल दो क्योंकि-हमपर भय आनपड़ा है ॥ २५ ॥ परन्तु वह इस प्रकार बातें कर रहे थे इतनेमें ही उस भीमके उठाये हुए वृक्षको देख कीचक द्रौपदीको छोड़ नगरकी ओर भागने लगे२६ परन्तु उनको नगरकी ओर भागते देखकर वज्रधारी इन्द्र जैसे दानवों का संहार करते हैं तैसे ही भीमने अपने पासके वृक्षकी मारसे एक सौ पाँच कीचकोंको हे राजेन्द्र ! यमलोकमें पहुँचा दिया; तदनन्तर महाबाहु, प्रचण्डपराक्रमी पवनपुत्र बलवान् भीमने द्रौपदीको कीचकको काठीमेंसे खोलकर धीरज दिया तथा दीन वाणीसे आँसू डालती हुई द्रौपदीसे कहा कि-॥ २७-२९ ॥ हे भीरु स्त्री ! जो तुझ निरपराधिनी

त्वं नगरं कृष्णे न भयं विद्यते तव ॥ ३० ॥ अन्येनाहं गमिष्यामि विराटस्य महानसम् ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच। पंचाधिकं शतं तच्च निहतं तेन भारत । महावनमिवच्छिन्नं शिश्ये विगलितद्रुमम् ॥ ३२ ॥ एवं ते निहता राजन् शतं पञ्च च कीचकाः । स च सेनापतिः पूर्वमित्येतत् सूतषट्शतम् ॥ ३३ ॥ तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नरा नार्यश्च संगताः । विस्मयं परमं गत्वा नोचुः किंचन भारत ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच । ते दृष्ट्वा निहतान् सूतान् राज्ञे गत्वा न्यवेदयन्। गन्धर्वैर्निहता राजन् सूतपुत्रा महाबलाः ॥ १ ॥ यथा वज्रेण वै दीर्णं पर्वतस्य महच्छिरः । व्यतिकीर्णाः प्रदृश्यन्ते तथा सूता महीतले ॥ २ ॥ सैरन्ध्री च विमुक्तासौ पुनरायाति ते गृहम् । सर्वं संशयितं राजन् नगरन्ते भविष्यति ॥३॥ यथारूपा च सैरन्ध्री गन्धर्वाश्च महाबलाः । पुंसामिष्टश्च विषयो मैथुनाय न संशयः ॥ ४ ॥ यथा

को पीड़ा देते हैं वे इसप्रकार मारेजाते हैं, तू नगरमें जा अब तुझे किसी प्रकारका भय नहीं है ॥ ३० ॥ मैं दूसरे मार्गसे राजा विराटकी पाकशालामें पहुँच जाऊँगा ॥३१॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–महावनमें काटे हुए वृक्ष जैसे गिर पड़े तैसे ही भीमकेमारे हुए एक सौ पाँच कीचक भी भूमिमें गिर पड़े ॥ ३२ ॥ हे राजन्! भीमने इस प्रकार एक सौ पाँच कीचकोंको मारडाला और पहिले सेनापति कीचकको मारडाला था उसके सहित एकसौ छः कीचक मारडाले ॥ ३३ ॥ हे भारत! ऐसे महान् आश्चर्यको देखकर स्त्री पुरुष बड़ा आश्चर्य करने लगे परन्तु कोई भी कुछ बोल नहीं सका ॥ ३४ ॥ तेईसवां अध्याय समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं-कि–हे राजा जनमेजय! तदनन्तर जिन नगरके मनुष्योंने यह सब देखा था उन्होंने राजाके सामने आकर निवेदन किया कि हे राजन्! गन्धर्वोंने महाबलशाली सूतपुत्रोंको मारडाला है ॥ १ ॥ और वज्रसे जैसे पर्वतका शिखर चूराचूरा होकर पृथिवी पर गिर पड़ता है तैसे ही प्रत्येक कीचक गन्धर्वोंके हाथसे मरण पाकर भूमिपर उलटे सीधे पड़े हैं ॥ २ ॥ और सैरंध्री उनके हाथमेंसे छूट कर फिर आपके घर आरही है यह सैरंध्री यदि नगरमें रहेगी तो सम्पूर्ण नगर भयमें पड़जायगा ॥ ३ ॥ क्योंकि–सैरंध्री अत्यन्त रूपवती है उसके पति गन्धर्व महाबलवान् हैं और पुरुषोंकी काम-

दोषेण न ते राजन्निदम्पुरम् । विनाशमेति वै क्षिप्रं तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विराटो वाहिनीपतिः । अब्रवीत् क्रियतामेषां सूतानां परमक्रिया ॥ ६ ॥ एकस्मिन्नेव ते सर्वे सुसमिद्धे हुताशने । दह्यन्तां कीचकाः शीघ्रं रत्नैर्गन्धैश्च सर्वशः ॥ ७ ॥ सुदेष्णामब्रवीद्राजा महिषीं जातसाध्वसः । सैरन्ध्रीमागतां ब्रूया ममैव वचनादिदम् ॥ ८ ॥ गच्छ सैरन्ध्रि भद्रन्ते यथाकामं वरानने । बिभेति राजा सुश्रोणि गन्धर्वेभ्यः पराभवात् ॥ ९ ॥ न हि त्वामुत्सहे वक्तुं स्वयं गन्धर्वरक्षिताम् । स्त्रियाऽस्त्वदोषास्ता वक्तुमतस्त्वां प्रब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच । अथ मुक्ता भयात् कृष्णा सूतपुत्रान्निरस्य च । मोक्षिता भीमसेनेन जगाम नगरम्प्रति ॥ ११ ॥ त्रासितेव मृगी बाला शार्दूलेन मनस्विनी । गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा ॥ १२ ॥ तां दृष्ट्वा पुरुषा राजन् प्राद्रवन्त दिशो दश । गन्धर्वाणांभयत्रस्ताः केचिद् दृष्ट्वा

पर प्रीति होती है यह बात निःसन्देह है ॥४॥ अतः हे महाराज सैरंध्री के अपराधसे तुम्हारा यह राज्य नष्ट न होजाय इस प्रकारकी किसी रीतिका आप शीघ्र ही उपाय करें तो अच्छा है ॥ ५ ॥ सेनापति राजा विराटने प्रजाके वचनोंको सुननेके अनन्तर अपने मनुष्योंको आज्ञा दी कि–मरे हुए कीचकोंकी अन्त्येष्टिक्रिया श्रेष्ठतासे करो और एक ही चिता बनाकर उसमें अच्छी प्रकार अग्नि प्रज्वलित होजाय तब सुगंधित पदार्थ और रत्नोंके साथ सम्पूर्ण कीचकोंका शीघ्र ही एक साथ अग्निदाह करो ॥ ६–७ ॥ इसप्रकार अनुचरवर्गोंको आज्ञा देनेके अनंतर राजाको भी नगरके नष्ट होनेका मनमें भय लगरहा था इसलिये उसने पटरानी सुदेष्णासे कहा कि–जब सैरंध्री तुम्हारे घर आवे तब उससे मेरे कहनेके अनुसार यह कहना कि—॥ ८ ॥ हे सुन्दरवदनि ! तेरा कल्याण हो, तेरी जहाँ इच्छा हो तहाँ चली जा क्योंकि—हे सुश्रोणि ! राजाजी गंधर्वोंके तिरस्कारसे डरते हैं ॥ ९ ॥ गंधर्व तेरी रक्षा करतेहैं अतः तू त्यागनेके योग्य है यह बात राजा तुझसे अपने आप कहनेका साहस नहीं करसकते परन्तु तेरे साथ स्त्रियोंके बात चीत करनेमेंकुछ दोष नहीं है इस कारण मैं राजाका संदेशा तुझसे कहती हूँ ॥ १० ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय ! भीमने सूतपुत्रोंका संहार करनेके अनंतर भयमेंसे छूटी हुई द्रौपदीको राजा विराटके नगरकी ओर भेजा ॥११॥ सिंहसे डरी हुई छोटीसी मृगीकी समान डरी हुईसी मनस्विनी द्रौपदी अपने वस्त्रोंको धो स्नान करके राजा विराटके नगरमें

न्यमीलयन् ॥१३॥ ततो महानसद्वारि भीमसेनमवस्थितम् । ददर्श राजन् पांचाली यथा मत्तं महाद्विपम् ॥ १४ ॥ तं विस्मयन्ती शनकैः संज्ञाभिरिदमब्रवीत् । गन्धर्वराजाय नमो येनास्मि परिमोचिता ॥१५॥ भीम उवाच । ये पुरा विचरन्तीह पुरुषा वशवर्त्तिनः । तस्यास्ते वचनं श्रुत्वा ह्यनृणा विहरन्त्ववतः ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततः सा नर्त्तनागारे धनञ्जयमपश्यत । राज्ञः कन्या विराटस्य नर्त्तयानं महाभुजम् ॥१७ ॥ ततस्ता नर्त्तनागाराद्विनिष्क्रम्य सहार्जुनाः । कन्या ददृशुरायान्तीं क्लिष्टां कृष्णामनागसम् ॥ १८॥ कन्या ऊचुः । दिष्ट्या सैरन्ध्रि मुक्तासि दिष्ट्यासि पुनरागता । दिष्ट्या विनिहताः सूता ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम् ॥१९॥ बृहन्नलोवाच । कथं सैरन्ध्रि मुक्तासि कथं पापाश्च ते हताः । इच्छामि वै तव श्रोतुं सर्वमेव यथातथम् ॥ २० ॥ सैरन्ध्र्युवाच । बृहन्नले किन्नु तव

आई ॥१२॥ तब हे राजन् ! उसको देखकर बहुतसे पुरुष गंधर्वोंके भय से डरकर दशों दिशाओंमेंको भागने लगे और बहुतसे पुरुषोंने उसको देख आंखें ही मीचलीं ॥ १३ ॥ द्रौपदीने नगरमें आते २ पाकशालाके द्वारपर मदमत्त हाथीकी समान खड़े भीमसेनको देखा ॥१४॥ तबभीम को आश्चर्य उत्पन्न कराती हुई धीरेसे संज्ञाओं (इशारों) के द्वारा इस प्रकार बोली जिस गंधर्वने मुझे दुःखमेंसे छुडाया है उस गंधर्वराजको मैं प्रणाम करती हूँ ॥ १५ ॥ भीमसेन बोला "हे सुभगे ! जो गंधर्व तेरे अधीन रहकर पहिले इस नगरमें गुप्तवास करके रहते थे, वह तेरे प्रेम पूर्ण विनयके वचनोंको सुनकर ऋण रहित हुए हैं और वह अब आनन्दसे इस नगरमें दिनोंको बितावें" ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-तदनंतर द्रौपदी नृत्यमंदिरमें, जहां कि-अर्जुन राजा विराटकी कन्याओं को नृत्य सिखाया करता था तहां उससे मिलनेको गई और अर्जुनको देखा ॥ १७ ॥ फिर निरपराधिनी होनेपर भी दुःखिनी द्रौपदीको आते हुए देखकर अर्जुनके साथ सम्पूर्ण कन्याएँ नृत्यशालामेंसे बाहर निकल कर बोलीं ॥ १८ ॥ कन्याओंने कहा कि-हे सैरंध्री ! तू दुःखमेंसे छूट गई यह बहुत ही अच्छा हुआ, तू लौटकर आई यह भी ठीक ही हुआ और तुझसी निरपराधिनी स्त्रीको दुःख देनेवाले कीचक मारे गए यह भी बहुत अच्छा हुआ १९ बृहन्नला बोली सैरंध्रि ! तू पापियोंके हाथमें से कैसे छूटी ? तथा वह पापी किस प्रकार मारेगए ? यह सब मैं तुझ से यथार्थ रीतिसे सुनना चाहती हूँ ॥ २० ॥ सैरंध्री बोली कि—हे कल्याणी बृहन्नला ! तुझे अब सैरंध्रीसे क्या काम है ? क्यों कि-अब तो

सैरन्ध्रया कार्यमद्य वै । या त्वम्वससि कल्याणि सदा कन्यापुरे सुखम् २१ न हि दुःखं समवाप्नोषि सैरन्ध्री यदुपाश्नुते । तेन मां दुःखितामेवं पृच्छसे प्रहसन्निव ॥ २२ ॥ बृहन्नलोवाच । बृहन्नलापि कल्याणि दुःखमाप्नोत्यनुत्तमम् । तिर्यग्योनिगता बाले न चैनामवबुध्यसे ॥२३॥ त्वया सहोषिता चास्मि त्वं च सर्वैःसहोषिता॥ क्लिश्यन्त्यां त्वयि सुश्रोणि को नु दुःखं न चिन्तयेत्॥२४॥ न तु केनचिदत्यन्तं कस्यचिद्धृदयं क्वचित् । वेदितुं शक्यते नूनं तेन मां नावबुध्यसे ॥२५॥ वैशम्पायन उवाच । ततः सहैव कन्याभिर्द्रौपदी राजवेश्म तत् । प्रविवेश सुदेष्णायाः समीपमुपगामिनी ॥२६॥ तामब्रवीद्राजपत्नी विराटवचनादिदम् । सैरन्ध्री गम्यतां शीघ्रं यत्र कामयसे गतिम् ॥ २७॥ राजा बिभेति ते भद्रे गन्धर्वेभ्यः पराभवात् । त्वञ्चापि तरुणी सुभ्रु रूपेणाप्रतिमा भुवि । पुंसामिष्टश्च विषयो गन्धर्वाश्चातिकोपनाः ॥ २८ ॥ सैरन्ध्र्युवाच । त्रयोदशाहमात्रं मे राजा क्षमयतु भामिनि । कृतकृत्या भविष्यन्ति गन्धर्वास्ते न संशयः २९

तू कन्याओंके अंतःपुरमें सदा सुखसे रहती है । २१ । जो दुःख सैरंध्री भोगती है वह दुःख तुझे नहीं मिलता है इसीसे तू मेरी हँसी करती हुई सी ऐसा बूझती है २२ बृहन्नला बोली कि—हे बाले ! कल्याणि ! बृहन्नलाभी नपुंसकके रूपमें बडा दुःख पाती है क्या इसकी तुझे खबर नहीं है ? २३ मैं तेरे साथ रही हूँ और तू हम सबोंके साथ रही है अतः तुझे सब मालूम ही है हे सुश्रोणि ! तेरे ऊपर दुःख पडने पर किसके मनमें दुःख नहीं होगा २४ परंतु कोई भी मनुष्य किसी भी दिन दूसरे मनुष्यके चित्तकी वृत्तियोंको भली प्रकार नहीं जान सकता इसीसे तू मेरी दशाको नहीं जानती है २५ वैशम्पायन कहते हैं कि—तदनंतर द्रौपदी कन्याओंके साथ साथ राजमन्दिरमें गई और सुदेष्णाके पास जाकर खडी होगई २६ तब रानी सुदेष्णाने राजा विराटके कहनेके अनुसार कहा कि—हे भद्रे ! तेरे पति गंधर्वोंके तिरस्कारसे राजाजी डरते हैं और सुन्दर भ्रकुटीवाली ! तू तरुणी है और पृथिवी पर अनुपमरूप सम्पन्न है पुरुषोंको भी विषय वांछा अधिकतर होती है और गंधर्व बहुत ही क्रोधी हैं इससे राजा डरते हैं सो हे सैरन्ध्रि ! तुझे जहाँ जाने की इच्छा हो तहाँ चलीजा ॥ २७–२८ ॥ सैरन्ध्री बोली कि—हे रानी ! राजा केवल तेरह दिन ही रहनेके लिए क्षमा करें तेरह दिनके पीछे मेरे पति गन्धर्व अपना कार्य समाप्त करलेंगे इसमें संदेह नहीं है २९ तेरह दिन पीछे गंधर्व मुझे यहाँसे लिवा जायँगे, तुम्हारा हित करेंगे

ततो मामुपनेष्यन्ति करिष्यन्ति च ते प्रियम् । ध्रुवञ्च श्रेयसा राजा योक्ष्यते सह बान्धवैः ॥ ३० ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि कीचकदाहे
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ समाप्तञ्च कीचकवधपर्व ॥

* अथ गोहरणपर्व *

वैशम्पायन उवाच । कीचकस्य तु घातेन सानुजस्य विशाम्पते । अत्याहितं चिन्तयित्वा व्यस्मयन्त पृथक् जनाः ॥ १ ॥ तस्मिन् पुरे जनपदे सञ्जल्पोभूच्च संघशः । शौर्याद्धि वल्लभो राज्ञो महासत्त्वः स कीचकः ॥ २ ॥ आसीत् प्रहर्त्ता सैन्यानां दारामर्षी च दुर्मतिः । स हतः खलु पापात्मा गन्धर्वैर्दुष्टपूरुषः ॥ ३ ॥ इत्यजल्पन्महाराज परानीकविनाशनम् । देशे देशे मनुष्याश्च कीचकं दुष्प्रधर्षणम् ॥ ४ ॥ अथ वै धार्त्तराष्ट्रेण प्रयुक्ता ये बहिश्चराः । मृगयित्वा बहून् ग्रामान् राष्ट्राणि नगराणि च ॥ ५ ॥ संविधाय यथादृष्टं यथादेशप्रदर्शनम् । कृतकृत्या न्यवर्त्तन्त ते चरा नगरं प्रति ॥ ६ ॥ तत्र दृष्ट्वा तु राजानं कौरव्यं धृतराष्ट्रजम् । द्रोणकर्णकृपैः सार्धं भीष्मेण च महात्मना ॥ ७ ॥

तथा मेरे पतियोंकी ओरसे निःसंदेह राजा तथा उनके कुटुम्बियोंका भी हित होगा ३० चौवीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥ कीचकवधपर्वसमाप्त

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे राजन् ! कीचक तथा उसके बन्धु एक साथ ही मारे गए इस महाभयानक घटनाका विचार करके पृथक्२ वर्णके मनुष्य अचम्भेमें पड़गये ॥१॥ हे महाराज ! विराट नगर में तथा भिन्न२ देशोंमें मनुष्य मिलकर बातें करने लगे कि-महाबलवान् कीचक शूरवीरपनेके कारण राजा विराटका प्यारा था ॥ २ ॥ परन्तु लोगोंको लूटनेवाला परस्त्रीकी लज्जा उतारनेवाला दुष्टबुद्धि और पापी था तब ही तो गंधर्वोंने उस दुष्टको मारडाला है इसप्रकार शत्रुसेना संहारक कीचकके विषयमें देश २ के मनुष्य बातें करने लगे ॥ ३-४ ॥ पाण्डवोंको वनमें रहतेहुए बारह वर्ष बीत गए हैं और गुप्तवास करनेका तेरहवाँ वर्ष चल रहा है इस कारण धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने पाण्डवोंको ढूंढनेके लिये देश देशान्तरोंमें गुप्तदूत भेजे थे वह बहुतसे ग्रामोंमें देशोंमें तथा नगरोंमें दुर्योधनकी आज्ञानुसार पांडवों को ढूँढते फिरे तथाअपनेको सौंपेहुए कार्यमें कृतकृत्य हो ! हस्तिनापुरकी ओरको लौट चले ॥५-६॥ वह हस्तिनापुरमें आकर राजसभामें गए तहाँ उन्होंने द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, महात्मा भीष्मपितामह

संगतं भ्रातृभिश्चापि त्रिगर्तैश्च महारथैः । दुर्योधनं सभामध्ये आसीनमिदमब्रुवन् ॥ ८ ॥ चरा ऊचुः । कृतोऽस्माभिः परो यत्नस्तेषामन्वेषणे सदा । पाण्डवानां मनुष्येन्द्र तस्मिन्महति कानने ॥ ९ ॥ निर्जने मृगसङ्कीर्णे नानाद्रुमलताकुले । लताप्रतानवहुले नानागुल्मसमावृते ॥१०॥ न च विद्मो गता येन पार्थाः सुदृढविक्रमाः । मार्गमाणाः पदन्यासं तेषु तेषु तथा तथा ॥ ११ ॥ गिरिकूटेषु तुंगेषु नानाजनपदेषु च । जनाकीर्णेषु देशेषु खर्वटेषु पुरेषु च ॥ १२ ॥ नरेन्द्र वहुशोन्विष्टा नैव विद्मश्च पाण्डवान् । अत्यन्तं वा विनष्टास्ते भद्रन्तुभ्यं नरर्षभ ॥ १३ ॥ वर्त्मन्यन्वेष्यमाणा वै रथिनां रथिसत्तम । न हि विद्मो गतिं तेषां वासं हि नरसत्तम ॥ १४ ॥ किञ्चित्कालं मनुष्येन्द्र सूतानामनुगा वयम् । मृगयित्वा यथान्यायं वेदितार्थाः स्म तत्त्वतः ॥ १५ ॥ प्राप्ता द्वारवतीं सूता विना पार्थैः परन्तप । न तत्र कृष्णा राजेन्द्र पाण्डवाश्च महाव्रताः ॥ १६ ॥ सर्वथा विप्रनष्टास्ते नमस्ते भरतर्षभ । न हि विद्मो

भाई तथा महारथी त्रिगर्तदेशके राजाओंके साथ सभामें वैठेहुए दुर्योधनसे इसप्रकार निवेदन किया ॥ ७-८ ॥ दूत वोले कि-हे नरेन्द्र! हमने महावनमें पाण्डवोंको ढूँढनेके लिये सर्वदा वहुत ही उपाय किया, हम निर्जन पशु पक्षियोंसे भरपूर, नानाप्रकारके वृक्षोंसे और लताओंके झुंडोंसे तथा तन्तुओंसे अत्यन्त भरपूर अनेकों प्रकारके झुंडोंसे भरे ऐसे महा आरण्यके वहुतसे स्थानोंमें उनके पैरोंके चिन्हों से वहुत खोजकी परन्तु दृढ़पराक्रमी पाण्डव किस मार्गसे गए यह हमें मालूम नहीं हुआ ॥९-११॥ और हे नरेंद्र! ऊँचे पर्वतोंके शिखरों पर नाना प्रकारके देशोंमें, भिन्न २ प्रकारके मनुष्योंसे भी भरपूर नगरोंमें उजाड़ स्थानोंमें तथा नगरीमें भी पाण्डवोंको वहुत खोजा परन्तु कहीं भी उनका पता नहीं लगा सो हे नरर्षभ! प्रतीत होता है कि वह निश्चय ही मरगए हैं, आपका कल्याण हो ॥१२-१३॥ हे रथिश्रेष्ठ! हमने लौटतेसमयभी मार्गमें उनको वहुत खोजा परन्तु वह महारथी कहाँ रहते हैं और क्या करते हैं यह पता हमें नहीं मिला॥१४। हे राजन्! हम कितने ही समय तक उनके सारथियोंके पीछे २ भटके और वहुत ध्यान देकर उनको ढूंढा इससे ठीक २ वात मालूम हो गई है ॥ १५ ॥ हे परन्तप! हमारे जाननेमें यह आया है कि इंद्रसेन आदिक पाण्डवोंके सारथी पाण्डवोंके विना अकेले ही द्वारिका पुरीमें चलेगए हैं परन्तु हे राजेन्द्र! द्रौपदी और पाण्डव द्वारिकामें नहीं

गतिं तेषां वासं वापि महात्मनाम् ॥ १७ ॥ पाण्डवानां प्रवृत्तिश्च विद्म कर्मापि वा कृतम्। स नः शाधि मनुष्येन्द्र अत ऊर्ध्वं विशाम्पते ॥१८॥ अन्वेषणे पाण्डवानां भूयः किं करवामहे। इमाञ्च नः प्रियां वीर वाचं भद्रवतीं शृणु ॥ १९ ॥ येन त्रिगर्त्तानि हता बलेन महता नृप। सूतेन राज्ञा मत्स्यस्य कीचकेन बलीयसा॥२०॥ स हतः पतितः शेते गन्धर्वैर्निशि मारितः। अदृश्यमानैर्दुष्टात्मा भ्रातृभिः सहसोदरैः ॥ २१ ॥ प्रियमेतदुपश्रुत्य शत्रूणां च पराभवम्। कृतकृत्यश्च कौरव्य विधत्स्व यदनन्तरम् ॥२२॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि चार-
प्रत्यागमने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततो दुर्योधनो राजा ज्ञात्वा तेषां वचस्तदा। चिरमन्तर्मना भूत्वा प्रत्युवाच सभासदः ॥ १ ॥ सुदुःखा खलु कार्याणां गतिर्विज्ञातुमन्ततः। तस्मात् सर्वे निरीक्षध्वं क्व नु ते पाण्डवा गताः ॥ २ ॥ अल्पावशिष्टं कालस्य गतभूयिष्ठमन्ततः। तेषामज्ञातच-

---

हैं ॥ १६ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ! हमने खोजकी तब भी महाव्रतधारी पाण्डवोंका निवास स्थान, उनका एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाना, उनकी किस कामके करनेकी इच्छा है यह तथा उनके करे कामका पता नहीं लगा इससे सिद्ध होता है कि—वह नष्ट होगए। हे राजन्! अब आगेके लिये आपको जो आज्ञा देनी हो वह दीजिये और हम, पाण्डवोंको खोजनेके लिये अब क्या उपाय करें? सो बताइये। हे वीर! हमारी कल्याणकारी एक शुभ बात सुनो ॥१७-१९॥ हे राजन्! राजा विराटके यहाँ कीचक नामवाला एक महाबलवान् सेनापति था जिसने त्रिगर्त देशके राजाओंको नष्ट कियाथा उस दुष्टात्मा कीचकको तथा उसके भाइयोंको गुप्त रहनेवाले गंधर्वोंने रात्रिमें मारडाला है और कीचक अपने सहोदर भाइयोंके साथ मृत्यु पाकर पृथ्वीपर पड़ा है हे कुरुपुत्र! आप इस प्रिय समाचारको सुनकर तथा शत्रुके तिरस्कारको सुनकर कृतार्थ हुए हो अब आपको जो कुछ करना हो सो करिये ॥ २५ ॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय! राजा दुर्योधनने अपने दूतोंके वचन सुननेके अनन्तर अपने मनमें बहुत कुछ विचार किया और अपने सभासदोंसे कहा कि—॥ १॥ किसी भी कामके फलको जानना यह बात निश्चय ही बड़ी कठिन है अतः तुम सब विचार

र्षेऽस्मिन् वर्षे त्रयोदशे ॥ ३ ॥ अस्य वर्णस्य शेषञ्चेत् व्यतीयुरिह पाण्डवाः । निवृत्तसमयास्ते हि सत्यव्रतपरायणाः ॥ ४ ॥ क्षरन्त इव नागेन्द्राः सर्वे ह्याशीविषोपमाः । दुःखा भवेयुः संरब्धा कौरवान् प्रति ते ध्रुवम् ॥ ५ ॥ सर्वे कालस्य वेत्तारः कृच्छ्ररूपधराः स्थिताः । प्रविशेयुर्जितक्रोधास्तावदेव पुनर्वनम् ॥ ६ ॥ तस्मात् क्षिप्रं बुभूषध्वं तथा तेऽत्यंतमव्ययम् । राज्यं निर्द्वन्द्वमव्यग्रं निःसपत्नं चिरम्भवेत् ॥ ७ ॥ अथाब्रवीत्ततः कर्णः क्षिप्रं गच्छन्तु भारत । अन्ये धूर्ता नरा दक्षा निभृताः साधुकारिणः ॥ ८ ॥ चरन्तु देशान् संवीताः स्फीतान् जनपदाकुलान् । तत्र गोष्ठीषु रम्यासु सिद्धप्रव्रजितेषु च ॥ ९ ॥ परिचारेषु तीर्थेषु विविधेष्वाकरेषु च । विज्ञातव्या मनुष्यैस्तैस्तर्कया सुविनीतया ॥ १० ॥ विविधैस्तत्परैः सम्यक् तज्ज्ञैर्निपुणसंवृतैः । अन्वेष्टव्याः सुनिपुणैः पाण्डवाश्छन्नवासिनः ॥ ११ ॥ नदीकुञ्जेषु तीर्थेषु ग्रामेषु

करो कि पांडव कहाँ गए होंगे ॥ २ ॥ यह तेरहवाँ वर्ष उनके गुप्त रहनेका है, उसमेंसे बहुतसा समय तो बीतगया है और कुछ थोड़ासा ही बाकी रहगया है ॥ ३ ॥ यह थोड़ा सा बचा हुआ समय यदि बीत जायगा तो फिर सत्यवादी पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा के पूर्ण होनेसे अपने राज्यमें आवेंगे ॥ ४ ॥ तथा मद टपकाने वाले हाथीकी समान और विष उगलने वाले सर्पकी समान महाक्रोधी पांडव कौरवोंको अवश्य ही दुःख देंगे ॥ ५ ॥ सब पाण्डव समय को जानने वाले हैं, कष्टकारक भयंकर रूपको धारण करने वाले हैं और क्रोधका विजय करनेवाले हैं अतः उनको दूसरी बार वनमें जानापड़े इसलिये उनको ढूंढ निकालो कि–जिससे हमारा राज्य चिरकाल तक बना रहे और शत्रुरहित तथा आनन्ददायक हो ॥ ६–७ ॥ यह सुनकर हे भरतवंशी राजन्! कि–हमारा हित चाहने वाले धूर्त और बुद्धिमान् पुरुष गुप्त रीतिसे बड़े बड़े देशोंमें तथा सम्पत्ति वाले नगरोंमें जायँ और तहाँ विद्वानोंकी बड़ी २ सभाओंमें सिद्ध पुरुषोंके आश्रमोंमें, राजनगरोंमें, तीर्थोंमें तथा प्रकार २ की पर्वतोंकी गुफाओंमें जाकर इन दूतोंको बहुतही विचारयुक्त तर्कबुद्धि दौड़ाकर पांडवोंको खोज निकालना चाहिये ॥ ८—१० ॥ तैसे ही ढूंढनेके काममें कुशलतावाले पुरुषोंको ढूंढनेके कार्यमें तत्पर हो अपने स्वरूपको छिपाकर अनेकों प्रकारकी चतुरताके द्वारा, नदीके तट परकी कुंजोंमें, तीर्थोंमें ग्रामोंमें नगरोंमें, रमणीय आश्रमोंमें, पर्वतोंपर तथा गुफाओंमें जाकर

नगरेषु च। आश्रमेषु च रम्येषु पर्वतेषु गुहासु च ॥ १२॥ अथाग्रजानन्तरजः पापभावानुरागवान्। ज्येष्ठो दुःशासनस्तत्र भ्राता भ्रातरमब्रवीत् ॥ १३॥ येषु न प्रत्ययो राजंश्चारेषु मनुजाधिप। ते यान्तु दत्तदेया वै भूयस्तान् परिमार्गितुम् ॥ १४॥ एतच्च कर्णो यत् प्राह सर्वं मन्यामहे तथा। यथोद्दिष्टं चराः सर्वे मृगयंतु ततस्ततः ॥ १५॥ एते चान्ये च भूयांसो देशाद्देशं यथाविधि। न तु तेषां गतिर्वासः प्रवृत्तिश्चोपलभ्यते ॥ १६॥ अत्यन्तं वा निगूढास्ते पारं चोर्मिमता गताः। व्यालैश्चापि महारण्ये भक्षिताः शूरमानिनः ॥ १७॥ अथवा विषमं प्राप्य विनिष्टाः शाश्वतीः समाः। तस्मान्मानसमव्यग्रं कृत्वा त्वं कुरुनंदन। कुरु कार्यं महोत्साहं मंयसे यन्नराधिप॥ १८॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि कर्णदुःशासनवाक्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच। अथाब्रवीन्महावीर्यो द्रोणस्तत्वार्थदर्शिवान्। न तादृशा विनश्यन्ति न प्रयान्ति पराभवम् ॥ १ ॥ शूराश्च कृतवि-

जहाँ पाण्डव छिपकर बैठे हों तहाँसे उन्हें ढूंढ निकालना चाहिये ११-१२ तदनन्तर महापापी दुर्योधनके छोटे भाई दुःशासनने दुर्योधनसे कहा कि ॥ १३ ॥ हे मनुष्याधिपते! जिन दूतों पर आपका अच्छी प्रकार विश्वास हो उनको मार्गका खर्च दो और वह पाण्डवोंको ढूंढनेके लिये फिर जायँ ॥ १४ ॥ और कर्णने जो कुछ कहा है वह सब हमको मान्य है कि—सम्पूर्ण दूत हमारी आज्ञानुसार पाण्डवोंको ढूंढना आरम्भ करें ॥ १५ ॥ हमारे दूत आज्ञानुसार पांडवोंको खोजनेके लिये देश देशमें गये थे परन्तु पांडवोंका निवास उनका गमन, तथा उनकी किसी प्रकारकी सूचना कोई बात भी मालूम नहीं हुई ॥ १६ ॥ अतः क्या तो शूरवीरका मान रखने वाले पांडव अच्छी प्रकार कहीं छुप रहे होंगे अथवा समुद्रके परलीपार भागगए होंगे अथवा महावनमें उनको हिंसक प्राणी खागए होंगे ।१७। अथवा वह कष्टमें पडकर सदा के लिये चलबसे होंगे अतः हे कुरुनंदन राजन्! तुम मनको स्थिर करके मेरा कहना मानो तो बडे उत्साहसे अपना कार्य करो १८ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त २६ छ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय! तदनंतर तत्वार्थदर्शी महापराक्रमी द्रोणाचार्य बोले कि—पाण्डव जैसे महापुरुष कभी नष्ट नहीं होसकते तथा किसीसे तिरस्कार भी नहीं पासकते १ पाण्डव

वाश्च बुद्धिमन्तो जितेन्द्रियाः । धर्मज्ञाश्च कृतज्ञाश्च धर्मराजमनुव्रताः२ नीतिधर्मार्थतत्त्वज्ञं पितृवच्च समाहितम् । धर्मे स्थितं सत्यधृतिं ज्येष्ठं ज्येष्ठानुयायिनः ॥ ३ ॥ अनुव्रता महात्मानं भ्रातरो भ्रातरं नृप । अजातशत्रुं श्रीमन्तं सर्वभ्रातॄननुव्रतम्४तेषां तथाविधेयानां निभृतानां महात्मनाम्।किमर्थं नीतिमान् पार्थः श्रेयो नैषां करिष्यति५तस्माद्यत्नात् प्रतीक्षन्ते कालस्योदयमागतम् । न हि ते नाशमृच्छेयुरिति पश्याम्यहं धिया ॥ ६ ॥ साम्प्रतं चैव यत्कार्यं तच्च क्षिप्रमकालिकम् । क्रियतां साधु सञ्चिन्त्य वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम् ॥७॥ यथावत् पाण्डुपुत्राणां सर्वार्थेषु धृतात्मनाम् । दुर्ज्ञेयाः खलु शूरास्ते दुरापास्तपसावृताः ८ शुद्धात्मा गुणवान् पार्थः सत्यवान्नीतिमान् शुचिः । तेजोराशिरसंख्येयो

शूरवीर विद्यामान् बुद्धिमान् जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, कृतज्ञ तथा धर्मराजकी आज्ञानुसार चलनेवाले हैं ॥ २ ॥ तैसे ही धर्मराज भी नीति धर्म तथा अर्थका तत्त्व जाननेवाले धर्मपर आधार रखने वाले सच्चे धैर्यवान् सबसे बडे अजातशत्रु श्रीमान् और सब भाइयोंके अनुकूल रहनेवाले हैं, तैसे महात्मा युधिष्ठिरको, बडोंके आचारके अनुसार चलनेवाले भीमादिक चारों भाई पिताकी समान मानते हैं तथा उनकी ही आज्ञामें चला करते हैं ॥ ३-४ ॥ अतः नीतिमान् पाण्डुपुत्र धर्मराज किंकरकी समान अपने अधीन रहनेवाले अत्यन्त सावधान अपने भाइयोंका हित क्यों नहीं करेंगे ॥५॥ पाण्डव उत्तम प्रयत्न करके अपने उदय कालकी बाट देखते होंगे परन्तु वह मरे नहीं हैं, ऐसा बुद्धिसे विचार करते हुए मेरे ध्यानमें आता है ॥ ६ ॥ अतः अब जो काम करना हो उसको अच्छी प्रकार विचार करके बिना विलम्बके झट करडालो और सब विषयोंमें सूक्ष्मतासे ध्यान देने वाले पाण्डवोंके निवासस्थानको ठीक २ खोजकर निकालो क्यों कि-पाण्डव निश्चय ही शूरवीर, तपस्वी तथा हाथमें न आनेवाले हैं और कोई ढूंढकर उन्हें पा लेवे ऐसे नहीं हैं ॥७-८॥ इनमें धर्मपुत्र युधिष्ठिर शुद्ध अन्तःकरणके गुणवान् सत्यवान् नीतिमान् पवित्र तेजका ढेर और महाबली हैं अतः वह प्रत्यक्ष दीखजायँ तो भी मनुष्योंको मोहित करडालें इसलिये दूसरा कोई भी उन्हें पहिचान नहीं सकता ॥ ९ ॥ इसलिये सब विचार कर काम करो तथा ब्राह्मणोंके द्वारा सिद्ध पुरुषोंके द्वारा चारणोंके द्वारा और दूसरे जो उनको पहिचानते हों उनके द्वारा,

गृह्णीयादपि चक्षुषा ॥ ९ ॥ विज्ञाय क्रियतां तस्माद्भूयश्च मृगयामहे । ब्राह्मणैश्चारकैः सिद्धैर्ये चान्ये तद्विदो जनाः ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि द्रोणवाक्ये
चारप्रत्याचारे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः । श्रुतवान् देशकालज्ञस्तत्त्वज्ञः सर्वधर्मवित् ॥ १ ॥ आचार्यवाक्योपरमे तद्वाक्यमभिसन्दधत् । हितार्थं समुवाचैनां भारतीं भारतान् प्रति ।२। युधिष्ठिरे समासक्तां धर्मज्ञे धर्मसंवृताम् । असत्सु दुर्लभां नित्यं सतां चाभिमतां सदा ३ भीष्मः समवदत्तत्र गिरं साधुभिरर्चिताम् । यथैष ब्राह्मणः प्राह द्रोणः सर्वार्थतत्त्ववित् ॥ ४ ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नाः साधुव्रतसमन्विताः । श्रुतव्रतोपपन्नाश्च नानाश्रुतिसमन्विताः ॥ ५ ॥ वृद्धानुशासने युक्ताः सत्यव्रतपरायणाः । समयं समयज्ञास्ते पालयन्तः शुचिव्रताः ॥ ६ ॥ क्षत्रधर्मरता नित्यं केशवानुगताः सदा । प्रवीरपुरुषास्ते वै महात्मानो महाबलाः । नावसादितुमर्हन्ति उद्वहन्तः सतां धुरम् ॥ ७॥ धर्मतश्चैव गुप्तास्ते स्ववीर्येण च पाण्डवाः । न नाशमधि-

पाण्डवोंकी फिर खोज कराओ ॥ १० ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं कि-तदनन्तर भरतवंशी राजाओंके पितामह शास्त्रसम्पन्न, देश तथा कार्यको जाननेवाले, सर्वधर्मोंमें निपुण भीष्म पितामह१ पहिले अध्यायके अनुसार द्रोणाचार्यके बोलचुकने पर उनके कहनेके अनुसार ही,कौरवोंके हितके लिए,कौरवोंसे,पाण्डवोंके विषयमें बोले ॥ २ ॥ भीष्म पितामहकी वह वाणी, धर्म पर प्रीति रखने वाले राजा युधिष्ठिरके विषयमें थी, यह बात धर्मसे भरी सत्पुरुषोंको सदा सब प्रकारसे मानने योग्य थी और दुर्जन उसके मर्म भागको भी न पहिचान सकें ऐसी गूढ थी ॥ ३ ॥ भीष्मपितामह पक्षपात रहित, महात्मा पुरुषोंकी मान्य बात कहते हुए कहने लगे कि-सब विषयके तत्वको जाननेवाले द्रोणाचार्यने जो कहा है कि-॥४॥ पाण्डव सकल शुभ लक्षणोंसे युक्त महात्मा पुरुषोंके व्रतोंको पालने वाले शास्त्र पढे हुए सदाचारी अनेकों कथाओंके प्रबन्धोंको जानने वाले वृद्धोंके उपदेशोंको पालनेवाले सत्य तथा शीलपरायण समयको जाननेवाले, समयकी रक्षा करनेवाले, पवित्र नियमों वाले, नित्य क्षत्रियोंके धर्ममें तत्पर, सदा श्रीकृष्णके अनुगामी महावीर, महात्मा महाबली और महात्मा पुरुषोंके कार्यरूपी भारको उठानेवाले हैं इस कारण वह दुःख

गच्छेयुरिति मे धीयते मतिः ॥ ८ ॥ तत्र बुद्धि प्रवक्ष्यामि पाण्डवान् प्रति भारत । न तु नीतिः सुनीतस्य शक्यतेऽन्वेषितुं परैः ॥ ९ ॥ यत्तु शक्यमिहास्माभिस्तान्वै सञ्चिन्त्य पाण्डवान् । बुद्ध्या प्रयुक्तं न द्रोहात् प्रवक्ष्यामि निबोध तत् ॥ १० ॥ न त्वियं मादृशैर्नीतिस्तस्य वाच्या कथञ्चन । सा त्वियं साधु वक्तव्या न त्वनीतिः कथञ्चन ।११। वृद्धानुशासने तात तिष्ठता सत्यशीलिना । अवश्यं त्विह धीरेण सतां मध्ये विवक्षता ॥ १२ ॥ यथार्हमिह वक्तव्यं सर्वथा धर्मलिप्सया । तत्र नाहं तथा मन्ये यथायमितरो जनः ॥ १३ ॥ निवासं धर्मराजस्य वर्षेऽस्मिन् वै त्रयोदशे । तत्र तात न तेषां हि राज्ञा भाव्यमसाम्प्रतम्१४ पुरे जनपदे चापि यत्र राजा युधिष्ठिरः । दानशीलो वदान्यश्च निभृतो ह्रीनिषेवकः । जनो जनपदे भाव्यो यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥ प्रियवादी सदा दान्तो भव्यः सत्यपरो जनः । हृष्टः पुष्टः शुचिर्दक्षो

भोगनेके योग्य नहीं हैं, ॥ ५-७ ॥ यह सत्य ही है पाण्डव धर्मसे तथा उत्तम प्रकारकी वीरतासे रक्षित हैं, अतः वह नष्ट नहीं हुए होंगे ऐसा मेरा दृढ विचार है ॥८॥ हे भरतवंशी राजन् ! अब मैं तुमको पांडवों के खोजनेके विषयमें अपनी सम्मति कहता हूं नीति जाननेवाले पुरुष को अपना कार्य साधनेके लिए साधारण दूतोंसे पाण्डवोंका ढुंढवाना इसको चतुर मनुष्य नीति नहीं कहते हैं ॥ ९ ॥ तथापि पाण्डवोंके विषयमें भलेप्रकार विचार करतेहुए मुझे जो ठीक मालूम होता है वही मैं कहता हूँ, परन्तु इससे तुम मेरे ऊपर ऐसी शङ्का न करना कि-मैं द्रोहके कारण तुमसे इसप्रकार कहता हूँ अब मैं जोकुछ कहता हूँ उस पर ध्यान दो१०राजा युधिष्ठिरकी नीतिको, मुझ सरीखा पुरुष किसी प्रकार निन्दा नहीं करसकता, युधिष्ठिरकी नीतिको अच्छी नीति ही कहना चाहिये किसी प्रकार भी बुरी कहना ठीक नहीं है११हे तात ! वृद्धोंकी आज्ञामें रहनेवाले धीर और सत्यशील विद्वान् पुरुषको सत्पुरुषोंकी सभामें कोई भी बात कहनी हो तो सर्वथा धर्म प्राप्त करने की इच्छासे जो सत्य बात हो वह ही कहनी चाहिये,सो तुम सब साधारण लोगोंने जैसे इस तेरहवें वर्षमें युधिष्ठिरके रहनेके विषयमें जिस प्रकारके विचार बांधे हैं, तैसा मैं नहीं मानता, हे तात ! जिस देशमें अथवा नगरमें राजा युधिष्ठिर रहते होंगे उस देशके अथवा नगरके राजाका अमङ्गल नहीं होना चाहिये किन्तु जिस देशमें राजा युधिष्ठिर रहते हों उस देशके मनुष्य भी दानी उदार जितेंद्रिय तथा लज्जाशील

यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ १६ ॥ नासूयको न चापीर्षुर्नाभिमानी न मत्सरी । भविष्यति जनस्तत्र स्वयं धर्ममनुव्रतः ॥ १७ ॥ ब्रह्मघोषाश्च भूयांसः पूर्णाहुतयस्तथैव च । क्रतवश्च भविष्यन्ति भूयांसो भूरिदक्षिणाः ॥१८॥ सदा च तत्र पर्जन्यः सम्यग्वर्षी न संशयः । सम्पन्नसस्या च मही निरातंका भविष्यति ॥ १९ ॥ गुणवन्ति च धान्यानि रसवन्ति फलानि च । गन्धवन्ति च माल्यानि शुभशब्दा च भारती२० वायुश्च सुखसंस्पर्शो निष्प्रतीपं च दर्शनम् । न भयं त्वाविशेत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २१ ॥ गावश्च बहुलास्तत्र न कृशा न च दुर्बलाः । पयांसि दधि सर्पींषि रसवन्ति हितानि च ॥ २२ ॥ गुणवन्ति च पेयानि भोज्यानि रसवन्ति च । तत्र देशे भविष्यन्ति यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥ रसः स्पर्शाश्च गन्धाश्च शब्दाश्चापि गुणान्विताः । दृश्यानि च प्रसन्नानि यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥ धर्माश्च तत्र

होने चाहिये १२-१५ और राजा युधिष्ठिर जिस देशमें रहते होंगे उस देशके मनुष्य- हृष्ट पुष्ट, पवित्र चतुर प्रियवादी दान्त, श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त और सत्यपरायण होने चाहिये ॥१६॥ और जहाँ राजा युधिष्ठिर रहते होंगे तहाँके लोग असूया दूसरेके गुणोंमें दोष लगानेसे रहित ईर्ष्यारहित अभिमान रहित मत्सरता रहित और जातिधर्मके अनुसार बर्ताव करनेवाले होंगे ॥ १७ ॥ और तहाँ वेदोंकी अनन्त ध्वनियें, यज्ञोंकी पूर्ण आहुतियें और दक्षिणावाले यज्ञ होते होंगे ॥ १८ ॥ और तहाँ सदा वर्षा अच्छी प्रकार होती होगी इसमे सन्देह नहीं है और वह देश बहुतसे अन्न वाला और पीडारहित भी होगा ॥१९॥ और तहाँ सारवाले अन्न रसयुक्त फल सुगन्धित पुष्प और शुभ शब्दोंसे युक्त वाणी बोली जाती होगी॥२०॥ तैसे ही जहाँ राजा युधिष्ठिर रहते होंगे तहाँ सुखदायक पवन चलती होगी, पाखण्डसे रहित धर्मका स्वरूप देखनेमें आता होगा, और किसीको भी भय नहीं होगा २१ और तहाँ बहुतसी गौएँ होंगी उनके शरीर कृश तथा बलरहित नहीं होंगे किन्तु पुष्ट और बलवान् होंगे तहाँ दूध दही और घीभी रसयुक्त और हितकारक होंगे ॥ २२ ॥ तैसे ही जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे तहाँ खाने और पीनेके पदार्थ रसभरे और हितकारी ही होंगे ॥ २३ ॥ और जहाँ राजा युधिष्ठिर रहते होंगे तहाँ रस स्पर्श गंध तथा शब्द गुणों से भरपूर होंगे और फल भी प्रसन्न दीखते होंगे ॥ २४ ॥ संक्षेप में इतना कहना है कि-इस तेरहवें वर्षमें राजा युधिष्ठिर जहाँ

सर्वैस्तु सेविताश्च द्विजातिभिः स्वैः स्वैर्गुणैश्च संयुक्ता अस्मिन्वर्षे त्रयोदशे ॥२५॥ देशे,तस्मिन् भविष्यन्ति तात पाण्डवसंयुते । सम्प्रीतिमान् जनस्तत्र सन्तुष्टः शुचिरव्ययः ॥ २६ ॥ देवतातिथिपूजासु सर्वभावानुरागवान् । इष्टदानो महोत्साहः स्वस्वधर्मपरायणः ॥ २७ ॥ अशुभाद्धि शुभप्रेप्सुरिष्टयज्ञः शुभव्रतः । भविष्यति जनस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥ त्यक्तवाक्यानृतस्तात शुभकल्याणमङ्गलः । शुभार्थेप्सुः शुभमतिर्यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥ भविष्यति जनस्तत्र नित्यञ्चेष्टप्रियव्रतः । धर्मात्मा शक्यते ज्ञातुं नापि तात द्विजातिभिः ३० किं पुनः प्राकृतैस्तात पार्थो विज्ञायते क्वचित् । यस्मिन् सत्यं धृतिर्दानं परा शान्तिर्ध्रुवा क्षमा ॥ ३१ ॥ ह्रीः श्रीः कीर्त्तिः परन्तेज आनृशंस्यमथार्ज्जवम् । तस्मात्तत्र निवासन्तु छन्नं यत्नेन धीमतः । गति

रहते होंगे तहाँ सकल द्विज वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य धर्मको पालते होंगे और धर्म स्वयं अपने गुणोंसे सम्पन्न होगा ॥ २५ ॥ हे तात ! जिस देशमें पाण्डव रहते होंगे उस देशमें सब लोग प्रीतियुक्त संतोषी पवित्र तथा अकाल मृत्युहीन होंगे ॥२६॥ देवताओंकी पूजामें अच्छी प्रकार श्रद्धावान् दान पर प्रीति रखनेवाले अतीव उत्साहसे युक्त और अपने२ धर्ममें लगेहुए होंगे ॥ २७ ॥ जहाँ राजा युधिष्ठिर रहते होंगे तहाँ के पुरुष अशुभको छोड़ कर शुभ वस्तुकी चाहना करते होंगे यज्ञ पर प्रीति करनेवाले होंगे और श्रेष्ठ व्रतोंको धारण करते होंगे ॥ २८ ॥ और हे तात ! जहाँ राजा युधिष्ठिर रहते होंगे तहाँके मनुष्य असत्य बातोंको छोड़नेवाले सुन्दर कल्याणयुक्त शुभ वस्तुकी इच्छा करनेवाले और शुभ मतिवाले होंगे ॥ २९ ॥ तथा सदा परोपकारादि कर्ममें प्रीति रखनेवाले होंगे । हे तात ! ऐसे धर्मात्मा जिन युधिष्ठिरके देहमें सत्य, धैर्य उत्तम प्रकारकी शान्ति, अचल क्षमा, लज्जा, लक्ष्मी, कीर्त्ति, महाप्रभाव, दयालुता तथा सरलता आदि गुण वास करते हैं उन धर्मराजको ब्राह्मण भी नहीं पहिचान सकते तब साधारण मनुष्य तो पहिचान ही कैसे सकेंगे, अतः ऊपर कहे देशमें राजा युधिष्ठिर गुप्तरीति से रहते होंगे सो तू प्रयत्न करके जहाँ वह हों तहाँ जा इसके सिवाय मैं दूसरी बात नहीं कहसकता ३०-३२ हे कुरुवंशी राजन् ! राजा युधिष्ठिरके अज्ञातवासके विषयमें मैंने जो बातें कहीं हैं उन पर तुझे विश्वास आता हो तो तू उनका अच्छी

च परमां तत्र नोत्सहे वक्तुमन्यथा ॥ २२ ॥ एवमेतत्तु संचिन्त्य यत्कृते मन्यसे हितम् । तत् क्षिप्रं कुरु कौरव्य यद्येवं श्रद्दधासि मे ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि चारप्रत्याचारे
भीष्मवाक्ये अष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः शारद्वतो वाक्यमित्युवाच कृपस्तदा । युक्तं प्राप्तञ्च वृद्धेन पाण्डवान् प्रति भाषितम् ॥ १ ॥ धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं तत्त्वतश्च सहेतुकम् । तत्रानुरूपं भीष्मेण ममाप्यत्र गिरं शृणु २ तेषां चैव गतिस्तीर्थैर्वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम् । नीतिर्विधीयतां चापि साम्प्रतं या हिता भवेत् ॥ ३ ॥ नावज्ञेयो रिपुस्तात प्राकृतोऽपि बुभूषता । किं पुनः पाण्डवास्तात सर्वास्त्रकुशला रणे ॥ ४ ॥ तस्मात् सत्रं प्रविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु । गूढभावेषु छन्नेषु काले चोदयमागते ॥ ५ ॥ स्वराष्ट्रे परराष्ट्रे च ज्ञातव्यं बलमात्मनः । उदयः पाण्डवानां च प्राप्ते काले न संशयः ॥ ६ ॥ निवृत्तसमयाः पार्था महात्मानो

प्रकार विचार कर और जो बात तुझे अच्छी जचे उसे शीघ्र ही कार्यरूपमें ला ॥ २३ ॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! तदनन्तर शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य बोले कि-वृद्ध भीष्मने पाण्डवोंके खोजने के लिए जो तुमसे कहा है, वह युक्तियुक्त समयानुकूल धर्म तथा अर्थसे भराहुआ मनोहर यथार्थ हेतुवाला और कल्याणकारी तथा उचित बात है अब इस विषयमें मेरा विचार भी सुनो दूतोंसे पाण्डवोंके गुप्त विचरनेका तथा रहनेका पता लगवाओ और जिसमें अपना हित हो उस उत्तम नीतिसे काम लो, हे तात ! जिस पुरुषको महाराज बननेकी इच्छा हो उसको चाहिये, कि-साधारण शत्रुका भी अपमान नहीं करे, फिर रणमें सब प्रकारके अस्त्रोंकी चतुराई दिखानेवाले पाण्डवोंका तो अपमान किया ही कैसे जासकता है ? ॥ १-४ ॥ गूढ़ अभिप्रायवाले महात्मा पाण्डव, वेश बदल कर इस तेरहवें वर्षमें किसी स्थानमें छिप कर रहते हैं ऐसा जान पड़ता है और अब उनके प्रकट होनेका समय पास ही आगया है, इसकारण अपनी शक्ति, अपने देशमें तथा परदेशमें कितना बल रखती है यह आपको जानना चाहिए क्योंकि-प्रतिज्ञाका समय पूरा होने पर पाण्डवोंका उदय होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ ६ ॥ महाबली महात्मा पाण्डवोंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करली है इस कारणसे अपार प्राण बलवाले पाण्डव बड़े उत्-

महाबलाः । महोत्साहा भविष्यन्ति पांडवा ह्यमितौजसः ॥७॥ तस्माद् बलञ्च कोशञ्च नीतिश्चापि विधीयताम् । यथा कालोदये प्राप्ते सम्यक्तैः सन्दधामहे ॥८॥ तात बुध्यापि तत्सर्वं बुद्ध्यस्व बलमात्मनः। नियतं सर्वमित्रेषु बलवत्स्वबलेषु च ॥ ९ ॥ उच्चावचं बलं ज्ञात्वा मध्यस्थञ्चापि भारत । प्रहृष्टमप्रहृष्टञ्च सन्दधाम तथा परैः ॥ १० ॥ साम्ना भेदेन दानेन दण्डेन बलिकर्मणा । न्यायेनाक्रम्य च परान् बलाच्चानम्य दुर्बलान् ॥ ११॥ सान्त्वयित्वा तु मित्राणि बलञ्चाभाष्यतां सुखम् । सुकोशबलसंवृद्धः सम्यक् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १२ ॥ योत्स्यसे चापि बलिभिररिभिः प्रत्युपस्थितैः । अन्यैस्त्वं पाण्डवैर्वापि

साही होजायँगे ॥ ७ ॥ इससे अब तुम सेनाको तयार करो, खजानेको भी अच्छी दशामें रक्खो तथा नीतिका उत्तम प्रयोग करो अर्थात् वेतन दान तथा दूत भेजना ये काम करो । जिससे समय आने पर हम उनसे युद्ध अथवा मेल करसकें ॥ ८ ॥ हे तात ! तुम अपनी बुद्धिके बलसे देखो कि-तुम्हारी सब सेनाकी क्या दशा है तुम्हारे बलवान् तथा निर्बल सब मित्रोंमें अटल बल कितना है ? इसको भी बुद्धिसे जाँचो ॥ ९ ॥ हे भारत ! उत्तम श्रेणीकी मध्य श्रेणीकी और नीची श्रेणीकी तुम्हारी सेना तुमसे प्रसन्न है या अप्रसन्न है, इसको भी तुम ध्यान देकर देखो यदि सन्तुष्ट हो तो शत्रुओंके साथ युद्ध करनेको धनुषों पर बाण चढ़ावें और जो असन्तुष्ट हो तो मेल करलें ॥ १० ॥ नीति तो यह है कि-साम दाम भेद दण्ड तथा कर लेना इसके द्वारा न्याय पूर्वक शत्रुको वशमें करे नहीं तो शत्रुओंके ऊपर चढ़ाई करे अर्थात् अपने समान बलवालेको साम और भेदसे अपनेसे अधिक बलवान् हो तो धन देकर अथवा उसके मनुष्योंमें फूट डालकर अपनेसे हीन बलवाला हो तो उसे दबाकर अथवा कर लेकर वशमें करे ॥ ११ ॥ धीरज आदि शान्तिकी बातोंसे मित्रको वशमें करे, प्रेमपूर्वक बातचीत करके और वेतन तथा सन्मान आदि देकर जिसमें अपनी सेना सुखी हो उस प्रकार ही उसका सत्कार करके उसको वशमें करे इसप्रकार सबको वशमें करनेसे धनके भंडारकी तथा सेनाकी वृद्धि होने पर तुम्हारे कार्यकी सिद्धि भी पूर्ण रीतिसे होगी ॥ १२ ॥ हे,राजेन्द्र ! इसप्रकार सब कार्योंका बिचार करके सबको ठीक कर रखनेसे सेना तथा वाहनोंसे हीन पांडव वा दूसरे बलवान् शत्रु राजे तुम्हारे ऊपर यदि चढ आवेंगे तो भी तुम

हीनैः स्वबलवाहनैः ॥ १३ ॥ एवं सर्वं विनिश्चित्य व्यवसायं स्वधर्मतः । यथाकालं मनुष्येन्द्र चिरं सुखमवाप्स्यसि ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि चार-
प्रत्याचारे कृपवाक्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

वैशम्पायन उवाच । अथ राजा त्रिगर्त्तानां सुशर्मा रथयूथपः । प्राप्तकालमिदं वाक्यमुवाच त्वरितो बली ॥ १ ॥ असकृन्निकृताः पूर्वं मत्स्यशाल्वेयकैः प्रभो । सूतेनैव च मत्स्यस्य कीचकेन पुनः पुनः ॥२॥ बाधितो बन्धुभिः सार्द्धं बलाद्बलवतां विभो । स कर्णमभ्युदीक्ष्याथ दुर्योधनमभाषत ॥ ३ ॥ असकृन्मत्स्यराज्ञा मे राष्ट्रं बाधितमोजसा प्रणेता कीचकस्तस्य बलवानभवत् पुरा ॥ ४ ॥ क्रूरामर्षी स दुष्टात्मा भुवि प्रख्यातविक्रमः । निहतः स तु गन्धर्वैः पापकर्मा नृशंसवान् ॥५॥ तस्मिन् विनिहते राजा हतदर्पो निराश्रयः । भविष्यति निरुत्साहो विराट इति मे मतिः ॥६॥ तत्र यात्रा मम मता यदि ते रोचतेऽनघ । कौरवाणां च सर्वेषां कर्णस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥ एतत् प्राप्तमहं

उनके साथ युद्ध कर सकोगे ॥ १३ ॥ और धर्मानुसार विचार करके काम करनेसे समय पड़ने पर तुम बहुत काल तक स्थिर रहनेवाले सुखको पासकोगे ॥ १४ ॥ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि-हेजनमेजय ! तदनन्तर रथ मण्डलका स्वामी त्रिगर्तोंका राजा बलवान् सुशर्मा, कीचकोंके मरणकी बात सुनकर झटपट महाबलवान् भीष्म पितामह सुनलें इस प्रकार कर्णके सामनेको देखकर समयानुसार राजा दुर्योधनसे कहने लगा कि—हे दुर्योधन ! पहिले हमारे ऊपर मत्स्यराजने तथा शाल्ववंशी राजाओंने बारम्बार चढ़ाई करके दुःख दिया था तथा मत्स्यराजके सूत कीचकने तो बारम्बार हल्ले करके मुझे और मेरे बंधुओंको बहुत दुःखित किया था ।१-३। पहिले मत्स्यराजने बार२ दबाव देकर मेरे देशको दुःखित किया था क्योंकि-उस समय बलवान् कीचक उसका सेनापति था ४ परन्तु अब क्रूर ईर्ष्यालु दुष्टात्मा, पृथिवीपर प्रसिद्ध पराक्रमी पापकर्म करने वाले उस सूतको कीचकको गन्धर्वोंने मारडाला है ॥५॥ इस प्रकार उसके मरनेसे असहाय हुआ राजा विराट घमण्ड तथा उत्साह से हीन होगया होगा ऐसा मेरा विचार है।६। अतः हे निर्दोष राजन् ! मेरा तो मत्स्य देश पर चढ़ाई करनेका विचार है, परन्तु आपको सब कौरवोंको तथा कर्णको अच्छा लगे तब ही ॥७॥ यह प्राप्त हुआ कार्य

मन्ये कार्यमात्ययिकं हि नः। राष्ट्रन्तस्याभियास्यामो वहुधान्यसमाकुलम्॥ ८॥ आदद्मोस्य रत्नानि विविधानि वसूनि च। ग्रामान् राष्ट्राणि वा तस्य हरिष्यामो विभागशः॥ ९॥ अथवा गोसहस्राणि शुभानि च वहूनि च। विविधानि हरिष्यामः प्रतिपीड्य पुरं वलात्॥१०॥ कौरवैः सह संगत्य त्रिगर्तैश्च विशाम्पते। गास्तस्यापहरामोद्य सर्वैश्चैव सुसंहताः॥ ११ ॥ संधिभागेन कृत्वा तु निवध्नीमोस्य पौरुषम्। हत्वा चास्य चमूं कृत्स्नां वशमेवानयामहे॥ १२॥ तं वशे न्यायतः कृत्वा सुखं वत्स्यामहे वयम्। भवतां वलवृद्धिश्च भविष्यति न संशयः॥ १३॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कर्णो राजानमब्रवीत्। सूक्तं सुशर्मणा वाक्यं प्राप्तकालं हितं च नः॥ १४॥ तस्मात् क्षिप्रं विनिर्यामो योजयित्वा वरूथिनीम्। विभज्य चाप्यनीकानि यथा वा मन्यसेऽनघ॥ १५॥ प्राज्ञो वा कुरुवृद्धोयं सर्वेषां न पितामहः। आचार्यश्च यथा द्रोणः कृपः शारद्वतस्तथा। मन्यन्ते ते तथा सर्वे तथा यात्रा विधीयताम्॥ १६॥ सम्मन्त्र्य चाशु गच्छामः साधनार्थं महीपतेः।

हमें अवश्य ही करना चाहिये हम वहुत अन्नवाले विराटके देशपर चढ़ाई करेंगे॥ ८॥ और तदनन्तर अनेक प्रकारके रत्नोंको तथा धनोंको छीन ग्राम तथा देशोंको अपने वशमें करकेयथायोग्य वाँट लेंगे॥९॥ ऐसे नहीं तो उत्पात मचा कर उसके देशको खूब दुःखी करें औरफिर अनेकों प्रकारकी उसकी गौओंके सुन्दर धनको हाँक लावें॥ १०॥ इससे हे राजन्! चलो आज ही त्रिगर्त और कौरव हम सव मिलकर मत्स्यराजकी गौओंको हर लावें॥ ११॥ यदि ऐसा नहीं हो तो अपनी सेनाका विभाग करके उसके ऊपर चढ़ाई कर उसके पराक्रमको नष्ट करडालें जिससे वह हमारे अधीन होजाय अथवा उसकी सव सेनाको मार कर उसे अपने वशमें कर ही लें॥ १२॥ मत्स्यराजको न्यायसे वशमें करेंगे तव हम सुखसे रहसकेंगे और आपके वलमें भी भी निश्चय ही वृद्धि होगी॥ १३॥ त्रिगर्तराजके कथन को सुनकर कर्णने दुर्योधनसे कहा कि—'सुशर्माने' जो कुछ कहा है यह वहुत अच्छा समयानुसार तथा हमारे हितका ही है॥ १४॥ इस कारण हे निर्दोष राजन्! आप अपनी सेनाको सजाकर उसके छोटे २ विभाग करके शीघ्र ही मत्स्यराजके ऊपर चढ़ाईके लिये चलदो तो ठीक है आगे आपकी जैसी इच्छा हो॥ १५॥ ऐसा न हो तो हम सबोंके पितामह वुद्धिमान् कुरुओंमें वड़े भीष्म द्रोणाचार्य, तथा शरद्वान्के पुत्र

किं च नः पाण्डवैः कार्यं हीनार्थबलपौरुषैः ॥ १७॥ अत्यन्तं वा प्रनष्टास्ते प्राप्ता वापि यमक्षयम्। यामो राजन्निरुद्विग्ना विराटनगरं वयम्। आदास्यामो हि गास्तस्य विविधानि वसूनि च॥ १८ ॥ वैशम्पायन उवाच। ततो दुर्योधनो राजा वाक्यमादाय तस्य तत्। वैकर्त्तनस्य कर्णस्य क्षिप्रमाज्ञापयत् स्वयम् ॥ १९ ॥ शासने नित्यसंयुक्तं दुःशासनमनन्तरम्। स तु वृद्धैस्तु सम्मन्त्र्य क्षिप्रं योजय वाहिनीम् ॥ २० ॥ यथोद्देशं च गच्छामः सहितास्तत्र कौरवैः। सुशर्मा च यथोद्दिष्टं देशं यातु महारथः। त्रिगर्तैः सहितो राजा समग्रबलवाहनः ॥ २१ ॥ प्रागेव हि सुसंवीतो मत्स्यस्य विषयं प्रति। जघन्यतो वयं तत्र यास्यामो दिवसान्तरे। विषयं मत्स्यराजस्य सुसमृद्धं सुसंहताः ॥ २२ ॥ ते यान्तु सहितास्तत्र विराटनगरं प्रति। क्षिप्रं गोपान् समासाद्य गृह्णन्तु विपुलं धनम् ॥ २३ ॥ गवां शतसहस्राणि श्रीमन्ति गुणवन्ति च। वय-

कृपाचार्यकी इच्छानुसार चढ़ाईके विषयमें विचार करिये ॥ १६ ॥ हम मत्स्यराजको जीतनेके लिये सब एक ही विचार करके शीघ्र ही जायँ यही ठीक है हमको धन बल और पुरुषार्थसे रहित पांडवोंसे क्या प्रयोजन है? १७या तो पांडव सदाके लिये कार्यको त्यागकर छिप गए होंगे! अथवा मर गये होंगे इससे हम अपनी घबहराहटको छाड़ कर राजा विराटके नगरपर चढ़ाई करें और उसकी गौओंका तथा अनेक प्रकारकी संपत्तियोंका हरण करलावें ॥ १८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—राजा दुर्योधनने त्रिगर्तराज तथा सूर्यपुत्र कर्णके वचनको सुनकर शीघ्र ही स्वयं अपनी आज्ञामें रहनेवाले दुःशासनको आज्ञा दी कि—अब तुम वृद्ध कौरवोंके साथ विचार करके अपनी सेनाको शीघ्र ही ठीक करो।१९।२०। हम सब कौरव इकट्ठे होकर दक्षिण दिशाकी ओरसे चढ़ाई करें और दूसरी ओरसे सब सेना वाहन तथा त्रिगर्तोंके साथमें महारथी सुशर्मा भी नियत कीहुई दिशाकी ओरसे चढ़ाई लेजाय ॥२१॥ पहिले त्रिगर्तोंका राजा सुशर्मा पूरी २ सेनासे घिर कर राजा विराटके नगर पर चढ़ाई करेगा, और उससे दूसरे दिन पीछेसे हम सब भी इकट्ठे होकर राजा विराटके सुंदर समृद्धिवाले देशपर चढ़ाई करेंगे ॥२२॥ सब त्रिगर्त इकट्ठे होकर प्रथम राजा विराटके नगर पर चढ़ाई करें और पहिले सपाटेमें ही ग्वालियोंके ऊपर चढ़ कर उनके पाससे गौएँरूपी बहुतसा धन छीन लें ॥ २३ ॥ और फिर हम भी अपनी सेनाको दो भागोंमें बाँट कर विराट नगर पर चढ़ाई करके उसकी शोभामयी

भ्यनुत्तमो द्विधा कृत्वा वरूथिनीम् ॥ २४ ॥ वैशम्पायन उवाच। ते स्म गत्वा यथोद्दिष्टां दिशं वह्नेर्महीपते। संनद्धा रथिनः सर्वे सपदाता बलोत्कटाः ॥ २५ ॥ प्रतिवैरं चिकीर्षन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः। आदातुं गाः सुशर्माथ कृष्णपक्षस्य सप्तमीम् ॥ २६ ॥ अपरे दिवसे सर्वे राजन् सम्भूय कौरवाः। अष्टम्यां ते न्यगृह्णन्त गोकुलानि सहस्रशः। २७

इति श्री महाभारते विराटपर्वणि दक्षिणगोग्रहे सुशर्मा-
दिमत्स्यदेशयाने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

वैशंपायन उवाच। ततस्तेषां महाराज तत्रैवामिततेजसाम्। छद्मलिङ्गप्रविष्टानां पांडवानां महात्मनाम् ॥ १ ॥ व्यतीतः समयः सम्यक् वसतां वै पुरोत्तमे। कुर्वतां तस्य कर्माणि विराटस्य महीपतेः ॥ २ ॥ कीचके तु हते राजा विराटः परवीरहा। परां सम्भावनां चक्रे कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे ॥ ३ ॥ ततस्त्रयोदशस्यान्ते तस्य वर्षस्य भारत। सुशर्मणा गृहीतन्तद् गोधनं तरसा बहु ॥ ४ ॥ ततो जवेन महता गोपः पुरमथाव्रजत्। स दृष्ट्वा मत्स्यराजञ्च रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली ५

और गुणोंवाली लाखों गौओंकी टोलियोंको हर लेंगे ॥ २४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे राजन्! तदनंतर त्रिगर्तोंके राजा सुशर्माने अपने महाबली सब रथियोंको तथा पैदल योधाओंको तयार कराया और फिर राजा विराटकी गौओंको हरनेके लिये तथा पहिले वैरका बदला लेनेके लिये कृष्णपक्षकी सप्तमीको अग्निकोणकी ओरसे विराट नगर पर चढ़ाईकी ॥ २५–२६ ॥ और उससे दूसरे दिन अर्थात् अष्टमीको हे राजन्! सब कौरवोंने इकट्ठे होकर दूसरी दिशाकी ओरसे विराटके नगर पर चढ़ाई करके राजा विराटकी हजारों गौओंको कैद करलिया २७

तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ छ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि–हे महाराज! अपार बलवाले, कपट वेशधारी, महात्मा पांडवोंको विराटनगरमें छिपकर रहतेहुए राजा विराटका काम करते २ तेरहवाँ वर्ष अच्छे प्रकारसे पूरा होगया था १-२ और दूसरी ओर महाबलवाले कीचकका मरण होनेसे शत्रुविनाशक राजा विराट, कुंतीपुत्र युधिष्ठिरका बहुत मान करता था ॥ ३ ॥ हे भरतवंशी राजन्! इस प्रकार तेरहवाँ वर्ष बीतनेके अनंतर सुशर्माने विराट नगर पर चढ़ाईकी और एकाएकी पराक्रम करके उसकी बहुतसी गौओंको पकड़ लिया ॥ ४ ॥ यह देख कानोंमें कुण्डल धारण करनेवाला बड़ा गोप रथमेंसे कूदकर बड़े वेगसे दौड़तार विराटनगर में आया

शूरैः परिवृतं योधैः कुण्डलाङ्गदधारिभिः । संवृतं मन्त्रिभिः सार्धं पाण्डवैश्च महात्मभिः ॥ ६ ॥ तं सभायां महाराजमासीनं राष्ट्रवर्धनम् । सोऽब्रवीदुपसंगम्य विराटं प्रणतस्तदा ॥ ७ ॥ अस्मान् युधि विनिर्जित्य परिभूय सबान्धवान् । गवां शतसहस्राणि त्रिगर्ताः कालयन्ति ते ॥ ८ ॥ तान् परीप्सस्व राजेन्द्र मा नेशुः पशवस्तव । तच्छ्रुत्वा नृपतिः सेनां मत्स्यानां समयोजयत् ॥ ९ ॥ रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम् । राजानो राजपुत्राश्च तनुत्राण्यथ भेजिरे ॥ १० ॥ भानुमन्ति विचित्राणि शूरसेव्यानि भागशः । सवज्रायसगर्भन्तु कवचं तत्र काञ्चनम् ॥ ११ ॥ विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीकोऽभ्यहारयत् । सर्वपारसवं वर्म कल्याणपटलं दृढम् ॥ १२ ॥ शतानीकादवरजो मदिराक्षोऽभ्यहारयत् । शतसूर्यं शतावर्तं शतबिन्दु शताक्षिमत् ॥ १३ ॥ अभेद्यकल्पं मत्स्यानां राजा कवचमाहरत् । उत्सेधे यस्य पद्मानि शतं सौगन्धिकानि च ॥ १४ ॥ सुवर्णपृष्ठं सूर्याभं सूर्यदत्तोऽभ्यहारयत् ।

और जहाँ सभामें कुण्डल तथा बाजूबन्दोंको धारण करनेवाले शूरवीर योधा, मंत्री, तथा महात्मा पाण्डवोंके साथ देशकी वृद्धि करनेवाला राजा विराट बैठा था उसके पास गया और वह गोप राजाको प्रणाम करके इसप्रकार बोला कि—॥ ५-७ ॥ त्रिगर्त देशके राजाओंने मेरे साथ युद्ध करके मुझे तथा मेरे भाइयोंको हरा दिया है और आपकी एक लाख गौओंको अपने देशकी ओरको हाँक कर लिये जाता है सो हे राजन् ! आपके पशु आपके हाथसे दूर न निकल जाँय उससे पहिले ही तुम उनकी रक्षा करो गोपकी इस बातको सुनकर राजा विराटने मत्स्य देशके योधाओंकी सेनाको सजाया ॥ ८-९ ॥ वह सेना बहुतसे रथ, हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी पुरी थी तथा फहराती हुई ध्वजा पताकाओंसे शोभित होरही थीं ॥ १० ॥ राजा तथा राजकुमार रणमें जानेके लिये क्रमसे शूरवीरोंके पहिरने योग्य चमकदार नानाप्रकारके बख्तर पहिरने लगे, विराटके प्यारे भाई शतानीकने सुवर्णसे मढ़ाहुआ दृढ़ और सब शस्त्रोंको सहनेवाला कवच पहिरा शतानीकके छोटे भाई मदिराक्षने भी तैसे ही सब प्रकारके शस्त्रोंके प्रहारको सह सके ऐसे सोनेके मढ़ेहुए दृढ़ कवचको पहिरा मत्स्य देशके राजा विराटने सौ सूर्य तथा चन्द्रमाकीसी कान्तिवाला सौ टिकलियोंवाला और सौ फुल्लियोंसे जड़ा हुआ बहुत ही दृढ़ कवच पहिरा जिसके ऊपरके विशाल भाग पर सौ कल्हार जातिके और सौ सौगन्धिक जातिके

दृढमायसगर्भञ्च श्वेतं वर्म शताक्षिमत् ॥ १५ ॥ विराटस्य सुतो ज्येष्ठो वीरः शङ्खोऽभ्यहारयत् । शतशश्च तनुत्राणि यथास्वन्ते महारथाः ॥ १६ ॥ योत्स्यमानां अनह्यन्त देवरूपाः प्रहारिणः । सूपस्करेषु शुभ्रेषु महत्सु च महारथाः ॥ १७ ॥ पृथक् काञ्चनसन्नाहान् रथेष्वश्वानयोजयन् । सूर्यचन्द्रप्रतीकाशे रथे दिव्ये हिरण्मये ॥ १८ ॥ महानुभावो मत्स्यस्य ध्वज उच्छिश्रिये तदा । अथान्यान् विविधाकारान् ध्वजान् हेमपरिष्कृतान् ॥ १९ ॥ यथास्वं क्षत्रिया शूरा रथेषु समयोजयन् । अथ मत्स्योऽब्रवीद्राजा शतानीकं जघन्यकम् ॥ २० ॥ कंकवल्लवगोपाला दामग्रन्थिश्च वीर्यवान् । युध्येयुरिति मे बुद्धिर्वर्त्तते नात्र संशयः ॥ २१ ॥ एतेषामपि दीयन्तां रथा ध्वजपताकिनः । कवचानि च चित्राणि दृढानि च मृदूनि च ॥ २२ ॥ प्रतिमुञ्चन्तु गात्रेषु दीयन्तामायुधानि च । वीराङ्गरूपाः पुरुषा नागराजकरोपमाः ॥ २३ ॥ नेमे जातु न युध्ये-

कमलोंकी आकृतियें पंक्तिवद्ध बनीहुई थीं ऐसा विशाल था और सूर्यदत्तने जो राजा विराटका एक सेनापति था सुवर्णके पत्रोंसे जड़ा सूर्यकी समान दमकता हुआ एक दृढ कवच पहिरा विराटके बडे पुत्र शूरवीर शंखने श्वेत और सौ फुल्लियें जड़ा हुआ वख्तर पहिरा यह वख्तर बहुत ही दृढ और भीतरके भागमें लोहेका बनाहुआ था इस प्रकार सैकड़ों देवसमान महारथी अपने२ कवचोंको पहिर पहिर कर युद्ध करनेके लिए उद्यत होगए, और युद्धकी सामग्रीसे भरेहुए श्वेत वर्णके बडे२ रथोंमें सुवर्णके कवचोंवाले भिन्न भिन्न जातिके घोडोंको जुतवा उनमें बैठकर युद्धके लिए बाहर निकले उस समय राजा विराट जो सूर्य तथा चन्द्रमाकी समान तेजस्वी रथमें बैठा था, उस मात्स्यराजके रथके ऊपर प्रथम महातेजस्वी ध्वजा चढ़ाई गई तदनन्तर दूसरे शूरवीर क्षत्रियोंने भी अपने अपने रथों पर अनेकों प्रकारकी सुनहरी ध्वजाएँ चढ़ालीं इसप्रकार सबके तयार होजाने पर मत्स्यदेशके राजाने अपने छोटे भाई शतानीकसे कहा कि-॥ ११-२० ॥ कंक, वल्लभ, गोपाल तथा अश्वपाल पराक्रमी मालूम होते हैं मेरी समझमें आता है वह युद्ध करेंगे और इसमें तुम सन्देह न करो ॥ २१ ॥ इससे उनका भी बैठनेके लिये ध्वजा पताका वाले रथ दो और ऊपरसे दृढ़ तथा भीतरसे कोमल ऐसे विचित्र कवच भी दो, कि—वह उन कवचोंको शरीर पर धारण करें और उनको शस्त्र भी दो वह शूरवीर पुरुष हैं और उनके शरीर बडे हाथीकी सूँडकी समान गोल तथा दृढ़ हैं,

रक्षिति मे धीयते मतिः । एतच्छ्रुत्वा तु नृपतेर्वाक्यं त्वरितमानसः । शतानीकस्तु पार्थेभ्यो रथान् राजन् समादिशत् ॥२४॥ सहदेवाय राज्ञे च भीमाय नकुलाय च । तान् प्रहृष्टास्ततः सूता राजभक्तिपुरस्कृताः २५ निर्दिष्टा नरदेवेन रथान् शीघ्रमयोजयन् । कवचानि विचित्राणि मृदूनि च दृढानि च ॥ २६ ॥ विराटः प्रादिशद्यानि तेषामक्लिष्टकर्मणाम् । तान्यामुच्य शरीरेषु दंशितास्ते परन्तपाः ॥ २७ ॥ रथान् हयैः सुसम्पन्नानास्थाय च नरोत्तमाः । निर्ययुर्मुदिताः पार्थाः शत्रुसंघातमर्दिनः ॥ २८ ॥ तरस्विनश्छन्नरूपाः सर्वे युद्धविशारदाः । रथान् हेमपरिच्छन्नानास्थाय च महारथाः ॥ २९ ॥ विराटमन्वयुः पार्थाः सहिताः कुरुपुङ्गवाः । चत्वारो भ्रातरः शूराः पाण्डवाः सत्यविक्रमाः ॥ ३० ॥ भीमाश्च मत्तमातङ्गाः प्रभिन्नकरटा मुखाः । क्षरन्तश्चैव नागेन्द्राः सुदन्ताः षष्टिहायनाः ॥ ३१ ॥ स्वारूढा युद्धकुशलैः शिक्षिता हस्तिसादिभिः । राजानमन्वयुः पश्चाच्चलन्त इव पर्वताः ॥ ३२ ॥ विशारदानां मुख्यानां

इसकारण वह युद्ध न कर सकें ऐसा कभी हो ही नहीं सकता यह मेरा विचारहै , राजाके इन वचनोंको सुनकर शतानीकने युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव इन चारों पार्थोंके लिए शीघ्रतासे रथ जोड़ने की सारथियोंको आज्ञा दी और राजाकी आज्ञानुसार सारथियोंने राजभक्तिका आदर किया और रथ जोड़कर उन चारोंके सामने खड़े करदिये उन रथोंको देखकर पाण्डव प्रसन्न हुए फिर विराटने श्रेष्ठ कर्म करनेवाले पाण्डवोंको पहिरनेके लिये भीतरसे कोमल और बाहर के भागमें कठिन ऐसे विचित्र कवच दिए और उन कवचोंको शत्रुओं को पीड़ा देनेवाले पाण्डवोंने पहिर लिया ॥ २२-२७ ॥ फिर शत्रुओं का संहार करनेवाले महापुरुष पांडव घोडोंसे जुतेहुए रथोंमें बैठ और प्रसन्न होतेहुए राजा विराटके नगरमेंसे बाहर निकले ॥ २८ ॥ शूरवीर तेजस्वी युद्धमें कुशल महारथी सत्यपराक्रमी और जुदे जुदे नामसे छिपे हुए वेशमें रहनेवाले वे चारों भाई सुवर्णसे मढ़े हुए भिन्न भिन्न रथोंमें बैठकर राजा विराटके पीछे एकाग्रकी युद्ध करनेको चल दिये ॥२९॥३०॥ इसके उपरान्त भयंकर गंडस्थलसे मद टपकाते सुन्दर दांतों वाले साठ वर्षकी अवस्थाके मदमत्त हाथी जिनके ऊपर युद्ध कुशल पुरुष बैठ थे और जिनको हस्ती पर बैठनेवाले चतुर पुरुषोंने शिक्षा दी थी ऐसे सैंकडों हाथी भी चलायमान पर्वतोंकी समान झूमते हुए राजा विराटके पीछे चलने लगे ॥३१-३२॥ और युद्ध करनेमें कुशल

हृष्टानाञ्चारुजीविनाम् । अष्टौ रथसहस्राणि दश नागशतानि च ॥३३॥ षष्टिश्चाश्वसहस्राणि मत्स्यानामभिनिर्ययुः । तदनीकं विराटस्य शुशुभे भरतर्षभ ॥ ३४॥ सम्प्रयातं तदा राजन् निरीक्षन्तं गवां पदम् । तद्बलाग्र्यं विराटस्य सम्प्रस्थितमशोभत । दृढायुधजनाकीर्णं गजाश्वरथसंकुलम् ॥ ३५ ॥ छ छ छ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे
मत्स्यराजरणोद्योगे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच । निर्याय नगराच्छूरा व्यूढानीकाः प्रहारिणः । त्रिगर्त्तानस्पृशन्मत्स्याः सूर्ये परिणते सति ॥ १ ॥ ते त्रिगर्त्ताश्च मत्स्याश्च संरब्धा युद्धदुर्मदाः । अन्योऽन्यमभिगर्जन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः२ भीमाश्च मत्तमातंगास्तोमरांकुशनोदिताः ग्रामणीयैः समारूढाः कुशलैर्हस्तिसादिभिः ॥ ३ ॥ तेषां समागमो घोरस्तुमुलो लोमहर्षणः । घ्नतां परस्परं राजन् यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ ४ ॥ देवासुरसमो राजन्नासीत् सूर्ये-

---

मुख्य प्रसन्न रहने वाले और श्रेष्ठ आजीविकावाले मत्स्य देशके आठ हजार रथी, दश हजार हाथी सवार और आठ हजार घुड़सवार भी इस राजाके चारों ओर घिर कर युद्धके लिये विराट नगरमेंसे बाहर निकले, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! दृढ़ आयुधोंवाले मनुष्य हाथी घोडे तथा रथोंसे भरपूर राजा विराटकी श्रेष्ठ सेना गौओंके पगोंके चिन्होंको देखतीहुई आगेको चलने लगी वह सेना इस समय शोभापाने लगी॥३३-३५ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय! मत्स्यदेशके शूरवीर योद्धाओं ने नगरमेंसे बाहर निकल कर व्यूहरचना की और सायंकालके समय त्रिगर्तोंको पकड़ पाया ॥ १ ॥ त्रिगर्त और मत्स्य अत्यंत क्रोधमें भरे युद्धमें महामदोन्मत्त गौओंको लेजानेमें लगे हुए और महाबली थे वह एक दूसरे को देखते ही एक दूसरे के साथ युद्ध करनेके लिए गर्जना करने लगे ॥ २ ॥ हाथी पर सवारी करने वाले युद्धकुशल योद्धाओंके स्वामी, भयङ्कर हाथियोंको शत्रुसेनाकी ओर जानेके लिये तोमर और अंकुशोंका प्रहार करनेलगे, इसकारण हाथी शत्रुसेनाकी ओरको दौड़ने लगे॥३॥ हे राजन्! सूर्यके नमते समय अर्थात् सायंकालके समय परस्पर प्रहार करने वाले दोनों ओरके योधाओंमें देवासुरसंग्रामकी समान महाभयंकर और रोमांच खड़े करने वाला संग्राम होने लगा इस युद्धमें पैदल, रथी, हाथी सवार घुड़सवार आदिका बड़ा भारी समारोह था

ऽवलम्बति । पदातिरथनागेन्द्रहयारोहबलौघवान् ॥ ५ ॥ अन्योऽन्यमभ्यापततां निघ्नतां चेतरेतरम् । उदतिष्ठद्रजो भौमं न प्राज्ञायत किंचन ६ पक्षिणश्चापतन् भूमौ सैन्येन रजसावृताः । इषुभिर्व्यतिसर्पद्भिरादित्योऽन्तरधीयत ॥ ७ ॥ खद्योतैरिव संयुक्तमन्तरिक्षं व्यराजत । रुक्मपृष्ठानि चापानि व्यतिषिक्तानि धन्विनाम् ॥ ८ ॥ पततां लोकवीराणां सव्यदक्षिणमस्यताम् । रथा रथैः समाजग्मुः पादातैश्च पदातयः ॥ ९ ॥ सादिनः सादिभिश्चैव गजैश्चापि महागजाः । असिभिः पट्टिशैः प्रासैः शक्तिभिस्तोमरैरपि ॥ १० ॥ संरब्धाः समरे राजन् निजघ्नुरितरेतरम् । निघ्नन्तः समरेऽन्योऽन्यं शूराः परिघबाहवः ॥ ११ ॥ न शेकुरभिसंरब्धाः शूरान् कर्तुं पराङ्मुखान् । कृत्तोत्तरोष्ठं सुनसं कृत्तकेशमलंकृतम् ॥ १२ ॥ अदृश्यत शिरश्छिन्नं रजोध्वस्तं सकुंडलम् । अदृश्यंस्तत्र गात्राणि शरैश्छिन्नानि भागशः ॥ १३ ॥ शालस्कन्धनिकाशानि क्षत्रियाणां महामृधे ।

और उनमें यमलोककी वढ़ाने वाली भयङ्कर मारामार चल रही थी ४-५ दोनों ओरके योधा एक दूसरे पर चढ़कर एक दूसरेका संहारकररहे थे, उस समय पृथ्वी परसे इतनी धूल उडरही थी कि—उसके कारण कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥ ६ ॥ सेनाके पैरोंके पड़नेसे उडीहुई धूलके कारण पक्षी अंधेसे होकर पृथ्वीपर गिरने लगे, योधाओंके हाथों से छूटे हुए वाणोंसे आकाशमें सूर्य नारायण भी ढकगए ॥ ७ ॥ और तारोंसे आकाश भरगया हो ऐसी शोभा पारहा था दाहीं तथा वाईं ओर वाणोंको चलाने वाले शूरवीर धनुषधारी पृथ्वीपर गिररहे थे और उनके सोनेकी पीठवाले धनुष दूसरोंके हाथोंमें जाते थे रथी रथियोंके सामने लड़ते थे, पैदल पैदलोंके सामने लडते थे, ॥ ८-९ ॥ घुडसवार घुडसवारोंके सामने लडते थे, वड़े २ हाथी हाथियोंसे लडते थे तथा हे राजन् ! युद्धमें क्रोधमें भर योधा एक दूसरे पर तलवार, पट्टिश प्रास शक्ति, तोमर आदि चलाते थे, युद्धमें परिघकी समान भुजदण्ड वाले वीर एक दूसरे पर वार करते थे, परन्तु क्रोधमें भरे हुए वह योधा रण मेंसे शूरवीरोंको पीछे नहीं हटा सकते थे, इस समय वहुतसे योधाओं के मस्तक, सुन्दर नासिकावाले परन्तु ऊपरका होठ कटे हुए, दीखते थे उस समय कितनों ही के मस्तक सुन्दर सजेहुए होनेपरभी केशरहित दीखते थे, उस समय अनेकोंके मस्तक कुण्डलों वाले तथा क्षत्रियोंके वाणोंसे कटकर धूलमें सनेहुए दीखते थे, और उस वडी भारी संग्राम भूमिमें, शालके वृक्षकी शाखाओंकी समान शरीर, टेढेवड़े जिधर

नागभोगनिकाशैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ॥ १४ ॥ आस्तीर्णा वसुधा भाति शिरोभिश्च सकुंडलैः । रथिनां रथिभिश्चात्र सम्प्रहारोऽभ्यवर्त्तत १५ सादिभिः सादिनाञ्चापि पदातीनां पदातिभिः । उपाशाम्यद्रजो भौमं रुधिरेण प्रसर्पता ॥ १६ ॥ कश्मलञ्चाविशद् घोरं निर्मर्यादमवर्त्तत । उपाविशन् गरुत्मन्तः शरैर्गाढं प्रवेजिताः । अन्तरिक्षे गतिर्येषां दर्शनञ्चाप्यकल्पयत ॥ १७ ॥ ते घ्नन्तः समरेऽन्योऽन्यं शूराः परिघबाहवः । न शेकुरभिसंरब्धाः शूरान् कर्तुं पराङ्मुखान् ॥१८॥ शतानीकः शतं हत्वा विशालाक्षश्चतुःशतम् । प्रविष्टौ महतीं सेनां त्रिगर्त्तानां महारथौ ॥ १९ ॥ तौ प्रविष्टौ महासेनां बलवन्तौ मनस्विनौ आर्च्छेतां बाहुसंरब्धौ केशाकेशि रथारथि ॥ २० ॥ लक्षयित्वा त्रिगर्त्तानां तौ प्रविष्टौ रथव्रजम् । अग्रतः सूर्यदत्तस्य मदिराक्षस्य पृष्ठतः ॥ २१ ॥ विराटस्तत्र संग्रामे हत्वा पञ्चशतान् रथान् । हयानाञ्च शतान्यष्टौ हत्वा पञ्च महारथान् ॥२२॥ चरन्

सिधर पड़ेहुए दीखते थे, उस समय चंनदसे चुपड़ेहुए सर्पोंकी समान गोलाकार शूरोंकी भुजाओं तथा मुकुटवाले मस्तकोंसे खचाखच भरी हुई पृथ्वी अद्भुत रूपसे दीखने लगी, उस समय रथी रथियोंके साथ युद्ध करते थे ॥ १०–१५ ॥ घुड़सवार घुड़सवारोंसे लड़ते थे, पैदल पैदलोंसे लडते थे इस प्रकार अधिक समय होजानेके कारण उनके शरीरमेंसे बहते हुए रुधिरसे पृथ्वी परसे धूलि उडना बंद होगई ॥१६॥ तदनंतर योधा भयंकर आवेशमें आ मर्यादाको लांघकर लडने लगे जिनकी आकाशमें गति थी और जो आकाशमें उडतेहुए दीखते थे वे पक्षी बाणोंके प्रहारसे अत्यंत घबडा गए, इससे उनकी ऊँचे उडनेकी गति बंद होगई और वे उडतेमें बाणोंपर बैठने लगे ।१७। शूरवीर पुरुष जिनके हाथ लोहेके दण्डकी समान थे वे क्रोधमें भरकर परस्पर प्रहार करते थे तो भी कोई किसी शूरको पीछेको नहीं हटा सकते थे ॥१८॥ इस प्रकार युद्ध करते २ महारथी महाबलवान् तथा धैर्यधारी शतानीक ने त्रिगर्तोंके सौ योधाओंको ठौर मारडाला और विशालाक्षने चार सौ योधाओंको मारडाला तदनन्तर दोनों जने त्रिगर्तोंकी बड़ीभारी सेना में पहुंचे और बाहुबलके घमंडमें भरे हुए दोनों जने शत्रुओंसे केशाकेशि और रथारथि संग्राम करने लगे ॥ १९–२० ॥ और युद्ध करते २ त्रिगर्तोंकी रथोंवाली सेनाको भाँपकर शतानीक त्रिगर्तोंकी सेनामें घुस गया और उसके पीछे मदिराक्ष भी रथ सेनामें जा पहुँचा॥२१॥ रथियों में श्रेष्ठ राजा विराट उस युद्धमें पाँच सौ रथी आठ सौ घुड़सवार तथ

स विविधान्मार्गान् रथेन रथसत्तमः ।। त्रिगर्त्तानां सुशर्माणमाच्छंद्रुक्मरथं रणे ॥ २३ ॥ तौ व्यवाहरतां तत्र महात्मानौ महावलौ । अन्योऽन्यमभिगर्जन्तौ गोष्ठेषु वृषभाविव ॥ २४ ॥ ततो राजा त्रिगर्तानां सुशर्मा युद्धदुर्मदः । मत्स्यं समीयाद्राजानं द्वैरथेन नरर्षभः ॥ २५ ॥ ततो रथाभ्यां रथिनौ व्यतीयतुरमर्षणौ। शरान् व्यसृजतां शीघ्रं तोयधारा घनाविव२६ अन्योन्यं चापि संरब्धौ विचेरतुरमर्षणौ । कृतास्त्रौ निशितैर्वाणैरसिशक्तिगदाभृतौ ॥२७॥ ततो राजा सुशर्माणं विव्याध दशभिः शरैः । पंचभिः पञ्चभिश्चास्य विव्याध चतुरो हयान् २८ तथैव मत्स्यराजानं सुशर्मा युद्धदुर्मदः । पञ्चाशद्भिः शितैर्वाणैर्विव्याध परमास्त्रवित् ॥ २९ ॥ ततः सैन्यं महाराज मत्स्यराजसुशर्मणोः । नाभ्यजानत्तदान्योऽन्यं सैन्येन रजसावृतम् ॥ ३० ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे
विराटसुशर्मयुद्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

पाँच महारथियोंको मार कर, युद्धमें रथसे अनेकों प्रकारकी युद्ध करने की रीतिके अनुसार रथको टेढ़ासीधा चलाता हुआ सवर्णके रथमें बैठे हुए त्रिगर्तोंके राजा सुशर्माके ऊपर चढ़गया ॥ २२-२३ ॥ तदनन्तर जैसे गोठमें दो बैल आपसमें गर्जना करके लड़ते हों तैसे ही महाबलवान् महात्मा विराट और त्रिगर्तोंका राजा परस्पर गाज कर युद्ध करने लगे ॥ २४ ॥ तदनन्तर युद्धमें दुर्मद नरश्रेष्ठ त्रिगर्तोंका राजा सुशर्मा रथ युद्धमें राजा विराटके साथ लड़नेको चढ़आया ॥ २५ ॥ क्रोधमें भरे दोनों रथी एक दूसरेके सामनेको रथ बढ़ाकर अड़गए और जैसे मेघ जलकी धारें बरसाते हैं तैसे वह दोनों शीघ्रतासे वाण वर्षाने लगे।२६। दोनों जने अस्त्रविद्यामें निपुण थे और दोनों तलवार शक्ति तथा गदा को भी धारण करेहुए थे। वे असहनताके कारण क्रोधमें भरगए और एक दूसरेको पैने वाणोंसे मारतेहुए रणभूमिमें इधर उधर घूमनेलगे२७ तदनन्तर राजा विराटने दश वाण मारकर सुशर्माको बींधडाला और उसके चारों घोडोंमेंसे प्रत्येकके पाँच २ वाण मारे ॥ २८ ॥ तब महा अस्त्रवेत्ता युद्धदुर्मद, सुशर्माने पैने किये हुए पचास वाण मत्स्यराजके मारे ॥२९॥ हे महाराज! उस समय सेनाके पैरोंसे उड़ीहुई धूलसे ढका हुआ सुशर्मा और मत्स्यराजका सेनादल इधर उधर क्या होरहा है यह नहीं जानसका ॥ ३० ॥ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ छ छ

वैशम्पायन उवाच । तमसाभिप्लुते लोके रजसा चैव भारत । अतिष्ठन्वै मुहूर्त्तन्तु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ १ ॥ ततोऽन्धकारं प्रणुदन्नुदतिष्ठत चन्द्रमाः । कुर्वाणो विमलां रात्रिं नन्दयन् क्षत्रियान् युधि ॥२॥ ततः प्रकाशमासाद्य पुनर्युद्धमवर्त्तत । घोररूपं ततस्ते स्म नावैक्षन्त परस्परम् ॥ ३ ॥ ततः सुशर्मा त्रैगर्त्तः सह भ्रात्रा यवीयसा । अभ्यद्रवन् मत्स्यराजं रथव्रातेन सर्वशः ॥ ४ ॥ ततो रथाभ्यां प्रस्कन्द्य भ्रातरौ क्षत्रियर्षभौ । गदापाणी सुसंरब्धौ समभ्यद्रवतां रथान् ॥ ५ ॥ तथैव तेषान्तु बलानि तानि क्रुद्धान्यथान्योऽन्यमभिद्रवंति।गदासिखड्गैश्च परश्वधैश्च प्रासैश्च तीक्ष्णाग्रसुपीतधारैः ॥ ६ ॥ बलन्तु मत्स्यस्य बलेन राजा सर्वं त्रिगर्त्ताधिपतिः सुशर्मा । प्रमथ्य जित्वा च प्रसह्य मत्स्यं विराटमोजस्विनमभ्यधावत् ॥ ७ ॥ तौ निहत्य पृथग् धुर्यावुभौ तौ पार्ष्णिसारथी । विरथं मत्स्यराजानं जीवग्राहमगृह्णताम् ॥ ८ ॥ तमुन्मथ्य सुशर्माथ

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! जब रात्रिके अंधकार तथा सेनाके पैरोंसे उडीहुई धूलके कारण सम्पूर्ण जगत्में अंधेरा छागया तब व्यूहरचनामें चुने हुए योधा दो घड़ी युद्ध बंद करके विश्राम लेने लगे ॥ १ ॥ परन्तु उसी समय अंधकारको दूर करता और रात्रिको निर्मल करता चन्द्रमा युद्धमें क्षत्रियोंको आनन्द देता हुआ निकल आया ॥ २ ॥ इस प्रकार जब प्रकाश होगया तब दोनों ओरसे फिर भयङ्कर युद्ध होने लगा और एक दूसरेको न देखकर परस्पर आवेशमें भरे हुए युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥ त्रिगर्तोंका राजा सुशर्मा अपने छोटे भाईको साथ रखकर बडे २ रथियोंके समूहके साथ मत्स्यराज विराटके ऊपर चढ़ आया, क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ दोनों भाई क्रोधमें भरकर हाथमें गदा ले अपने २ रथमेंसे नीचे कूद पड़े और राजा विराटके रथकी ओरको दौडे ॥ ४—५ ॥ इसी प्रकार उनकी आई सेनाके लोग भी क्रोधसे एक दूसरेके सामने लड़ने लगे और गदा तलवार खड्ग, फरसे तथा पानी पिये तीखी धारोंवाले प्रासोंसे परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥ उन दोनोंमें त्रिगर्तोंका राजा सुशर्मा अपनी सेनासे मत्स्यराजकी सब सेनाका संहार कर बलपूर्वक उसकी सेनाको हरा कर प्राणबलवाले राजा विराटकी ओर दौड़ा ॥ ७ ॥ और उसके रथके दोनों घोड़े, पीछेके अंगरक्षक तथा सारथीको काटकर राजा विराटको रथमेंसे बाहर खेंचकर जीते हुए ही पकड़ लिया ॥ ८ ॥ और फिर उसे अच्छे प्रकारसे धुंगलकर

युवतीमिव कामुकः। स्यन्दनं स्वं समारोप्य प्रययौ शीघ्रवाहनः ॥ ९ ॥ तस्मिन् गृहीते विरथे विराटे बलवत्तरे। प्राद्रवन्त भयान्मत्स्यास्त्रिगर्तैरर्दिता भृशम् ॥१०॥ तेषु सन्त्रस्यमानेषु कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः। प्रत्यभाषन्महाबाहुं भीमसेनमरिन्दमम् ॥ ११ ॥ मत्स्यराजः परामृष्टस्त्रिगर्तेन सुशर्मणा। तं मोचय महाबाहो न गच्छेद् द्विषतां वशम् ॥ १२ ॥ उषिताः स्म सुखं सर्वे सर्वकामैः सुपूजिताः। भीमसेन त्वया कार्या तस्य वासस्य निष्कृतिः ॥ १३ ॥ भीमसेन उवाच। अहमेनं परित्रास्ये शासनात्तव पार्थिव। पश्य मे सुमहत्कर्म युध्यतः सह शत्रुभिः ॥ १४ ॥ स्वबाहुबलमाश्रित्य तिष्ठ त्वं भ्रातृभिः सह। एकान्तमाश्रितो राजन् पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ १५ ॥ सुस्कन्धोऽयं महावृक्षो गदारूप इव स्थितः। अहमेनं समारुज्य द्रावयिष्यामि शात्रवान् ।१६। वैशम्पायन उवाच। तं मत्तमिव मातंगं वीक्षमाणं वनस्पतिम्। अब्रवीद् भ्रातरं वीरं धर्मराजो युधि-

---

अपने रथमें डाल, जैसे कोई कामी पुरुष स्त्रीका हरण करता हो तैसे त्रिगर्तराज सुशर्मा राजा विराटको हरकर अपने रथको जल्दी जल्दी हाँकता हुआ चलदिया ॥ ९ ॥ महाबली राजा विराटको रथहीन करके सुशर्मा जिस समय तहाँसे गया उस ही समय त्रिगर्तोंसे अत्यन्त पीड़ा पाकर मत्स्यदेशवासी भयके कारण रणभूमिमेंसे भागने लगे ॥ १० ॥ जब मत्स्यदेशकी सेना इस प्रकार पीडित होने लगी तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने महाबाहु शत्रुमर्दन भीमसेनसे कहा कि-११ त्रिगर्तदेश का राजा सुशर्मा मत्स्यराज को पकडे लिये जाता है अतः हे महाबाहु! भीमसेन! वह शत्रुओंके वशमें होय, उससे पहिले ही तुम उसको शत्रुके हाथसे छुटाओ ॥ १२ ॥ हे भीमसेन! हम सब उसके घर सुखसे रहे हैं और उसने हमारी सब कामनाएं पूरी करके हमारा सत्कार किया है अतः तुम्हें उसके घरमें रहनेका बदला देना चाहिये ॥ १३ ॥ भीमसेनने कहा कि–हे राजन्! मैं आपकी आज्ञानुसार शत्रुके हाथसे राजा विराटकी रक्षा करूँगा और मैं अपने बाहुबलके भरोसेसे शत्रुओंके साथ युद्ध करके अपना पराक्रम दिखाऊँगा, आज आप भाइयोंके साथ एकान्तमें बैठकर देखो १४-१५ इस महावृक्ष की शाखाएं बडी अच्छी हैं और यह वृक्ष गदा की समान खडा है सो मैं इस महावृक्षको उखाड कर इससे ही शत्रुओंका नाश करूँगा ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय! इस प्रकार कहकर मदमत्त हाथीकी समान शूर वीर भीमसेन उस

ष्ठिरः ॥ १७ ॥ मा भीम साहसं कार्षीस्तिष्ठत्वेष वनस्पतिः । मा त्वां वृक्षस्य कर्माणि कुर्वाणमतिमानुषम् ॥ १८ ॥ जनाः समवबुध्येरन् भीमोऽयमिति भारत। अन्यदेवायुधं किञ्चित् प्रतिपद्यस्व मानुषम् ।१९। चापं वा यदि वा शक्तिं निस्त्रिंशं वा परश्वधम् । यदेव मानुषं भीम भवेदन्यैरलक्षितम् ॥ २० ॥ तदेवायुधमादाय मोक्षयाशु महीपतिम् । यमौ च चक्ररक्षौ ते भवितारौ महावलौ ॥ २१ ॥ सहिताः समरे तत्र मत्स्यराजं परीप्सत । वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्तु वेगेन भीमसेनो महावलः २२ गृहीत्वा तु धनुःश्रेष्ठं जवेन सुमहाजवः । व्यमुञ्चच्छरवर्षाणि सतोय इव तोयदः ॥ २३ ॥ तं भीमो भीमकर्माणं सुशर्माणमथाद्रवत् । विराटं समवीक्ष्यैनं तिष्ठ तिष्ठेति चावदत् ॥२४॥ सुशर्मा चिन्तयामास कालांतकयमोपमम् । तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तं पृष्ठतो रथपुंगवः । पश्यतां सुमहत् कर्म महद्युद्धमुपस्थितम् ॥ २५ ॥ परावृत्तो धनुर्गृह्य सुशर्मा

महावृक्षकी ओरको देखने लगा तव धर्मराज युधिष्ठिरने उससे कहा कि—॥ १७ ॥ अरे ओ भीम ! तू ऐसे साहसका काम मत कर, इस वृक्षको खडा रहने दे, हे भारत ! तुम इस महावृक्षको उखाड कर मनुष्योंसे न हो सकने वाला काम करोगे तो (तुरत ही) सव मनुष्य पहिचान जायँगे कि—यह भीम है इससे तुम किसी दूसरे मानुषिक शस्त्रको लो ॥ १८–१९ ॥ धनुष, शक्ति, तलवार अथवा फरसा आदि मेंसे जो तुम्हें रुचै उस मानुषिक शस्त्रको ग्रहण करो और दूसरे पहिचाने नहीं, इस प्रकार शीघ्रतासे राजा विराटको त्रिगर्तराजके हाथसे छुडाओ महावलवान् नकुल तथा सहदेव तेरे पास रहकर तेरे रथके पहियोंकी रक्षा करेंगे और तुम सव जने इकट्ठे हो युद्ध भूमिमें जाकर मत्स्यराजको त्रिगर्तोंसे छुडानेका प्रयत्न करो, वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! धर्मराजने इस प्रकार कहा तव महावली भीमने शीघ्र ही महाधनुष धारण किया ॥ २०—२२ ॥ और मेघ जैसे पानी वरसाता है तैसे ही महावली भीमसेन वेगसे त्रिगर्तके ऊपर तथा उसकी सेना पर वाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २३ ॥ तदनन्तर भयङ्कर कर्म करने वाले राजा सुशर्माके पीछे वेगसे दौडकर उसके रथके समीप गया और राजा विराटके मुखके सामने को देखकर सुशर्मासे कहने लगा कि—खडा रह खडा रह ॥ २४ ॥ महारथी सुशर्माने रथके पिछली ओरसे खडा रह ! खडा रह इस प्रकार कहते हुए कालके भी काल समान भीमसेनको देखकर कहा कि—अच्छा आज

भ्रातृभिः सह । निमेषान्तरमात्रेण भीमसेनेन ते रथाः ॥ २६ ॥ रथानां च गजानां च वाजिनां च ससादिनाम् । सहस्रशतसंघाताः शूराणामुग्रधन्विनाम् ॥ २७ ॥ पातिता भीमसेनेन विराटस्य समीपतः । पत्तयो निहतास्तेषां गदां गृह्य महात्मना ॥ २८ ॥ तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं सुशर्मा युद्धदुर्मदः । चिन्तयामास मनसा किं शेषं हि वलस्य मे । अपरो दृश्यते सैन्ये पुरा मग्नो महावले ॥२९॥ आकर्णपूर्णेन तदा धनुषा प्रत्यदृश्यत । सुशर्मा सायकांस्तीक्ष्णान् क्षिपते च पुनः पुनः ॥ ३० ॥ ततः समस्तास्ते सर्वे तुरगानभ्यचोदयन् । दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणास्त्रिगर्त्तान् प्रत्यमर्षणाः ॥ ३१ ॥ तान् निवृत्तरथान् दृष्ट्वा पाण्डवान् सा महाचमूः । वैराटिः परमं क्रुद्धो युयुधे परमाद्भुतम् ॥ ३२ ॥ सहस्रमवधीत्तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । भीमः सप्त सहस्राणि यमलोकमदर्शयत् ॥ ३३ ॥ नकुलश्चापि सप्तैव शतानि प्राहिणोच्छरैः । शतानि

ही महायुद्ध करनेका हमारा भाग्य जागा है तो हम दोनों के महायुद्धके कामको हम दोनों अच्छी प्रकार देखें, यह कह कर राजा सुशर्मा अपने भाइयोंके सहित युद्ध करनेके लिये पीछेको फिरा और पलक मारने मात्रमें त्रिगर्तोंके योधा भीमसेनके सामने आकर खडे होगए ॥ २५—२७ ॥ त्रिगर्तराज और भीममें युद्ध होने लगा महात्मा भीमने हाथमें गदा लेकर लाखों रथोंको लाखों हाथियोंको लाखों घोडोंको, लाखों घुडसवारोंको और लाखों उग्र धनुषधारी शूरोंको, राजा विराटके सामने ही मारडाला तथा त्रिगर्तोंके पैदलों को भी मारडाला ॥ २८ ॥ युद्धदुर्मद सुशर्मा इस प्रकारके युद्धको देख कर मनमें विचार करनेगा कि—मेरी सेनामें अव वाकी ही क्या रहा है ? अर्थात् सवका नाश होगया । अरे ! मेरा भाई जो कान तक धनुष खेंचता हुआ दीख रहा था वह तो इस महावलवाली सेना में पहिले ही मारा गया, ऐसा खेद करनेके अनन्तर सुशर्मा भीमसेनके ऊपर वारम्वार तीखे वाण फैंकने लगा ॥ २९—३० ॥ यह देख कर सब पाण्डव त्रिगर्तोंके ऊपर क्रोधमें भरगए और त्रिगर्तोंकी ओरको अपने रथके घोड़ोंको हाँककर उनके ऊपर दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ पाण्डवोंको त्रिगर्तोंकी ओर रथ फेरते हुए देख कर विराटकी महासेना और विराटके पुत्र अत्यन्त क्रोधमें भरगए और अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करते हुए त्रिगर्तोंसे लड़ने लगे ॥ ३२ ॥ इस समय कुन्ती पुत्र युधिष्ठिरने एक हजार त्रिगर्तोंको मारडाला

त्रीणि शूराणां सहदेवः प्रतापवान् ॥ ३४ ॥ युधिष्ठिरसमादिष्टो निजघ्ने पुरुषर्षभः । ततोभ्यपतदत्युग्रः सुशर्माणमुदायुधः ॥ ३५ ॥ हत्वा तां महतीं सेनां त्रिगर्त्तानां महारथः । ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः ॥ ३६ ॥ अभिपत्य सुशर्माणं शरमभ्याहनच्छरम् । सुशर्मापि सुसंरब्धस्त्वरमाणो युधिष्ठिरम् ॥ ३७ ॥ अविध्यन्नवभिर्वाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् । ततो राजन्नाशुकारी कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ ३८ ॥ समासाद्य सुशर्माणमश्वानस्य व्यपोथयत् पृष्ठगोपांश्च तस्याथ हत्वा परमसायकैः ॥ ३९ ॥ अथास्य सारथिं क्रुद्धो रथोपस्थादपातयत् । चक्ररक्षश्च शूरो वै मदिराक्षोतिविश्रुतः ॥ ४० समायाद्विरथं दृष्ट्वा त्रिगर्त्तं प्राहरत्तदा । ततो विराटः प्रस्कन्द्य रथादथ सुशर्मणः ॥ ४१ ॥ गदां तस्य परामृश्य तमेवाभ्यद्रवद् वली । स चचार गदापाणिर्वृद्धोपि तरुणो यथा ॥ ४२ ॥ पलायमानं त्रैगर्त्तं दृष्ट्वा भीमोभ्यभाषत । राजपुत्र निवर्त्तस्व न ते युक्तं पलायनम् ॥ ४३ ॥

भीमने सात हजार त्रिगर्तोंको यमलोकका दर्शन कराया ॥ ३३ ॥ नकुलने सात सौ त्रिगर्तोंको वाणोंके प्रहारसे परलोकमें भेज दिया और प्रतापी महात्मा सहदेवने युधिष्ठिरकी आज्ञासे तीन सौ शूरोंको मारडाला और अन्तमें महाउग्र सहदेव शस्त्र उठा कर सुशर्माके ऊपर आपडा ॥ ३४—३५ ॥ महारथी राजा युधिष्ठिर इस प्रकार त्रिगर्तोंकी वडी भारी सेनाका संहार करके शीघ्रतासे सुशर्माके ऊपर चढ़गए और उसको अच्छे प्रकार वाणोंसे मारने लगे तव सुशर्माने भी अत्यन्त क्रोधमें भरकर शीघ्रतासे युधिष्ठिरके नौ वाण मारे और उनके चारों घोडोंके चार वाण मारे इससे हे राजन् ! कुन्तीपुत्र भीमसेन, शीघ्रतासे सुशर्माके रथके पास जा पहुंचा और उसने वहुत तीखे वाण मारकर उसके घोडोंको तथा पीछेके भागमें खड़े हुए अंगरक्षकों को मार डाला ॥ ३६—३९ ॥ और फिर क्रोध करके त्रिगर्तोंके सारथि को रथकी वैठक परसे पृथिवीपर गिरा दिया इतनेमें ही राजा विराट का चक्ररक्षक मदिराक्ष जो शूर वीर और परम प्रसिद्ध था वह तहाँ आगया और त्रिगर्तको रथहीन पडा देखते ही उसे वाणोंसे मारनेलगा तव तुरत ही राजा विराट सुशर्माके रथसे नीचे कूद पड़ा और वलवान् राजा विराट उसकी ही गदा लेकर उसके सामने लडनेको दौडा -इस समय राजा विराट वृद्ध था तो भी तरुण तुरुषकी समान रणभूमिमें घूमरहा था ॥ ४०–४२ ॥ अन्तमें राजा सुशर्मा भागने लगा तव

अनेन वीर्येण कथं गास्त्वं प्रार्थयसे वलात् । कथं चानुचरांस्त्यक्त्वा शत्रुमध्ये विषीदसि ॥ ४४ ॥ इत्युक्तः स तु पार्थेन सुशर्मा रथयूथपः । तिष्ठ तिष्ठेति भीमं स सहसाभ्यद्रवद्बली ॥ ४५ ॥ भीमस्तु भीमसंकाशो रथात् प्रस्कन्द्य पाण्डवः । प्राद्रवत्तूर्णमव्यग्रो जीवितेप्सुः सुशर्मणः ॥ ४६ ॥ तं भीमसेनो धावन्तमभ्यधावत वीर्यवान् । त्रिगर्त्तराजमादातुं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ४७ ॥ अभिद्रुत्य सुशर्माणं केशपक्षे परामृशत् । समुद्यम्य तु रोषात्तं निष्पिपेष महीतले ॥ ४८ ॥ पदा मूर्ध्नि महावाहुः प्राहरद्विलपिष्यतः । तस्य जानुं ददौ भीमो जघ्ने चैनमरत्निना । स मोहमगमद्राजा प्रहारवरपीडितः ॥ ४९ ॥ तस्मिन् गृहीते विरथे त्रिगर्तानां महारथे । अभज्यत वलं सर्वं त्रैगर्त्तं तद्भयातुरम् ॥ ५० ॥ निवर्त्य गास्ततः सर्वाः पाण्डुपुत्रा महारथाः । अवजित्य सुशर्माणं धनं चादाय सर्वशः ॥ ५१ ॥

भीमने उससे कहा कि—हे राजपुत्र! पीछेको लौट, तुझे भागना योग्य नहीं है ॥ ४३ ॥ तू ऐसे पराक्रमसे किस प्रकार वल पूर्वक गौओंको लेजाना चाहता है! और अपने सेवकोंको छोडकर शत्रुओंके वीचमें क्यों खेद कर रहा है ॥४४॥ इसप्रकार रथियोंके समूहके स्वामी सुशर्मासे भीमने कहा तव सुशर्माने भीमसे कहा कि—ठीक है अव तू खड़ा रह! खड़ा रह! यह कह कर सुशर्मा एक साथ भीमके ऊपर चढ आया ॥ ४५ ॥ तुरत ही भीमकी ही समान (अनुपम) भीम अपने रथमेंसे नीचे कूद पड़ा और सुशर्माके प्राण लेनेकी इच्छासे सावधान हो सिंह जैसे छोटेसे मृगको पकडनेके लिये उसके पीछे दौडता है तैसे ही पराक्रमी भीम भी भागते हुए त्रिगर्तराजको पकडनेके लिये उसके पीछे वेगसे दौडने लगा ॥ ४६—४७ ॥ और उसने उसकी चोटी खैंच कर सुशर्मा को पकड लिया तथा फिर उसको उठा कर पृथिवी पर पटक दिया और अच्छे प्रकार रगडा ॥ ४८ ॥ जव सुशर्मा रोने लगा तव उसके शिरमें वेगसे लात मारी और पेटमें घुटली दी तथा मुट्ठी वांध कर उसके गाल पर ऐसा मुक्का मारा कि उस जोरकी मारसे पीडित हुआ त्रिगर्तराज मूर्छित होगया ॥४९॥ फिर भीमसेनने रथहीन हुए त्रिगर्तोंके महारथी राजा सुशर्माको पकड लिया यह देख भयसे घवडाई हुई उस त्रिगर्तोंकी सेनामें भग्गा पड गई ॥ ५० ॥ तव महारथी पाण्डवोंने सव गौओंको पीछेको लौटाया और सुशर्मा को हराकर उसका सव धन छीन लिया तथा वाहुवल-

ऋद्धबाहुबलसम्पन्ना ह्रीनिषेवा यतव्रताः । विराटस्य महात्मानः परिक्लेशविनाशनाः ॥ ५२ ॥ स्थिताः समक्षं ते सर्वे त्वथ भीमोऽभ्यभाषत ॥ ५३ ॥ नायं पापसमाचारो मत्तो जीवितुमर्हति । किं न शक्यं मया कर्तुं यद्राजा सततं घृणी ॥ ५४ ॥ गले गृहीत्वा राजानमानीय विवशं बलात् । तत एनं विचेष्टन्तं बद्ध्वा पार्थो वृकोदरः ॥ ५५ ॥ रथमारोपयामास विसंज्ञं पांसुगुण्ठितम् । अभ्येत्य रणमध्यस्थमभ्यगच्छद्युधिष्ठिरम् ॥ ५६॥ दर्शयामास भीमस्तु सुशर्माणं नराधिपम् । प्रोवाच पुरुषव्याघ्रो भीमसमाहवशोभिनम् ॥५७॥ तं राजा प्राहसद् दृष्ट्वा मुच्यतां वै नराधमः । एवमुक्तोऽब्रवीद्भीमः सुशर्माणं महाबलम् ॥ ५८ ॥ भीम उवाच । जीवितुं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु । दासोऽस्मीति त्वया वाच्यं संसत्सु च सभासु च ॥ ५९ ॥ एवं ते जीवितं दद्यामेष युद्धजितो विधिः । तमुवाच ततो ज्येष्ठो भ्राता सप्रणयं वचः ॥ ६० ॥ युधिष्ठिर उवाच । मुञ्च मुञ्चाधमाचारं प्रमाणं यदि ते वयम् । दास-

---

वाले लज्जाशील व्रतधारी क्लेशोंका नाश करने वाले महात्मा पांडव राजा विराटके सामने आकर खड़े होगए उस समय पहिले भीमसेन बोला कि-॥ ५१-५३ ॥ यह पाप कर्म करनेवाला मेरे पाससे जीता चला जाय यह ठीक नहीं है परन्तु जब महाराज सदाके दयालु हैं तो मैं कर ही क्या सकता हूँ ॥ ५४ ॥ इस प्रकार कह कर पराधीन चेतनारहित राजा सुशर्मा, जो जैसे होसके तैसे भागनेके लिए तड़फ रहा था उसकी गरदन पकड़ कर रस्सीसे बाँधा तथा धूलमें सने हुए चेतनता रहित पड़े हुए उसको रथमें डाल कर जहाँ रणभूमिमें राजा युधिष्ठिर थे वहाँ ले गया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ जब राजा युधिष्ठिरके पास सुशर्माको ले आकर दिखाया तब पुरुषव्याघ्र राजा युधिष्ठिर उसको देखकर हँसे और युद्धमें शोभा पाने वाले भीमसेनसे बोले कि-इस नराधमको छोड़ दो तब महाबली सुशर्मासे भीमने कहा कि-५७।५८ ओ मूढ ! यदि तू जीवित रहना चाहता हो तो मैं तुझसे जो कहता हूँ उसको सुन और उसी प्रकार वर्ताव करनेकी प्रतिज्ञा कर, तुझे विद्वानोंकी सभामें और साधारण पुरुषोंकी सभाओंमें यह कहना होगा कि-मैं दास हूँ ॥ ५९ ॥ यदि इस प्रतिज्ञाको तू स्वीकार करे तो मैं तुझे जीता हुआ छोड़ूँ क्योंकि-युद्धमें जीते हुओंके ऐसा कहनेकी रीति है, यह सुन कर बड़े भाई युधिष्ठिरने प्रेमके साथ कहा कि-जो तुम मुझे मान्य समझते हो तथा मेरे कहनेका मान रखना चाहते

भावं गतो ह्येष विराटस्य महीपतेः । अदासो गच्छ मुक्तोसि मैवं कार्षीः कदाचन ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे
सुशर्मनिग्रहे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवमुक्ते तु सव्रीडः सुशर्मासीदधोमुखः । स मुक्तोभ्येत्य राजानमभिवाद्य प्रतस्थिवान् ॥ १ ॥ विसृज्य तु सुशर्माणं पाण्डवास्ते हतद्विषः । स्वबाहुबलसम्पन्ना ह्रीनिषेवा यतव्रताः । संग्रामशिरसो मध्ये तां रात्रिं सुखिनोवसन् ॥२॥ ततो विराटः कौंतेयानतिमानुषविक्रमान् । अर्चयामास वित्तेन मानेन च महारथान् ॥३॥ विराट उवाच । यथैव मम रत्नानि युष्माकं तानि वै तथा । कार्यं कुरुत वै सर्वे यथाकामं यथासुखम् ॥४॥ ददाम्यलंकृताः कन्या वसूनि विविधानि च । मनसश्चाप्यभिप्रेतं युद्धे शत्रुनिवर्हणाः ॥५॥ युष्माकं

हो तो इस नीच आचरणवाले पुरुषको छोड़ दो, यह राजा विराटका दास हो ही चुका है, इस प्रकार कहकर त्रिगर्तराजसे कहा कि-तुझे दासभावसे छोड़ा जाता है अतः अब तू दास नहीं है ।जा चला जा और अब कभी ऐसा न करना ॥६०॥६१॥ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! युधिष्ठिरने यह बात कही उसको सुन कर सुशर्माने लज्जासे अपना मुख नीचा कर लिया और भीमसेनके छोड़ देने पर भरी सभामें राजा विराटके पास गया और उनको प्रणाम करके अपने देशकी ओरको चला गया ॥१॥ भुजदण्डों का बल रखनेवाले लज्जाशील तथा सदाचरण पाण्डवोंने इस प्रकार अपने शत्रुओंको नष्ट कर सुशर्माको कैद करा और राजा विराटके सामने उसको नमाकर छोड़ दिया और उस रातको रणभूमिमें ही सुखसे रहे ॥ २ ॥ राजा विराटने अलौकिक पराक्रम करनेवाले कुंतीपुत्रोंका बहुत ही सन्मान किया और बहुतसा धन तथा वस्त्रादि देकर अच्छी प्रकार सत्कार करके उनसे कहा कि-॥ ३ ॥ मेरे हाथमें जो उत्तम रत्न तथा उत्तमोत्तम पदार्थ हैं वे सब जैसे मेरे हैं तैसे ही तुम्हारे भी हैं तुम सब मेरे नगरमें रह कर, तुमको जैसे सुख मिलें उसी प्रकार अपनी इच्छानुसार कार्य करो ॥४॥ हे युद्धमें शत्रुओंका संहार करनेवाले वीर पुरुषों ! कहो तो मैं तुम्हें शृङ्गारकी हुई उत्तम कन्यायें विवाह दूँ अनेकों प्रकारके उत्तम पदार्थ दूँ और तुम्हारे मनकी कामनाओंको भी पूरी करूँ ॥ ५ ॥ क्योंकि-तुम्हारे पराक्रमसे आज मैं

विक्रमाद्य मुक्तोहं स्वस्तिमानिह । तस्माद्भवन्तो मत्स्यानामीश्वराः सर्व एव हि ॥६॥ वैशम्पायन उवाच । तथेति धार्मिकं मत्स्यं कौरवेयाः पृथक् पृथक् । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥७॥ प्रतिनन्दाम ते वाक्यं सर्वं चैव विशाम्पते। एतेनैव प्रतीताः स्म यत्त्वं मुक्तोद्य शत्रुभिः ॥ ८ ॥ ततोब्रवीत् प्रीतमना मत्स्यराजो युधिष्ठिरम् । पुनरेव महाबाहुर्विराटो राजसत्तमः ॥ ९ ॥ एहि त्वामभिषेक्ष्यामि मत्स्यराजस्तु नो भवान् ॥ १० ॥ मनसश्चाप्यभिप्रेतं यथेष्टं भुवि दुर्लभम् । तत्तेहं संप्रदास्यामि सर्वमर्हति नो भवान् ॥ ११ ॥ रत्नानि गाः सुवर्णं च मणिमुक्तमथापि च । वैयाघ्रपद्य विप्रेन्द्र सर्वथैव नमोस्तु ते १२ त्वत्कृते ह्यद्य पश्यामि राज्यं सन्तानमेव च। यतश्च जातसंरम्भो न च शत्रुवशङ्गतः १३ततो युधिष्ठिरो मत्स्यं पुनरेवाभ्यभाषत । प्रतिनन्दामि ते वाक्यं मनोज्ञं मत्स्य भाषसे ॥१४॥ आनृशंस्यपरो नित्यं सुसुखी सततं

कुशल पूर्वक शत्रुओंके हाथसे छूटा हूँ, इस लिए मुझे इतना ही कहना है कि-तुम् सब मत्स्यदेशके राजा हो ॥ ६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-मत्स्यराजके ऐसे स्नेह भरे वचन सुनकर युधिष्ठिर आदि सब पांडव हाथ जोड़ कर विराटसे विनयपूर्वक अलग २ कहने लगे कि-॥ ७ ॥ हे राजन् ! हम आपकी सब बातोंको मानते हैं और आप शत्रुके हाथसे छूट गए इतनेसे ही हम मनमें सन्तुष्ट हैं और हमें दूसरे किसी पदार्थकी इच्छा नहीं है ॥ ८ ॥ तब महाबाहु राजाओंमें श्रेष्ठ राजा विराटने प्रसन्न होकर फिर युधिष्ठिरसे कहा कि-॥ ९ ॥ तुम मेरे पास आओ मैं तुम्हारा राज्यसिंहासन पर अभिषेक करूँ और तुम हमारे राजा बनो ॥ १० ॥ हे व्याघ्रपादगोत्रोत्पन्न विप्रेन्द्र ! मेरे पास रत्न, गौ, सुवर्ण मणि मोती आदि जो कुछ पदार्थ हैं वे मनको अच्छे लगनेवाले पदार्थ पृथ्वीपर मिलने दुर्लभ हैं वे सब पदार्थ मैं आपको देता हूँ क्योंकि-तुम मेरी सब वस्तुओंको ग्रहण कर सकते हो मैं आपको सब प्रकारसे नमस्कार करता हूँ ॥११॥१२॥ मैं तुम्हारे कारणसे ही आज राज्यको और सन्तानोंको देखनेका भाग्यशाली हुआ हूं क्योंकि-मुझे (कैद होनेका) डर लग रहा था तो भी मैं शत्रुओंके वशमें न होकर उनके हाथसे छूट गया हूं ॥ १३ ॥ यह सुनकर युधिष्ठिरने मत्स्यराजसे फिर कहा कि-हे मत्स्यराज ! आप मनोहर वाक्य कहते हैं इस लिए मैं आपके वचनोंको सराहता हूँ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! आप सर्वदा सब पर दयालु रहते हैं ईश्वर आपको सदा सुखी रक्खें आप ऐसे

सव । गच्छन्तु दूतास्त्वरिता नगरं तव पार्थिव॥१५॥ सुहृदां प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम्। ततस्तद्वचनान्मत्स्यो दूतान् राजा समादिशत् ॥ १६ ॥ स्व आचक्षध्वं पुरं गत्वा संग्रामे विजयं मम । कुमार्यः समलंकृत्य पर्यागच्छन्तु मे पुरात् ॥ १७ ॥ वादित्राणि च सर्वाणि गणिकाश्च स्वलंकृताः। एतां चाज्ञां ततः श्रुत्वा राज्ञा मत्स्येन नोदिताः। तामाज्ञां शिरसा कृत्वा प्रस्थिता हृष्टमानसाः ॥ १८ ॥ ते गत्वा तत्र तां रात्रिमथ सूर्योदयं प्रति । विराटस्य पुराभ्याशे दूता जयमघोषयन्

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि विराटजयघोषे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

वैशम्पायन उवाच । याते त्रिगर्तान्मत्स्ये तु पशूंस्तान्वै परीप्सति । दुर्योधनः सहामात्यो विराटमुपयादथ ॥ १ ॥ भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च कृपश्च परमास्त्रवित् । द्रौणिश्च सौबलश्चैव तथा दुःशासनः

करें कि–आपके दूत इस विजयसमाचारको आपके सम्बन्धियोंको पहुँचानेके लिये तथा नगरमें विजयके बाजे बजवानेके लिये शीघ्रता से नगरमें जायँ यह सुनकर मत्स्यराजने दूतोंको आज्ञा दी, कि—तुम नगरमें जाकर संग्राममें पाई हुई मेरी विजयकी सूचना सबको दो और आज्ञा दो कि–कुमारियें सौभाग्यके अलंकार तथा वस्त्र पहिर कर मुझे आशीर्वाद देनेके लिये नगरमेंसे बाहर मेरे सन्मुख आवें अनेकों प्रकारके बाजे बजाते हुए लेनेके लिए मेरे सामने आवें और गणिकाएँ भी सजकर मुझे लेनेके लिये सन्मुख आवें मत्स्यराजकी ऐसी आज्ञा होते ही दूत राजाकी आज्ञाको मस्तक पर चढ़ा कर प्रसन्न होते हुए नगरकी ओरको दौड़ गए ॥ १५–१८ ॥ वे रात्रिमें चलते२ सूर्योदयके समय विराट नगरके समीपमें आ पहुँचे तब दूतोंने विजयकी घोषणा करना आरम्भ की ॥ १९ ॥ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि–हे महाराज ! मत्स्यदेशका राजा विराट् अपनी गौओंकी रक्षा करनेके लिये त्रिगर्तोंके पीछे गया था वह अभी लौटकर आया भी नहीं था, यह अवसर देखकर दुर्योधन भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार गौओंको हरनेके लिये मन्त्रियोंके साथ विराटके देश पर चढ़ आया ॥१॥ भीष्म द्रोणाचार्य, अस्त्रविद्यामें चतुर कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा शकुनि, दुःशासन, विविंशति, विकर्ण, पराक्रमी चित्रसेन, दुर्मुख, दुःशल तथा और महारथी भी दुर्योधनके साथ

प्रभो ॥ २ ॥ विविंशतिर्विकर्णश्च चित्रसेनश्च वीर्यवान्। दुर्मुखो दुःशलश्चैव ये चैवान्ये महारथाः ॥ ३ ॥ एते मत्स्यानुपागम्य विराटस्य महीपतेः। घोषान् विद्राव्य तरसा गोधनं जहुरोजसा ॥ ४ ॥ षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति च। महता रथवंशेन परिवार्य समन्ततः ॥ ५ ॥ गोपालानां तु घोषस्य हन्यतां तैर्महारथैः। आरावः सुमहानासीत् सम्प्रहारे भयंकरे ॥ ६ ॥ गोपाध्यक्षो भयत्रस्तो रथमास्थाय सत्वरः। जगाम नगरायैव परिक्रोशंस्तदार्त्तवत् ॥ ७ ॥ स प्रविश्य पुरं राज्ञो नृपवेश्माभ्ययात्ततः। अवतीर्य रथात्तूर्णमाख्यातुं प्रविवेश ह ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा भूमिञ्जयं नाम पुत्रं मत्स्यस्य मानिनम्। तस्मै तत् सर्वमाचष्ट राष्ट्रस्य पशुकर्षणम् ॥ ९ ॥ षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति ते। तद्विजेतुं समुत्तिष्ठ गोधनं राष्ट्रवर्द्धन ॥१०॥ राजपुत्रहितप्रेप्सुः क्षिप्रं निर्याहि च स्वयम्। त्वां हि मत्स्यो महीपालः शून्यपालमिहाकरोत् ॥ ११ ॥ त्वया परिषदो मध्ये श्लाघते स नराधिपः।

आए ॥ २ ॥ ये महारथी एक साथ विराटनगर पर चढ़ आए और राजा विराटके ग्वालोंके ग्रामोंको उजाड़ डाला, बलात्कारसे उनकी गौओंके समूहको हर कर लेजानेका आरम्भ करने लगे ॥ ३-४ ॥ और सब गोठोंको रथोंसे चारों ओर घेरकर साठ हजार गौओंको महारथी कौरव हाँककर लेजाने लगे तथा रोकनेको आनेवाले गोपालोंका महा भयंकर संहार करने लगे, उस समय ग्वालिये बड़ा हाहाकार करके रोने लगे ॥ ५-६ ॥ इन सब ग्वालियोंमें एक बड़ा गोपाल जो सबका स्वामी था वह डरगया और रथमें बैठकर घबड़ाया हुआ हाय हाय करता हुआ शीघ्रतासे समाचार देनेके लिए नगरकी ओरको दौड़ा ॥ ७ ॥ और नगरमें पहुँच कर राजमहलके पास जा रथसे नीचे उतरकर समाचार कहनेके लिए राजभवनमें गया ॥ ८ ॥ तहाँ मत्स्यराज के अभिमानी पुत्र भूमिञ्जयको देखा तब उसको अपने देशकी गौएं छिन जानेकी सब बात सुनाई ॥ ९ ॥ और कहा कि साठहजार गौओंको कौरव अपने देशमें हाँककर लिएजाते हैं इसलिए हे देशकी वृद्धि करनेवाले राजकुमार ! तुम गौओंके समूहको जीतनेके लिए सावधान होकर उनके सामने लड़नेको तयार होजाओ ॥ १० ॥ हे राजपुत्र ! तुम देशका मङ्गल चाहते हो तो शीघ्र ही नगरसे बाहर निकलकर वैरियोंका तिरस्कार करो क्योंकि मत्स्यदेशके राजा विराटने अपने पीछे तुम्हें राज्यका रक्षक नियत किया है और तुम्हारे हाथ

पुत्रो ममानुरूपश्च शूरश्चेति कुलोद्वहः ॥१२॥ इष्वस्त्रे निपुणो योधः
सदा वीरश्च मे सुतः । तस्य तत्सत्यमेवास्तु मनुष्येन्द्रस्य भाषितम् १३
आवर्त्तय कुरून् जित्वा पशून् पशुमतांवर । निर्दहैषामनीकानि
भीमेन शरतेजसा ॥१४॥ धनुश्च्युतै रुक्मपुंखैः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
द्विषतां भिन्ध्यनीकानि गजानामिव यूथपः ॥१५॥ पाशोपधानां ज्या-
तन्त्रीं चापदण्डां महास्वनाम् । शरवर्णां धनुर्वीणां शत्रुमध्ये प्रवादय १६
श्वेता रजतसंकाशा रथे युज्यन्तु ते हयाः । ध्वजञ्च सिंहं सौवर्ण-
मुच्छ्रयन्तु तव प्रभो ॥ १७ ॥ रुक्मपुंखाः प्रसन्नाग्रा मुक्ता हस्तवतां
त्वया । छादयन्तु शराः सूर्य्यं राज्ञां मार्गनिरोधकाः ॥ १८ ॥ रणे
जित्वा कुरून् सर्वान् वज्रपाणिरिवासुरान् । यशो महदवाप्य त्वं प्रवि-
शेदं पुरं पुनः ॥ १९ ॥ त्वं हि राष्ट्रस्य परमा गतिर्मत्स्यपतेः सुतः ।

में राज्यका भार सौंपा है ११ और सभामें जो राजा विराट तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करतेहुए कहते हैं कि–मेरा पुत्र मेरे ही समान गुणी शूरवीर तथा कुलके गौरवको बढ़ाने वाला है ॥१२॥ सदा धनुषको छोड़नेमें योधा और वीर है । अपने पिता महाराज विराटके उस कथनको आज सत्य करो ॥ १३ ॥ हे पशुओंके श्रेष्ठ रक्षकोंमें श्रेष्ठ ! तुम आज कौरवोंको हराकर पशुओंको लौटा लाओ और बाणोंके भयंकर तेजसे उनकी सेनाओंको जलाकर भस्म करदो ॥ १४ ॥ और नमीहुई गाँठ वाले तथा सुनहरी पर लगेहुए बाणोंको धनुषमेंसे छोड़कर जैसे हाथियोंके समूहका स्वामी हाथियोंको मारता है तैसे ही तुम वैरियोंको सेनाका संहार करो ॥१५॥ पाश ही (धनुषकी डोरीके अन्तिमभाग परकी खुंटियेंरूपो) जिसमें तार बांधनेकी कोलें हैं, जिसमें प्रत्यञ्चारूपी तार लगाहुआ है धनुषका कमठरूपी जिसमें वीणाका डंडा है जो बड़ाभारी शब्द करनेवाली है, जिसमें बाणोंके निकलनेकी सड़सड़ाहट निकलनारूप अक्षर हैं ऐसी धनुषरूपी वीणाको तुम वैरियोंके मध्यमें बजाओ ॥ १६ ॥ अपने श्वेतवर्णके चांदीकी समान दमकतेहुए घोड़ोंको रथमें जोड़ो तथा हे महाराज ! सुनहरी सिंहके चिह्नकी ध्वजाको अपने रथपर फहराओ १७ तुम अपने दृढहाथसे सुवर्णकी पूँछवाले प्रसन्नमुख तथा राजाओंके मार्गमें अड़चन डालनेवाले बाणोंको मारकर सूर्यके मार्गको ढक दो ॥ १८ ॥ और वज्रधारी इन्द्रने पहिले जैसे असुरोंको हराया था तैसे ही रणमें सब कौरवोंको हरा बड़ाभारी यश प्राप्त करके तुम इस नगरमें प्रवेश करो ॥ १९ ॥ तुम मत्स्यराज पुत्रके

यथा हि पाण्डुपुत्राणामर्जुनो जयतां वरः ॥ २० ॥ एवमेव गतिर्नूनं भवान् विषयवासिनाम् । गतिमन्तो वयं त्वद्य सर्वे विषयवासिनः २१ वैशम्पायन उवाच । स्त्रीमध्य उक्तस्तेनासौ तद्वाक्यमभयंकरम् । अन्तःपुरे श्लाघमान इदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
गोपवाक्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

उत्तर उवाच । अद्याहमनुगच्छेयं दृढधन्वा गवां पदम् । यदि मे सारथिः कश्चिद्भवेदश्वेषु कोविदः ॥ १ ॥ तं त्वहं नाधिगच्छामि यो मे यन्ता भवेन्नरः । पश्यध्वं सारथिं क्षिप्रं मम युक्तं प्रयास्यतः ॥ २ ॥ अष्टाविंशतिरात्रं वा मासं वा नूनमन्ततः । यत्तदासीन्महद्युद्धं तत्र मे सारथिर्हतः ॥ ३ ॥ स लभेयं यदा त्वन्यं हययानविदं नरम् । त्वरावानद्य यात्वाहं समुच्छ्रितमहाध्वजम् ॥ ४ ॥ विगाह्य तत् पुरानीकं गज-

---

हो जब महाराज घरमें नहीं होते हैं तब मत्स्यदेशकी रक्षा करनेका और देख भाल करनेका काम आपको ही सौंपा जाता है अधिक क्या कहूँ जैसे विजयी अर्जुन पाण्डवोंका आधार है ॥ २० ॥ तैसे ही इस देशमें रहनेवालोंके आप निश्चय आधार हो, इसलिये आज हम सब देशवासी तुम्हारा ही आधार रखते हैं ॥ २१॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! उस ग्वालियेने अन्तःपुरमें स्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए उत्तरसे इसप्रकार कहा तब अपनी प्रशंसा करताहुआ इसप्रकार अभय देनेवाले वचन कहने लगा ॥ २२ ॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त

उत्तर बोला, कि-हे महागोप ! मेरे धनुष बहुत ही दृढ़ हैं और इसी क्षणमें मैं गौओंके पैरोंके चिह्नों पर होकर बाहर जानेको उद्यत हूँ परन्तु यदि कोई घोड़ोंकी गति जाननेवाला पुरुष मेरा सारथी बने तो ही यह काम मुझसे होसकता है ॥ १ ॥ इस लिये तुम मेरी चढ़ाई के लिये झटपट किसी चतुर सारथीको खोजकर लाओ, क्योंकि-मुझे तो ऐसा कोई मनुष्य यहाँ पर दीखता नहीं, जो मेरा सारथी बने ॥ २ ॥ पहिले जब अट्ठाईस रात्रि तक अथवा एक महीने तक अथवा उस से कुछ कम दिनों तक महा युद्ध हुआ था उस में मेरा सारथी मारा गया है ॥ ३ ॥ इस लिये मुझे यदि कोई भी दूसरा रथ को हाँकना जाननेवाला सारथि मिलजाय तो मैं शीघ्रतासे चढ़ाई कर फहराती हुई बड़ी२ ध्वजाओंवाली हाथी, रथ तथा घोड़ों से भरपूर वैरीकी सेनामें प्रवेश कर शस्त्रोंके प्रतापसे कौरवों को

वाजिरथाकुलम् । शस्त्रप्रतापनिर्वीर्यान् कुरून् जित्वानये पशून् ॥ ५ ॥
दुर्योधनं शान्तनवं कर्णं वैकर्त्तनं कृपम् । द्रोणञ्च सह पुत्रेण महेष्वा-
सान् समागतान् ॥ ६ ॥ वित्रासयित्वा संग्रामे दानवानिव वज्रभृत् ।
अनेनैव मुहूर्त्तेन पुनः प्रत्यानये पशून् ॥७॥ शून्यमासाद्य कुरवः प्रया-
न्त्यादाय गोधनम् । किन्तु शक्यं मया कर्त्तुं यदहं तत्र नाभवम् ॥८॥
पश्येयुरद्य मे वीर्यं कुरवस्ते समागताः । किन्नु पार्थोर्जुनः साक्षादय-
मस्मान् प्रबाधते ॥ ९ ॥ वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वा तदर्जुनो वाक्यं
राज्ञः पुत्रस्य भाषतः । अतीतसमये काले प्रियां भार्यामनिन्दिताम्१०
द्रुपदस्य सुतां तन्वीं पांचालीं पावकात्मजाम्। सत्यार्जवगुणोपेतां भर्त्तुः
प्रियहिते रताम् ॥ ११ ॥ उवाच रहसि प्रीतः कृष्णां सर्वार्थकोविदः ।
उत्तरं ब्रूहि कल्याणि क्षिप्रं मद्वचनादिदम् ॥ १२ ॥ अयं वै पाण्डव-
स्यासीत् सारथिः सम्मतो दृढः । महायुद्धेषु संसिद्धः स ते यन्ता
भविष्यति ॥ १३ ॥ वैशम्पायन उवाच । तस्य तद्वचनं स्त्रीषु भाष-

निस्तेज कर उनका तिरस्कार करूँ और गौओंको लौटाल लाऊँ ४-५
इन्द्र जैसे रणमें दानवोंका नाश करता है, तैसे ही मैं भी रणमें
दुर्योधन भीष्म सूर्यके पुत्र कर्ण कृपाचार्य द्रोणाचार्य और उनके पुत्र
अश्वत्थामा तथा इकट्ठे हुए दूसरे बड़े२ धनुषधारियोंको भयभीत
करके एक मुहूर्त में पशुओंको लौटाकर लादूँगा ॥ ६-७ ॥ कौरव
योधाओंसे रहित सूने देशको पाकर गौएँ लिए जाते हैं परन्तु मैं उस
समय तहाँ नही था और अब मुझसे हो ही क्या सकता है ? ॥ ८ ॥
यदि ये कौरव इकट्ठे होकर चढ़ आए हैं तो अच्छा ! आज वे मेरे
पराक्रमको देखें ! वे मेरे पराक्रमको देखकर आपसमें कहेंगे कि–अरे
क्या साक्षात् पृथापुत्र अर्जुन ही हमारे ऊपर चढाई करके हमें दुःखित
कर रहा है ? ॥ ९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय ! इस
प्रकार बोलते हुए राजपुत्रकी बातको सुनकर सर्व बातोंमें चतुराई
रखनेवाला अर्जुन प्रसन्न हुआ और अब उसके गुप्तवासका समय
भी बीत गया था इससे उसने सत्य व्रतवाली आर्जव आदि गुण
सम्पन्न अपने पतिका हित करनेमें तत्पर रहनेवाली पवित्र आचार
वाली अपनी प्रियतमा और अग्निकी पुत्री द्रौपदीको एकान्तमें बुला
कर कहा कि–॥ १०–१२ ॥ हे कल्याणि ! मैं तुझसे जो कुछ कहता
हूँ सो तू अभी उत्तरसे कहदे कि यह बृहन्नला बहुत ही दृढ और
अर्जुनका मान्य सारथि था और यह बड़े बड़े संग्रामोंमें जाकर चतुर

तच्च पुनः पुनः । न सामर्षत पाञ्चाली बीभत्सोः परिकीर्त्तनम् ॥१४॥ अथैनमुपसंगम्य स्त्रीमध्यात् सा तपस्विनी। व्रीडमानेव शनकैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥ योऽसौ बृहद्वारणाभो युवा सुप्रियदर्शनः । बृहन्नलेति विख्यातः पार्थस्यासीत् स सारथिः ॥ १६ ॥ धनुष्यनवरश्चासीत्तस्य शिष्यो महात्मनः । दृष्टपूर्वो मया वीर चरन्त्या पाण्डवान् प्रति १७ यदा तत् पावको दावमदहत् खाण्डवं महत् । अर्जुनस्य तदानेन संगृहीता हयोत्तमाः ॥ १८ ॥ तेन सारथिना पार्थ सर्वभूतानि सर्वशः । अजयत् खाण्डवप्रस्थे न हि यन्तास्ति तादृशः ॥ १९ ॥ उत्तर उवाच । सैरन्ध्रि जानामि तथा युवानं नपुंसको नैव भवेद्यथासौ । अहं न शक्नोमि बृहन्नला शुभे वक्तुं स्वयं यच्छ हयान्ममेति वै ॥२०॥ द्रौपद्युवाच । येयं कुमारी सुश्रोणी भगिनी ते यवीयसी । अस्याः स वीर वचनं करिष्यति न संशयः ॥ २१ ॥ यदि वै सारथिः स स्यात् कुरून् सर्वान्न संशयः । जित्वा गाश्च समादाय ध्रुवमागमनं भवेत् २२

बन गया है इसको तुम अपना सारथि बनाओ ॥ १३ ॥ राजपुत्र उत्तर बारम्बार स्त्रियोंमें अर्जुनका नाम लेकर बातें करनेलगा तब तो उसका कहना द्रौपदीसे सहन नहीं होसका ॥ १४ ॥ इससे तपस्विनी द्रौपदी स्त्री मण्डलीमेंसे उठकर उत्तरके पास गई और लजाती हुई धीरे २ उससे कहनेलगी ॥ १५ ॥ कि-यह जो बड़े हाथीकी समान आकार वाला तरुण और दर्शनीय है और बृहन्नला नामसे प्रसिद्ध हुआ है यह मनुष्य पहिले अर्जुनका सारथी था ॥ १६ ॥ यह महात्मा अर्जुनका धनुर्विद्यामें मुख्यशिष्य है और जब मैं पाण्डवोंके पास रहती थी तो मैंने पहिले इसे तहाँ देखा था ॥१७॥ जब अग्निने खाण्डव वनको जलाडालाथा तब यह पुरुष अर्जुनके रथके घोड़ोंको पकड़ रहा था ॥ १८ ॥ और इस श्रेष्ठ सारथिको साथमें लेनेसे ही अर्जुन खाण्डवप्रस्थमें रह कर सब प्राणियोंका पराजय करसका था इसकी समान दूसरा कोई सारथीनहीं है ॥ १९ ॥ उत्तर बोला कि-अरी सैरंध्रि ! मैं इस तरुण पुरुषको जानता हूँ इसकी समान पुरुष नपुंसक हो ही नहीं सकता परन्तु हे कल्याणि ! मैं अपने आप बृहन्नलाके पास जाकर कैसे कह सकता हूँ कि-तू मेरे घोड़ोंका सारथिपना कर ॥ २० ॥ द्रौपदी बोली कि-हे वीर ! तेरी यह सुन्दर कमरवाली छोटी बहिन जो उत्तरा है इसका कहना बृहन्नला अवश्य करेगी ॥२१॥ यदि यह तुम्हारा सारथी बन जायगा तो तुम सब कौरवोंको जीतकर अवश्य ही गौओंको

एवमुक्तः स सैरन्ध्र्या भगिनीं प्रत्यभाषत । गच्छ त्वमनवद्यांगि तामानय बृहन्नलाम् ॥ २३ ॥ सा भ्रात्रा प्रेषिता शीघ्रमगच्छन्नर्त्तनागृहम् । यत्रास्ते स महाबाहुश्छन्नः सत्रेण पाण्डवः ॥ २४ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
बृहन्नलासारथ्यकथने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच । सा प्राद्रवत्कांचनमाल्यधारिणी ज्येष्ठेन भ्रात्रा प्रहिता यशस्विनी । सुदक्षिणा वेदिविलग्नमध्या सा पद्मपत्राभनिभा शिखण्डिनी ॥ १ ॥ तन्वी शुभांगी मणिचित्रमेखला मत्स्यस्य राज्ञो दुहिता श्रिया वृता । तन्नर्त्तनागारमरालपक्ष्मा शतह्रदा मेघमिवान्वपद्यत ॥ २ ॥ सा हस्तिहस्तोपमसंहितोरूः स्वनिंदिता चारुदती सुमध्यमा । आसाद्य तं वै वरमाल्यधारिणी पार्थं शुभा नागवधूरिव द्विपम् ३ सा रत्नभूता मनसः प्रियार्चिता सुता विराटस्य यथेन्द्रलक्ष्मीः । सुदर्शनीया प्रमुखे यशस्विनी प्रीत्याब्रवीदर्जुनमायतेक्षणा ॥ ४ ॥ सुसंह-

---

लौटालाओगे इसमें सन्देह नहीं है २२ इस प्रकार सैरन्ध्रीने कहा तब उत्तरने अपनी बहिनसे कहा कि—हे निर्दोषांगी बहिन ! तू बृहन्नलाके पास जाकर उसे यहाँ बुला ला ।२३। भाईके कहनेसे उत्तरा कुमारी नृत्यमन्दिरमें जहाँ महाबाहु अर्जुन, बृहन्नलाके वेशमें छिपा बैठा था वहाँ तुरन्त गई ॥ २४ ॥ छत्तीसवाँ, अध्याय समाप्त ॥३६॥ छ

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! बड़े भाईने अर्जुनको बुलानेके लिये उत्तराको आज्ञा दी, तब सुवर्णकी मालाको धारण करने वाली, यशस्विनी बड़े भाईकी आज्ञामें रहने वाली, यज्ञकी वेदीकी समान पतली कमरवाली, कमलके पत्रमें निवास करनेवाली लक्ष्मीकी समान कान्तिवाली, लम्बे केशोंवाली, शरीरसे दुर्बल शुभाङ्गी, मणियोंसे जड़ी विचित्र मेखलाको धारण किये शोभासम्पन्न पतले पलकोवाली, हाथीकी सूँडकी समान एक दूसरेसे सटी हुई गोलाकार जंघाओंवाली, निर्दोष, सुन्दर दाँतोंवाली, सुन्दर कमलवाली, सुन्दर पुष्पोंकी मालाको धारण किये स्त्रियोंमें श्रेष्ठ मनोहारिणी आदर करने योग्य इन्द्रकी लक्ष्मीकी समान परम दर्शनीय विशालनेत्रा राजा विराटकी पुत्री उत्तरा कुमारी, विजली जैसे मेघके पास जाती है और श्रेष्ठ हथिनी जैसे हाथीके पास जाती है तैसे ही नृत्यमन्दिरमें बैठे हुए सुन्दर तथा एक दूसरेके साथ सटी हुई जंघाओंवाले तथा सुवर्णकी समान उज्ज्वल, कांतिवाले अर्जुनके पास जानेको झपटी और प्रेम

तोरं कनकोज्ज्वलत्वचं पार्थः कुमारीं स तदान्वभाषत । किमागमः काञ्चनमाल्यधारिणि मृगाक्षि किं त्वं त्वरितेव भामिनि । किं ते मुखं सुन्दरि न प्रसन्नमाचक्ष्व तत्त्वं मम शीघ्रमंगने ।५। वैशम्पायन उवाच । स तां दृष्ट्वा विशालाक्षीं राजपुत्रीं सखी सखा । प्रहसन्नब्रवीद्राजन् किमागमनमित्युत ॥ ६ ॥ तमब्रवीद्राजपुत्री समुपेत्य नरर्षभम् । प्रणयम्भावयन्ती सा सखीमध्य इदं वचः ॥ ७ ॥ गावो राष्ट्रस्य कुरुभिः काल्यन्ते नो बृहन्नले । ता विजेतुं मम भ्राता प्रयास्यति धनुर्धरः ।८। नाचिरं निहतस्तस्य संग्रामे रथसारथिः । तेन नास्ति समः सूतो योऽस्य सारथ्यमाचरेत् ॥ ९ ॥ तस्मै प्रयतमानाय सारथ्यर्थं बृहन्नले । आचचक्षे हयज्ञाने सैरन्ध्री कौशलं तव ॥ १० ॥ अर्जुनस्य किलासीस्त्वं सारथिर्दयितः पुरा । त्वयाऽजयत् सहायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः । ।११। सा सारथ्यं मम भ्रातुः कुरु साधु बृहन्नले । पुरा दूरतरं गावो ह्रियंते कुरुभिर्हि नः ॥ १२ ॥ अथैतद्वचनं मेऽद्य नियुक्ता न करिष्यसि । प्रण-

---

के साथ अर्जुनके पास जाकर खड़ी होगई उसको देखते ही अर्जुनने उस कुमारीसे पूछा कि-अरी सुवर्णकी माला धारण करने वाली मृगनयनी कुमारी तू दौड़ी २ क्यों आई है ? हे सुन्दर कुमारी ! तेरे मुख पर उदासी क्यों छाई है ? यह तू मुझे शीघ्र ही बता ॥ १-५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-विशालनेत्रा और सखीरूपसे रहनेवाली राजकन्याको देख कर अर्जुनने हँसते २ पूछा कि-तू यहाँ किस लिये आई है ॥ ६ ॥ इस पर राजपुत्री विनयको दिखाती हुई नरश्रेष्ठ अर्जुनके पास गई और सखियोंके मध्यमें इस प्रकार बोली कि-॥ ७ ॥ हे बृहन्नला ! कौरव हमारे राजकी गौओंको हर कर लिये जाते हैं उनको जीतनेके लिये मेरा भाई धनुष धारण करके जानेवाला है परन्तु थोड़े दिन हुए रणमें उसका सारथी मर गया था सो अब उसके समान कोई सारथी नहीं है कि-जो मेरे भाईका सारथीपना करे ॥९॥ हे बृहन्नले ! मेरा भाई सारथीको ढूढता था उस समय सैरंध्रीने तेरा घोड़ोंके विषयका ज्ञान मेरे भाईके सामने कहा और बताया कि-बृहन्नला पहिले अर्जुनका प्यारा सारथी था और पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने तेरी सहायतासे पृथ्वीको जीता था ॥ १० ॥ ११ ॥ इसलिये हे बृहन्नला ! तू मेरे भाईके सारथिपनेको भली प्रकार कर और वह भी, कौरव हमारी गौओंको दूर न लेजाय उससे पहिले ही अपना सारथिपना करके दिखा ॥१२॥ आज मैं प्रेमके साथ तुझसे यह वचन कहती

याद्युच्यमाना त्वं परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥१३॥ एवमुक्तस्तु सुश्रोण्या तथा सख्या परन्तपः । जगाम राजपुत्रस्य सकाशममितौजसः ॥ १४ ॥ तमाव्रजन्तं त्वरितं प्रभिन्नमिव कुंजरम् । अन्वगच्छद्विशालाक्षी शिशुर्गजबधूरिव ॥ १५ ॥ दूरादेव तु तां प्रेक्ष्य राजपुत्रोऽभ्यभाषत । त्वया सारथिना पार्थः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ॥ १६ ॥ पृथिवीमजयत् कृत्स्नां कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । सैरन्ध्री त्वां समाचष्टे सा हि जानाति पाण्डवान् ॥ १७ ॥ संयच्छ मामकानश्वांस्तथैव त्वं बृहन्नले । कुरुभिर्योत्स्यमानस्य गोधनानि परीप्सतः ॥ १८ ॥ अर्जुनस्य किलासी त्वं सारथिर्दयितः पुरा । त्वयाऽजयत्सहायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः ॥१९॥ एवमुक्ता प्रत्युवाच राजपुत्रं बृहन्नला । का शक्तिर्मम सारथ्यं कर्त्तुं संग्राममूर्द्धनि ॥ २० ॥ गीतं वा यदि वा नृत्यं वादित्रं वा पृथग्विधम् । तत्करिष्यामि भद्रन्ते सारथ्यं तु कुतो मम ॥ २१ ॥ उत्तर उवाच । बृहन्नले गायनो वा नर्त्तनो वा पुनर्भव ।

हूँ यदि तू मेरा कहना नहीं मानेगी तो मैं अपने प्राणको छोड़ दूँगी१३ इसप्रकार सुन्दर कमरवाली कुमारी उत्तराने परन्तप अर्जुनसे कहा तब बृहन्नलाके रूपमें रहने वाला अर्जुन उठा और अपार बलवाले राजकुमारके पास जानेको चला ॥ १४ ॥ इस समय मद टपकातेहुए तरुण हाथीके पीछे जैसे हथिनी चलती है तैसे ही झपट कर जातेहुए अर्जुनके पीछे पीछे राजकुमारी चलने लगी ॥ १५ ॥ बृहन्नलाको दूर से ही देखकर उत्तर उससे कहनेलगा कि—अर्जुनने तेरे सारथीपनेसे खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त किया था ॥ १६ ॥ तथा कुन्तीपुत्र अर्जुन ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीता था यह बात सैरन्ध्री कहती है क्योंकि—वह पाण्डवोंको जानती है ॥ १७ ॥ इसलिये हे बृहन्नला मैं गौओं के समूहोंको लौटानेको इच्छासे कौरवोंके सामने संग्राम करूँ उस समय मेरे घोड़ोंको भी तू उसीप्रकार पकड़ कर नियममें रखना १८ क्योंकि—तू पहिले पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनका प्यारा सारथी था और तेरी ही सहायतासे अर्जुनने पृथिवीको जीता था ॥ १९ ॥ इसप्रकार राजपुत्र उत्तरने बृहन्नलासे कहा तब उसने उत्तर दिया कि—रणके मुहाने पर सारथीपना करनेको मुझमें क्या शक्ति है ? ॥ २० ॥ गाना, नाचना अथवा प्रकार२ के बाजे बजवाने हों तो मैं यह काम कर सकूँगी, आपका कल्याण हो मैं सारथिपना किसप्रकार कर सकती हूँ ॥ २१ ॥ उत्तर बोला कि—हे बृहन्नला ! तू गायकपन तथा नटपना

क्षिप्रं मे रथमास्थाय निगृह्णीष्व हयोत्तमान् ॥२२॥ वैशम्पायन उवाच स तत्र नर्मसंयुक्तमकरोत्पाण्डवो बहु । उत्तराया प्रमुखतः सर्वं जानन्नरिन्दमः ॥ २३ ॥ ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य कवचं शरीरे प्रत्यमुञ्चत । कुमार्यस्तत्र तं दृष्ट्वा प्राहसन् पृथुलोचनाः ॥ २४ ॥ स तु दृष्ट्वा विमुह्यन्तं स्वयमेवोत्तरस्ततः । कवचेन महार्हेण समनह्यद्बृहन्नलाम् ॥ २५ ॥ स बिभ्रत् कवचञ्चाग्र्यं स्वयमप्यंशुमत्प्रभम् । ध्वजञ्च सिंहमुच्छ्रित्य सारथ्ये समकल्पयत् ॥ २६ ॥ धनूंषि च महार्हाणि बाणांश्च रुचिरान् बहून् । आदाय प्रययौ वीरः स बृहन्नलसारथिः ॥ २७ ॥ अथोत्तरा च कन्याश्च सख्यस्तामब्रुवंस्तदा । बृहन्नले आनयेथा वासांसि रुचिराणि च २८ पांचालिकार्थे चित्राणि सूक्ष्माणि च मृदूनि च । विजित्य संग्रामगतान् भीष्मद्रोणमुखान्कुरून्२९एवं ता ब्रुवतीः कन्याः सहिताः पाण्डुनन्दनः । प्रत्युवाच हसन् पार्थो मेघदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ ३० ॥ बृहन्नलोवाच । यद्युत्तरोयं संग्रामे विजयेष्यति महारथान् । अथाह-

---

पीछे करना परन्तु अब तो शीघ्रता से रथ पर वैठ कर मेरे श्रेष्ठ घोड़ों को रणमें पकड़े रह ॥ २२ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-इसके पीछे शत्रुओं को दमन करनेवाला अर्जुन सब जानता था तो भी उत्तरके मुखके सामने बड़ा गेगलापन दिखाने लगा ॥ २३ ॥ उसने कवच को ऊँचा उठा शरीर पर डाल लिया तहाँ जो विशालनेत्रा कुमारियें वैठी थीं वे सव अर्जुनको ऐसा करते देख कर जोरसे खिलखिला कर हँसने लगीं ॥ २४ ॥ अर्जुनको कवच पहिरतेमें उलझता देख कर उत्तरने अपने आप ही बहुमूल्य कवच वृहन्नला को पहिराया ॥ २५ ॥ और फिर अपने आप भी सूर्यकी समान कान्तिमान् कवच पहिरा फिर सिंहके चिन्हवाली ध्वजा रथ पर चढ़ादी और वृहन्नलाको सारथीके स्थान पर वैठाया ॥२६॥ और फिर शूरवीर उत्तर बहुमूल्य धनुष और बहुतसे उत्तम वाण लेकर वृहन्नला को सारथी बना रणभूमिकी ओरको चल दिया ॥ २० ॥ उस समय कुमारी उत्तराने तथा उसकी दूसरी सखियोंने कहा कि-हे वृहन्नला! तुम रणभूमिमें लड़नेको आये हुए भीष्म द्रोण इत्यादि कौरव योधाओंको जीत कर हमारी गुडियो के लिए अनेक प्रकार के सूक्ष्म और कोमल सुन्दरसे वस्त्र लेते आना ॥ २८ ॥ २९ ॥ पाण्डुपुत्र अर्जुनने उस समय हँसकर मेघ और नगाडेकी समान गम्भीर स्वरमें ऊपर कहे अनुसार बोलती हुई कन्याओंसे कहा ॥ ३० ॥ वृहन्नला,

रिष्ये वासांसि दिव्यानि रुचिराणि च ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा तु बीभत्सुस्ततः प्राचोदयद्धयान् । कुरूनभिमुखः शूरो नानाध्वजपताकिनः ॥ २२ ॥ तमुत्तरं वीक्ष्य रथोत्तमे स्थितं बृहन्नलायाः सहितं महाभुजम् । स्त्रियश्च कन्याश्च द्विजाश्च सुव्रताः प्रदक्षिणं चक्रु रथोचुरङ्गना ॥ ३३ ॥ यदर्जुनस्यर्षभतुल्यगामिनः पुराभवत् खाण्डवदाहमंगलम् । कुरून् समासाद्य रणे बृहन्नले सहोत्तरेणाद्य तदस्तु मंगलम् ॥ ३४ ॥ छ छ छ छ

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
उत्तरनिर्याणं नाम सप्तत्रिशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

वैशम्पायन उवाच । स राजधान्या निर्याय वैराटिरकुतोभयः । प्रयाहीत्यब्रवीत्सूतं यत्र ते कुरवो गताः ।१। समवेतान् कुरून् सर्वान् जिगीषूनवजित्य वै । गास्तेषां क्षिप्रमादाय पुनरेष्याम्यहं पुरम् ॥ २ ॥ ततस्तांश्चोदयामास सदश्वान् पाण्डुनन्दनः । ते हया नरसिंहेन

बोली कि—यह उत्तर कुमार यदि रणभूमिमें महारथियोंको हरा देगा तो मैं तुम्हारे लिये मनोहर और दिव्य वस्त्र लाऊँगी ॥३१॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-ऐसा कहकर शूरवीर अर्जुनने अनेकों प्रकारकी ध्वजा पताकाओंवाली कौरवोंकी सेनाकी ओरको अपने रथके घोड़ोंको हाँक दिया ॥ ३२ ॥ विशालबाहु उत्तर कुमारको बृहन्नलाके साथ बड़े रथ में बैठाहुआ देखकर उत्तम नियमोंसे रहनेवाली स्त्रियें कन्याएँ तथा ब्राह्मण उनका शुभ शकुन करनेके लिये दाहिनी ओरको निकल कर गए और स्त्रियें आशीर्वाद देती हुई कहनेलगीं कि—॥३३॥ हे बृहन्नला बैलकी सी ऊँची चालवाले अर्जुनको खाण्डववनके जलते समय पहिले जैसा मङ्गल हुआ था, वह मङ्गल आज भी रणमें कौरवोंके साथ भेटा होने पर उत्तर कुमारको प्राप्त हो ॥ ३४ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! किसीसे न डरनेवाला विराट कुमार रथमें बैठकर बाहर निकला और उसने सारथीसे कहा, हे कि-सूत ! जहाँ कौरव गए हैं उधरको ही रथ लेकर चल ॥ १ ॥ विजयकी चाहनावाले इकट्ठेहुए सब कौरवोंको जीतकर और शीघ्र ही उनसे गौएँ लेकर मैं अपने नगरमें घुसूँगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है२ यह सुनकर मनुष्योंमें सिंहसमान पाण्डुकुमार बली अर्जुनने पवनकी समान वेगवाले रथमें जुड़ेहुए उत्तमजातिके घोड़ोंको हाँका और

नोदिता वातरंहसः । आलिखन्त इवाकाशमूहुः काञ्चनमालिनः ॥ ३ ॥ नातिदूरमथो गत्वा मत्स्यपुत्रधनंजयौ । अवेक्षेताममित्रघ्नौ कुरूणां बलिनां बलम् ॥ ४ ॥ श्मशानमभितो गत्वा आससाद कुरूनथ । तां शमीमन्ववेक्षेतां व्यूढानीकांश्च सर्वशः ॥ ५ ॥ तदनीकं महत्तेषां विबभौ सागरोपमम् । सर्पमाणमिवाकाशे वनं बहुलपादपम् ॥ ६ ॥ ददृशे पार्थिवो रेणुर्जनितस्तेन सर्पता । दृष्टिप्रणाशो भूतानां दिवस्पृक्कुरुसत्तम ॥ ७ ॥ तदनीकं महद् दृष्ट्वा गजाश्वरथसंकुलम् । कर्णदुर्योधनकृपैर्गुप्तं शान्तनवेन च ॥ ८ ॥ द्रोणेन च सपुत्रेण महेष्वासेन धीमता । हृष्टरोमा भयोद्विग्नः पार्थं वैराटिरब्रवीत् ॥ ९ ॥ उत्तर उवाच । नोत्सहे कुरुभिर्योद्धुं रोमहर्षं हि पश्य मे । बहुप्रवीरमत्युग्रं देवैरपि दुरासदम् ॥ १० ॥ प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि कुरुसैन्यमनन्तकम् । नाशंसे भारतीं सेनां प्रवेष्टुं भीमकार्मुकाम् ॥ ११ ॥ रथना-

---

सुवर्णकी माला पहिरेहुए वे घोड़े आकाशमेंको उड़ते हुएसे दौड़ने लगे ॥ ३ ॥ अधिक दूर नहीं पहुँचे थे, कि-वैरियोंका संहार करनेवाले मत्स्यराजके पुत्र उत्तर और अर्जुनने बलवान् कौरवोंके सेनादलको देखा ॥ ४ ॥ दोनों योधा श्मशानके समीपमें जा पहुँचे तब उन्होंने शमीके पेड़को और सब ओर व्यूहरचनासे खड़ेहुए कौरव दलको देखा ॥ ५ ॥ कौरवोंका बड़ाभारी सेनादल समुद्रकी समान और आकाशमें चलते हुए बहुतसे वृक्षोंवाले वनकी समान प्रतीत होता था ॥ ६ ॥ हे कुरुसत्तम ! कौरवोंकी सेनाके चलनेके कारण पृथिवी पर बड़ी धूल उड़रही थी, उससे प्राणियोंकी आँखें अन्धी हुई जाती थीं और वह धूल आकाशतक छागई थी ॥ ७ ॥ हाथी घोड़े और रथोंसे भरेहुए उस बड़ेभारी सेनादलकी रक्षा कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, भीष्म, बड़ेभारी धनुषधारी बुद्धिमान् द्रोणाचार्य तथा उनका पुत्र अश्वत्थामा आदि कररहे थे, यह देखते ही विराटकुमार उत्तरके तो रोमाँच खड़े होगए (फुरहरी आगई) और उसने भयसे घबड़ाकर बृहन्नलाका रूप धारण करनेवाले अर्जुनसे कहा ॥ ८ ॥ ९ ॥ उत्तर बोला, कि-कौरवोंके साथ युद्ध करनेको मेरी आह नहीं पड़ती, देखो मेरे शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगए, कौरवोंकी सेनामें अनेकों बड़े २ वीर हैं, यह सेना बड़ी डरावनी है, इस अपार सेनादलका सामना तो देवता भी नहीं करसकते, इसलिये भयानक धनुष धारण करनेवाले भरतवंशी राजाओंकी सेनामें मैं घुसना नहीं

गाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम् । दृष्ट्वैव हि परानाजौ मनः प्रव्यथतीव मे ॥ १२ ॥ यत्र द्रोणश्च भीष्मश्च कृपः कर्णो विविंशतिः । अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च वाह्लिकः ॥ १३ ॥ दुर्योधनस्तथा वीरो राजा च रथिनां वरः । द्युतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥१४॥ दृष्ट्वैव हि कुरूनेतान् व्यूढानीकान् प्रहारिणः । हृषितानि च रोमाणि कश्मलश्चागतं मम ॥१५॥ वैशम्पायन उवाच । अविज्ञातो विज्ञातस्य मौर्ख्याद्धूर्त्तस्य पश्यतः । परिदेवयते मन्दः सकाशे सव्यसाचिनः ॥ १६ ॥ त्रिगर्त्तान्मे पिता यातः शून्ये सम्प्रणिधाय माम् । सर्वां सेनामुपादाय न मे सन्तीह सैनिकाः ॥ १७ ॥ सोहमेको बहून् बालः कृतास्त्रानकृतश्रमः । प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि निवर्त्तस्व बृहन्नले१८ बृहन्नलोवाच । भयेन दीनरूपोसि द्विषतां हर्षवर्द्धनः । न च तावत् कृतं कर्म परैः किञ्चिद् रणाजिरे ॥ १९ ॥ स्वयमेव च मामात्थ

चाहता क्योंकि-मैं इनके सामने खड़ा होकर लड़ नहीं सकूँगा।१०।११। यह सेना रथ हाथी और घोड़ोंसे खचाखच भरी है, रणभूमिमें शत्रुओंको देखते ही मेरा मन घवड़ायाजाता है ॥ १२ ॥ जिस कौरवोंकी सेनामें द्रोणाचार्य्य, भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त वाल्हीक, वीर और महारथी दुर्योधन, ये सब कान्तिमान्, बड़े धनुषधारी और संग्राम करनेमें चतुर हैं, इन व्यूहरचनासे गठित होकर खड़ेहुए कौरव योधाओंको देखकर मेरे रोंगटे खड़े होते हैं और मुझे मूर्छासी आई जाती है ॥ १३ ॥ १५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—फिर साधारण और मन्द बुद्धि उत्तरकुमार, हीजड़ेके रूपमें छिपे हुए असाधारण स्वभाववाले अर्जुनके देखते हुए उसके सामने मूर्खतावश शोक करनेलगा कि-१६ मेरे पिता मुझे सूने नगरमें अकेला छोड़ सब सेनाको साथ लेकर त्रिगर्तोंके साथ लड़नेको चलेगए हैं और मेरे पास कुछ भी सैनिक नहीं हैं ॥ १७ ॥ बालक और शस्त्रविद्यामें अभ्यासशून्य अकेला मैं, इन शस्त्रविद्याके पारगामी बहुतसे कौरवोंके साथ रण नहीं करसकूँगा । इसकारण हे बृहन्नले ! तू यहाँसे पीछेको लौट चल १८ बृहन्नलाने कहा, कि—तू भयसे दीन होकर वैरीके आनन्दको क्यों बढ़ाता है ? वैरिओंने अभी तो रणभूमिमें किसी प्रकारका पराक्रम करकै नहीं दिखाया है, इतनेमें ही तू क्यों डराजाता है ॥ १९ ॥ तूने आप ही तो मुझसे कहा था, कि-तू मुझै कौरवोंके समीप

वह मां कौरवान् प्रति । सोऽहं त्वां तत्र नेष्यामि यत्रैते बहुला ध्वजाः २० मध्यमामिषगृध्राणां कुरूणामाततायिनाम् । नेष्यामि त्वां महाबाहो पृथिव्यामपि युध्यताम् ॥ २१ ॥ तथा स्त्रीषु प्रतिश्रुत्य पौरुषं पुरुषेषु च । कत्थमानोऽभिनिर्याय किमर्थं न युयुत्ससे ॥ २२ ॥ न चेद्विजित्य गास्तास्त्वं गृहान् वै प्रतियास्यसि । प्रहसिष्यन्ति वीरास्त्वां नरा नार्यश्च सङ्गताः ॥ २३ ॥ अहमप्यत्र सैरन्ध्र्या ख्याता सारथ्यकर्मणि । न च शक्ष्याम्यनिर्जित्य गाः प्रयातुं पुरं प्रति ॥ २४ ॥ स्तोत्रेण चैव सैरन्ध्र्यास्तव वाक्येन तेन च । कथं न युध्येयमहं कुरून् सर्वान् स्थिरो भव २६ उत्तर उवाच । कामं हरन्तु मत्स्यानां भूयांसः कुरवो धनम् । प्रहसन्तु च मां नार्यो नरा वापि बृहन्नले ॥ २६ ॥ संग्रामे न च कार्यं मे गावो गच्छन्तु चापि मे । शून्यं मे नगरञ्चापि पितुश्चैव बिभेम्यहम् ॥ २७ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वाप्राद्रवद्भीतो रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली त्यक्त्वा मानं च दर्पञ्च विसृज्य सशरन्धनुः ॥ २८ ॥ बृहन्नलोवाच ।

पहुँचा दे, इसकारण मैं तुझे तहाँ ही लेजाऊँगी, कि—जहाँ वे बहुतसी ध्वजायें दीखरही हैं ॥ २० ॥ जैसे गिद्ध पक्षी मांसको चाहते हैं, तैसे ही गौओंका हरण करनेकी इच्छावाले आततायी कौरवोंके बीच में हे महाबाहो ! मैं तुझे लेजाऊँगा, कि जो कौरव भूमिके लिए लड़ रहे हैं ॥ २१ ॥ तूने स्त्री और पुरुषोंके सामने अपने पराक्रमकी बडी प्रशंसा करी है और तू लडनेके लिये चढकर आया है फिर अब संग्राम क्यों नहीं करता है ? ॥ २२ ॥ यदि तू अपनी गौओंको विना जीते ही घरको लौटकर जायगा तो स्त्रियें, पुरुष और शूरवीर इकट्ठे होकर तेरी हँसी करेंगे ॥ २३ ॥ मुझसे भी सैरन्ध्रीने सारथीपनेका काम करने को कहा था, सो मैं तो अब गौओंको जीते बिना नगरमें जा नहीं सकता ॥ २४ ॥ सैरन्ध्रीने इतनी प्रशंसा करी और तुमने भी मुझसे बड़े आग्रहसे कहा था फिर मैं सब कौरवोंके साथ क्यों न संग्राम मचाऊँ ? इस लिये अब तू डट जा ॥ २५ ॥ उत्तरने कहा बृहन्नला ! मत्स्यराजकी गौओंके बहुतसे समूहोंको भले ही कौरव हरकर लेजायँ और स्त्रियें वा पुरुष भी भले ही मेरी हँसी करैं ॥ २६ ॥ मेरी गौएँ भी भले ही चलीजायँ, मेरा नगर रक्षकोंके बिना भले ही सूना रहै और चाहें मैं अपने पिताके सामने काँपताहुआ खडा रहूँ, परन्तु रणभूमिमें मेरा कुछ काम नहीं है ॥ २७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—ऐसा कह कर कुण्डलधारी उत्तर मान तथा गर्वको छोडकर और बाणों सहित

नैव शूरैः स्मृतो धर्मः क्षत्रियस्य पलायनम्। श्रेयस्तु मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम्॥ २९॥ वैशम्पायन उवाच। एवमुक्त्वा तु कौन्तेयः सोवप्लुत्य रथोत्तमात्। तमन्वधावद्धावन्तं राजपुत्रं धनञ्जयः॥ ३०॥ दीर्घां वेणीं विधुन्वानः साधु रक्ते च वाससी। विधूय वेणीं धावन्तमजानन्तोर्जुनं तदा॥ ३१॥ सैनिकाः प्राहसन् केचित्तथारूपमवेक्ष्य तम्। तं शीघ्रमभिधावन्तं सम्प्रेक्ष्य कुरवोब्रुवन्॥ ३२॥ क एष वेशसंछन्नो भस्मनेव हुताशनः। किञ्चिदस्य यथा पुंसः किञ्चिदस्य यथा स्त्रियः॥३३॥ सारूप्यमर्जुनस्येव क्लीवरूपं बिभर्त्ति च। तदेवैतच्छिरो ग्रीवं तौ बाहू परिघोपमौ। तद्वदेवास्य विक्रान्तं नायमन्यो धनंजयात्॥३४ अमरेष्विव देवेन्द्रो मानुषेषु धनंजयः। एकः कोस्मानुपायादन्यो लोके धनंजयात्॥ ३५॥ एकः पुत्रो विराटस्य शून्ये सन्निहितः पुरे।

धनुषको फेंक कर रथमेंसे कूद पड़ा और नगरकी ओरको भागने लगा ॥ २८ ॥ तब वृहन्नलाने उसको पुकार कर कहा कि—क्षत्रियका रणमेंसे भागजाना इसको शूर पुरुषोंने धर्म नहीं कहा है, अरे ! रणमें मरजाना ही अच्छा है, डर कर भागजाना अच्छा नहीं है ॥ २९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—ऐसा कहकर कुन्तीकुमार धनञ्जय भी उस उत्तम रथपर से नीचे कूद पड़ा और उस भागते हुए राजकुमारके पीछे पीछे (पकड़ने को) दौड़ने लगा ॥ ३० ॥ शरीर पर धारण किये हुए सुन्दर लाल वस्त्र तथा शिर परके खुले हुए वस्त्रोंको इधर उधरको उड़ाता हुआ अर्जुन जिस समय खुले बालोंवाले राजकुमारके पीछे दौड़रहा था, उस समय उसके स्वरूपको देखकर कितने ही सैनिक जो अर्जुनको नहीं पहिचानते थे वे खिलखिला कर हँसने लगे तथा अर्जुनको शीघ्रतासे दौड़ता देखकर कौरव कहने लगे, कि—३१-३२ जैसे राखके भीतर आग हो तैसे स्त्रीके वेशमें छिपा हुआ यह पुरुष न जाने कौन है ? इसका कुछ भाग पुरुषकासा और कुछ भाग स्त्रीकासा प्रतीत होता है ॥ ३३ ॥ इसका रूप तो अर्जुनकेसा ही है, परन्तु यह तो नपुंसकके रूपको धारण किये हुए है, इसका मस्तक और कण्ठ अर्जुनकेसा है और लोहदण्डसे इसके भुजदण्ड भी अर्जुनकेसे ही मालूम होते हैं तथा इसकी छलाँगें भी अर्जुनकीसी ही दीखती हैं इसलिये यह अर्जुनके सिवाय दूसरा नहीं है ॥ ३४ ॥ जैसे देवताओंमें इन्द्र है तैसे ही मनुष्योंमें अर्जुन एक है, लोकमें अर्जुनके सिवाय दूसरा कौन हमारे ऊपर चढ़कर आसकता है ? ॥३५॥ राजा विराटका

स एव किल निर्यातो बालभावान्न पौरुषात् ॥ ३६ ॥ सत्रेण नूनं छन्नं हि चरन्तं पार्थमर्जुनम् । उत्तरः सारथिं कृत्वा निर्यातो नगराद्बहिः ३७ स नो मन्यामहे दृष्ट्वा भीत एव पलायते । तन्नूनमेष धावन्तं जिघृक्षति धनंजयः ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन उवाच । इति स्म कुरवः सर्वे विमृशन्तः पृथक् पृथक् । न च व्यवसितुं किञ्चिदुत्तरं शक्नुवन्ति ते ॥ ३९ ॥ छन्नं तथा तं सत्रेण पाण्डवं प्रेक्ष्य भारत । उत्तरन्तु प्रधावन्तमभिद्रुत्य धनंजयः । गत्वा पदशतं तूर्णं केशपक्षे परामृशत् ॥ ४० ॥ सोऽर्जुनेन परामृष्टः पर्यदेवयदार्त्तवत् । बहुलं कृपणञ्चैव विराटस्य सुतस्तदा ॥४१॥ उत्तर उवाच । शृणुयास्त्वं हि कल्याणि बृहन्नले सुमध्यमे । निवर्त्तय रथं क्षिप्रं जीवन् भद्राणि पश्यति ॥ ४२ ॥ शातकुम्भस्य शुद्धस्य शतं निष्कान् ददामि ते । मणीनष्टौ च वैडूर्यान् हेमबद्धान्महाप्रभान् ॥ ४३ ॥ हेमदण्डप्रतिच्छन्नं रथं युक्तञ्च सुव्रजैः । मत्तांश्च दश मातंगान् मुंच मान्त्वं बृहन्नले ॥४४॥ वैशम्पायन उवाच । एवमादीनि वाक्यानि विल-

---

पुत्र अकेला उत्तर ही राजा और सेनासे सूनी राजधानीमें नगरकी रक्षा करनेको रहगया था, वह अपनी मूर्खतासे लड़नेको बाहर निकल आया है, कुछ पराक्रमसे लड़नेको बाहर निकल कर नहीं आया है ३६ अर्जुन आजकल हीजडेके वेशमें छुपकर घूमा करता है, उत्तर उसको ही सारथी बनाकर लडनेको नगरसे बाहर निकल आया है ॥ ३७ ॥ मालूम होता है, वह उत्तर हमें देखकर डरगया है, इसी कारण भागा जाता है और भागते हुए उत्तरको पकडनेकी इच्छासे यह अर्जुन उसके पीछे दौड रहा है ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे भरतवंशी जनमेजय ! इस प्रकार वे सब जुदे जुदे प्रकारसे विचार करने लगे परन्तु कपटवेशमें छुपेहुए अर्जुनको देखकर भी किसी प्रकारका निश्चय नहीं करसके, उत्तरको भागते हुए देखकर अर्जुन उसके पीछे दौडा और सौ पग आगे जाते ही शीघ्रतासे उसकी चोटी पकडली ३९-४० अर्जुनने जब उत्तरको पकड लिया तब विराटपुत्र उत्तर कायर पुरुषकी समान रोने लगा ॥ ४१ ॥ उत्तर रोता रोता बोला कि—हे कल्याणी और सुन्दर कमर वाली बृहन्नले ! तू मेरी बात सुन और रथको शीघ्र ही पीछेको लौटा, जो जीता रहता है वह अनेकों कल्याणकी बातें देखता है ॥४२॥ हे बृहन्नले ! मैं तुझे शुद्ध सुवर्णकी सौ मुहरें सुवर्णमें जड़े हुए बडे दमकदार आठ वैडूर्यमणि, सुवर्णके दण्डोंवाला तथा सधेहुए घोड़ोंसे जुता रथ और मदोन्मत्त दश हाथी दूँगा परन्तु तू मुझे छोडदे ॥ ४३—४४ ॥

पन्तमचेतसम् । प्रहस्य पुरुषव्याघ्रो रथस्यान्तिकमानयत् ॥ ४५ ॥ अथैनमब्रवीत् पार्थो भयार्त्तं नष्टचेतसम् । यदि नोत्सहसे योद्धुं शत्रुभिः शत्रुकर्षण । एहि मे त्वं हयान् यच्छ युध्यमानस्य शत्रुभिः ॥४६॥ प्रयाह्येतद्रथानीकं मद्बाहुबलरक्षितः । अप्रधृष्यतमं घोरं गुप्तं वीरैर्महारथैः ४७ मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोऽसि परन्तप । कथं पुरुषशार्दूल शत्रुमध्ये विषीदसि ॥ ४८ ॥ अहं वै कुरुभिर्योत्स्ये विजेष्यामि च ते पशून् । प्रविश्यैतद्रथानीकमप्रधृष्यं दुरासदम् ॥ ४९ ॥ यंता भव नरश्रेष्ठ यात्स्येहं कुरुभिः सह । एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्वैराटिमपराजितः । समाश्वास्य मुहूर्त्तमुत्तरं भरतर्षभ ॥ ५० ॥ तत एनं विचेष्टन्तमकामं भयपीडितम् । रथमारोपयामास पार्थः प्रहरतांवरः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
उत्तराश्वासने अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि–इस प्रकार विसटता २ उत्तर कुमार भौचक्का सा होकर विलाप करने लगा और पुरुषोंमें सिंह समान अर्जुन खिल खिलाकर हँसता हुआ उसको पकड कर रथके पास ले आया ॥ ४५ ॥ फिर अर्जुन भयभीत और अचेत (होशगुम) हुए उत्तर कुमारसे कहने लगा, कि—अरे ओ वैरिनाशन ! यदि शत्रुओंके साथ लडनेकी तेरी इच्छा नहीं है तो मैं वैरियोंके सामने जाकर लडता हूँ, परन्तु तू मेरे साथ चल और इस रथ पर बैठकर घोडोंको थामे रह ॥४६॥ मैं अपने भुजबलसे ही तेरी रक्षा करूँगा, तू केवल शूर वीर महारथियोंकी रक्षा की हुई और जिसके भीतर घुसना सहज नहीं है ऐसी भयानक रथियोंकी सेनामें रथको लेचल॥४७॥ हे श्रेष्ठ राजकुमार ! तू वैरिओंको ताप देनेवाला क्षत्रिय है, डरै मत, अरे पुरुषसिंह ! वैरिओंके बीचमें आकर क्यों घबडाया जाता है ॥ ४८ ॥ जिसको रोकना तथा जिसके भीतर घुसना सहज नहीं है ऐसी इस कौरवोंकी रथसेनामें घुसकर मैं कौरवोंके साथ युद्ध करूँगा और तेरी गौओंको जीतकर लाऊँगा ॥ ४९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं कौरवोंके सामने जाकर युद्ध करूँगा, परन्तु तू मेरा सारथि बनजा, हे भरतसत्तम जनमेजय ! इस प्रकार अजित अर्जुनने उत्तरकुमारसे कहकर उसको दो घडीतक समझाया ॥ ५० ॥ फिर भी युद्ध करना न चाहते हुए जड समान बने तथा भयभीत हुए उत्तर कुमारको योधाओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने रथ पर बैठाल दिया ॥५१॥ अडतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच । तं दृष्ट्वा क्लीबवेषेण रथस्थं नरपुंगवम् । शमीमभिमुखं यान्तं रथमारोप्य चोत्तरम् ॥ १ ॥ भीष्मद्रोणमुखास्तत्र कुरवो रथिसत्तमाः । वित्रस्तमनसः सर्व धनञ्जयकृताद्भयात् ॥ २ ॥ तानवेक्ष्य हतोत्साहानुत्पातानपि चाद्भुतान् । गुरुः शस्त्रभृतां श्रेष्ठो भारद्वाजोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥ चण्डाश्च वाताः संवान्ति रूक्षाः शर्करवर्षिणः । भस्मवर्णप्रकाशेन तमसा संवृतं नभः ॥ ४ ॥ रूक्षवर्णाश्च जलदा दृश्यन्तेऽद्भुतदर्शनाः । निःसरन्ति च कोशेभ्यः शस्त्राणि विविधानि च ॥ ५ ॥ शिवाश्च विनदन्त्येता दीप्तायां दिशि दारुणाः । हयाश्चाश्रूणि मुंचन्ति ध्वजाः कम्पन्त्यकम्पिताः ॥ ६ ॥ यादृशान्यत्र रूपाणि सन्दृश्यन्ते बहूनि च । यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु साध्वसं समुपस्थितम् ७ रक्षध्वमपि चात्मानं व्यूहध्वं वाहिनीमपि । वैशसं च प्रतीक्षध्वं रक्षध्वञ्चापि गोधनम् ॥ ८ ॥ एष वीरो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतांवरः । आगतः क्लीबवेषेण पार्थो

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! नपुंसकके वेशमें रहनेवाला नरपुङ्गव अर्जुन उत्तर कुमारको रथमें बैठालकर अपने आप भी रथमें बैठा और फिर शमीके वृक्षकी ओरको गया, महारथी भीष्म और द्रोण आदि सब कौरव अर्जुनको देखते ही उसके भयसे मनमें अकुला उठे ॥ १-२ ॥ अपने साथके महारथियोंका उत्साह भङ्ग हुआ देखकर तथा अचंभेमें डालनेवाले उत्पातों (कुशकुनों) को देखकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य बोल उठे कि—॥३॥ पवन प्रचण्ड और रूखे चल रहे हैं तथा आकाशमेंसे धूलि बरसा रहे हैं, राखकेसे भूरे रङ्गके अन्धेरेसे आकाश ढकगया है ॥ ४ ॥ अद्भुत दीखनेवाले रूखे मेघ आकाशमें छाये हुए दीख रहे हैं, अनेकों प्रकारके शस्त्र म्यानोंमेंसे निकले पड़ते हैं ॥५॥ जैसे आग लग रही हो ऐसे प्रकाशवाली दिशाओंमें ये भयानक गीदड़ियें रो रही हैं, घोड़े आंसू बहारहे हैं, बिना हिलाये ही झण्डे हिले जाते हैं ॥ ६ ॥ ये सब जैसे चिह्न दीख रहे हैं, इनसे मालूम होता है, कि—कोई भयदायक घटना होनेका अवसर समीप ही आगया है, इस कारण तुम सब सावधान होकर खड़े होजाओ ॥ ७ ॥ सेनाको व्यूह बनाकर खडी करो और तुम अपनी रक्षा आप करो तथा अवसर पर चाहे तैसी मारकाट करनी पडे, उसको भी करके गौओंकी रक्षा करो ८ सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ यह महाधनुषधारी वीर अर्जुन नपुंसकके वेशमें हमारे ऊपर चढ़आया है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है९ हे गंगापुत्र भीष्म! जिसकी ध्वजामें हनुमान् विराजते हैं और जो पर्वतके वैरी

नास्त्यत्र संशयः ॥ ९ ॥ [१] नदीज लंकेशवनारिकेतुर्नगाह्वयो नाम नगारिसूनुः । एषोऽङ्गनावेषधरः किरीटी जित्वा वयं नेष्यति चाद्य गावः ॥ १० ॥ स एष पार्थो विक्रान्तः सव्यसाची परन्तपः । नायुद्धेन निवर्त्तेत सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ ११ ॥ क्लेशितश्च वने शूरो वासवेनापि शिक्षितः । अमर्षवशमापन्नो वासवप्रतिमो युधि । नेहास्य प्रतियोद्धारमहं पश्यामि कौरवाः ॥ १२ ॥ महादेवोऽपि पार्थेन श्रूयते युधि तोषितः किरातवेषसंछन्नो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥ १३ ॥ कर्ण उवाच । सदा भवान् फाल्गुनस्य गुणैरस्मान् विकत्थसे । न चार्जुनः कलापूर्णो मम दुर्योधनस्य च ॥ १४ ॥ दुर्योधन उवाच । यद्येष पार्थो राधेय कृतं कार्यं भवेन्मम । ज्ञाताः पुनश्चरिष्यन्ति द्वादशाब्दान् विशाम्पते ॥ १५ ॥ अथैष कश्चिदेवान्यः क्लीववेषेण मानवः । शरैरेनं सुनिशितैः पात-

इन्द्रका पुत्र है वह अर्जुन स्त्रीका वेश धारण करके यहाँ आया है, यह आज जिसको जीतकर गौओंको विराट नगरीमें लौटा लेजायगा उस दुर्योधन की तुम रक्षा करो ॥ १० ॥ यह चढ़कर आया हुआ वैरियोंको दुःखदायक महापराक्रमी सव्यसाची अर्जुन सब देवता और दानव इकट्ठे होकर आजायँ तो उनके साथ भी युद्ध किये बिना लौटने वाला नहीं है ॥ ११ ॥ इस शूरने वनमें कष्ट भोगा है और इन्द्रसे अस्त्र विद्या सीखली है, यह क्रोधमे भरकर इन्द्रकी समान रण में डटनेवाला है इसकारण हे कौरवो ! मैं तो यहाँ अपनी सेनामें इसके सामने पड़कर लड़नेवाला किसीको देखता नहीं हूँ ॥ १२ ॥ सुननेमें आया है कि—अर्जुनने हिमालय पर्वत पर भीलके रूपमें छिपेहुए महादेवके साथ युद्ध करके उनको भी प्रसन्न कर लिया है ॥ १३ ॥ कर्णने कहा कि—हे द्रोणाचार्य ! तुम सदा ही अर्जुनके गुण गाकर हमारी निन्दा किया करते हो, परन्तु अर्जुन मेरे और दुर्योधनके सोलहवें भागकी समान भी नहीं है ॥ १४ ॥ दुर्योधनने कहा कि—हे राजा कर्ण ! यदि अर्जुन होगा तबतो हमारा काम ही सिद्ध होजायगा क्योंकि—पाण्डव पहिचाने गए तो फिर बारह वर्षतक वनमें जाकर विचरेंगे ॥ १५ ॥ और यह कोई दूसरा ही मनुष्य हीजडेका रूप धारण

---

[१] हे नदीज गाङ्गेय भीष्म, लङ्केशस्य रावणस्य वनं तस्यारिर्नाशको हनूमान् सः केतुर्ध्वजो यस्य सः, नगो वृक्षस्तन्नाम्ना नामेति निश्चितम् नगारिः पर्वतारिरिन्द्रस्तस्य सूनुः, किरीटी एतन्नाम्ना प्रसिद्धोऽर्जुनः, यं जित्वा, वो युष्माकं गाः धेनूः नेष्यति, तं दुर्योधनम्, अव पालय ।

यिष्यामि भूतले ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच । तस्मिन् ब्रुवति तद्वाक्यं धार्त्तराष्ट्रे परन्तपः । भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः पौरुषं तदपूजयन् १७

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
अर्जुनप्रशंसायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

वैशम्पायन उवाच । तां शमीमुपसङ्गम्य पार्थो वैराटिमब्रवीत् । सुकुमारं समाज्ञाय संग्रामे नातिकोविदम् ॥ १ ॥ समादिष्टा मया क्षिप्रं धनूंष्यवहरोत्तर । नेमानि हि त्वदीयानि सोढुं शक्ष्यन्ति मे बलम् । भारञ्चापि गुरुं वोढुं कुञ्जरं वा प्रमर्दितुम ॥ २ ॥ मम वा बाहुविक्षेपं शत्रूनिह विजेष्यतः । तस्माद् भूमिञ्जयारोह शमीमेतां पलाशिनीम् ॥ ३ ॥ अस्यां हि पाण्डुपुत्राणां धनूंषि निहितान्युत । युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा ॥ ४ ॥ ध्वजः शराश्च शूराणां दिव्यानि कवचानि च । अत्र चैतन्महावीर्यं धनुः पार्थस्य गाण्डिवम् ॥ ५ ॥ एकं शतशाहस्रेण सम्मितं राष्ट्रवर्द्धनम् । व्यायामसहम-

---

करके यहाँ आया होगा तो मैं इसको खूब तेज किएहुये बाणोंसे भूमि पर सुला दूँगा ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–परन्तप धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने ऐसा कहा, तब भीष्म, द्रोणाचार्य कृपाचार्य और अश्वत्थामा ने उसके ऐसे साहसकी बड़ी प्रशंसा की ॥ १७ ॥ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय ! सामने खड़ेहुए शमीवृक्ष के समीप जानेपर अर्जुनने विराटके पुत्र उत्तरको सुकुमार और संग्राम के विषयमें अनजान देखकर कहा कि–॥ १ ॥ अरे उत्तर ! मेरी आज्ञा है, कि–तू इस शमीके पेड परसे शीघ्र ही शस्त्रोंको नीचे उतार, क्यों कि–तेरे यह शस्त्र मेरे बलको नहीं सहसकेंगे, मेरे अधिक भारको भी नहीं सहसकेंगे और न हाथियोंका ही नाश करसकेंगे ॥ २ ॥ मेरे हाथ के धक्कोंको भी नहीं सहसकेंगे और यहाँ हमें जीतनेकी इच्छावाले शत्रुओंकी मारको भी नहीं सहसकेंगे, इसकारण हे राजकुमार ! तू इस पत्तोंसे भरेहुए शमीके वृक्षपर शस्त्रोंको उतारनेके लिये चढजा ॥ ३ ॥ इस शमीके पेडपर पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवके धनुष रक्खे हुए हैं ॥ ४ ॥ तथा शूरवीरोंकी ध्वजाएँ बाण और दिव्य कवच भी इस शमीपर रक्खे हुए हैं और महापराक्रमभरा एक लाख धनुषोंकी समान बलयुक्त, देशका उन्नतिकारक, बड़ीभारी मारको पूर्णरूपसे सह सकनेवाला, ताडके वृक्षकी समान बडा, सब

स्यर्थं तृणराजसमं महत् ॥ ६ ॥ सर्वायुधमहामात्रं शत्रुसम्बाधकारकम्। सुवर्णविकृतं दिव्यं श्लक्ष्णमायतमव्रणम् ॥ ७ ॥ अलम्भारं गुरुं बोढुं दारुणं चारुदर्शनम्। तादृशान्येव सर्वाणि बलवन्ति दृढानि च। युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा ॥ ८ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
अर्जुनास्त्रकथने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

उत्तर उवाच। अस्मिन् वृक्षे किलोद्बद्धं शरीरमिति नः श्रुतम्। तदहं राजपुत्रः सन् स्पृशेयं पाणिना कथम् ॥ १ ॥ नैवंविधं मया युक्तमालब्धुं क्षत्रयोनिना। महता राजपुत्रेण मन्त्रयज्ञविदा सता ॥ २ ॥ स्पृष्टवन्तं शरीरं मां शववाहमिवाशुचिम्। कथं वाव्यवहार्यं वै कुर्वीथास्त्वं बृहन्नले ॥ ३ ॥ बृहन्नलोवाच। व्यवहार्यश्च राजेन्द्र शुचिश्चैव भविष्यसि। धनूंष्येतानि मा भैस्त्वं शरीरं नात्र विद्यते ॥ ४ ॥ दायादं मत्स्यराजस्य कुले जातं मनस्विनाम्। त्वां कथं निन्दितं कर्म कारयेयं नृपात्मज ॥ ५ ॥ वैशम्पायन उवाच। एवमुक्तः स पार्थेन रथात् प्रस्कन्द्य

प्रकारके आयुधोंमें बड़े विस्तारवाला, शत्रुओंको पीडादायक, सोनसे मढ़ाहुआ, चिकना लम्बा और छिद्ररहित, दारुण काम करनेवाला और देखनेमें सुन्दर अर्जुनका गाण्डीव नामक धनुष भी इस शमीके पेड पर ही रक्खा है, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन नकुल तथा सहदेवके ये सब शस्त्र बड़े बलभरे और शत्रुओंके सामने टक्कर झेलने में दृढ़ हैं ॥ ५-८ ॥ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥

उत्तर कुमारने उत्तर दिया, कि-हे सारथी! तू मुझसे इस शमीके वृक्ष पर चढ़नेको कहता है परन्तु मैंने सुना है कि-इस पेडके ऊपर मनुष्यका मृत शरीर बाँधा गया है सो मैं राजकुमार होकर इस मुरदेको अपने हाथसे कैसे छूलूँ ?॥१॥ मैं एक मुख्य राजकुमार हूँ, वेदमंत्र और यज्ञके विषयको जानता हूँ तथा क्षत्रियकी जातिमें उत्पन्न हुआ हूँ, इसलिये मुझे मुरदेको छूना उचित नहीं है ॥ २ ॥ यदि मैं इस मृतकके शरीरको छूऊँगा तो मुरदा उठाने वालोंकी समान अपवित्र होजाऊँगा तो फिर हे बृहन्नले! मुझे तू स्पर्शके भी अयोग्य क्यों करे देती है? ॥ ३ ॥ बृहन्नला बोली कि—हे राजेन्द्र! तू व्यवहार करनेके योग्य और पवित्र ही रहैगा, डरे मत, इसमें मृतशरीर नहीं है, किंतु बँधेहुए जो दीखरहे हैं, ये धनुष हैं ॥ ४ ॥ हे राजकुमार! तू मत्स्यराजका पुत्र है और स्वतन्त्र चित्तवाले क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ है, इसलिए मैं तुझसे निन्दित काम कैसे करा सकता हूँ ? ॥ ५ ॥

कुण्डली । आरुरोह शमीवृक्षं वैराटिरवशस्तदा ॥ ६ ॥ तमन्वशासच्छत्रुघ्नो रथे तिष्ठन् धनंजयः । अवरोपय वृक्षाग्राद्धनूंष्येतानि मा चिरम् ॥ ७ ॥ परिवेष्टनमेतेषां क्षिप्रं चैव व्यपानुद । सोपहृत्य महार्हाणि धनूंषि पृथुवक्षसाम् । परिवेष्टनपत्राणि विमुच्य समुपानयत् ८ तथा सन्नहनान्येषां परिमुच्य समन्ततः । अपश्यद् गाण्डिवं तत्र चतुर्भिरपरैः सह ॥ ९ ॥ तेषां विमुच्यमानानां धनुषामर्कवर्चसाम् । विनिश्चेरुः प्रभा दिव्या ग्रहाणामुदयेष्विव ॥ १० ॥ स तेषां रूपमालोक्य भोगिनामिव जृम्भताम् । हृष्टरोमा भयोद्विग्नः क्षणेन समपद्यत ॥११॥ संस्पृश्य तानि चापानि भानुमन्ति बृहन्ति च । वैराटिरर्जुनं राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

उत्तर उवाच । बिन्दवो जातरूपस्य शतं यस्मिन्निपातिताः । सहस्रकोटिसौवर्णाः कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ १ ॥ वारणा यत्र सौवर्णाः पृष्ठे

वैशम्पायन कहते हैं, कि-इसप्रकार अर्जुनके कहने पर वह कुण्डलधारी विराटकुमार उत्तर बेवश होकर उसी समय रथमेंसे नीचे कूद पड़ा और शमीके पेड़पर चढ़गया ॥ ६ ॥ उसके पेड़पे चढजाने पर शत्रुओंका संहार करनेवाले अर्जुनने रथ पर बैठे बैठे उससे कहा, कि तू पेड़की शाखामें बँधे हुए धनुषोंको नीचे उतार और इन धनुषोंके ऊपर जो पत्ते लिपटे हुए हैं उनको झटपट अलग करदे, देर न कर, तदनन्तर राजकुमार उत्तरने विशाल वक्षःस्थलवाले पाण्डवोंके बहुमूल्य धनुषोंको शमीके पेड़परसे शीघ्र ही नीचे उतारा और उनके ऊपर लिपटेहुए पत्तोंको अलग करके उन धनुषोंको तथा उनकी प्रत्यञ्चाओंको अर्जुनके पास लाकर रक्खा और फिर अन्य चार धनुषों सहित गाण्डीव धनुषको उत्तर टकटकी लगाकर देखनेलगा ॥७-९॥ जिस समय सूर्यकी समान तेजस्वी धनुषोंके ऊपरसे बन्धन खोलेगए उस समय, ग्रह उदय होकर उनकी दिव्य कान्ति जैसे बाहर फैल जाती है तैसे ही उन धनुषोंकी दिव्य कान्ति भी चारों ओर फैल गई ॥ १० ॥ जंभाईको चाटते हुए सर्पोंकी समान उन धनुषोंके रूपको देखकर वह विराटकुमार क्षणभरमें भयसे घबड़ाउठा और उसके शरीर पर रोमांच खड़े होगए ॥ ११ ॥ तदनन्तर वह उत्तर कुमार उन तेजभरे बड़े २ धनुषोंको हाथसे उठा २ कर अर्जुनसे इस प्रकार बूझने लगा ॥ १२ ॥ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ छ

उत्तरने बूझा, कि-हे बृहन्नला ! जिसमें सुवर्णकी सौ फुल्लियें

भासन्ति दंशिताः । सुपार्श्वं सुग्रहञ्चैव कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ २ ॥
तपनीयस्य शुद्धस्य पृष्ठे यस्येन्द्रगोपकाः । पृष्ठे विभक्ता शोभन्ते कस्यै-
तद्धनुरुत्तमम् ॥ ३ ॥ सूर्या यत्र च सौवर्णास्त्रयो भासन्ति दंशिताः ।
तेजसा प्रज्वलन्तो हि कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ ४ ॥ शलभा यत्र सौवर्णा-
स्तपनीयविभूषिताः सुवर्णमणिचित्रञ्च कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ ५ ॥ इमे
च कस्य नाराचाः साहस्रा लोमवाहिनः । समन्तात् कलधौताग्रा उपा-
संगे हिरण्मये ॥ ६ ॥ विपाठाः पृथवः कस्य गार्ध्रपत्राः शिलाशिताः
हारिद्रवर्णाः सुमुखाः पीताः सर्वायसाः शराः ॥७॥ कस्यायमसितश्चापः
पञ्चशार्दूललक्षणः । वराहकर्णव्यामिश्रान् शरान् धारयते दश ॥ ८ ॥
कस्येमे पृथवो दीर्घाश्चन्द्रबिम्बार्धदर्शनाः । शतानि सप्त तिष्ठन्ति
नाराचा रुधिराशनाः ॥ ९ ॥ कस्येमे शुकपत्राभैः पूर्वैरर्धैः सुवाससः ।

जड़ी हैं और जिसके दोनों सिरे बड़े ही मजबूत हैं ऐसा यह उत्तम धनुष किसका है ! ॥ १ ॥ जिसकी पीठ पर सोनेके चमकदार हाथी चिते हुए हैं, जिसके दोनों छोर और मध्यभाग बड़े सुन्दर हैं ऐसा यह धनुष किसका है ॥ २ ॥ और जिस धनुषकी पीठ पर निर्मल सुवर्णके लालपीले रङ्ग भरे इन्द्रगोप कीडेके साठ चित्र अलग२ शोभा पारहे हैं ऐसा यह सबसे उत्तम धनुष किसका है ॥ ३ ॥ और जिसके ऊपर चमचमाहट वाले सोनेके तीन सूरज चिते हुए हैं, जोकि तेजके कारण जलते हुएसे प्रतीत होते हैं ऐसा उत्तम यह धनुष किसका है ॥ ४ ॥ जिस पर सोनेसे शोभायमान सोनेके पटवीजने चितेहुए हैं तथा सोनेकी चन्द्रिकाएं जडी होनेसे जो विचित्र दीखता है ऐसा यह उत्तम धनुष किसका है ॥ ५ ॥ अग्रभागमें सुनहरी किये हुए परों वाले सुवर्णके भाथोंमें भरेहुए ये सहस्रों बाण किसके हैं ॥ ६ ॥ जिनके पिछले भाग गिद्ध पक्षियोंके परोंकेसे हैं, जिनको सान धर कर तेज किया है, जो पीले रङ्गके तीखे मुखवाले, पानी पिये, केवल लोहेके और मोटे २ दण्डोंवाले हैं ऐसे ये बाण किसके हैं ॥ ७ ॥ जिसके ऊपर पाँच बाघोंके चित्र बने हैं ऐसा यह काले रङ्गका भाथा किसका है ? कि-जिसमें सुअरके कानकेसे नोंकदार दश बाण भरे हुए हैं ॥ ८ ॥ मोटे लम्बे, आधे चन्द्रमाके आकारके तथा वैरियोंका रुधिर पीनेवाले ये सात सौ बाण भी किसके हैं ॥ ९ ॥ जिनका अगला आधा भाग तोतेके परोंकेसा हरे रङ्गका है और ऊपरका आधा भाग केवल लोहेका है ऐसे शिला पर घिसकर तेज किये हुए पानी पिलाये हुए

शरैरायसैः पीतैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ १० ॥ गुरुभारसहो दिव्यः शात्रवाणां भयङ्करः। कस्यायं सायको दीर्घः शिलीपृष्ठः शिलीमुखः ॥ ११ ॥ वैयाघ्रकोशे निहितो हेमचित्रत्सरुर्महान्। सुफलश्चित्रकोशश्च किङ्किणीसायको महान् ॥ १२ ॥ कस्य हेमत्सरुर्दिव्यः खड्गः परमनिर्मलः। कस्यायं विमलः खड्गो गव्ये कोशे समर्पितः ॥ १३ ॥ हेमत्सरुरनाधृष्यो नैषध्यो भारसाधनः कस्य पाञ्चनखे कोशे सायको हेमविग्रहः ॥ १४ ॥ प्रमाणरूपसम्पन्नः पीत आकाशसन्निभः। कस्य हेममये कोशे सुतप्ते पावकप्रभे ॥ १५ ॥ निस्त्रिंशोऽयं गुरुः पीतः सायकः परनिर्व्रणः। कस्यायमसितः खड्गो हेमबिन्दुभिरावृतः १६ आशीविषसमस्पर्शः परकायप्रभेदनः। गुरुभारसहो दिव्यः सपत्नानां भयप्रदः ॥ १७ ॥ निर्दिशस्व यथातत्त्वं यथा पृष्टा बृहन्नले। विस्मयो मे परो जातो दृष्ट्वा सर्वमिदं महत् ॥ १८ ॥ छ छ

और सुनहरी परोंवाले ये सोनेके बाण किसके हैं ॥ १० ॥ यह बहुत से बोझेको सह सकने वाली वैरियोंको भयदायक दिव्य, जिसका मुख मेंढककेसा है और जिसकी मूठपर मेंडकका चित्र बना है ऐसी यह लम्बी तलवार किसकी है ? ॥ ११ ॥ विचित्रप्रकारके बाघके चमडेके म्यानमें बन्दकी हुई पानी पिलाकर रँगीहुई, सुन्दर सोनेकी मूठ और तीखी धारवाली तथा घूँघरू लगी हुई यह तलवार किसकी है ॥ १२ ॥ तथा सोनेकी मूठवाली बडी ही चमकदार यह तेजस्वी और दिव्य तलवार, कि-जो बैलके चमडेके म्यानमें बन्दकी हुई है, सो किसकी है ॥ १३ ॥ और सोनेकी मूंठवाली, किसीसे पीछेको न हटाई जासकनेवाली, निषध देशमें बनीहुई तथा वैरीकी मारको झेलने वाली और सब सोनेसे मढीहुई तलवार जो बकरेके चमडेके म्यान में बन्द है सो किसकी है ? ॥१४॥ अग्निकी समान कान्तिवाली बडी ही तेजस्वी,सुनहरी म्यानमें बन्द,दर्शनीय,उचित लम्बाववाली, वजन में भारी पानीदार,वैरियोंके हथियारोंसे अडने पर चोट न खानेवाली और सोनेकी फुल्लियोंसे शोभायमान यह काले लोहेके आकाशकेसे रङ्गवाली तलवार किसकी है ? ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस तलवारका स्पर्श विषैले सर्पकेसा है और यह वैरीकी कायाको काटनेवाली है, बडी मारको सहनेवाली, वैरियोंको भयदायक और दिव्य है ॥१७॥ हे बृहन्नले ! मैंने जो प्रश्न किये इनके तू ठीक २ उत्तर दे, इन सब उत्तम वस्तुओंको देखकर मुझे बडा अचरज होता है ॥ १८ ॥

बृहन्नलोवाच । यन्मां पूर्वमिहापृच्छः शत्रुसेनापहारिणम् । गांडीवमेतत् पार्थस्य लोकेषु विदितं धनुः ॥ १ ॥ सर्वायुधमहामात्रं शातकुम्भपरिष्कृतम् । एतत्तदर्जुनस्यासीत् गाण्डीवं परमायुधम् ॥ २ ॥ यत्तच्छतसहस्रेण सम्मितं राष्ट्रवर्धनम् । येन देवान् मनुष्यांश्च पार्थो विजयते मृधे ॥ ३ ॥ चित्रमुच्चावचैर्वर्णैः श्लक्ष्णमायतमव्रणम् । देवदानवगन्धर्वैः पूजितं शाश्वतीः समाः ॥४ ॥ एतद्वर्षसहस्रन्तु ब्रह्मा पूर्वमधारयत् । ततोऽनन्तरमेवाथ प्रजापतिरधारयत् ॥५॥त्रीणि पञ्च शतं चैव शक्रोऽशीति च पञ्च च । सोमः पञ्चशतं राजा तथैव वरुणः शतम् । पार्थः पंच च षष्टिं च वर्षाणि श्वेतवाहनः ६ महावीर्यं महद्दिव्यमेतत्तद्धनुरुत्तमम् । एतत् पार्थमनुप्राप्त वरुणाच्चारुदर्शनम् ॥ ७ ॥ पूजितं सुरमर्त्येषु बिभर्त्ति परमं वपुः । सुपार्श्वं भीमसेनस्य जातरूपग्रहं धनुः । येन पार्थोऽजयत् कृत्स्नां दिशं प्राचीं परन्तपः ॥ ८ ॥ इन्द्रगोपकचित्रञ्च यदेतच्चारुदर्शनम् । राज्ञोयुधिष्ठिरस्यै-

बृहन्नलाने कहा, कि–हे उत्तर ! तूने जो पहिले मुझसे धनुषोंके विषयमें बूझा है, सो इस धनुषका नाम गाण्डीव है और वैरियोंकी सेनाको नाश करने वाला यह धनुष अर्जुनका है और यह जगत् में प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ सब शस्त्रोंमें उत्तम सोनेसे मढ़ा एक लाख धनुषों की समान बलसे भरा और देशकी उन्नति करने वाला यह धनुष अर्जुनका है और इस धनुषसे धनञ्जय संग्राममें देवता और मनुष्य को जीतता था ॥ २ ॥ ३ ॥ घटिया बढ़िया रङ्गोंसे चित्रविचित्र दीखनेवाला कोमल, विशाल और छिद्ररहित इस धनुषका देवता, दानव और गन्धर्वोंने बहुत वर्षों तक पूजन किया था ॥४॥ पहिले ब्रह्माजीने एक हजार वर्ष तक इस धनुषको धारण किया था ॥५॥ फिर प्रजापतिने पाँच सौ तीन वर्ष तक तिसके पीछे इन्द्रने पिच्चासी वर्षतक चन्द्रमाने पाँच सौ वर्ष तक और राजा वरुणने सौ वर्ष तक धारण किया था और उसके पीछे महापराक्रमी, परमदिव्य इस उत्तम धनुष को श्वेतवाहन पार्थने वरुणसे पाया था और उसने पैंसठ वर्षा काल अर्थात् साढे बत्तीस वर्ष तक धारण किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ बड़ा स्वरूपवान् देवता और मनुष्योंमें आदर पाया हुआ, सुन्दर पीठवाला चाँदीसे मढे मध्यभागवाला यह जो (दूसरा) धनुष है सो भीमसेनका है इसीसे भीमसेनने सब पूर्वदिशाको जीता था॥८॥हे विराटकुमार जिस धनुष पर इन्द्रगोपके चित्र हैं वह दर्शनीय उत्तम धनुष राजा युधि-

तद्वैराटे धनुरुत्तमम् ॥ ९ ॥ सूर्या यस्मिंस्तु सौवर्णाः प्रकाशन्ते प्रकाशिनः । तेजसा प्रज्वलन्तो वै नकुलस्यैतदायुधम् ॥ १० ॥ शलभा यत्र सौवर्णास्तपनीयविचित्रिताः । एतन्माद्रीसुतस्यापि सहदेवस्य कार्मुकम् ॥ ११ ॥ ये त्विमे क्षुरसंकाशाः सहस्रा लोमवाहिनः । एतेऽर्जुनस्य वैराटे शराः सर्पविषोपमाः ॥ १२ ॥ एते ज्वलन्ते संग्रामे तेजसा शीघ्रगामिनः । भवन्ति वीरस्याक्षय्या व्यूहतः समरे रिपून् १३ ये चेमे पृथवो दीर्घाश्चन्द्रविम्बार्धदर्शनाः । एते भीमस्य निशिता रिपुक्षयकराः शराः ॥१४॥ हारिद्रवर्णा ये त्वेते हेमपुङ्खाः शिलाशिताः । नकुलस्य कलापोऽयं पंचशार्दूललक्षणः ॥ १५ ॥ येनासौ व्यजयत् कृत्स्नां प्रतीचीं दिशमाहवे । कलापो ह्येष तस्यासीन्माद्रीपुत्रस्य धीमतः ॥ १६ ॥ ये त्विमे भास्कराकाराः सर्वपारसवाः शराः । एते चित्रक्रियोपेताः सहदेवस्य धीमतः ॥ १७ ॥ ये त्विमे निशिताः पीताः पृथवो दीर्घवाससः । हेमपुंखास्त्रिपर्वाणो राज्ञ एते महाशराः ॥ १८ ॥ यस्त्वयं सायको दीर्घः शिलीपृष्ठः शिलीमुखः । अर्जुनस्यैव संग्रामे

छिरका है ॥ ९ ॥ जिस धनुष पर सोनेके सूर्य अपने तेजकी चमचमाहटसे दमक रहे हैं, यह धनुष नकुलका है ॥ १० ॥ जिसके ऊपर सोने के और मीनाकारीके रङ्गके चमकते हुए विचित्र पटवीजने चित रहे हैं, यह धनुष माद्रीतनय सहदेवका है ॥ ११ ॥ हे उत्तर ! तेज किये हुए छुरोंकी समान तीखी धार और सुन्दर परों वाले तथा सर्पके विषकी समान महाजहरीले ये जो हजारों वाण पड़े हैं सो अर्जुनके हैं ॥१२॥ रणभूमिमें तेजसे झलझलाते और कभी कम न होने वाले ये वाण संग्रामभूमिमें वैरियोंके नाशकर्ता वीर अर्जुनके हैं ॥ १३ ॥ ये मोटे दण्डे वाले आधे चन्द्रमाके आकारके, तेज किये हुए वैरियोंके नाशकर्ता हल्दीकी समान पीले, सुनहरी परोंवाले सान पर लगाकर तेज किये हुए भीमसेनके हैं, यह पाँच सिंहोंके चित्रों वाला म्यान बुद्धिमान् माद्री तनय नकुलका है और नकुलने रणमें इन शस्त्रोंसे पश्चिम दिशाको जीता था ॥ १४–१६ ॥ और ये सूर्यकेसे चमकदार वैरियोंके नाशक वाण बुद्धिमान् सहदेवके हैं, ये वाण बड़ा अद्भुत काम करते हैं ॥ १७ ॥ ये तेज किये हुए, पानीदार मोटे लम्बे, सोनेकी पूँछ और तीन गाँठोंवाले बड़े २ वाण महाराज धर्मराजके हैं १८ और जिसकी पीठ तथा मुख पर मेंडकका चित्र है तथा जो लम्बी और संग्राममें बड़े २ शस्त्रोंके सामने टक्कर झेलनेवाली और दृढ़ है, ऐसी यह

गुरुभारसहो दृढः ॥ १९ ॥ वैयाघ्रकोशः सुमहान् भीमसेनस्य सायकः। गुरुभारसहो दिव्यः शात्रवाणां भयंकरः ॥ २० ॥ सुफलश्चित्रकोशश्च हेमत्सरुरनुत्तमः । निस्त्रिंशः कौरवस्यैष धर्मराजस्य धीमतः ॥ २१ ॥ यस्तु पांचनखे कोशे निहितश्चित्रयोधने । नकुलस्यैष निस्त्रिंशो गुरुभारसहो दृढः ॥ २२ ॥ यस्त्वयं विपुलः खड्गो गव्ये कोशे समर्पितः। सहदेवस्य विद्ध्येनं सर्वभारसहं दृढम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
आयुधवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

उत्तर उवाच । सुवर्णविकृतानीमान्यायुधानि महात्मनाम् । रुचिराणि प्रकाशन्ते पार्थानामाशुकारिणाम् ॥१ ॥ क्व नु स्विदर्जुनः पार्थः कौरव्यो वा युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पांडवः ॥२॥ सर्वं एव महात्मानः सर्वामित्रविनाशनाः । राज्यमक्षैः पराकीर्य न श्रूयन्ते कथञ्चन ॥ ३ ॥ द्रौपदी क्व च पांचाली स्त्रीरत्नमिति विश्रुता । जितानक्षैस्तदा कृष्णा तानेवान्वगमद्वनम्॥४॥अर्जुनउवाच ।

तलवार अर्जुनकी है ॥ १९ ॥ बड़ी भयानक, संग्राममें शत्रोंके सामने बड़ी टक्कर झेलनेवाली दिव्य और बड़ी लम्बी जो तलवार वाघके म्यानमें धरी है यह भीमसेनकी है ॥ २०॥ ऐसी ही अच्छे फलवाली विचित्रम्यानमें बन्द, सोनेकी मूँठ वाली यह सबसे उत्तम तलवार बुद्धिमान् धर्मराजकी है॥२१॥ तथा शत्रोंकी बड़ीभारी मारकेसामने टक्कर झेलनेवाली और अनेकों प्रकारके रणमें काम देने वाली यह जो मजबूत तलवार बकरेके चमड़ेके म्यानमें बन्द है वो नकुलकी है ॥२२॥ और सब ही शत्रोंको मारके सामने टक्कर लेनेवाली मजबूत और लम्बी यह तलवार जो बैलके चमड़ेके म्यानमें बन्द है, इसको सहदेवकी जानो ॥ २३ ॥ तितालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

उत्तर बोला, कि-हे बृहन्नले ! शीघ्र पराक्रम करने वाले जिन महात्मा पाण्डवोंके सुनहरी और सुन्दर ये शस्त्र चमचमा रहे हैं, वे वैरियोंका नाश करनेवाले कुन्तीनन्दन अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा भीमसेन जुएमें राज्यको हार कर वनमें चले गए थे, वे आज कल कहाँ है, यह बात कुछ सुननेमें ही नहीं आती ॥ १-३ ॥ और राजा द्रुपदकी बेटी पांचाली, जो कि-स्त्रियोंमें एक रत्नरूप प्रसिद्ध है, वह भी जुएमें हारे हुए पाण्डवोंके साथ ही वनमें गई है वह भी (न जाने) कहाँ है ॥ ४ ॥ अर्जुनने कहा कि—मैं ही कुन्ती

अहमस्म्यर्जुनः पार्थः सभास्तारो युधिष्ठिरः । वल्लवो भीमसेनस्तु पितुस्ते रसपाचकः ॥ ५ ॥ अश्वबन्धोऽथ नकुलः सहदेवस्तु गोकुले । सैरन्ध्रीं द्रौपदीं विद्धि यत् कृते कीचकाः हताः ॥ ६ ॥ उत्तर उवाच । दश पार्थस्य नामानि यानि पूर्वं श्रुतानि मे । प्रब्रूयास्तानि यदि मे श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥ ७ ॥ अर्जुन उवाच । हन्त तेऽहं समाचक्षे दशनामानि यानि मे । वैराटे शृणु तानि त्वं यानि पूर्वं श्रुतानि ते ॥ ८ ॥ एकाग्रमनसो भूत्वा शृणु सर्वं समाहितः । अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः किरीटी श्वेतवाहनः । बीभत्सुर्विजयः कृष्णः सव्यसाची धनञ्जयः ॥९॥ उत्तर उवाच । केनासि विजयो नाम केनासि श्वेतवाहनः । किरीटी नाम केनासि सव्यसाची कथं भवान् ॥१०॥ अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः कृष्णो बीभत्सुरेव च । धनञ्जयश्च केनासि ब्रूहि तन्मम तत्त्वतः ॥११॥ श्रुता मे तस्य वीरस्य केवला नामहेतवः । तत्सर्वं यदि मे ब्रूयाः श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥ १२ ॥ अर्जुन उवाच । सर्वान् जनपदान् जित्वा

का पुत्र अर्जुन हूं, जो तेरे पिताके सभासद् हैं वही युधिष्ठिर हैं तेरे पिता का भोजन पकानेवाला वल्लभ भीमसेन है ॥ ५ ॥ घोड़ोंका शिक्षक नकुल है, जो गौओंके समूहमें रक्षक बना हुआ है वह सहदेव है और जिस सैरन्ध्रीके लिये कीचक मारेगये हैं उसको द्रौपदी जान ६ उत्तर बोला, कि-मैंने पहिले अर्जुनके जो दश नाम सुने हैं, उन दश नामोंको यदि तू मेरे सामने कहदेय तो मैं तेरी सब बातों का विश्वास करलूँ ॥ ७ ॥ अर्जुनने कहा कि-हे उत्तर ! मेरे जो दश नाम तूने पहिले सुने हैं, उन नामोंको मैं तुझसे कहता हूं, सुन ॥८॥ मैं जो कहता हूं, उस सबको तू एकाग्र मन करके सावधान होकर सुनता जा, मेरे नाम अर्जुन, फाल्गुन, जिष्णु किरीटी, श्वेतवाहन बीभत्सु, विजय कृष्ण सव्यसाची और धनञ्जय ये दश हैं ॥ ९ ॥ उत्तरने कहा, तुम विजय नामवाले किस कारणसे हो ? किन गुणोंसे श्वेत वाहन नामवाले हो, किन गुणोंसे किरीटी नामवाले हो और सव्यसाची कैसे हो ? ॥ १० ॥ तथा अर्जुन फाल्गुन, जिष्णु, कृष्ण, बीभत्सु तथा धनञ्जय नाम भी किस कारणसे पडा है मुझे ठीकर बताओ ॥ ११ ॥ मैंने वीर अर्जुनके केवल नाम ही सुने हैं परन्तु ये नाम पड़नेके कारण मेरे सुननेमें नहीं आए हैं, इसलिये यदि तुम मुझसे उन सब नामोंके कारण कहो तो मुझे तुम्हारे कहने पर विश्वास आवे अर्जुनने कहा कि-मैं सब देशोंको जीत केवल धन लाकर उसके

वित्तमादाय केवलम् । मध्ये धनस्य तिष्ठामि तेनाहुर्मां धनञ्जयम् ।१३। अभिप्रयामि संग्रामे यदहं युद्धदुर्मदान् । नाजित्वा विनिवर्त्तामि तेन मां विजयं विदुः ॥ १४ ॥ श्वेताः काञ्चनसन्नाहा रथे युज्यन्ति मे हयाः । संग्रामे युध्यमानस्य तेनाहं श्वेतवाहनः ॥ १५ ॥ उत्तराभ्यां फल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहं दिवा । जातो हिमवतः पृष्ठे तेन मां फाल्गुनं विदुः ॥ १६ ॥ पुरा शक्रेण मे दत्तं युध्यतो दानवर्षभैः । किरीटं मूर्ध्नि सूर्याभं तेनाहुर्मां किरीटिनम् ॥१७॥ न कुर्यां कर्म बीभत्सुं युध्यमानः कथञ्चन । तेन देवमनुष्येषु बीभत्सुरिति विश्रुतः ॥१८॥ उभौ मे दक्षिणौ पाणी गाण्डीवस्य विकर्षणे । तेन देवमनुष्येषु सव्यसाचीति मां विदुः ॥ १९ ॥ पृथिव्यां चतुरन्तायां वर्णो मे दुर्लभः समः । करोमि कर्म शुक्लञ्च तस्मान्मामर्जुनं विदुः ॥२०॥ अहं दुरापो दुर्द्धर्षो दमनः पाकशासनिः । तेन देवमनुष्येषु जिष्णुर्नाम्नास्मि विश्रुतः २१।

बीचमें खड़ा रहता हूँ, इसकारण लोग मुझे धनञ्जय कहते हैं १२-१३ और संग्राममें जाकर युद्धमें महामदमत्त वैरियोंको हराये विना पीछे को नहीं लौटता हूं, इसलिये लोग मुझे विजय कहते हैं ॥१४॥ मैं जिस समय संग्राममें लड़नेको जाता हूं उस समय सोनेके बख्तरवाले सफेद घोड़े मेरे रथमें जुड़ते हैं, इसलिये लोग मुझे श्वेतवाहन कहते हैं॥१५॥ मैं उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें दिनके समय हिमालय पर्वत पर उत्पन्न हुआ हूँ, इस लिए लोग मुझे फाल्गुन कहते हैं ॥ १६ ॥ पहिले मैं बड़े बड़े दैत्योंके सामने लड़नेको गया था उस समय इन्द्रने मेरे मस्तक पर सूर्यकी समान चमकता हुआ मुकुट पहिराया था, इस कारण मुझे किरीटी कहते हैं ॥ १७ ॥ युद्ध करते समय मैं कभी भी बीभत्सु (भयानक) काम नहीं करता हूँ, इसकारण देवता और मनुष्योंमें मैं बीभत्सु(१) नामसे प्रसिद्ध हुआ हूँ॥१८॥ गाण्डीवको खैंचनेमें मेरे दोनों हाथ कुशल हैं इसकारण देवता और मनुष्योंमें मुझे सव्यसाची कहते हैं ॥१९॥ चारों समुद्र पर्यन्तकी पृथ्वी पर मुझसा गौर वर्ण मिलना कठिन है और मैं निर्मल (श्वेत) कर्म करता हूँ इस कारण मेरा नाम अर्जुन पड़ा है ॥२०॥ मैं दुर्लभ दुराधर्ष सब वैरियों को दबाने वाला और इन्द्रका पुत्र हूँ, इसकारण देवता और मनुष्यों में मैं जिष्णु नामसे प्रसिद्ध हूँ ॥ २१ ॥ और दशवाँ कृष्ण नाम मेरा

---

(१) बीभत्सु शब्द सुख और कल्याण अर्थवाली भदि धातुसे सन् प्रत्यय होकर बना है और इसका अर्थ है सुख तथा कल्याण चाहने वाला।

कृष्ण इत्येव दशमं नाम चक्रे पिता मम । कृष्णावदातस्य सतः प्रियत्वाद् बालकस्य वै ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततः स पार्थं वैराटिरभ्यवादयदन्तिकात् । अहं भूमिञ्जयो नाम नाम्नाहमपि चोत्तरः ॥२३॥ दिष्ट्या त्वां पार्थ पश्यामि स्वागतं ते धनञ्जय । लोहिताक्ष महावाहो नागराजकरोपम ॥२४॥ यदज्ञानादवोचं त्वां क्षन्तुमर्हसि तन्मम । यतस्त्वया कृतं पूर्वं चित्रं कर्म सुदुष्करम् । अतो भयं व्यतीतं मे प्रीतिश्च परमा त्वयि ॥ २५ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे अर्जुनपरिचये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

उत्तर उवाच । आस्थाय रुचिरं वीर रथं सारथिना मया । कतमं यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया ॥१॥ अर्जुन उवाच । प्रीतोऽस्मि पुरुषव्याघ्र न भयं विद्यते तव । सर्वान्नुदामि ते शत्रून् रणे रणविशारद ॥ २ ॥ स्वस्थो भव महावाहो पश्य मां शत्रुभिः सह । युध्यमानं

पिताने रक्खा है मैं कृष्ण कहिये चित्तको खैंचनेवाले उज्ज्वल वर्णका और वालक होनेसे पिताको वडा प्यारा था, इसकारण उन्होंने लाडमें मेरा कृष्ण नाम धर लिया था ॥ २२ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! अर्जुनके नामोंके कारण उसके मुखसे ही सुनकर उत्तर कुमार अर्जुनके समीपमें गया और प्रणाम करके कहने लगा कि—मैं भूमिञ्जय नामवाला राजा विराटका पुत्र हूँ और मेरा नाम उत्तर भी है हे पार्थ ! मैं आपका दर्शन कर रहा हूँ, यह मेरा अहोभाग्य है, हे धनञ्जय हे लोहितनेत्र ! हे महावाहो ! हे हस्तिराजकी सूँडकी समान गोलाकार अर्जुन ! तुम हमारे यहाँ आए यह वडा ही अच्छा हुआ २४ मैं पहिले आप को पहिचानता नहीं था इस कारण अनजानपने में मैंने आप से यदि कुछ कह दिया हो तो वह आप को क्षमा करदेना चाहिये, तुमने पहिले भी अचरज में डालनेवाले वड़े वड़े कठिन काम किये हैं इस कारण मेरे मनमें जो कुछ भय था वह अव दूर होगया और तुम्हारे ऊपर मेरी वडी भारी प्रीति है ॥ २५ ॥ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥

उत्तर फिर कहने लगा कि—आप इस सुन्दर रथमें विराज कर कहिये, कौनसी सेनामें जायँगे, मुझ सारथी को आज्ञा दीजिये तो मैं आपको उस ही सेनामें लेचलूँ ॥१॥ अर्जुनने कहा कि—हे पुरुषव्याघ्र ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ अब तुझे कुछ भय नहीं है, हे रणचतुर ! मैं रणमें

विमर्देऽस्मिन् कुरूणां भैरवं महत् ॥ ३ ॥ एतान् सर्वानुपासंगान् क्षिप्रं बध्नीहि मे रथे । एकञ्चाहर निस्त्रिंशं जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच । अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा त्वरावानुत्तरस्तदा । अर्जुनस्यायुधान् गृह्य शीघ्रेणावातरत्ततः ॥ ५ ॥ अर्जुन उवाच । अहं वै कुरुभिर्योत्स्याम्यवजेष्यामि ते पशून् ॥ ६ ॥ संकल्पपक्षविक्षेपं बाहुप्राकारतोरणम् । त्रिदण्डतूणसम्बाधमनेकध्वजसंकुलम् ॥ ७ ॥ ज्याक्षेपणं क्रोधकृतं नेमीनिनददुन्दुभिः । नगरं ते मया गुप्तं रथोपस्थं भविष्यति ॥ ८ ॥ अधिष्ठितो मया संख्ये रथो गाण्डीवधन्वना । अजेयः शत्रुसैन्यानां वैराटे व्येतु ते भयम् ॥ ९ ॥ उत्तर उवाच । बिभेमि नाहमेतेषां जानामि त्वां स्थिरं युधि । केशवेनापि संग्रामे साक्षादिन्द्रेण वा समम् । इदन्तु चिन्तयन्नेवं परिमुह्यामि केवलम् । निश्चयञ्चापि

तेरे सब बैरियोंको भगाऊंगा २ हे महाबाहो! तू शांत हो और मैं शत्रुओं के साथ लडते समय जो महाभयङ्कर काम करूं उसको तू देख ॥ ३ ॥ अब तो तू इन सब बाण भरनेके भाथोंको शीघ्र ही मेरे रथसे बाँधदे और सोनेसे मँढीहुई अकेली तलवारको ही ले आ ॥ ४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—उत्तर, अर्जुनके सब शस्त्रोंको लेकर शमीके पेड़परसे नीचे उतरा ॥ ५ ॥ तब अर्जुन बोला कि—मैं तेरे लिये कौरवोंके साथ संग्राम करूँगा और तेरी गौओंको कौरवोंसे जीतकर लाऊँगा ॥ ६ ॥ मैं अपने बाहुबलसे तेरे रथके आसपासके भागोंकी रक्षा करूँगा, तिससे वह तुझे एक नगरसा (रक्षा करनेवाला). हे जायगा, इस रथमें धुरी पहिये आदि जो अङ्ग हैं, उनको नगरमें रहनेके घररूप जान, मेरी दोनों भुजाओंको किलेका द्वारसमान जान, क्रोधसे खेंची हुई धनुषकी डोरीको पानी जानेका पतनालारूप जान, रथके पहियों के शब्दको नगाडोंका शब्द जान, त्रिदण्ड अर्थात् घोड़ेसवार हाथी सवार और रथी इन तीनप्रकारकी सेनाओंके भाथे आदि शस्त्रोंके समूहसे जैसे नगर भरपूर होता है तैसे ही इस रथके आस पासके भाग भी तीन डंडे और भाथोंसे भरेहुए हैं, नगरमें जैसे बहुतसी ध्वजा पताका होती हैं तैसे ही इस रथके ऊपर भी ध्वजा पताका फहरा रही हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ मैं गांडीव धनुषको धारण करके संग्रामकेसमय तेरे रथ पर बैठूँगा कि—जिससे शत्रुओंकी सेना तुझे नहीं जीतसकेगी तेरी ही विजय होगी । हे उत्तर ! अब तेरा भय दूर हो ॥ ९ ॥ उत्तरने कहा, कि—अब मैं इनसे डरता नहीं हूँ, क्योंकि—मैं जानता हूँ, कि—

दुर्मेधा न गच्छामि कथञ्चन ॥ ११ ॥ एवं युक्ताङ्गरूपस्य लक्षणैः सूचितस्य च । केन कर्मविपाकेन क्लीबत्वमिदमागतम् ॥ १२ ॥ मन्ये त्वां क्लीबवेषेण चरन्तं शूलपाणिनम् । गन्धर्वराजप्रतिमं देवं वापि शतक्रतुम् ॥ १३ ॥ अर्जुन उवाच । भ्रातुर्नियोगाज्ज्येष्ठस्य सम्वत्सरमिदं व्रतम् । चरामि व्रतचर्यञ्च सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १४ ॥ नास्मि क्लीबो महाबाहो परवान् धर्मसंयुतः । समाप्तव्रतमुत्तीर्णं विद्धि मा त्वं नृपात्मज ॥ १५ ॥ उत्तर उवाच । परमोऽनुग्रहो मेऽद्य यतस्तर्को न मे वृथा । न हीदृशाः क्लीबरूपा भवन्ति तु नरोत्तम ॥ १६ ॥ सहायवानस्मि रणे युध्येयममरैरपि । साध्वसं हि प्रनष्टं मे किं करोमि ब्रवीहि मे ॥ १७ ॥ अहन्ते संग्रहीष्यामि हयान् शत्रुरथारुजान् । शिक्षितो ह्यस्मि सारथ्ये तीर्थतः पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥ दारुको वासुदेवस्य

तुम संग्राममें श्रीकृष्णके साथ और साक्षात् इन्द्रके साथ भी डटसकते हो ॥ १० ॥ परन्तु केवल एक ही बातका विचार करनेमें मुझे घबराहट होती है और मैं तुच्छबुद्धि होनेसे किसी प्रकार उसका निश्चय भी नहीं करसकता हूँ ॥ ११ ॥ तुम्हारा ऐसा योग्य रूपवान् शरीर है शरीर पर शूर वीरपनके लक्षण भी दीखते हैं, तो भी किस कर्मके फलसे तुम्हें यह नपुंसकपना मिला है ? ॥ १२ ॥ मैं तुमको नपुंसकके वेशमें फिरने वाले त्रिशूलधारी शिव वा गन्धर्वराज अथवा इन्द्रदेव मानता हूँ ॥ १३ ॥ अर्जुनने कहा कि—मैंने अपने बड़े भाईकी आज्ञासे सालभर हुआ तबसे इस व्रतका आरम्भ किया है और इस व्रतका मैं पालन कररहा हूँ, यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ १४ ॥ हे महाबाहो ! मैं नपुंसक नहीं हूँ, किन्तु दूसरेके अधीन और धर्मप्रेमी होनेसे ऐसे वेषमें रहता हूँ, परन्तु हे राजकुमार ! अब व्रत समाप्त होगया और मुझे इस व्रतके पार हुआ जान ॥ १५ ॥ उत्तरने कहा, कि—हे नरोत्तम ! तुमने आज मुझसे सच्ची बात कहकर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है, मेरे मनमें पहिले जो विचार उठा था, कि—ऐसे लक्षणोंवाले पुरुष नपुंसक नहीं होसकते वह मेरा अनुमान मिथ्या नहीं था ॥ १६ ॥ अब रणमें सहायता पाया हुआ मैं देवताओंके साथ भी युद्ध करूँगा, मेरा भय दूर होगया, अब मुझे आज्ञा दीजिये कि—मैं क्या काम करूँ ? ॥ १७ ॥ हे महात्मा अर्जुन ! मैंने अपने पितासे सारथीपना सीखा है इसकारण रणभूमिमें वैरियोंके रथका चूरा २ करडालने वाले तुम्हारे घोड़ोंको मैं अच्छी तरह पकड़े रहूँगा ॥ १८ ॥ जैसे वासु-

यथा शक्रस्य मातलिः। तथा मां विद्धि सारथ्ये शिक्षितं नरपुङ्गव ॥१९॥ यस्य याने न पश्यन्ति भूमौ क्षिप्तं पदं पदम्। दक्षिणां यो धुरं युक्तः सुग्रीवसदृशो हयः ॥ २० ॥ योऽयं धुरं धुर्यवरो वामां वहति शोभनः। तं मन्ये मेघपुष्पस्य जवेन सदृशं हयम् ॥ २१ ॥ योऽयं काञ्चनसन्नाहः पार्ष्णिं वहति शोभनः। समं शैब्यस्य तं मन्ये जवेन बलवत्तरम् ॥ २२ ॥ योयं वहति मे पार्ष्णिं दक्षिणामभितः स्थितः। बलाहकादपि मतः स जवे वीर्यवत्तरः ॥ २३ ॥ त्वामेवायं रथो वोढुं संग्रामेऽर्हति धन्विनम्। त्वञ्चेमं रथमास्थाय योद्धुमर्हो मतो मम ॥२४॥ वैशम्पायन उवाच। ततो विमुच्य बाहुभ्यां वलयानि स वीर्यवान्। चित्रे काञ्चनसन्नाहे प्रत्यमुञ्चत्तदा तले ॥ २५ ॥ कृष्णान् भंगिमतः केशान् श्वेतेनोद्ग्रथ्य वाससा। अथासौ प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिः प्रयतमानसः। अभिदध्यौ महाबाहुः सर्वास्त्राणि रथोत्तमे ॥ २६ ॥ ऊचुश्च पार्थं सर्वाणि प्राञ्ज-

देवका दारुक और इन्द्रका मातलि है तैसे ही हे नरपुंगव! तुम मुझे सारथीके काममें चतुर जानो ॥ १९ ॥ मेरे रथमें दाहिनी धुरीका और जो घोड़ा अगले भागमें जुताहुआ है, वह सुग्रीव नामक घोड़ेकी समान वेगवाला है, चलतेमें यह भूमि पर किस समय पैर रखता है, यह बात लोगोंको दीखती ही नहीं ॥ २० ॥ और जो यह श्रेष्ठ घोड़ा मेरे रथके बाईं ओरके जोतमें जुताहुआ है इस घोड़ेको मैं मेघपुष्प घोड़ेकी समान शीघ्र चलनेवाला मानता हूँ ॥ २१ ॥ और यह सुवर्णके बख्तरवाला सुन्दर घोड़ा मेरे रथके बाईं ओरके पिछले जोतमे जुताहुआ है, इसको मैं वेगमें शैब्य घोड़ेकी समान बलवान् मानता हूँ ॥ २२ ॥ और यह जो घोड़ा मेरे रथके दाहिनी ओरके जोतमें पीछेको जुताहुआ है इसको मैंने वेगमें बलाहक घोड़ेसे भीअधिक वेगवाला मान रक्खा है ॥ २३ ॥ इस कारण यह रथ संग्राममें आपसे धनुषधारीको ही सवारी देनेके योग्य है और मेरी समझमें, तुम भी इस रथमें बैठकर युद्ध करनेके योग्य ही हो ॥ २४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-इसके पीछे वीर अर्जुनने दोनों भुजाओंमेंसे कड़े निकालकर सुवर्णसे चितेहुए कवचमें डालदिये और उनके स्थानमें धनुषकी डोरीका घाव न होजाय इसलिये चमड़ेकी पट्टियें बाँधली ॥ २५ ॥ माथे परके काले घुंघराले बालोंको स्वेत वस्त्रसे ऊपरको बाँधकर महाबाहु अर्जुन स्नान करके शुद्ध हुआ तथा उत्तर कुमारके रथमें पूर्वको मुख करके बैठा और मनको नियममें रखकर जो अस्त्र अपनेको वरदानमें मिले थे उन सबोंका स्मरण करनेलगा ॥ २६ ॥ सब

लीनि नृपात्मजम्। इमे स्म परमोदाराः किंकराः पाण्डुनन्दन ॥ २७ ॥ प्रणिपत्य ततः पार्थः समालभ्य च पाणिना। सर्वाणि मानसानीह भवतेत्यभ्यभाषत ॥ २८ ॥ प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनोऽभवत्। अधिज्यन्तरसा कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः ॥ २९ ॥ तस्य विक्षिप्यमाणस्य धनुषोऽभून्महाध्वनिः। यथा शैलस्य महता शैलेनैवावजघ्नतः ॥ ३० ॥ स निर्घातोभवद् भूमिर्दिक्षु वायुर्ववौ भृशम्। पपात महती चोल्का दिशो न प्रचकाशिरे। भ्रान्तध्वजं खन्तदासीत् प्रकम्पितमहाद्रुमम् ॥ ३१ ॥ तं शब्दं कुरवोऽजानन् विस्फोटमशनेरिव। यदर्जुनो धनुःश्रेष्ठं वाहुभ्यामाक्षिपद्रथे ॥ ३२ ॥ उत्तर उवाच। एकस्त्वं पाण्डवश्रेष्ठ बहूनेतान्महारथान्। कथं जेष्यसि संग्रामे सर्वशस्त्रास्त्रपारगान् ॥ ३३ ॥ असहायोसि कौन्तेय ससहायाश्च कौरवाः। अतएव महावाहो भीतस्तिष्ठामि तेऽग्रतः ॥ ३४ ॥ उवाच पार्थो मा

अस्त्र दोनों हाथ जोड़कर अर्जुनसे कहने लगे, कि–हे पाण्डुनन्दन ! ये हम परम उदार आपके किंकर आपहुँचे हैं ॥ २७ ॥ अर्जुनने उन सब अस्त्रोंको प्रणाम करके हाथसे छुआ और उनसे कहनेलगा; कि–तुम सब मेरे मनमें निवास करो (तत्काल सब अस्त्रोंने अर्जुनके मनमें निवास किया) २८ इस प्रकार सब अस्त्रोंको ग्रहण करके अर्जुनके मुखपर आनन्द छागया और उसने जोरसे गाण्डीव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसका टङ्कार किया ॥ २९ ॥ अर्जुनने ज्योंही गांडीव धनुषको खेंचा, कि–उसमेंसे ऐसा वड़ा भारी शब्द हुआ, कि—मानो कोई वड़ा भारी पहाड़ दूसरे पहाड़के साथ टकरागया ॥ ३० ॥ उस धनुषके शब्दसे भूमि दहलानेसी लगी दिशाओंमें वड़े जोरकी आँधी चलनेलगी, आकाशमेंसे वड़े वड़े आगके ऊके गिरने लगे, दिशाओंमें जरा उजाला नहीं रहा [घोर अंधेरा होगया] आकाशमें ध्वजाएं फड़ फड़ उड़नेलगीं, वड़े २ वृक्ष काँप उठे ॥३१॥ और भयानक वज्रपात की समान उस धनुषके शब्दको सुनकर कौरवोंने जाना कि–अर्जुनने अपने रथमें वैठकर अपने श्रेष्ठ धनुष पर टङ्कार दी है ॥ ३२ ॥ उस समय उत्तर कहने लगा कि–हे श्रेष्ठ पाण्डव ! तुम तो अकेले हो, इन सब अस्त्र शस्त्रोंके पारगामी वहुतसे महारथियोंको संग्राममें कैसे जीत सकोगे ? ॥ ३३ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! तुम असहाय हो और कौरवों के वहुतसे सहायक हैं, इस कारण हे महावाहो ! मैं आपके आगे भयभीत हुआ खड़ा हूँ, ॥३४॥ उस समय अर्जुनने खिलखिलाके हँस

भैषीः प्रहस्य स्वनवत्तदा॥ ३५॥ युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः। सहायो घोषयात्रायां कस्तदासीत् सखा मम॥ ३६॥ तथा प्रतिभये तस्मिन् देवदानवसंकुले। खाण्डवे युध्यमानस्य कस्तदासीत् सखा मम॥ ३७॥ निवातकवचैः सार्द्धं पौलोमैश्च महाबलैः। युध्यतो देवराजार्थं कः सहायस्तदाभवत्॥ ३८॥ स्वयम्वरे तु पाञ्चाल्या राजभिः सह संयुगे। युध्यतो बाहुभिस्तात कः सहायस्तदाभवत्॥ ३९॥ उपजीव्य गुरुन्द्रोणं शक्रं वैश्रवणं यमम्। वरुणं पावकञ्चैव कृपं कृष्णं च माधवम्॥ ४०॥ पिनाकपाणिनं चैव कथमेतान्न योधये। रथं वाहय मे शीघ्रं व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ ४१॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरार्जुनयोर्वाक्यं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

वैशम्पायन उवाच। उत्तरं सारथिं कृत्वा शमीं कृत्वा प्रदक्षिणम्। आयुधं सर्वमादाय प्रययौ पाण्डवर्षभः॥ १॥ ध्वजं सिंहं रथात्तस्मादपनीय महारथः। प्रणिधाय शमीमूले प्रायादुत्तरसारथिः॥ २॥ दैवीं मायां रथे युक्तां विहितां विश्वकर्मणा। कांचनं सिंहलांगूलं

कर कहा, कि—हे उत्तर! तू डरै मत॥ ३५॥ हे वीर! मैं जिस समय घोषयात्रामें महाबली गन्धर्वोंके साथ लडा था, उस समय सहायक रूपसे मेरा कौनसा मित्र था?॥ ३६॥ और जब महा भयानक देव दानवोंसे भरे खाण्डव वनमें मैंने युद्ध किया था उस समय मेरा कौन मित्र था॥ ३७ मैंने इन्द्रके लिये निवातकवच और महाबली पौलोमों के साथ संग्राम किया था उस समय भी मेरा सहायक कौन हुआ था?॥ ३८॥ हे तात! द्रौपदीके स्वयम्वरमें अनेकों राजाओंके साथ मैं रणभूमिमें जूझ रहा था, उस समय भी मेरा सहायक कौन हुआ था?॥ ३९॥ मैंने गुरु द्रोणाचार्य, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, लक्ष्मीपति कृष्ण और पिनाक धनुषधारी शङ्करकी सेवा करी है, फिर मैं कौरवोंके साथ क्यों न लड़ूं तू मेरे रथको शीघ्र चला और अपने मनके भयको दूरकर॥४०-४१॥ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने उत्तरको सारथी बना, शमीके पेडकी प्रदक्षिणा कर और सब शस्त्रों को लेकर चलनेका विचार किया, चलते समय महारथी अर्जुनने सिंह के चिन्हवाली ध्वजाको उस रथ परसे उतार, शमीके पेडकी जडमें धर दिया और विश्वकर्माकी बनायी हुई दैवी मायामयी, सब संहार

ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ३ ॥ मनसा चिन्तयामास प्रसादं पावकस्य च । स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ध्वजे भूतान्यदेशयत् ॥ ४ ॥ सपताकं विचित्रांगं सोपासंगं महाबलम् । खात्पपात रथे तूर्णं दिव्यरूपं मनोरमम् ॥ ५ ॥ रथं तमागतं दृष्ट्वा दक्षिणं प्राकरोत्तदा । रथमास्थाय बीभत्सुः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥ बद्धगोधांगुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः । ततः प्रायादुदीचीं च कपिप्रवरकेतनः ॥ ७ ॥ स्वनवन्तं महाशंखं बलवानरिमर्दनः । प्राधमद् बलमास्थाय द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ८ ॥ ततस्ते जवना धुर्या जानुभ्यामगमन्महीम् । उत्तरश्चापि सन्त्रस्तो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ९ ॥ संस्थाप्य चाश्वान् कौन्तेयः समुद्यम्य च रश्मिभिः । उत्तरं च परिष्वज्य समाश्वासयदर्जुनः ॥ १० ॥ अर्जुन उवाच । मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोसि परन्तप । कथं तु

कारिणी वानरके चिन्ह वाली सोनेकी ध्वजाका और प्रसन्न होकर अग्निके दिये हुए रथका मनमें ध्यान किया, उस समय ही ध्वजा पताकाओं वाला और अनेकों प्रकारकी संग्रामकी सामग्रियोंसे भरा, विचित्र प्रकारके अवयवोंसे मजबूत, बड़े बलवाला, मनोहर और दिव्यस्वरूप एक रथ आकाशमेंसे नीचे उतर आया और उस समय अग्नि देवताने उसके स्मरण पर ध्यान देकर उसके रथकी ध्वजा पताकाओंमें सब भूतोंको उपस्थित रहनेकी आज्ञा दी, रथको आया हुआ देखकर श्वेतवाहन नामवाले अर्जुनने गोहके चमड़ेके मोजे हाथोंमें पहर लिये, धनुष हाथमें उठा लिया और फिर दिव्य रथकी प्रदक्षिणा करके उसमें बैठ गया तथा उत्तरको सारथीके स्थान पर बैठा कर जिसकी ध्वजामें वानरोंमें श्रेष्ठ हनूमान विराजमान हैं ऐसा अर्जुन उत्तर दिशाकी ओरको चल दिया ॥ १—७ ॥ और शत्रुओं की सेनाके समीप पहुंचते ही वैरिविनाशन बलवान् अर्जुनने घोर शब्द करने वाले बड़े भारी शंखको खूब जोरसे बजाया उसको सुनकर वैरियोंके रोमाञ्च खड़े होगए ॥ ८ ॥ वे अग्निदेवताके दिये हुए बड़े वेगवाले घोड़े भी दौड़ते दौड़ते भूमि पर घुटने टेक गए उस समय रथकी अगली बैठक पर बैठा हुआ उत्तर भयभीत होकर रथके भीतरको खिसक बैठा ॥ ९ ॥ उस समय अर्जुनने बागडोरोंको खेंचकर घोड़ोंको खड़ा किया और उत्तरको छातीसे लगा उसको बहुत ही धीरज देकर शान्त किया ॥ १० ॥ अर्जुनने कहा, कि—हे बड़े राजकुमार ! डरे मत हे परन्तप ! तू क्षत्रिय है, हे पुरुष सिंह ! तू वैरियोंके

पुरुषव्याघ्र शत्रुमध्ये विषीदसि ॥ ११ ॥ श्रुतास्ते शंखशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः। कुञ्जराणां च नदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम् ॥ १२ ॥ स त्वं कथमिहानेन शंखशब्देन भीषितः। विवर्णरूपो वित्रस्तः पुरुषः प्राकृतो यथा ॥ १३ ॥ उत्तर उवाच। श्रुता मे शंखशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः। कुंजराणां निनदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम् ॥ १४ ॥ नैवंविधः शंखशब्दः पुरा जातु मया श्रुतः। ध्वजस्य चापि रूपं मे दृष्टपूर्वं नहीदृशम् ॥ १५ ॥ धनुषश्चैव निर्घोषः श्रुतपूर्वो न मे क्वचित्। अस्य शंखस्य शब्देन धनुषो निःस्वनेन च ॥ १६ ॥ अमानुषाणां शब्देन भूतानां ध्वजवासिनाम्। रथस्य च निनादेन मनो मुह्यति मे भृशम् ॥ १७ ॥ व्याकुलाश्च दिशः सर्वा हृदयं व्यथतीव मे। ध्वजेन पिहिताः सर्वा दिशो न प्रतिभांति मे ॥ १८ ॥ गाण्डीवस्य च शब्देन कर्णौ मे बधिरीकृतौ। स मुहूर्तं प्रयातन्तु पार्थो वैराटिमब्रवीत् ॥ १९ ॥ अर्जुन उवाच। एकान्तं रथमास्थाय पद्भ्यां त्वमवपीडयन्। दृढं च रश्मीन् संयच्छ शंखं ध्मास्याम्यहं पुनः ॥ २० ॥

बीचमें आकर घबड़ाया जाता है ॥ ११ ॥ तूने शंखोंके और भेरियोंके तो बहुतसे शब्द सुने होंगे और व्यूहरचना वाली सेनामें खड़े खड़े चिंघारते हुए हाथियोंके भी बहुतसे शब्द सुने होंगे ॥ १२ ॥ तो भी तू इस शंखके शब्दको सुनकर क्यों डरगया? अरे साधारण मनुष्यकी समान भयभीत होकर तेजोहीन क्यों होगया? ॥ १३ ॥ उत्तरने कहा, कि—मैंने शंख तथा भेरीके बहुतसे शब्द सुने हैं तथा व्यूहरचनामें खड़े हाथियोंकी चिंघारें भी सुनी हैं ॥ १४ ॥ परन्तु ऐसा शंखका शब्द पहिले मैंने कभी नहीं सुना तथा मैंने पहिले किसी ध्वजाका ऐसा रूप भी नहीं देखा ॥ १५ ॥ तथा धनुषकी टङ्कारका ऐसा शब्द भी मैंने पहिले कहीं नहीं सुना, इस कारण इस शंखके शब्दसे, धनुषकी टङ्कारसे ध्वजामें रहनेवाले अलौकिक भूतोंके शब्द और रथकी घरघराहटसे मेरा मन बहुत ही घबडा रहा है ॥ १६—१७ ॥ सब दिशायें व्याकुल होगई हैं, मेरी छाती दुखी सीजाती है और इस ध्वजासे सब दिशायें ढकगई हैं, इस कारण वे मुझे दीखती ही नहीं ॥१८॥ तथा इस गांडीव धनुषके टङ्कार शब्दसे मेरे कान बहिरे होगए हैं, इस प्रकार दो घडी तक बातें करके विराट कुमार, रथको हाँककर आगेको जानेलगा तब पार्थने उससे कहा ॥ १९ ॥ अर्जुनबोला, कि—हे राजकुमार! तू रथकी बैठक पर अच्छे प्रकार निश्चय होकर बैठ और दोनों पैरोंसे रथकी

वैशम्पायन उवाच । ततः शंखमुपाध्मासीद्दारयन्निव पर्वतान् । गुहा-गिरीणां च तदा दिशः शैलांस्तथैव च । उत्तरश्चापि संलीनो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ २१ ॥ तस्य शंखस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च । गाण्डीवस्य च शब्देन पृथिवी समकम्पत ॥ २२ ॥ तं समाश्वासयामास पुनरेव धनञ्जयः ॥ २३ ॥ द्रोण उवाच । यथा रथस्य निर्घोषो यथा मेघ उदीर्यते । कम्पते च यथा भूमिर्नैषोऽन्यः सव्यसाचिनः ॥२४॥ शस्त्राणि न प्रकाशन्ते न प्रहृष्यन्ति वाजिनः । अग्नयश्च न भासन्ते समिद्धास्तन्न शोभनम् ॥ २५ ॥ प्रत्यादित्यं च नः सर्वे मृगा घोरप्रवादिनः । ध्वजेषु च निलीयन्ते वायसास्तन्न शोभनम् ॥ २६ ॥ शकुनाश्चापसव्या नो वेदयन्ति महद्भयम् ॥ २७ ॥ गोमायुरेष सेनाया रुवन्मध्येन धावति । अनाहतश्च निष्क्रान्तो महद्वेदयते भयम् ॥ २८ ॥ भवतां रोमकूपाणि प्रहृष्टान्युपलक्षये । ध्रुवं विनाशो युद्धेन क्षत्रियाणां

बैठकको जकड ले तथा घोडोंकी बागडोरको दृढतासे पकडे रह, अब मैं फिर शंखको बजाता हूँ ॥ २० ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—ऐसा कहकर अर्जुन पहाड, पहाडोंकी गुफायें, दिशायें तथा शैलोंको फाडता हुआसा शंखको बजाने लगा, उस समय उत्तर, फिर रथके भीतरको दुबक कर बैठ गया ॥ २१ ॥ उस शंखके शब्द, रथके पहियोंकी घरघराहट और गाण्डीव धनुषकी टङ्कारसे पृथ्वी काँपने लगी ॥ २२ ॥ धनञ्जयने फिर भयभीत हुए उत्तरको धीरज देकर शान्त किया ॥ २३ ॥ उस समय कौरव सेनामें द्रोणाचार्य बोल उठे, कि—यह रथकी घरघराहट मेघके गर्जनेकीसी होरही है और भूमि काँपसी रही है, इसकारण यह योद्धा धनञ्जयके सिवाय और कोई नहीं है ॥ २४ ॥ हमारे शस्त्रोंकी चमक नष्टसी होगई, घोडे उदास होगए और वेदियोंमें धक २ बलने वाले अग्नि भी प्रकाशहीन होगए, इस कारण कुछ अशुभ होने वाला है ॥ २५ ॥ हमारे हाथी घोडे आदि सब वाहन सूर्यकी ओरको दृष्टि करके जोरसे चीखें मार रहे हैं और कौए हमारी ध्वजाओं पर बैठ २ कर उडजाते हैं, यह भी कुछ अच्छा शकुन नहीं होता है ॥ २६ ॥ और ये पक्षी हमारे बाईं ओर आ आ कर बडे भयकी सूचना कररहे हैं २७ और यह गीदड रोता रोता घायल हुए बिना ही हमारी सेनाके बीचमें को होकर भागा चला जाता है, यह हमें बडे भारी भयकी सूचना देता है ॥ २८ ॥ हे कौरवो ! मैं देखता हूँ, कि-तुम्हारे रोमाञ्च खडे हो रहे हैं, इससे दीखता है, कि—इस युद्धमें अवश्य ही क्षत्रियोंका नाश

प्रदृश्यते ॥ २९ ॥ ज्योतींषि न प्रकाशन्ते दारुणा मृगपक्षिणः । उत्पाता विविधा घोरा दृश्यन्ते क्षत्रनाशनाः ॥ ३० ॥ विशेषत इहास्माकं निमित्तानि विनाशने । उल्काभिश्च प्रदीप्ताभिर्वाध्यते पृतना तव । वाहनान्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशाम्पते ॥ ३१ ॥ उपासते च सैन्यानि गृध्रास्तव समन्ततः । तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थवाणप्रपीडिताम् । पराभूता च वः सेना न कश्चिद्योद्धुमिच्छति ॥ ३२ ॥ विवर्णमुखभूयिष्ठाः सर्वे योधा विचेतसः । गाः संप्रस्थाप्य तिष्ठामो व्यूढानीकाः प्रहारिणः

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे औत्पातिको
नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ दुर्योधनो राजा समरे भीष्ममब्रवीत् । द्रोणं च रथशार्दूलं कृपञ्च सुमहारथम् ॥ १ ॥ उक्तोऽयमर्थ आचार्यो मया कर्णेन चासकृत् । पुनरेव प्रवक्ष्यामि न हि तृप्यामि तं ब्रुवन् २ पराभूतैर्हि वस्तव्यं तैश्च द्वादश वत्सरान् । वने जनपदे ज्ञातैर

होगा ॥ २९ ॥ सूर्य, नेत्र, वाणी और मनकी गति रुकगई है, इसीसे उनका प्रकाश बन्द होगया है, पशु और पक्षी भी घोररूपसे रोते हैं तथा क्षत्रियोंके नाशको सूचित करनेवाले अनेकों प्रकारके भयानक उत्पात देखनेमें आरहे हैं ॥ ३० ॥ इसमें भी हमारे नाशके अपशकुन विशेषरूपसे देखनेमें आते हैं और हे राजन् ! प्रज्वलित हुए ऊके तेरी सेना पर गिरते हैं और उनसे तेरी सेना भस्म हुई जाती है तथा तेरे वाहन भी उदास और रोते हुएसे दीखते हैं ॥ ३१ ॥ और गिद्ध तेरी सेनाके चारों ओर आकर वैठे हैं, सो अव तू अर्जुनके वाणोंके प्रहारसे अपनी सेनाको दुःखित हुई देखेगा, उस समय तेरे मनको दुःख होगा, निःसन्देह तेरी सेना अव ही हारी वैठी है इसमें किसी को भी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है ॥ ३२ ॥ सव योधाओंके मुख अधिकतर निस्तेज होगए हैं और उनके मन उदास होगए हैं, सो गौओंको अभी हस्तिनापुरकी ओर भेजकर हम सव योधा व्यूहरचनामें खड़े होजायँ ३३

छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-इसके अनन्तर राजा दुर्योधनने रणभूमि में खड़े हुए भीष्मपितामह महारथियोंमें सिंह समान द्रोणाचार्य और श्रेष्ठ महारथी कृपाचार्यसे कहा, कि-॥ १ ॥ मैंने तथा कर्णने यह वात द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यसे वार २ कही है तो भी मैं फिर वही वात तुम्हारे आगे कहता हूँ, क्योंकि-यह वात ऐसी अच्छी है, कि-इसको

एष पणो हि नः ॥ ३ ॥ तेषां न तावन्निर्वृत्तं वर्तते तु त्रयोदशम्। अज्ञातवासे वीभत्सुरथास्माभिः समागतः ॥ ४ ॥ अनिवृत्ते तु निर्वासे यदि वीभत्सुरागतः। पुनर्द्वादश वर्षाणि वने वत्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ५ ॥ लोभाद्वा ते न जानीयुरस्मान् वा मोह आविशत्। हीनातिरिक्तमेतेषां भीष्मो वेदितुमर्हति ॥ ६ ॥ अर्थानां च पुनर्द्वैधे नित्यं भवति संशयः। अन्यथा चिन्तितो ह्यर्थः पुनर्भवति सोन्यथा ॥ ७ ॥ उत्तरं मार्गमाणानां मत्स्यानाञ्च युयुत्सताम्। यदि वीभत्सुरायातस्तदा कस्यापराध्नुमः ॥ ८ ॥ त्रिगर्तानां वयं हेतोर्मत्स्यान् योद्धुमिहागताः। मत्स्यानां विप्रकारांस्ते बहूनस्मानकीर्तयन् ॥ ९ ॥ तेषां भयाभिभूतानां तदस्माभिः प्रतिश्रुतम्। प्रथमं तैर्गृहीतव्यं मत्स्यानां गोधनं महत्। सप्तम्यामपराह्णे वै तथा

कहते हुए मेरी तृप्ति ही नहीं होती ॥ २ ॥ (जुआ खेलते समय) हमारी यह बात ठहरी थी, कि—हारे हुए पाण्डव बारह वर्ष पर्यन्त वनमें अथवा देशमें प्रकट रूपसे रहें और एक वर्ष छुपे रहें ॥ ३ ॥ उस ठहरावके अनुसार उनके छुपे रहनेका तेरहवाँ वर्ष अभी पूरा नहीं हुआ है तो भी अर्जुन अज्ञातवासको छोडकर प्रकट रूपसे हमारे साथ लडनेको आया है ॥ ४ ॥ अब यदि अज्ञातवासका तेरहवाँ वर्ष पूरा हुये विना अर्जुन हमारे साथ युद्ध करनेको चढ़ आया है तो पाण्डवोंको फिर बारह वर्ष वनवास करना पडेगा ॥ ५ ॥ तेरहवाँ वर्ष पूरा हुआ है या नहीं हुआ है, इस विषयमें या तो उन्होंने (राज्यके) लोभसे भूल की है अथवा हमारी अपनी ही भूल होती है, इस बात का निर्णय करनेकी योग्यता भीष्मजी रखते हैं, कि—ठहरनेके अनुसार वर्ष पूरे होगये या अभी कम हैं ॥ ६ ॥ जिन बातोंमें दुविधा पड़जाती है, उसमें सदा सन्देह ही रहता है, इस दशामें बात विचारी होती और है, परन्तु निकलती कुछ और ही बात है ॥ ७ ॥ हम उत्तर दिशाके गोठोंकी गौओं को हरने के लिये खोजते हुए मत्स्योंके साथ लडने की इच्छासे यहाँ आये थे, तब भी अर्जुन यदि हमारे साथ लडने को चढ़ आया है, तो इसमें हमने किसका अपराध किया है ! हम तो त्रिगर्त्तोंके कारणसे यहाँ मत्स्योंके साथ युद्ध करने को आये हैं क्योंकि—त्रिगर्त्तोंने हमारे तुम्हारे सामने मत्स्योंके बहुत से अपराध गाये थे ॥८॥९॥ वे मत्स्योंके भयसे हार मान बैठे थे, इस कारण हमने उनसे प्रतीज्ञा करली थी, कि—कृष्ण पक्षकी सप्तमीको सायङ्कालके समय पहिले तुम मत्स्योंके दक्षिण ओरके गोठोंमें गौओंके बहुतसे

तैस्तु समाहितम् ॥ १० ॥ अष्टम्यां पुनरस्माभिरादित्यस्योदयं प्रति। इमा गावो गृहीतव्या गते मत्स्ये गवाम्पदम् ॥ ११ ॥ ते वा गाश्चानयिष्यन्ति यदि वा स्युः पराजिताः अस्मान्वा ह्युपसन्धाय कुर्युर्मत्स्येन सङ्गतम् ॥ १२ ॥ अथवा तानपाहाय मत्स्यो जनपदैः सह। सर्वया सेनया सार्द्धं संवृतो भीमरूपया। आयातः केवलं रात्रिमस्मान् योद्धुमिहागतः ॥ १३ ॥ तेषामेव महावीर्यः कश्चिदेव पुरःसरः। अस्मान् जेतुमुपायातो मत्स्यो वापि स्वयं भवेत् ॥ १४ ॥ यद्येष राजा मत्स्यानां यदि बीभत्सुरागतः। सर्वैर्योद्धव्यमस्माभिरिति नः समयः कृतः ॥ १५ ॥ अथ कस्मात् स्थिता ह्येते रथेषु रथसत्तमाः। भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव विकर्णो द्रौणिरेव च ॥ १६ ॥ सम्भ्रान्तमनसः सर्वे काले ह्यस्मिन्महारथाः। नान्यत्र युद्धाच्छ्रेयोऽस्ति तथात्मा प्रणिधीयताम् १७ आच्छिन्ने गोधनेऽस्माकमपि देवेन वज्रिणा। यमेन वापि संग्रामे को हास्तिनपुरं व्रजेत् ॥ १८ ॥ शरैरेभिः प्रणुन्नानां भग्नानां गहने वने। को

समूह का हरण करो ॥ १० ॥ और (हमने कहदिया था, कि—) मत्स्यराज अपनी गौओंके लौटालने के लिये दक्षिणकी ओरके गोठों की गौओंके पीछे चढ़कर आवेगा, तब अष्टमीके दिन सूर्योदयके समय उत्तरके गोठोंकी गौओंका हरण हम करेंगे ॥ ११ ॥ अब त्रिगर्त्त या तो गौओं का हरण करके लाते होंगे और यदि हारगये होंगे तो हमें बीचमें डालकर मत्स्यराजसे मेल करनेको हमारे पास आते होंगे ।१२। अथवा वह मत्स्यराज त्रिगर्त्तोंको जीतकर अपनी भयावनी सब सेना तथा देशवासी लोगोंके सहित हमसे लडने का रातका छापा मारनेके लिये यहाँ आया होगा ॥ १३ ॥ और उसके योधाओंमेंका यह कोई पराक्रमी योधा उनसे पहिले ही हमें जीतने के लिये यहाँ आया होगा अथवा मत्स्यराज आप ही चढ़कर आया होगा ॥ १४ ॥ परन्तु इस रथमें बैठकर आनेवाला मनुष्य चाहे मत्स्यराज हो और चाहे अर्जुन ही हो, चाहे कोई भी हो हम सबोंको उसके साथ लडना है यह तो हमारी प्रतिज्ञा ही है ॥१५॥ फिर भी इस समय रथमें बैठहुए भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विकर्ण और अश्वत्थामा आदि महारथी मनमें उत्साहहीन होकर क्यों बैठे हैं? क्षत्रियोंका युद्धके सिवाय और किसी बातमें कल्याण ही नहीं है, इसलिये सबजने युद्ध करनेका मनमें उत्साह रक्खो ॥ १६॥१७ ॥ यदि साक्षात् वज्रधारी इन्द्र और यमराज भी आकर संग्राममें हमसे गौधनको छीनकर लेजानाचाहें तो फिर हस्ति-

हि जीवेत् पदातीनां भवेदश्वेषु संशयः ॥ १९ ॥ दुर्योधनवचः श्रुत्वा राधेयस्त्वब्रवीद्वचः । आचार्यं पृष्ठतः कृत्वा तथा नीतिर्विधीयताम् २० जानाति हि मतं तेषामतस्त्रासयतीह नः । अर्जुनं चास्य सम्प्रीतिमधिकामुपलक्षये ॥ २१ ॥ तथा हि दृष्ट्वा बीभत्सुमुपायान्तं प्रशंसति । यथा सेना न भज्येत तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २२ ॥ हेषितं ह्युपशृण्वाने द्रोणे सर्वं विघट्टितम् । अदेशिका महारण्ये ग्रीष्मे शत्रुवशं गताः । यथा न विभ्रमेत्सेना तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २३ ॥ इष्टा हि पाण्डवा नित्यमाचार्यस्य विशेषतः । आसयन्नपरार्थाश्च कथ्यते स्म स्वयं तथा ॥ २४ ॥ अश्वानां हेषितं श्रुत्वा कः प्रशंसापरो भवेत् । स्थाने वापि व्रजन्तो वा सदा हेषन्ति वाजिनः ॥ २५ ॥ सदा च वायवो वान्ति

नातुरको कौन जाता है? ॥ १८ ॥ यदि हमारी सेनामेंसे कोई गहन वनमें को भागकर जायँगे तो हम उनको इन बाणोंसे बींध डालेंगे, इस दशामें पैदलोंमें से कौन जीता बचैगा? परन्तु हाँ घुड़सवार भागें और उनमेंसे कदाचित् कोई जीता रहजाय! यह सन्देह है ॥१९॥ दुर्योधनकी इस बातको सुनकर राधाका पुत्र कर्ण कहने लगा, कि-द्रोणाचार्यको सेनाके मुहाने परसे हटाकर पीछेकी ओर खड़ा करो तब युद्ध करनेका विचार करो (क्योंकि-इन डरेहुए द्रोणाचार्यको देखकर और भी डर जायँगे) द्रोणाचार्य पाण्डवोंके विचारको जानते हैं इसकारण यह हमें वृथा ही डराया करते हैं मेरी समझमें अर्जुनके ऊपर द्रोणाचार्यका प्रेम अधिक है॥ २१ ॥ तभी तो यह अर्जुनको आताहुआ देखकर उसकी सराहना कर रहे हैं परन्तु अब हमें ऐसी नीतिसे काम करना चाहिये कि-जिसमें हमारी सेना भाग न जाय ॥ २२ ॥ तो भी यदि कदाचित् तुम द्रोणाचार्यको सेनाके मुहाने पर रक्खोगे तो अर्जुनके घोड़ोंकी हिनहिनाहट को सुनते ही यह भयभीत होजायँगे, और यह भयभीत होकर भागे, कि-सब सेनामें भगी पड़जायगी, हम परदेशमें आये हुए हैं यह घोरवन है। गरमीकी ऋतु है और इस समय हम वैरीके वशमें आपडे हैं इसकारण ऐसी नीतिसे काम लो, कि-जिससे सेनामें भगी न पडजाय ॥ २३ ॥ द्रोणाचार्यको सदासे ही पाण्डव अधिक प्यारे हैं, इसीसे पाण्डवोंने अपना काम साधनेके लिये द्रोणाचार्यको तुम्हारे पास छोड़ रक्खा है और द्रोणाचार्य भी स्वयं ऐसीही बातें करते हैं ॥२४॥ यदि यह बात नहीं होती तो दूसरा कौन घोड़ोंकी हिनहिनाहटको सुनकर अर्जुनकी प्रशंसा करने लगता? घोड़ोंका तो स्वभाव

नित्यं वर्षति वासवः । स्तनयित्नोश्च निर्घोषः श्रूयते बहुशस्तथा ॥२६॥ किमत्र कार्यं पार्थस्य कथं वा स प्रशस्यते । अन्यत्र कामाद् द्वेषाद्वा रोषादस्मासु केवलात् ॥ २७ ॥ आचार्या वै कारुणिकाः प्राज्ञाश्चापापदर्शिनः । नैते महाभये प्राप्ते सम्प्रष्टव्याः कथञ्चन ॥ २८ ॥ प्रासादेषु विचित्रेषु गोष्ठीषूपवनेषु च । कथा विचित्राः कुर्वाणाः पण्डितास्तत्र शोभनाः ॥ २९ ॥ बहून्याश्चर्यरूपाणि कुर्वाणा जनसंसदि । इज्यास्त्रे चोपसन्धाने पण्डितास्तत्र शोभनाः ॥ ३० ॥ परेषां विवरज्ञाने मनुष्यचरितेषु च । हस्त्यश्वरथचर्यासु खरोष्ट्राजाविकर्मणि ॥ ३१ ॥ गोधनेषु प्रतोलीषु वरद्वारमुखेषु च । अन्नसंस्कारदोषेषु पण्डितास्तत्र शोभनाः ३२ पण्डितान् पृष्ठतः कृत्वा परेषां गुणवादिनः । विधीयतां तथा नीतिर्यथा

ही होता है कि वे अपने थान पर बँधे हुए वा चलतेमें हिनहिनाया करते हैं ॥२५॥ सदा ही पवन चला करते हैं, नित्य ही इन्द्र वर्षा किया करता है तथा मेघका गर्जन भी अनेकों वार सुननेमें आता है (इसमें नई बात क्या है) ॥ २६ ॥ इसमें अर्जुनका कौन काम है ! न जाने उसकी सराहना क्यों कीजाती है अर्जुनका भला चाहनेके सिवाय तथा हमारे ऊपर केवल द्वेष और क्रोध होनेके सिवाय क्या इसमें और कुछ कारण है?॥२७॥ आचार्य तो दयालु बुद्धिमान् और हिंसासे विरुद्ध विचारवाले होते हैं, इसकारण किसी बडेभारी भयका समय आजाय तो इनसे किसी प्रकारकी भी सलाह नहीं करनी चाहिये ॥२८॥ सुन्दर महलोंमें और बगीचोंमें सभायें हों तो तहाँ नानाप्रकारकी कथायें कहनेमें ही पण्डितोंकी शोभा होती है ॥ २९ ॥ और मनुष्योंकी सभामें बहुत से विनोदके काम करते हुए तथा यज्ञके कपालादि पात्रोंका प्रोक्षण आदि करनेमें ही पण्डित शोभा पाते हैं ॥ ३० ॥ और दूसरे पण्डितों के छिद्र देखनेमें, मनुष्यों के चरित्रोंको जाननेमें, हाथी घोडे रथ आदि पर चढनेमें तथा गधे, ऊँट बकरे और भेडोंके गुण दोषोंकी परीक्षा और चिकित्सा के काममें, गौओंकी परीक्षा करने में, मौहल्लों में तथा घरों के सुन्दर द्वारों पर अनेकों प्रकार के बलिदान देने के काम में, तथा अन्नों आदि को लगे हुए कीडे आदि के दोष दूर करने के लिये किये जाते हुए वैश्वदेव आदि कर्म में ही पण्डित अच्छी सम्मति देसकते हैं ॥ ३१—३२ ॥ परन्तु युद्धके विषय में तो, वैरियों के गुण गानेवाले पण्डितों को पीछे रखकर उस नीति से काम लो, जिसमें शत्रुको मारा जासके ॥३३॥ अब तुम सेनाको व्यूह-

मध्ये भवत्परः ॥ ३३ ॥ गावश्च सम्प्रतिष्ठाप्य सेनां व्यूह्य समन्ततः । आरक्षाश्च विधीयन्तां यत्र योत्स्यामहे परान् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे दुर्योधन-
वाक्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

कर्ण उवाच । सर्वानायुष्मतो भीतान् सन्त्रस्तानिव लक्षये । अयुद्धमनसश्चैव सर्वांश्चैवानवस्थितान् ॥ १ ॥ यद्येष राजा मत्स्यानां यदि बीभत्सुरागतः । अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ २ ॥ मम चापप्रमुक्तानां शराणां नतपर्वणाम् । नावृत्तिर्गच्छतां तेषां सर्पाणामिव सर्पताम् ॥ ३ ॥ रुक्मपुङ्खाः सुतीक्ष्णाग्रा मुक्ता हस्तवता मया । छादयन्तु शराः पार्थं शलभा इव पादपम् ॥ ४ ॥ शराणां पुङ्खसक्तानां मौर्व्याभिहतया दृढम् । श्रूयतां तलयोः शब्दो भेर्योराहतयोरिव ॥ ५ ॥ समाहितो हि बीभत्सुर्वर्षाण्यष्टौ च पञ्च च । जातस्नेहश्च युद्धेऽस्मिन् मयि सम्प्रहरिष्यति ॥ ६ ॥ पात्रीभूतश्च कौन्तेयो ब्राह्मणो

रचनासे खड़ी करो, उसके बीचमें गौओंको खड़ी कर दो और चारों ओरसे रक्षकोंको खड़े रखकर अपनी युद्धभूमिकी सम्हाल रक्खो कि जहाँ खड़े होकर हम वैरियोंके साथ लड़ेंगे ॥ ३४ ॥ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ छ ॥ छ ॥

कर्ण फिर कहने लगा कि—तुम सबों पर दृष्टि डालता हूँ तो तुम सब आयुष्मान, डरेहुए, युद्धकी ओरसे उदासीन और चलायमान चित्त वाले मालूम होते हो ॥ १ ॥ परन्तु चाहे यह मत्स्योंका राजा विराट हो और चाहे बीभत्सु अर्जुन ही चढ़कर आया हो जैसे किनारा समुद्रको रोकता है तैसे ही मैं इसको रोकूँगा ॥ २ ॥ मेरे धनुषमेंसे नमेहुए पर्ववाले बाण, सर्पोंकी समान जब सरासर छुटने लगते हैं तो वे निशानेसे चूकते नहीं हैं ॥ ३ ॥ मैं अपने सधेहुए हाथसे सुनहरी परोंवाले और तीखे मुखवाले बाणोंको छोड़ूँगा तब जैसे टीड़ियें पेड़ोंको ढकदेती हैं तैसे ही वे बाण अर्जुनको ढक देंगे ॥४॥ परोंमें लगेहुए बाणोंको धनुषकी डोरी पर चढ़ाकर जब अच्छे प्रकार खैंचकर टङ्कारका शब्द किया जाता है, उस समय दो नगाड़ोंके एक साथ बजनेकी समान मेरी दोनों हथेलियोंका शब्द होता है, उसको तुम सुनना ॥५॥ अर्जुन तेरह वर्षतक वनमें रहनेसे दयालु बन गया है इसकारण इस युद्धमें मेरे ऊपर स्नेहके साथ प्रहार करेगा ॥ ६ ॥ और

गुणवानिव । शरौघान् प्रतिगृह्णातु मया मुक्तान् सहस्रशः ॥ ७ ॥ एष चैव महेष्वासस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । अहं चापि नरश्रेष्ठादर्जुनान्नावरः क्वचित् ॥ ८ ॥ इतश्चेतश्च निर्मुक्तैः काञ्चनैर्गार्ध्रवाजितैः । दृश्यतामद्य वै व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ॥ ९ ॥ अद्याहमृणमक्षय्यं पुरा वाचा प्रतिश्रुतम् । धार्त्तराष्ट्रस्य दास्यामि निहत्य समरेऽर्जुनम् ॥ १० ॥ अन्तराच्छिद्यमानानां पुंखानां व्यतिशीर्यताम् । शलभानामिवाकाशे प्रचारः संप्रदृश्यताम् ॥ ११ ॥ इन्द्राशनिसमस्पर्शं महेन्द्रसमतेजसम् । अर्दयिष्याम्यहं पार्थमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ १२ ॥ रथादतिरथं शूरं सर्वशस्त्रभृतां वरम् । विवशं पार्थमादास्ये गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ १३ ॥ तमग्निमिव दुर्धर्षमसिशक्तिशरेन्धनम् । पाण्डवाग्निमहं दीप्तं प्रदहन्तमिवाहितम् ॥ १४ ॥ अश्ववेगपुरोवातो रथौघस्तनयित्नुमान् । शरधारो महामेघः शमयिष्यामि पाण्डवम् ॥ १५ ॥

मैं भी एक गुणवान् ब्राह्मणकी समान अर्जुनको सुपात्र समझकर उसके ऊपर हजारों वाण छोडूँगा, वह उन वाणोंके समूहोंको ग्रहण करेगा ॥७॥ मेरा यह वड़ाभारी धनुष तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है और मैं भी अर्जुनसे किसी वातमें कम नहीं हूँ ॥८॥ गिद्ध पक्षीकी समान वेग वाले सोनेके जिन वाणोंको मैं छोडता हूँ, उन सोनेके वाणोंसे छाया हुआ आकाश तारागणोंसे भराहुआसा दीखता है यह वात आज तुम अवश्य देखना ॥९॥ मैंने पहिले जो प्रतिज्ञाकी थी आज मैं रणमें अर्जुनको मार उस प्रतिज्ञाको पूरी करकेअपने ऊपरसे दुर्योधनके अक्षय ऋणको चुका दूँगा ॥१०॥ वीचमें ही पूँछें कटजानेवाले मेरे वाण टीडियोंकी समान आकाशमें इधर उधर घूमेंगे उसको तुम देखना ॥ ११ ॥ अर्जुनका शरीर छूनेमें इन्द्रकेवज्रसा दृढ और महेन्द्रकी समान तेजस्वी है तो भी जैसे हाथीको वलतेहुए ऊके दिखाकर दुःखी किया जाता है तैसे ही मैं भी अर्जुनको दुःखी करूँगा ॥१२॥ और जैसे गरुड सांपको पकड़ लेता है तैसे ही मैं भी महारथी शूर और सव शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको वेवश करके पकड लूँगा ॥१३॥ अर्जुन तलवार शक्ति और वाणरूपी ईंधनवाले किसीसे भी न वुझसके ऐसे धकधकातेहुए अग्निरूप होकर जव वैरियोंको जलाने लगेगा ॥ १४ ॥ तव जिसके आगे घोडों का वेग रूप पवन चलता है, रथोंके जथेरूप मेघ जिसमें गर्जना करते हैं ऐसा महा मेघरूप मैं भी वाणरूपी जलकी वर्षा करकैं अर्जुनरूप आग को शान्त कर दूँगा ॥ १५ ॥ और

मत्कार्मुकविनिर्मुक्ताः पार्थमाशीविषोपमाः। शराः समभिसर्पन्तु वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १६ ॥ सुतेजनै रुक्मपुंखैः सुधौतैर्नतपर्वभिः। आचितं पश्य कौन्तेयं कर्णिकारैरिवाचलम् ॥ १७ ॥ जामदग्न्यान्मया ह्यस्त्रं यत्प्राप्तमृषिसत्तमात्। तदुपाश्रित्य वीर्यञ्च युध्येयमपि वासवम् ॥ १८ ॥ ध्वजाग्रे वानरस्तिष्ठन् भल्लेन निहतो मया। अद्यैव पततां भूमौ विनदन् भैरवान् रवान् ॥ १९ ॥ शत्रोर्मया विपन्नानां भूतानां ध्वजवासिनाम्। दिशः प्रतिष्ठमानानामस्तु शब्दो दिवङ्गमः॥२० अद्य दुर्योधनस्याहं शल्यं हृदि चिरस्थितम्। समूलमुद्धरिष्यामि बीभत्सुं पातयन् रथात् ॥ २१ ॥ हताश्वं विरथं पार्थं पौरुषे पर्यवस्थितम्। निःश्वसन्तं यथा नागमद्य पश्यन्तु कौरवाः ॥ २२ ॥ कामं गच्छन्तु कुरवो धनमादाय केवलम्। रथेषु वापि तिष्ठन्तो युद्धं पश्यन्तु मामकम् ॥ २३ ॥ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

जैसे साँप भट्टेमें घुसते हैं, तैसे ही मेरे धनुषमेंसे छूटे हुए विषैले सर्प से बाण अर्जुनके शरीरमें प्रवेश करेंगे ॥ १६ ॥ खूब तेज किये सोनेकी पूँछवाले, अच्छा पानी पिये और नमेहुए पर्ववाले मेरे बाणोंसे जब अर्जुन ढकजायगा तब वह फनेरके पेड़ोंसे ढकेहुए पहाड़सा मालूम होगा, उसको देखना ॥ १७ ॥ मुझे ऋषिवर परशुरामजीसे जो अस्त्र मिला है, उस अस्त्रके और अपनी वीरताके आधार पर मैं इन्द्रसे भी लड़सकता हूँ ॥ १८ ॥ अरे ! जरा देखना तो, अर्जुनकी ध्वजाके ऊपर जो वानर बैठा है उसको भी भालेसे मारडालूँगा और वह आज ही भयानक चीखें मारता हुआ भूमिपर लोटेगा ॥ १९ ॥ मैं वैरीकी ध्वजा में रहने वाले प्राणियोंको बाणोंकी मार देकर ध्वजामेंसे नीचे गिरा दूँगा तब वो चीखें मारते हुए इधर उधर दिशाओंमेंको भागते फिरेंगे उस समय उनका हाहाकार धुर आकाश तक पहुँचेगा ॥ २० ॥ आज मैं अर्जुनको रथमेंसे नीचे गिराकर, दुर्योधनके हृदयमें जो चिरकाल से काँटा चुभरहा है, उसको जड़मूलसे निकाल दूँगा ॥ २१ ॥ और अर्जुनके घोड़े मरजायँगे तथा जब वह रथहीन होजायगा तब महाबलवान् सर्पकी समान फुंकारें मारता फिरेगा, यह दशा भी हे कौरवो ! आज तुम देखोगे ॥ २२ ॥ कौरवोंको यदि केवल गोधन लेकर जाने की इच्छा होय तो वे भले ही केवल गौओंके समूहको लेकर चले जायँ और यदि वे रथों पर बैठकर संग्राम देखना चाहते हों तो आनन्दसे मेरा संग्राम देखें ॥ २३ ॥ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥

कृप उवाच । सदैव तव राधेय युद्धे क्रूरतरा मतिः । नार्थानां प्रकृतिं वेत्सि नानुबंधमवेक्षसे १ मया हि बहवः सन्ति शास्त्रमाश्रित्य चिन्तिताः । तेषां युद्धन्तु पापिष्ठं वेदयन्ति पुराविदः ।२। देशकालेन संयुक्तं युद्धं विजयदं भवेत् । हीनकालं तदेवेह फलं न लभते पुनः । देशे काले च विक्रान्तं कल्याणाय विधीयते ३ आनुकूल्येन कार्य्याणामन्तरं संविधीयते । भारं हि रथकारस्य न व्यवस्यन्ति पण्डिताः ।४। परिचिन्त्य तु पार्थेन सन्निपातो न नः क्षमः । एकः कुरूनभ्यरक्षदेकश्चाग्निमतर्पयत् ५ एकश्च पञ्च वर्षाणि ब्रह्मचर्यमधारयत् । एकः सुभद्रा-

---

यह सुनकर कृपाचार्य कहनेलगे, कि-हे राधाके पुत्र कर्ण! तेरी बुद्धि सदाही युद्धके विषयमें बड़ीही कुटिलतासे भरी रहती है परन्तु तू कार्यों के स्वरूपको वा उनके परिणामको नहीं देखता है (अर्थात् क्या कभी ज़ुएसे प्रयोजन सिद्ध होसकता है और कुछ पदार्थ मिल भी जायँ तो क्या उनसे परिणाममें सुख मिल सकता है ? इस समय भी तुझे यह ज्ञान नहीं है, कि-ये गौएँ कैसे मिल जायँगी और यदि यहांसे ले भी गए तो इसका क्या फल निकलेगा ?) ॥१॥ मैंने शास्त्रमें अपनी रक्षा करनेके लिये अनेकों प्रकारकी कपटकी युक्तियोंका विचार किया है परन्तु उनमें युद्ध सबसे अधिक पापिष्ठ है, ऐसा प्राचीन शास्त्रवेत्ताओं ने जाना है ॥ २ ॥ देश और कालके अनुसार जो युद्ध किया जाता है वहही विजय देता है; परन्तु कुसमयमें कियाहुआ वही युद्ध विजय नहीं देसकता (देखो आजकल गरमीके दिन हैं वाहन थककर जल न मिलनेसे शीघ्र ही मरजायँगे और यह पहाडी स्थान भी ठीक नहीं है) देश और कालको देखकर परिश्रम कियाजाय तो ही उसमेंसे अच्छा फल निकलता है ॥ ३ ॥ देश और कालकी अनुकूलताका विचार करनेसे ही कार्य फलदायक होता है, परन्तु इसके विना काम में सफलता नहीं होती, रथ बनाने वाला रथमें बैठने वाले योधाओं से कहता है, कि—यह रथ बडा ही मजबूत है यदि तुम इसमें बैठकर संग्राममें चढ़ाई करोगे तो इन्द्रादि देवताओंको भी हरा देगा, परन्तु उसके कहने मात्रसे ही देश कालका विचार किये विना चतुर योधा युद्धका उद्योग नहीं करते हैं ॥ ४ ॥ जरासा भी विचार करनेसे ध्यानमें आजायगा, कि—अर्जुनके सामने पडने की हममें शक्ति नहीं है, क्योंकि—वह अकेला ही कौरवोंकी रक्षा के लिये चित्रसेनके साथ युद्ध करनेको चढगया था और उसने अकेले

मारोप्य हैरण्ये कृष्णमाह्वयत् ॥ ६ ॥ एकः किरातरूपेण स्थितं रुद्रमयोधयत् । अस्मिन्नेव वने पार्थो हृतां कृष्णामवाजयत् ॥ ७ ॥ एकश्च पञ्च वर्षाणि शक्रादस्त्राण्यशिक्षत । एकः सोऽयमरिं जित्वा कुरूणामकरोद्यशः ॥ ८ ॥ एको गन्धर्वराजानं चित्रसेनमरिन्दमः । विजिग्ये तरसा संख्ये सेनां प्राप्य सुदुर्जयाम् ॥ ९ ॥ तथा निवातकवचाः कालखञ्जाश्च दानवाः । दैवतैरप्यवध्यास्ते एकेन युधि पातिताः ॥१०॥ एकेन हि त्वया कर्ण किं नामेह कृतं पुरा । एकैकेन यथा तेषां भूमिपाला वशे कृताः ११ इन्द्रोऽपि हि न पार्थेन संयुगे योद्धुमर्हति। यस्तेनाशंसते योद्धुं कर्त्तव्यं तस्य भेषजम् ॥ १२ ॥ आशीविषस्य क्रुद्धस्य पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् । अवमुच्य प्रदेशिन्या दंष्ट्रामादातुमिच्छसि १३ अथवा कुञ्जरं मत्तमेक एव चरन्वने । अनंकुशं समारुह्य नगरं गन्तु-

---

हीं अग्निको तृप्त किया था ॥५॥ उसने अकेले ही पाँच वर्ष तक ब्रह्मचर्यका पालन किया था और उसने अकेले ही सुभद्राको हर कर रथमें बैठे हुए श्रीकृष्णको युद्ध करनेके लिये पुकारा था ॥६॥ उस अकेले ने ही भीलके रूपमें सामने आये हुए महादेवके साथ युद्ध किया था और इस ही वनमेंसे अर्जुन, हरण कीहुई द्रौपदीको फिर जीतकर लाया था ॥ ७ ॥ और इस अर्जुनने अकेले ही पाँच वर्ष तक स्वर्गमें रहकर इन्द्रसे अस्त्रविद्या सीखी थी और इसने अकेले ही शत्रुओंको हराकर कुरुवंशका यश फैलाया है और इस अर्जुनने अकेले ही, जिनको संग्राममें जीतना कठिन है ऐसे गन्धर्वोंकी सेनाके सामने जाकर बलात्कारसे चित्रसेन गन्धर्वको जीत लिया था ॥ ८-९ ॥ ऐसे ही निवातकवच और कालखञ्ज नाम वाले दानव, कि--जिनको देवता भी नहीं मार सकते थे, उनकोभी अकेले अर्जुनने ही युद्धमें मारडाला था ॥ १० ॥ और हे कर्ण ! उस अर्जुनने जैसे अकेले ही, पहिले सब राजाओंको अपने वशमें करलिया था तैसे अकेले तूने बता पहिले किसी संग्राममें कोई करतूतकी है ? ॥ ११ ॥ इन्द्र भी संग्राममें अर्जुनके सामने युद्ध नहीं कर सकता, फिर भी जो तू उसके साथ युद्ध करना चाहता है (तो तू बावला होगया दीखता है) इसकी कुछ औषध करनी चाहिये ॥१२॥ अनुमान होता है, इस कारण ही तू दाहिना हाथ ऊँचा करके कोपमें भरे हुए विषधर सर्पके मुखमें हाथ डालकर अंगुली से उसकी डाढ उखेड़ना चाहता है ॥ १३ ॥ अथवा तू वनमें फिरते हुए मतवाले हाथीके ऊपर विना अंकुशके अकेला ही सवारी करके

मिच्छसि ॥१४॥ समिद्धं पावकं चैव घृतमेदोवसाहुतम् । घृताक्तचीरवासास्त्वं मध्येनोत्सर्तुमिच्छसि ॥ १५ ॥ आत्मानं कः समुद्बध्य कण्ठे बद्ध्वा महाशिलाम् । समुद्रं तरते दोर्भ्यां तत्र किं नाम पौरुषम् ॥१६॥ अकृतास्त्रः कृतास्त्रं वै बलवन्तं सुदुर्बलः । तादृशं कर्ण यः पार्थं योद्धुमिच्छेत् स दुर्मतिः ॥ १७ ॥ अस्माभिर्ह्येष निकृतो वर्षाणीह त्रयोदश । सिंहःपाशैर्विनिर्मुक्तो न नः शेषं करिष्यति ॥ १८ ॥ एकांते पार्थमासीनं कूपेऽग्निमिव संवृतम् । अज्ञानादभ्यवस्कन्द्य प्राप्ताः स्मो भयमुत्तमम्१९ सह युध्यामहे पार्थमागतं युद्धदुर्मदम् । सैन्यास्तिष्ठन्तु सन्नद्धा व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ २० ॥ द्रोणो दुर्योधनो भीष्मो भवान् द्रौणिस्तथा वयम् । सर्वे युध्यामहे पार्थं कर्ण मा साहसं कृथाः ॥ २१ ॥ वयं व्यवसितं पार्थं वज्रपाणिमिवोद्यतम् । षड्रथाः प्रतियुध्येम तिष्ठेम यदि

मानों नगरमें जाना चाहता है १४ ॥ अथवा तू शरीर पर चीथड़े लपेट, घीमें सराबोर हो, घी चर्बी और मेदके होमनेसे चेतन होकर बलतेहुए अग्निके बीचमेंको निकलना चाहता है ॥ १५ ॥ अपने कण्ठ में बड़ीभारी शिला बाँधकर तथा अपने सब शरीरको डोरीसे जकड़ कर कौनसा पुरुष दोनों हाथोंसे समुद्रको तरनेका साहसकरेगा? १६ हे कर्ण ! जो शस्त्रविद्या न जानता हो ऐसा बहुत ही दुर्बल पुरुषयदि शस्त्रविद्या जाननेवाले बलवान् अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहे तो उसको निपट मूर्ख ही समझना चाहिये ॥ १७ ॥ हमने कपटसे धोखा दे तेरह वर्षतक वनमें निकालकर अर्जुनको दुःख दिया है, परन्तु अब तो वह शेर जालमेंसे छूटगया है सो अब वह हममेंसे किसीको भी बाकी नहीं छोड़ेगा, किन्तु सबका ही संहार करडालेगा ॥ १८ ॥ जैसे कुएके भीतर अग्नि छिपा हुआ हो तैसे अर्जुन एकान्तमें गुप्त रहता था, तहाँ ही हम अनजानमें आपहुँचे हैं, इसकारण हम बड़ेभारी भयमें आपड़े हैं ॥ १९ ॥ रणमें मदमत्त होकर जूझनेवाला अर्जुन, हमारे सामने लड़नेको चढ़ा चला आरहा है, इस कारण हम सबोंको इकट्ठे होकर उसके साथ लड़ना चाहिये, इस कारण अब हमारे योधा शस्त्र आदि धारण करके व्यूहरचनासे सावधान होकर खड़े होजायँ ऐसा करो ॥ २० ॥ द्रोण, दुर्योधन, भीष्मपितामह तू, अश्वत्थामा तथा हम सब इकट्ठे होकर अर्जुनके साथ युद्ध करेंगे, पर भैया कर्ण ! तू अकेले अपने ही साहसको रहने दे २१ वज्रधारी इन्द्रकी समान संग्राममें उद्धत होकर विचरने वाला अर्जुन

संहिता ॥ २२ ॥ व्यूढानीकानि सैन्यानि यत्ताः परमधन्विनः । युध्यामहेऽर्ज्जुनं संख्ये दानवा इव वासवम् ॥२३॥ छ छ

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
कृपवाक्यं नाम एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

अश्वत्थामोवाच । न च तावज्जिता गावो न च सीमान्तरं गताः न हास्तिनपुरं प्राप्तास्त्वञ्च कर्ण विकत्थसे ॥ १ ॥ संग्रामांश्च बहून् जित्वा लब्ध्वा च विपुलं धनम् । विजित्य च परां सेनां नाहुः किञ्चन पौरुषम् ॥ २ ॥ दहत्यग्निरवाक्यस्तु तूष्णीं भाति दिवाकरः । तूष्णीं धारयते लोकान् वसुधा सचराचरान् ॥ ३ ॥ चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि विहितानि स्वयम्भुवा । धनं तैरधिगन्तव्यं यच्च कुर्वन्न दुष्यति ॥४॥ अधीत्य ब्राह्मणो वेदान् याजयेत यजेत वा । क्षत्रियो धनुराश्रित्य यजेच्चैव न याजयेत् ॥ ५ ॥ वैश्योऽधिगम्य वित्तानि ब्रह्मकर्माणि कारयेत्

युद्ध करनेको चढ़आया है, सो यदि हम छहों रथी इकट्ठे होकर युद्ध करेंगे तो भी उसके सामने रणमें नहीं ठहर सकेंगे ॥ २२ ॥ अब सेना को व्यूह रचकर खड़ी करदो, और बड़े २ धनुषधारी सावधान होकर उद्योग करनेमें लगजायँ तब हो, जैसे दैत्य, इन्द्रके साथ युद्ध करते हैं तैसे अर्जुनके साथ जूझसकेंगे ॥२३॥ उनन्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

इसके पीछे अश्वत्थामाने कहा, कि-हे कर्ण ! अभी तो हमने योधाओंको जीता भी नहीं है, अभी दूसरी सीमापर भी नहीं पहुँचे हैं और न हस्तिनापुरमें ही पहुँचे हैं, फिर भी तू झूठी बड़ाई क्यों बघार रहा है ॥ १ ॥ जैसे अग्नि बिना ही कुछ कहे दूसरेको जलाडालता है, सूर्य चुपचाप ही अपना प्रकाश करता है, और पृथ्वी भी बिना कुछ बोलेचाले ही अपनी पीठ पर चराचर सब लोकोंको धारण करती है तैसे ही शूर पुरुष अनेकों संग्रामोंमें विजय पाकर बहुतसा धन इकट्ठा करके और वैरीकी सेनाको जीतकर अपनी वीरताका जराभी बखान नहीं करते हैं, किन्तु नम्र ही रहते हैं, जिस २ कामसे धन मिलसके और जिन कामोंके करनेसे करनेवालेको दोष न लगे, ऐसे कर्म स्वयम्भू ब्रह्माने चारों वर्णोंके लिये पहिलेसे ही रचरक्खे हैं ॥ २-४ ॥ ब्राह्मण वेदोंको पढ़कर यज्ञ करे और दूसरोंको यज्ञ करावे, क्षत्रिय वेदाभ्यास के साथ धनुषविद्याका अभ्यास करके यज्ञ आदि वैदिक कर्म करे, परन्तु दूसरोंको करावे नहीं, ॥ ५ ॥ वैश्य खेती व्यापार आदि करके धन इकट्ठा करें और वेदमें कहेहुए कर्म करें तथा शूद्र वेंतके पेड़की

शूद्रः शुश्रूषणं कुर्यात्त्रिषु वर्णेषु नित्यशः । वंदनायोगविधिभिर्वैतसीं वृत्तिमास्थितः ॥ ६ ॥ वर्त्तमानो यथाशास्त्रं प्राप्य चापि महीमिमाम् सत्कुर्वन्ति महाभागा गुरून् सुविगुणानपि ॥ ७ ॥ प्राप्य द्यूतेन को राज्यं क्षत्रियस्तोष्टुमर्हति । तथा नृशंसरूपोऽयं धार्त्तराष्ट्रश्च निर्घृणः ८ तथाभिगम्य वित्तानि को विकत्थेद्विचक्षणः । निकृत्या वञ्चनायोगैश्चरन्वैतंसिको यथा॥९॥कतमद् द्वैरथं युद्धं यत्राजैषीर्धनञ्जयम्। नकुलं सहदेवं वा धनं येषां त्वया हृतम् ॥१०॥ युधिष्ठिरो जितः कस्मिन् भीमश्च बलिनां वरः । इन्द्रप्रस्थं त्वया कस्मिन् संग्रामे निर्जितं पुरा ॥११॥ तथैव कतमद्युद्धं यस्मिन् कृष्णा जिता त्वया । एकवस्त्रा सभां नीता दुष्टकर्मन् रजस्वला ॥१२॥ मूलमेषां महत् कृत्तं सारार्थी चंदनं यथा ।

समान नम्रता धारण करके तथा प्रणाम करके सेवा आदिसे ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सदा आज्ञाका पालन किया करें,ऐसा धर्मशास्त्रों में बताया है ॥ ६ ॥ परम भाग्यवान् पुरुष इसप्रकार शास्त्रके अनुसार सदाचारका पालन करते हैं और नीतिसे इस सब पृथ्वीको जीतलेने पर भी अपनेसे विरुद्ध वर्त्ताव करनेवाले गुरुजन गुणरहित हों तो भी उनका सत्कार ही करते हैं ॥ ७ ॥ बड़े ही क्रूर और निर्लज्ज धृतराष्ट्रके पुत्रने जुआ खेलकर राज्य पाया है और उसमें ही ज्यों त्यों वे सन्तोष मानते हैं इसप्रकार जुएसे राज्य पाकर कौनसा क्षत्रिय सन्तोष मानेगा ? ॥ ८ ॥ जैसे व्याध शठता और छल कपटके उपायोंसे धन इकट्ठा करता है और उससे अपनी आजीविका चलाता है तैसे ही शठता और छल कपटसे धन इकट्ठा करके कौन चतुर पुरुष अपनी बड़ाई करेगा ? ॥ ९ ॥ अर्जुनके साथ तेरा आमने सामने रथमें बैठकर कौनसा युद्ध हुआ था, कि—जिसमें तूने अर्जुनको जीता है और नकुल वा सहदेवके साथ कौनसा युद्ध किया था कि—जिनका धन तूने हरलिया है ॥ १० ॥ और कौनसे युद्धमें युधिष्ठिरको वा बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेनको तूने जीता है और पहिले कौनसे संग्राममें तूने इन्द्रप्रस्थको जीत कर लिया था ? ॥ ११॥ अरे कुकर्मी ! तूने वह कौनसा युद्ध किया था,कि-जिसमें द्रौपदीको जीता था,वह बिचारी रजस्वला दशामें ही एक वस्त्र पहरे हुए राजसभामें लाई गई थी १२ जैसे धनकी चाहनावाला पुरुष चन्दनके पेड़को काट डालता है तैसे ही हे सूत ! तूने भी द्रौपदीका अपमान करके पाण्डवरूपी चन्दनके वृक्षकी बड़ी भारी जड़को काट डाला था और पाण्डवोंसे कपटका

कर्म कारयिथाः सूत तत्र किं विदुरोऽब्रवीत्॥१३॥यथाशक्ति मनुष्याणां शममालक्षयामहे । अन्येषामपि सत्वानामपि कीटपिपीलिकैः । द्रौपद्यास्तं परिक्लेशं न क्षन्तुं पाण्डवोऽर्हति ॥१४॥ क्षयाय धार्त्तराष्ट्राणां प्रादुर्भूतो धनञ्जयः । त्वं पुनः पंडितो भूत्वा वाचं वक्तुमिहेच्छसि ॥१५॥ वैरान्तकरणो जिष्णुर्न नः शेषं करिष्यति ॥१६॥ नैष देवान्न गन्धर्वान्न सुरान्न च राक्षसान् । भयादिह न युध्येत कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ १७ ॥ यं यमेषोतिसंक्रुद्धः संग्रामे निपतिष्यति । वृक्षं मरुत्मान् वेगेन विनिहत्य तमेष्यति १८ त्वत्तो विशिष्टं वीर्येण धनुष्यमरराट्समम् । वासुदेवसमं युद्धे तं पार्थं को न पूजयेत् ॥१९॥ देवं देवेन युध्येत मानुषेण च मानुषम् । अस्त्रं ह्यस्त्रेण यो हन्यात् कोऽर्जुनेन समः पुमान् ॥२०॥ पुत्रादनन्तरं शिष्य इति धर्मविदो विदुः । एतेनापि निमित्तेन प्रियो द्रोणस्य पाण्डवः ॥२१॥ यथा त्वमकरोर्द्यूतमिन्द्रप्रस्थं यथाहरः । यथा-

---

जुआ खिलवाया था, परन्तु उस समय सभामें विदुरने तुझसे क्या कहा था, उसको तू याद कर ॥ १३॥ मनुष्य और कीडे कोड़ा आदि प्राणी भी हम देखते हैं, कि-अपनी शक्तिके अनुसार क्षमाको धारण करते हैं, परन्तु अर्जुन, द्रौपदीके ऊपर जो अत्याचार किया गया था उसको क्षमा नहीं कर सकता ॥ १४ ॥ यह धनञ्जय तो धृतराष्ट्रके पुत्रोंका संहार करनेके लिए ही जन्मा है और फिर भी तू पण्डित बन कर बोलनेकी शक्तिका बड़ा भारी आडम्बर दिखाना चाहता है ॥ १५ ॥ अर्जुन तो वैरका अन्त करनेवाला है, इसकारण वह हमें जड़ मूलसे ही उखाड़ डालेगा ॥१६॥ कुन्तीनन्दन अर्जुन, देवता, गंधर्व सुर और असुरोंके सामने भी भय खाकर पीछेको नहीं हटेगा ॥१७॥ वह जब अत्यन्त क्रोधमें भरकर रणमें जिस२ के ऊपर चढाई करेगा, उस समय जैसे गरुड वेगसे वृक्षके ऊपर गिरकर उसका नाश करदेता है तैसे ही उसका भी संहार ही कर डालेगा ॥ १८ ॥ वीरतामें तुझसे बढाहुआ और धनुष चलानेमें देवराज इन्द्रकी समान तथा संग्राम करनेमें वासुदेवकी समान अर्जुनका सत्कार कौन नहीं करेगा ? १९ अर्जुन संग्रामके समय देवताओंके साथ देवताओंकी समान पराक्रमसे लड़ता है, गन्धर्वोंके सामने गन्धर्वोंकेसे बलसे लड़ता है और मनुष्योंके सामने मनुष्यबलसे लडता है तथा जो अस्त्रका अस्त्रसे नाश करता है ऐसे अर्जुनकी समान दूसरा कौन पुरुष होगा ? ।२०। धर्मको जाननेवाले कहते हैं, कि-पुत्रसे उतर कर शिष्यको मानें, इस

नैषीः सभां कृष्णां तथा युध्यस्व पाण्डवम्॥२२॥अयं ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्मस्य कोविदः। दुद्यूतदेवी गान्धारः शकुनिर्युध्यतामिह ॥२३॥ नाक्षान् क्षिपति गाण्डीवं न कृतं द्वापरं न च। ज्वलतो निशितान् वाणांस्तांस्तान् क्षिपति गांडिवम्२४न हि गाण्डीवनिर्मुक्ता गार्ध्रपक्षाः सुतेजनाः। नांतरेष्वेव तिष्ठन्ते गिरीणामपि दारणाः॥२५॥ अन्तकः पवनो मृत्युस्तथाग्निर्वडवामुखः। कुर्युरेते क्वचिच्छेषं न तु क्रुद्धो धनञ्जयः२६ यथा सभायां द्यूतं त्वं मातुलेन सहाकरोः। तथा युध्यस्व संग्रामे सौबलेन सुरक्षितः ॥ २७ ॥ युध्यन्तां कामतो योधा न हि योत्स्ये धनंजयम्। मत्स्यो ह्यस्माभिरायोध्यो यद्यागच्छेद्गवां पदम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि द्रौणिवाक्यं
नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

कारणसे भी द्रोणाचार्यको अर्जुन प्यारा है २१ सो अब जिस प्रकार तूने जुआ खेला था, जिसप्रकार तूने इन्द्रप्रस्थको जीता था और जिस प्रकार तूने सभामें द्रौपदीको जोरावरीसे बुलाया था तैसे ही तू आज भी अर्जुनके साथ संग्राम करना ! ॥ २२ ॥ गन्धारदेशका राजा तेरा मामा यह शकुनि बुद्धिमान् है क्षत्रियके धर्ममें बडो निपुण है और कपटका जुआ खेलना जानता है, यह आज भले ही संग्राममें खडा होकर युद्ध करे ॥ २३ ॥ गाण्डीव धनुष कुछ सत्ययुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग नामके फाँसे नहीं डालेगा, किन्तु वह धधकते हुए और सान पर धरे हुए तीखे वाणोंकी ही वर्षा करेगा ! ॥ २४ ॥ और गाण्डीव धनुषमेंसे छूटे हुए गिद्ध पक्षीके परोंवाले और पर्वतको भी तोड डालनेवाले अति तेजस्वी वाण निशानेमें चिपटे नहीं रहते हैं किंतु संहार करके आर पार निकल जाते हैं ॥ २५ ॥ सबका संहार करनेवाले काल, पवन, मृत्यु और वडवानल कोप करें तो वह भी कुछ भागको शेष रहने देते हैं, परन्तु क्रोधमें भरा हुआ अर्जुन तो कुछ भी नहीं बचने देगा ॥ २६ ॥ इसलिए तू अपने मामा शकुनिके साथ रहकर, जैसे सभामें जुआ खेला था तैसे ही अब भी मामा शकुनि की रक्षामें रह कर रणभूमिमें संग्राम करना ॥ २७ ॥ और दूसरे योधा भी अपनी इच्छानुसार भले ही युद्ध करें, परन्तु मैं अर्जुनके साथ युद्ध नहीं करूँगा, यदि मत्स्यराज यहाँ गौएँ लेनेको आवेगा तो उस के साथ मैं लड़ूँगा, क्योंकि-मेरी लड़ाई मत्स्यराजके साथ है, कुछ अर्जुनके साथ नहीं है ॥ २८ ॥ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

भीष्म उवाच । साधु पश्यति वै द्रौणिः कृपः साध्वनुपश्यति । कर्णस्तु क्षत्रधर्मेण केवलं योद्धुमिच्छति ॥१॥ आचार्यो नाभिषक्तव्यः पुरुषेण विजानता । देशकालौ तु संप्रेक्ष्य योद्धव्यमिति मे मतिः ॥२॥ यस्य सूर्यसमाः पञ्च सपत्नाः स्युः प्रहारिणः । कथमभ्युदये तेषां न प्रमुह्येत पण्डितः ॥ ३ ॥ स्वार्थे सर्वे विमुह्यन्ति येऽपि धर्मविदो जनाः तस्माद्राजन् ब्रवीम्येष वाक्यं ते यदि रोचते ॥ ४ ॥ कर्णो हि यद्वोचत्त्वां तेजःसञ्जननाय तत् । आचार्यपुत्रः क्षमतां महत् कार्यमुपस्थितम् ॥ ५ ॥ नायं कालो विरोधस्य कौन्तेय समुपस्थिते । क्षन्तव्यं भवता सर्वमाचार्येण कृपेण च ॥ ६ ॥ भवतां हि कृतास्त्रत्वं यथादित्ये प्रभा तथा । यथा चन्द्रमसो लक्ष्मी सर्वथा नापकृष्यते ॥७॥

इसके अनन्तर भीष्मजी बोले, कि—इन अश्वत्थामा और कृपाचार्यने जो कुछ कहा और इन्होंने जो जो अपना अभिप्राय बताया है वह बहुत ही अच्छा है और कर्ण तो अपने क्षत्रिय धर्मके अनुसार केवल युद्ध ही करना चाहता है ॥ १ ॥ और द्रोणाचार्यके ऊपर दोष लगाना यह समझदार मनुष्यका काम नहीं है, मेरा तो यह विचार है कि—हम सब अच्छे प्रकारसे देश कालका विचार करलें तब युद्ध करें ॥ २ ॥ परन्तु सूर्यकी समान तेजस्वी पाँच २ शत्रु जिसके ऊपर वार कर रहे हों, ऐसे मनुष्यका उदय करनेमें पण्डित भी कैसे मोहित न हों? ॥३॥ धर्मको जाननेवाला मनुष्यभी अपना स्वार्थ साधनेके लिये क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिये इसका निर्णय करते समय उलझनमें पड़जाते हैं इसकारण हे राजन् ! (दुर्योधन) यदि तुझे अच्छी लगे तो मैं तुझसे एक बात कहता हूँ, उसको सुन ४ कर्णने तेरे सामने द्रोणाचार्यकी निन्दा करनेमें जो बातें कही हैं वह उनको दुःखित करनेके लिये नहीं कही हैं, किन्तु द्रोणाचार्य का उत्साह बढ़ानेके लिये कही हैं इसलिये आचार्य के पुत्र अश्वत्थामा को, उसके कहने पर क्षमा करनी चाहिये, क्योंकि—इस समय हमारे सामने बड़ा भारी काम उपस्थित है ॥ ५ ॥ और जब कि—अर्जुन हमारे ऊपर चढ़कर आरहा है तो ऐसे समय हमें भीतर ही भीतर आपसमें विरोध नहीं करना चाहिए किन्तु आपको द्रोणाचार्य को और अश्वत्थामा को क्षमा ही करनी चाहिये ॥ ६ ॥ जैसे सूर्यमें रहनेवाला तेज कभी भी कम नहीं होता और चन्द्रमामें रहनेवाला लावण्य भी कभी कम नहीं होता तैसे ही तुममें जो अस्त्र विद्याका ज्ञान रहता है, वह भी सर्वथा कम होने

एवं भवत्सु ब्राह्मण्यं ब्रह्मास्त्रञ्च प्रतिष्ठितम् । चत्वार एकतो वेदाः क्षात्रमेकत्र दृश्यते ॥ ८ ॥ नैतत्समस्तमुभयं कस्मिंश्चिदनुशुश्रुम । अन्यत्र भारताचार्य्यात् सपुत्रादिति मे मतिः ॥ ९ ॥ वेदान्तांश्च पुराणानि इतिहासं पुरातनम् । जामदग्न्यमृते राजन् को द्रोणादधिको भवेत् ॥ १० ॥ ब्रह्मास्त्रं चैव वेदाश्च नैतदन्यत्र दृश्यते । आचार्यपुत्रः क्षमतां नायं कालो विभेदने ॥ ११ ॥ सर्व संहत्य युध्यामः पाकशासनिमागतम् ॥ १२ ॥ बलस्य व्यसनानीह यान्युक्तानि मनीषिभिः । मुख्यो भेदो हि तेषान्तु पापिष्ठो विदुषां मतः ॥ १३ ॥ अश्वत्थामोवाच । नैवं न्याय्यमिदं वाच्यमस्माकं पुरुषर्षभ । किन्तु रोषपरीतेन गुरुणा भाषिता गुणाः ॥ १४ ॥ शत्रोरपि गुणा ग्राह्या दोषा वाच्या गुरोरपि । सर्वथा सर्वयत्नेन पुत्रे शिष्ये हितं वदेत् ॥ १५ ॥ दुर्योधन उवाच । आचार्य एष क्षमतां शान्तिरत्र विधीयताम् । अभिद्यमाने तु

वाला नहीं है ॥ ७ ॥ तुममें ब्राह्मणपना और ब्रह्मास्त्र की विद्या ये दोनों हैं, एक मनुष्यमें चारों वेदोंका ज्ञान होता है तो दूसरेमें क्षत्रियपना देखनेमें आता है ॥ ८ ॥ परन्तु ये दोनों बातें पूर्ण रीतिसे द्रोणाचार्यमें और उनके पुत्र अश्वत्थामामें ही हैं, मेरी समझमें और कहीं ये दोनों बातें हैं ही नहीं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! पुराना इतिहास, पुराण और उपनिषदोंको जाननेमें द्रोणाचार्य से चढ़ाबढ़ा परशुरामजी के सिवाय दूसरा कौन है ? ॥ १० ॥ ब्रह्मास्त्रका ज्ञान और चारों वेदोंका ज्ञान ये दोनों बातें पूर्ण रीतिसे एक पुरुष जानता हो यह बात तुम्हारे सिवाय और कहीं देखनेमें नहीं आती, इसलिये हे आचार्यकुमार अश्वत्थामा ! क्षमा करो क्योंकि—यह समय आपसमें लड़नेका नहीं है ॥ ११ ॥ इन्द्रका पुत्र अर्जुन लड़नेको चढ़कर आरहा है, अब हम सब इकट्ठे होकर युद्ध करनेको तयार होजायँ ॥ १२ ॥ विद्वानोंने सेनाके जिन व्यसनों (खराबियों) का वर्णन किया है, उन सबोंमें मुख्य व्यसन आपसके कलहको माना है, जो कि—बड़ा ही पापिष्ठ है ॥ १३ ॥ अश्वत्थामाने कहा, कि—हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपको न्यायसे भरीहुई हमारी इस बातकी निन्दा नहीं करनी चाहिए क्योंकि—आचार्यने केवल जुएके छलकी याद आनेसे क्रोधमें भरकर अर्जुनके गुण गाये हैं ॥ १४ ॥ शास्त्रमें कहा है कि—शत्रुके भी गुणोंको ग्रहण करे और गुरुमें भी दोष हो तो उनको स्पष्ट कह देय और जहाँतक होसके सर्वथा पुत्र और शिष्यके हितकी ही बात कहै ॥ १५ ॥ दुर्योधनने कहा कि—हे आचार्यजी !

गुरौ यद्युक्तं कोपशान्तिम् ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततो दुर्योधनो द्रोणं क्षमयामास भारत । सह कर्णेन भीष्मेण कृपेण च महात्मना ॥ १७ ॥ द्रोण उवाच । यदेतत् प्रथमं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् । तेनैवाहं प्रसन्नो वै नीतिरत्र विधीयताम् ॥ १८ ॥ यथा दुर्योधनं पार्थो नोपसर्पति संगरे । साहसाद्यदि वा मोहात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ १९ ॥ वनवासे ह्यनिर्वृत्ते दर्शयेन्न धनञ्जयः । धनञ्चालभमानो वै नाद्य तत् क्षन्तुमर्हति ॥ २० ॥ यथा नायं समायुञ्ज्याद्धार्तराष्ट्रान् कथञ्चन । न च सेनां पराजय्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २१ ॥ उक्तं दुर्योधनेनापि पुरस्ताद्वाक्यमीदृशम् । तदनुस्मृत्य गाङ्गेय यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे द्रोणवाक्ये
एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

मेरे ऊपर क्षमा करिये और इस समय यहाँ शान्ति ही बनाये रखना चाहिये क्योंकि-यदि गुरुके मनमें भेदभाव नहीं होगा, तब ही हमारा यहाँ का काम सिद्ध होगा ॥१६॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे भारत! आपसमें इस प्रकार बातचीत होजाने पर दुर्योधनने कर्ण, महात्मा भीष्म और कृपाचार्य सहित द्रोणाचार्यके पास जाकर क्षमा माँगी १७ तब द्रोणाचार्य शान्त होकर बोले, कि—शान्तनुनन्दन भीष्मने तो पहिले ही यह कहा था, कि-आपसमें कलह न करो किन्तु क्षमा रक्खो मैं तो इतनेसे ही प्रसन्न होगया था, अच्छा अब नीतिसे काम करो १८ संग्राम करते समय अर्जुनका दुर्योधनके ऊपर दाँत है, इसलिये वह साहससे या मोहसे दुर्योधन के ऊपर न चढ़ आवे, इसके लिये कुछ राजनीति चलानी चाहिये ॥१९॥ पाण्डवोंके वनवासके तेरह वर्ष जाने पूरे हुए हैं या नहीं इस विषयमें दुर्योधनको सन्देह है परन्तु अर्जुन तेरह वर्ष पूरे हुए बिना कभी भी अपना दर्शन नहीं देगा तथा आज हमसे गौएँ लिये बिना भी लौटकर नहीं जायगा और न आज हमें क्षमा ही करेगा ॥ २० ॥ इसलिये वह जिसप्रकार धृतराष्ट्र के पुत्रों के ऊपर न चढ़ आवे तथा सेनाका पराजय भी न कर सके, ऐसी ही नीतिसे काम लो ॥ २१ ॥ हे गङ्गानन्दन भीष्म! मेरी समान दुर्योधनने भी पहिले तेरह वर्ष पूरे हुए हैं या नहीं, यह प्रश्न आपसे किया था इसलिये आप, पाण्डवों का तेरहवें वर्षका अज्ञातवास पूरा हुआ है या नहीं, इसका विचार करके ठीक २ उत्तर दीजिए ॥ २२ ॥

भीष्म उवाच । कला काष्ठाश्च युज्यन्ते मुहूर्त्ताश्च दिनानि च । अर्द्धमासाश्च मासाश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ १ ॥ ऋतवश्चापि युज्यन्ते तथा सम्वत्सरा अपि । एवं कालविभागेन कालचक्रं प्रवर्त्तते ॥ २ ॥ तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषाञ्च व्यतिक्रमात् । पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥ ३ ॥ एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः । त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्त्तते मतिः ॥ ४ ॥ सर्वं यथावच्चरितं यद्यदेभिः प्रतिश्रुतम् । एवमेतद् ध्रुवं ज्ञात्वा ततो बीभत्सुरागतः ॥ ५ ॥ सर्वे चैव महात्मानः सर्वे धर्मार्थकोविदाः । येषां युधिष्ठिरो राजा कस्माद्धर्मेऽपराध्नुयुः ॥ ६ ॥ अलुब्धाश्चैव कौन्तेयाः कृतवन्तश्च दुष्करम् । न चापि केवलं राज्यमिच्छेयुस्तेऽनुपायतः ॥ ७ ॥ तदैव ते हि विक्रान्तुमीषुः कौरवनन्दनाः । धर्मपाशनिबद्धास्तु न चेलुः क्षत्रियव्रतात् ८ यच्चानृत इति ख्यायाद्यः स गच्छेत्पराभवम् । वृणुयुर्मरणं पार्था नानृतत्वं कथञ्चन ॥ ९ ॥ प्राप्तकाले तु प्राप्तव्यं नोत्सृजेयुर्नर-

---

भीष्मजी बोले कि—कला, काष्ठा, मुहूर्त्त, दिन, पक्ष, महीने नक्षत्र ग्रह, ऋतु तथा सम्वत्सर आदि कालके भिन्न२ भाग मिलकर एक कालचक्र बना है वह कालचक्र कला काष्ठा आदिके विभागसे घूमा करता है ॥ १ ॥ २ ॥ उनमें सूर्य और चन्द्रमा नक्षत्रोंको लाँघ जाते हैं तब काल की कुछ वृद्धि होनेसे पाँचवें२ वर्षमें दो२ महीने बढ़ा करते हैं ॥ ३ ॥ इससे मेरी समझमें तो यह आता है कि—इन पाण्डवोंका वनवास करते हुए तेरह वर्षसे भी पाँच महीने बारह रातका समय अधिक होगया है ॥ ४ ॥ इन पाण्डवोंने जो२ प्रतिज्ञाए की थीं उन सबका ठीक२ पालन किया है और अर्जुन भी इस विषयके ठीक२ निश्चयको जानकर ही हमारे ऊपर चढ़कर आया है ॥ ५ ॥ ये सब ही महात्मा और सब धर्म तथा अर्थमें प्रवीण हैं फिर जिनमें राजा युधिष्ठिर नेता हों वे धर्म के विषयमें अपराध (चूक) क्यों करने लगे हैं ? ॥ ६ ॥ पाण्डव लोभी नहीं हैं और उन्होंने बड़ा कठिन काम किया है, इसकारण वे केवल अनीतिसे कभी भी राज लेना नहीं चाहेंगे ॥ ७ ॥ कुरुकुलनन्दन पाण्डव चाहते तो तब (वनवासकालमें) ही पराक्रम कर सकते थे, परन्तु वे धर्मपाशमें बँधेहुए थे, इसी कारण क्षत्रियोंके नियमसे नहीं हटे ॥ ८ ॥ इस लिये जो यह कहेगा, कि—

न असत्यवादी है वह तिरस्कार ही पावेगा, क्यों कि—पाण्डव

स्वीकार करलेंगे, परन्तु मिथ्याभाषणको कभी स्वीकार नहीं

र्षभाः । अपि वज्रभृता गुप्तं तथावीर्या हि पाण्डवाः ॥ १० ॥ प्रतियुध्येम समरे सर्वशस्त्रभृतां वरं । तस्माद्यदत्र कल्याणं लोके सद्भिरनुष्ठितं । तत्संविधीयतां शीघ्रं मा वो ह्यर्थोऽभ्यगात्परं ॥ ११ ॥ नहि पश्यामि संग्रामे कदाचिदपि कौरव । एकांतसिद्धिं राजेन्द्र संप्राप्तश्च धनञ्जयः ॥ १२ ॥ संप्रवृत्ते तु संग्रामे भावाभावौ जयाजयौ । अवश्यमेकं स्पृशतो दृष्टमेतदसंशयं ॥ १३ ॥ तस्माद्युद्धोचितं कर्म कर्म वा धर्मसंहितं । क्रियतामाशु राजेन्द्र संप्राप्तश्च धनञ्जयः ॥ १३ ॥ दुर्योधन उवाच । नाहं राज्यं प्रदास्यामि पाण्डवानां पितामह । युद्धोपचारिकं यत्तु तच्छीघ्रं प्रविधीयतां ॥ १५ ॥ भीष्म उवाच । अत्र या मामिका बुद्धिः श्रूयतां यदि रोचते । सर्वथा हि मया श्रेयो वक्तव्यं कुरुनन्दन ॥ १६ ॥ क्षिप्रं बलचतुर्भागं गृह्य गच्छ पुरं प्रति । ततो पर-

करेंगे ॥ ९ ॥ इसी प्रकारसे वे नरश्रेष्ठ पाण्डव ऐसी वीरता भी रखते हैं, कि—समय आनेपर वज्रधारी इन्द्रकी रक्षामेंसे भी अपनी पाले योग्य (हककी) वस्तुओं नहीं छोड़ेंगे ॥ १० ॥ ऐसे श्रेष्ठ पाण्डवोंमें जो सब शस्त्रधारियोंमें उत्तम है उस अर्जुनके सामने हमें रणभूमिमें लड़ना है, इस लिये अब जो काम करनेसे हमारा कल्याण हो, और जिस कामको जगत्में सत्पुरुषोंने किया हो, उस कामको शीघ्र ही करो कि—जिससे तुम्हारी गौएं दूसरेके हाथमें न चली जायँ ॥ ११ ॥ हे कुरुवंशी राजेन्द्र ! युद्धमें केवल विजय ही हो यह मैंने कभी नहीं देखा, यह देखा ! अर्जुन समीप ही आगया ॥ १२ ॥ संग्रामका आरंभ होजाने पर जीना, मरना अथवा जीतना हारना ये बातें अवश्य ही किसी एकके पास आती हैं यह बात निःसन्देह देखनेमें आई है ॥ १३ ॥ इस कारण हे राजेन्द्र ! या तो युद्धके उपयोगी काम अथवा धर्मोचित काम (युद्ध न करके इनके साथ मेलकर राज्य देदेना) इन दोनोंमेंसे एक काम शीघ्रकरो, क्यों कि—अर्जुन समीप ही आपहुंचा है ॥ १४ ॥ दुर्योधनने उत्तर दिया कि—हे पितामह ! चाहे सो हो परन्तु मैं पाण्डवोंको राज्य नहीं दूँगा, इस लिये जो काम युद्धके उपयोगी हो उसको ही शीघ्र करो ॥ १५ ॥ भीष्मजीने कहा, कि—हे कुरुनन्दन ! मुझे तुझसे सर्वथा तेरे कल्याणकी बातें कहनी चाहिये, इस लिये इस विषयमें मेरा जो कुछ विचार है वह मैं तुझसे कहता हूँ, यदि अच्छा लगे तो सुनले ॥ १६ ॥ सेनामेंसे चौथाई भागको साथ लेकर तू नगरकी ओरको जा, और सेनाका दूसरा चौथा भाग गौओं

श्चतुर्भागा गाः समादाय गच्छतु ॥ १७ ॥ वयं चार्धेन सैन्यस्य प्रतियोत्स्याम पाण्डवम् । अहं द्रोणश्च कर्णश्च अश्वत्थामा कृपस्तथा । प्रतियोत्स्याम बीभत्सुमागतं कृतनिश्चयम् ॥ १८ ॥ मत्स्यं वा पुनरायातमागतं वा शतक्रतुम् । अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ।१९। वैशम्पायन उवाच । तद्वाक्यं रुरुचे तेषां भीष्मेणोक्तं महात्मना । तथा हि कृतवान् राजा कौरवाणामनन्तरम् ॥ २० ॥ भीष्मः प्रस्थाप्य राजानं गोधनं तदनन्तरम् । सेनामुख्यान्व्यवस्थाप्य व्यूहितुं सम्प्रचक्रमे ॥ २१ ॥ भीष्म उवाच । आचार्य मध्ये तिष्ठ त्वमश्वत्थामा तु सव्यतः । कृपः शारद्वतो धीमान् पार्श्वं रक्षतु दक्षिणम् ॥ २२ ॥ अग्रतः सूतपुत्रस्तु कर्णस्तिष्ठतु दंशितः । अहं सर्वस्य सैन्यस्य पश्चात् स्थास्यामि पालयन् ॥ २३ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि भीष्मसैन्य-
व्यूहे द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

वैशम्पायन उवाच । तथा व्यूढेष्वनीकेषु कौरवेयेषु भारत ।

को लेकर नगरकी ओरको जाय, बाकीकी जो आधी सेना रहेगी, उसको लेकर मैं, द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य संग्राम करनेका निश्चय करके आये हुए अर्जुनके साथ लडूंगे ॥ १७–१८ ॥ उसमें कदाचित् राजा विराट या इन्द्र लडनेको आवेगा तो भी जैसे किनारा समुद्रको रोके रहता है तैसे ही मैं उनको आगे बढ़नेसे रोक दूँगा ॥ १९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे जनमेजय ! महात्मा भीष्मकी यह बात कौरवोंको अच्छी लगी और कौरवोंके राजा दुर्योधनने फिर ऐसा ही किया (–दुर्योधन चौथाई सेनाको साथ लेकर हस्तिनापुरकी ओरको चल दिया और चौथाई सेनासे गौओंके साथ हस्तिनापुरको पयान किया) ॥ २० ॥ इस प्रकार भीष्मने राजा दुर्योधनको और उसके पीछे गोधनको भेजकर सेनाके मुखियाओंको सामने खडा करके व्यूहरचनाका आरम्भ किया ॥ २१ ॥ भीष्मजीने कहा, कि हे द्रोणाचार्य ! तुम सब सेनाके बीचमें खड़े रहो, अश्वत्थामा सेनाके बाईं ओर और शरद्वान्के पुत्र बुद्धिमान् कृपाचार्य दाहिनी ओर खड़े होकर सेनाकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ कर्ण शरीर पर कवच धारण करके सेनाके मुहाने पर खडा होय और मैं सब सेनाके पीछे रक्षा करनेको खडा होऊँगा ॥ २३ ॥ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे भरतवंशी जनमेजय ! कौरवोंकी सब

उपायादर्जुनस्तूर्णं रथघोषेण नादयन् ॥ १ ॥ ददृशुस्ते ध्वजाग्रं वै शुश्रुवुश्च महास्वनम् । दोधूयमानस्य भृशं गाण्डीवस्य च निःस्वनम् २ ततस्तु सर्वमालोक्य द्रोणो वचनमब्रवीत् । महारथमनुप्राप्तं दृष्ट्वा गाण्डीवधन्विनम् ॥ ३ ॥ द्रोण उवाच । एतद् ध्वजाग्रं पार्थस्य दूरतः सम्प्रकाशते । एष घोषः स रथजो रोरवीति च वानरः ॥ ४ ॥ एष तिष्ठन् रथश्रेष्ठे रथे च रथिनां वरः । उत्कर्षति धनुःश्रेष्ठं गाण्डीवमशनिस्वनम् ॥ ५ ॥ इमौ च बाणौ सहितौ पादयोर्मे व्यवस्थितौ । अपरौ चाप्यतिक्रांतौ कर्णौ संस्पृश्य मे शरौ ॥६॥ निरुष्य हि वने वासं कृत्वा कर्मातिमानुषम् । अभिवादयते पार्थः श्रोत्रे च परिपृच्छति ॥ ७ ॥ चिरदृष्टोऽयमस्माभिः प्रज्ञावान्बांधवप्रियः । अतीव ज्वलितो लक्ष्म्या पाण्डुपुत्रो धनञ्जयः ॥ ८ ॥ रथी शरी चारुतली निषङ्गी शंखी पताकी कवची किरीटी । खड्गी च धन्वी च विभाति पार्थः शिखी वृतः

सेना व्यूहरचनामें चुनीजाकर खड़ी होगई, इतनेमें ही अर्जुन भी रथकी घरघराहटके साथ वहाँ आपहुँचा ॥ १ ॥ कौरव दूरसे ही अर्जुनके रथकी ध्वजाकी चोटीको देखने लगे, रथके पहियोंकी घरघराहट तथा बड़े जोरसे खेंचे हुए गाण्डीव धनुषके टङ्कार शब्दको सुनने लगे ।२। यह सब निहार कर तथा गाण्डीव धनुषधारी महारथी अर्जुनको आतेहुए देखकर द्रोणाचार्य बोल उठे ॥ ३ ॥ द्रोणाचार्यने कहा कि-हे महारथियो ! दूरसे ही मालूम होती है, वह अर्जुनकी ध्वजाकी चोटी दीखरही है, वह जो घरघराहट सुनाई आ रही है सो उसके रथकी ही है और रथकी चोटी पर बैठा हुआ वानर वार२ किलकारियें भर रहा है ॥ ४ ॥ यह रथमें बैठा हुआ, वज्रकी समान टङ्कारका शब्द करने वाले गाण्डीव धनुषको जो खेंच रहा है वही महारथी अर्जुन है ॥ ५ ॥ देखो ये दो बाण एक साथ मेरे पैरोंके आगे आपड़े, देखो ये दूसरे दो बाण मेरे कानोंको छूकर सरसराते हुए आकाशकी ओरको चले गए ॥ ६ ॥ अर्जुन वनवास करनेके पीछे अलौकिक पराक्रम करके दो बाण मेरे चरणोंमें छोड़कर मुझे प्रणाम करता है और दो बाणोंसे मेरे कानोंको छूकर मेरा कुशल समाचार बूझरहा है ॥७॥ बुद्धिमान् बान्धवों पर प्रेम रखने वाले और लक्ष्मीसे अत्यन्त दिपते हुए इस पाण्डुनन्दन धनञ्जयको हमने आज बड़े दिनोंमें देखा है ॥८॥ अर्जुन, धनुष, बाण, हाथके मौजे, भाथा, शंख, पताका, बख्तर मुकुट तलवार आदि अपनी संग्रामकी सब सामग्रीके साथ रथमें बैठ कर

स्त्र भिरिवाज्यसिक्तः ॥ ९ ॥ अर्जुन उवाच । इषुपाते च सेनाया हयान् संयच्छ सारथे । यावत्समीक्षे सैन्येऽस्मिन् क्वासौ कुरुकुलाधमः ॥१०॥ सर्वानेताननादृत्य दृष्ट्वा तमतिमानिनम् । तस्य मूर्ध्नि पतिष्यामि तत एते पराजिताः ॥ ११ ॥ एष व्यवस्थितो द्रोणो द्रौणिश्च तदनन्तरम् । भीष्मः कृपश्च कर्णश्च महेष्वासाः समागताः ॥ १२ ॥ राजानं नात्र पश्यामि गाः समादाय गच्छति । दक्षिणं मार्गमास्थाय शंके जीवपरायणः ॥ १३ ॥ उत्सृजैतद्रथानीकं गच्छ यत्र सुयोधनः । तत्रैव योत्स्ये वैराटे नास्ति युद्धं निरामिषम् । तं जित्वा विनिवर्त्तिष्ये गाः समादाय वा पुनः ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तः स वैराटिर्हयान् संयम्य यत्नतः । निशम्य च ततो रश्मीन् यत्र ते कुरुपुङ्गवाः ॥ १५ ॥ अचोद्-

---

हमारे ऊपर चढ कर आया है ॥९॥ इसप्रकार कौरवोंकी सेनामें अर्जुनके विषयमें बहुत प्रकारकी बातें होरही थी, इसी अवसरमें अर्जुनने अपने सारथीसे कहा, कि—हे सारथी ! तू कौरवोंकी सेनासे एक धनुष पडनेकी बराबर दूर रथके घोडोंको खड़े रख, कि—जब तक मैं अच्छे प्रकार देख लूँ, कि—इस सेनामें वह कुरुकुलाधम दुर्योधन कहाँ है ॥ १० ॥ मैं इन सबोंका अनादर करता हुआ उस अभिमानीको देखकर उसके शिर पर ही जाकर गिरूँगा, कि-जिससे इन सबोंके भी मान मर जायँगे ॥ ११ ॥ ऐसा कहकर अर्जुन कौरवोंकी सेनाकी ओरको देखने लगा और फिर बोला, कि-यह जो आगे खड़े हैं यह द्रोणाचार्य हैं, इनके दूसरी ओर अश्वत्थामा खडा है, यह सेनाके पीछे भीष्म खडे हैं, वह कृपाचार्य हैं और यह कर्ण है, ये सब ही श्रेष्ठधनुषधारी आये हैं ॥ १२ ॥ परन्तु दुर्योधन इनमें कहीं नहीं दीखता इससे सन्देह होता है, कि—दुर्योधन अपने प्राणोंको बचानेके लिए गौओंको लेकर दक्षिण दिशाके मार्गसे हस्तिनापुरको (भाग) गया होगा ॥ १३ (ऐसा विचार कर उसने उत्तरको पुकार कर कहा कि—) ओ विराटनन्दन ! इस रथ सेनाको छोड दे और जिधर दुर्योधन हो उधरको रथ हाँक दे, मैं तहाँ ही लडूँगा, बिना मांस (लाभ) का युद्ध किस कामका ? मैं उसको जीत कर और उससे गौएँ लेकर ही लौटकर आऊँगा ॥ १४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! अर्जुकी इस बातको सुन कर विराटनन्दन उत्तरने जहाँ बड़े २ कौरव खडे थे, उधरसे बागडोरोंको खैंच कर घोडोंको खडा कर लिया और फिर जिधरको दुर्योधन जारहा था उधरको ही घोड़े हाँक दिये ॥ १५

यमतो धावन् यत्र दुर्योधनो गतः। उत्सृज्य रथवंशान्तु प्रयाते श्वेतवाहने। अभिप्रायं विदित्वा च कृपो वचनमब्रवीत्॥ १६ ॥ नैषोऽन्तरेण राजानं बीभत्सुः स्थातुमिच्छति। तस्य पार्ष्णिं ग्रहीष्यामो जवेनाभिप्रयास्यतः ॥ १७ ॥ न ह्येनमभिसंक्रुद्धमेको युध्येत संयुगे। अन्यो देवात् सहस्राक्षात् कृष्णाद्वा देवकीसुतात्। आचार्याच्च सपुत्राद्वा भारद्वाजान्महारथात्॥ १८ ॥ किं नो गावो करिष्यन्ति धनं वा विपुलं तथा। दुर्योधनः पार्थजले पुरा नौरिव मज्जति ॥ १९ ॥ तथैव गत्वा बीभत्सुर्नाम विश्राव्य चात्मनः। शलभैरिव तां सेनां शरैः शीघ्रमवाकिरत्॥ २० ॥ कीर्यमाणाः शरौघैस्तु योधास्ते पार्थचोदितैः। नापश्यन्नावृतां भूमिं नान्तरिक्षञ्च पत्रिभिः॥ २१ ॥ नेषामापततां युद्धे नापयानेऽभवन्मतिः। शीघ्रत्वमेव पार्थस्य पूजयन्ति स्म चेतसा॥२२॥ ततः शङ्खं प्रदध्मौ स द्विषतां लोमहर्षणम्। विस्फार्य च धनुः श्रेष्ठं ध्वजे

श्वेतवाहन अर्जुन, यहाँ खड़ी हुई रथसेनाको छोड़कर दूसरी ओरको जाने लगा, उसी समय कृपाचार्य उसके अभिप्रायको समझ कर कहने लगे कि—॥ १६ ॥ यह अर्जुन, दुर्योधनके न होनेपर हमारे साथ लड़नेको खड़ा होना नहीं चाहता, इसलिये हमें भी शीघ्रताके साथ दुर्योधनके पीछे दौड़ते हुए पार्थकी पिछाड़ी पकड़नी चाहिये ॥ १७ ॥ क्योंकि—अर्जुन जब अत्यन्त कोपमें भर जाता है तब इन्द्र, देवकीनन्दन कृष्ण, महारथी द्रोणाचार्य तथा महारथी अश्वत्थामाके सिवाय दूसरा कोई भी पुरुष अकेला उसके साथ नहीं लड़ सकता ॥ १८ ॥ हमारे पहुँचनेसे पहिले ही जैसे नाव पानीमें डूब जाती है तैसे यदि दुर्योधन अर्जुनके हाथसे मारा गया तो फिर ये बहुतसी गौएँ हमारे किस काम आवेंगी तथा बहुतसा धन भी किस काम आयेगा ? ।१९। (ऐसी बातें करनेपर कौरव भी उसके पीछे चलदिये) परन्तु इतनेमें ही वह अर्जुन भी दुर्योधनके समीप जापहुँचा और उसको अपना नाम सुनाकर उसकी सेनाके ऊपर टीड़ियोंकी समान बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥२०॥ अर्जुन जब कौरव योधाओंके ऊपर बाणोंके समूहोंकी वर्षा करने लगा तब उससे भूमि और आकाश ढक गए, जिससे योधा आकाश वा भूमि परकी किसी वस्तु को नहीं देखसके ॥ २१ ॥ तो भी जो संग्राम करनेको रणभूमिमें आये थे उन्होंने तहाँसे भागजानेका विचार नहीं किया, किन्तु तहाँ खड़े हुए अर्जुनके शीघ्र हाथ चलानेकी प्रशंसा करने लगे ॥ २२ ॥ तदनन्तर अर्जुनने वैरियोंके

भूतान्यचोदयत् ॥२३॥ तस्य शंखस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च । गांडीवस्य च घोषेण पृथिवी समकम्पत । अमानुषाणां भूतानां तेषां च ध्वजवासिनाम् ॥२४॥ ऊर्ध्वं पुच्छा विधुन्वाना रेभमाणा समन्ततः । गावः प्रतिन्यवर्त्तन्त दिशामास्थाय दक्षिणाम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि गोनिवर्त्तने
त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच । स शत्रुसेनां तरसा प्रणुद्य गास्ता विजित्याथ धनुर्द्धराग्र्यः । दुर्योधनायाभिमुखं प्रयातो भूयो रणं सोऽभिचिकीर्षमाणः ॥ १ ॥ गोषु प्रयातासु जवेन मत्स्यान् किरीटिनं कृतकार्यञ्च मत्वा । दुर्योधनायाभिमुखं प्रयातं कुरुप्रवीराः सहसाभिपेतुः ॥ २ ॥ तेषामनीकानि बहूनि गाढं व्यूढानि दृष्ट्वा बहुलध्वजानि । मत्स्यस्य पुत्रं द्विषतां निहन्ता वैराटिमामन्त्र्य ततोऽभ्युवाच ॥ ३ ॥ एतेन तूर्णं प्रतिपादयेमान् श्वेतान् हयान् काञ्चनरश्मियोक्त्रान् । जवेन सर्वेण कुरु

रोमाञ्च खड़े करनेवाला शंख बजाया और श्रेष्ठ धनुषपर टङ्कार देकर ध्वजामेंके प्राणियोंको भी किलकिलानेकी प्रेरणा करी ॥ २३ ॥ अर्जुनके शंखके शब्द रथके पहियोंकी घरघराहट और गाण्डीव धनुषके टङ्कार शब्दसे तथा ध्वजामें रहनेवाले प्राणियोंके किलकिल शब्दसे भूमि काँप उठी ॥ २४ ॥ और गौएँ ऊपरको पूँछ कर उनको घुमातीं २ रँभा कर चारों ओरसे लौट पड़ीं और दक्षिण दिशाकी ओरको भागने लगीं ॥ २५ ॥ तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! उस धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने तुरन्त ही शत्रुसेनाका नाश करके सब गौओंको जीत लिया और फिर युद्ध करनेकी इच्छासे दुर्योधनकी ओरको चलदिया ॥ १ ॥ इतनेमें ही कौरवोंके जो श्रेष्ठ योधा दुर्योधनकी सहायता करने को आरहे थे वे, गौओंको शीघ्रता से मत्स्य नगरकी ओर को लौटती हुई देखकर अर्जुनको अपने काममें सफल हुआ जानकर तथा दुर्योधनके ऊपर चढ़कर जातेहुए देखकर एकसाथ अर्जुनके ऊपर टूट पड़े ॥२॥ उस समय कौरवोंकी अनेकों ध्वजाओंवाली और दृढ़ताके साथ व्यूह रचनामें खड़ीहुई बहुतसी सेनाको देखकर शत्रुओंका नाश करनेवाले अर्जुनने विराटनन्दन उत्तरको पुकारकर कहा कि—॥३॥ ओ विराटनन्दन ! तू इन सुवर्णकी बागडोर और जोतोंवाले स्वेत घोड़ोंको खूब वेगसे इस मार्गमें को होकर झट दौड़ानेका उद्योग कर तो मैं कौरवों

प्रयत्नमासादयेऽहं कुरुसिंहवृन्दम् ॥ ४ ॥ गजो गजेनेव मया दुरात्मा योद्धुं समाकांक्षति सूतपुत्रः । तमेव मां प्रापय राजपुत्र दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् ॥ ५ ॥ स तैर्हयैर्वातजवैर्बृहद्भिः पुत्रो विराटस्य सुवर्णकक्षैः । व्यध्वंसयत्तद्रथिनामनीकं ततोऽवहत् पाण्डवमाजिमध्ये ॥ ६ ॥ तं चित्रसेनो विशिखैर्विपाठैः संग्रामजिच्छत्रुसहो जयश्च । प्रत्युद्ययुर्भारतमापतन्तं महारथाः कर्णमभीप्समानाः ॥ ७ ॥ ततः स तेषां पुरुषप्रवीरः शरासनार्चिः शरवेगतापः । व्रातं रथानामदहत्समन्युर्वनं यथाग्निः कुरुपुंगवानाम् ॥ ८ ॥ तस्मिंस्तु युद्धे तुमुले प्रवृत्ते पार्थं विकर्णोऽतिरथं रथेन । विपाठवर्षेण कुरुप्रवीरो भीमेन भीमानुजमाससाद ९ ततो विकर्णस्य धनुर्विकृष्य जाम्बूनदाग्र्योपचितं दृढज्यम् । अपातयद्ध्वजमस्य मथ्य छिन्नध्वजः सोऽप्यपयाज्जवेन ॥ १० ॥ तं शात्रवाणां गणबाधितारं कर्माणि कुर्वन्तममानुषाणि । शत्रुन्तपः पार्थम-

---

की ओरसे सिंह समान योधाओंमें श्रेष्ठ कर्णके पास पहुँच जाऊँ ॥४॥ जैसे हाथी हाथीके सामने युद्ध करना चाहता है तैसे ही यह दुरात्मा सूतपुत्र कर्ण मेरे सामने युद्ध करना चाहता है, इसलिए हे राजकुमार! दुर्योधन का आश्रय मिलने से घमण्ड में भरे हुए सूतपुत्र कर्ण के पास तू मुझे शीघ्र ही लेचल ॥ ५ ॥ यह सुनकर विराटकुमार उत्तरने पवनकी समान वेगवाले और सुवर्णकी झूलें ओढे बड़े२ घोड़ोंको वेगसे दौड़ाया और रथियोंकी सेनाके जमावको तोड़ताहुआ रणभूमि के मध्यभागमें पाण्डवको लेगया ॥ ६ ॥ उस समय चित्रसेन, संग्रामजित्, शत्रुसह और जय आदि महारथी कर्णकी रक्षा करनेकी इच्छा से विपाठ नामक बाणोंके साथ चढ़कर आतेहुए अर्जुनके सामनेको दौड़गए ॥७॥ परन्तु जैसे अग्नि क्रोधमें भरकर वनको जलाडालता है तैसे ही पुरुषोंमें महावीर अर्जुन, धनुषरूपी अग्निसे और बाणोंके वेगरूपी तापसे कौरवोंके बड़े२ योधाओंके रथोंके समूहको क्रोधमें आकर जलाने लगा ॥ ८ ॥ जिस समय वह महाघोर युद्ध होने लगा, उस समय कुरुवंशमें परमश्रेष्ठ योधा विकर्ण, रथमें बैठकर भयानक विपाठ नामक बाणोंकी वर्षा करताहुआ अतिरथी भीमसेनके छोटे भाई अर्जुन के ऊपर चढ़आया ॥९॥ अर्जुनने जिसकी दोनों ओरकी अनियें सोने से मढीहुई थीं और जिसका रोदा बड़ा मजबूत था ऐसे विकर्णके धनुषको काटडाला और फिर उसके रथकी ध्वजाको भी काट टुकड़े२ भूमि पर गिरादिया, उसके धनुषकी ध्वजा कटी, कि—उसी समय विकर्ण

मृष्यमाणः स मार्दयच्छरवर्षेण पार्थम् ॥ ११ ॥ स तेन राज्ञातिरथेन विद्धो विगाहमानो ध्वजिनीं कुरूणाम्। शत्रुन्तपं पञ्चभिराशु विध्वा ततोऽस्य सूतं दशभिर्जघान ॥ १२ ॥ ततः स विद्धो भरतर्षभेण बाणेन गात्रावरणातिगेन। गतासुराजौ निपपात भूमौ नगो नगाग्रादिव वातरुग्णः ॥ १३ ॥ नरर्षभास्तेन नरर्षभेण वीरा रणे वीरतरेण भग्नाः। चकम्पिरे वातवशेन काले प्रकम्पितानीव महावनानि ॥ १४ ॥ हतास्तु पार्थेन नरप्रवीरा गतासवोर्व्यां सुषुपुः सुवेषाः। वसुप्रदा वासवतुल्यवीर्याः पराजिता वासवजेन संख्ये ॥ १५ ॥ सुवर्णकार्ष्णायसवर्मनद्धा नागा यथा हैमवताः प्रवृद्धाः। तथा स शत्रून् समरे विनिघ्नन् गाण्डीवधन्वा पुरुषप्रवीरः ॥ १६ ॥ चचार संख्ये विदिशो दिशश्च दहन्निवा-

---

तो वहाँसे तुरन्त भाग ही गया ॥ १० ॥ इस समय वहाँ शत्रुन्तप नामका राजा खड़ा हुआ था वह शत्रुओंके समूहको निस्तेज करने वाले अर्जुनको,जो मनुष्योंसे न होसके ऐसा काम करते देखकर उस कर्मको सह न सका,इसकारण अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥११॥ इस प्रकार कौरवोंकी सेनामें पहुंचे हुए अर्जुनको, उस अतिरथी राजा ने बाणोंके प्रहारसे बींध डाला, तब अर्जुनने भी तुरत पाँच बाण मार कर शत्रुन्तपको बींध दिया और दश बाणोंसे उसके सारथीको मार डाला भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुनने, शरीर पर पहरे हुए बखतरको भेदने वाले बाणसे शत्रुन्तपको बींध डाला, सो वह तुरन्त ही मर गया और जैसे पवनसे टूटा हुआ वृक्ष पहाडके शिर परसे नीचे गिरता है तैसे भूमि पर गिर पड़ा ॥ १३ ॥ इस प्रकार कौरवोंके दलके महा शूर वीर योधाओंमें महावीर धनञ्जयके प्रहार करने पर भागड पड गई और किसी २ समय जैसे आँधीसे बडे २ वन काँपने लगते हैं तैसे ही कौरवदल काँपने लगा ॥ १४ ॥ उस संग्राममें सुन्दर वेशधारी बहुतसे धनका दान करने वाले और इन्द्रकी समान पराक्रमी बड़े २ अच्छे वीरोंको इन्द्रनन्दन अर्जुनने रणमें हरा कर मार डाला और वे प्राणहीन होकर रणभूमिमें सोगए ॥ १५ ॥ कौरवदलके ये योधा हिमालय पर्वत पर उत्पन्न हुए वृद्ध अवस्थाके हाथीसे मालूम होते थे, वे शरीरों पर सुवर्ण और फौलादके बख्तर पहरे हुए थे, गरमीकी ऋतुमें जैसे अग्नि वनको जलाता हुआ चारों ओर घूमता है तैसे ही गाण्डीवधारी महाशूर अर्जुन रथमें बैठ कर शत्रुओंका संहार करता हुआ रणभूमि में फिरता था और वसन्त ऋतुमें पवन जैसे वृक्षोंके पत्तोंको इधरउधर

श्विवं नमातपान्ते । प्रकीर्णपर्णानि यथा वसन्ते विशातयित्वा पवनोम्बुद्रांश्च ॥ १७ ॥ तथा सपत्नान् विकिरन् किरीटी चचार संख्येऽतिरथो रथेन । शोणाश्ववाहस्य हयान्निहत्य वैकर्तनभ्रातुरदीनसत्त्वः । एकेन संग्रामजितः शरेण शिरो जहाराथ किरीटमाली ॥ १८ ॥ तस्मिन् हते भ्रातरि सूतपुत्रो वैकर्त्तनो वीर्यमथाददानः । प्रगृह्य दन्ताविव नागराजो महर्षभं व्याघ्र इवाभ्यधावत् ॥ १९ ॥ स पाण्डवं द्वादशभिः पृषत्कैर्वैकर्त्तनः शीघ्रमथो जघान । विव्याध गात्रेषु हयांश्च सर्वान् विराटपुत्रञ्च करे निजघ्ने ॥२०॥ तमापतन्तं सहसा किरीटी वैकर्त्तनं वै तरसाभिपत्य । प्रगृह्य वेगं न्यपतज्जवेन नागं गरुत्मानिव चित्रपक्षः ॥ २१ ॥ तावुत्तमौ सर्वधनुर्धराणां महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ । कर्णस्य पार्थस्य निशम्य युद्धं दिदृक्षमाणाः कुरवोभितस्थुः ॥ २२ ॥ स पाण्डवस्तूर्णमुदीर्णकोपः कृतागसं कर्णमुदीक्ष्य हर्षात् । क्षणेन साश्वं सरथं ससारथिमन्तर्दधे घोर-

बखेर देता है तथा आकाशमेंके बादलोंको तित्तर वित्तर कर देता है, तैसे ही महारथी अर्जुन भी रथमें बैठकर वैरियोंको संहारताहुआ रणभूमिमें घूमता था, फिर अलौकिक प्रबल पराक्रमी किरीटमाली अर्जुन ने कर्णके भाई संग्रामजित्के रथमें जुडे हुए लाल घोडोंको मार डाला और एक ही बाणसे संग्रामजित्का शिर काट डाला ॥ १६–१८ ॥ उस भाईके मारे जाते ही सूर्यनन्दन कर्णको वीरताका बडा आवेश आ गया और बड़ा गजराज जैसे पहाडके दो शिखरोंके ऊपरको धावा करके जाता है और व्याघ्र जैसे बड़े भारी बैल पर चढके जाता है तैसे ही कर्ण भी बड़े जोरमें भरभर अर्जुनके ऊपरको चढ कर गया ॥१९॥ तुरन्त ही सूर्यपुत्र कर्णने बारह बाणोंसे अर्जुनके सब अङ्गोंको बींध डाला और उसके सब घोडोंके शरीरोंमें भी बाण छेद दिए तथा विराटनन्दन उत्तरके हाथको भी घायल कर दिया ॥ २० ॥ ऐसे वेग से कर्णको आतेहुए देख कर विचित्र परों वाला गरुड़ जैसे वेगसे साँप के ऊपर चढ कर आता है, तैसे ही अर्जुन भी बड़े वेगसे एकाएकी कर्णके ऊपर आ टूटा ॥ २१ ॥ अर्जुन और कर्ण ये दोनों सब धनुषधारियोंमें बढ़ कर महाबली और सब वैरियोंके सामने टक्कर झेलने वाले थे, जब कौरवोंने सुना, कि–कर्ण और अर्जुनका युद्ध होने लगा तो वे इस युद्धको देखनेके लिए चारों ओर खड़े होगए ॥ २२ ॥ पाण्डुनन्दन अर्जुन, अपराधी कर्णको देखते क्षण ही क्रोधके आवेश में भर गया और उसने बडी प्रसन्नतासे कर्णके ऊपर भयानक बाणोंके

शरौघवृष्ट्या ॥ २३ ॥ ततः सुविद्धाः सरथाः सनागा योधा विनेदुर्भरतर्षभाणाम् । अन्तर्हिता भीष्ममुखाः सहाश्वाः किरीटिना कीर्णरथैः पृषत्कैः ॥२४॥ स चापि तानर्जुनबाहुमुक्तांश्छरान् शरौघैः प्रतिहत्य वीरः । तस्थौ महात्मा सधनुः सबाणः सविस्फुलिंगोऽग्निरिवाशु कर्णः ॥ २५ ॥ ततस्त्वभूद्वै तलतालशब्दः सशंखभेरीपणवप्रणादः । प्रक्ष्वेडितज्यातलनिःस्वनन्तं वैकर्त्तनं पूजयतां कुरूणाम् ॥ २६ ॥ उद्धूतलांगूलमहापताकध्वजोत्तमांसाकुलभीषणान्तम् । गाण्डीव निर्ह्रादकृतप्रणादं किरीटिनं प्रेक्ष्य ननाद कर्णः ॥ २७ ॥ स चापि वैकर्त्तनमर्दयित्वा साश्वं ससूतं सरथं पृषत्कैः । तमाववर्ष प्रसभं किरीटी पितामहं द्रोणकृपौ च दृष्ट्वा ॥ २८॥ स चापि पार्थं बहुभिः पृषत्कैर्वैकर्त्तनो मेघ इवाभ्यवर्षत् । तथैव कर्णञ्च किरीटमाली संछादयामास शितैः पृषत्कैः ॥ २९ ॥ तयोः

समूहोंकी वर्षा करके एक क्षणमें कर्णके घोड़ों, रथ और कर्णको वाणोंके ढेरके नीचे ढक दिया ॥ २३ ॥ भीष्म आदि वडे२ योधा उनके रथ और घोडोंके ऊपर भी वाणोंकी वर्षा करके अर्जुनने उनको ढक दिया और भरतवंशी महापुरुषोंके योधा, रथ तथा घोडोंको भी अच्छे प्रकारसे घायल कर दिया तव वैरिदलके योधा रणभूमिमें गर्जना करने लगे ॥ २४॥ और महात्मा वीर कर्णने सामनेको वाण मार कर अर्जुनके हाथमेंसे छूटे हुए वाणोंके टुकड़े २ कर डाले और चिनगारियें वरसाते हुए अग्निकी समान वह धनुष और वाण लिए झपाटेके साथ रणभूमिमें आकर खड़ा होगया ॥ २५ ॥ तव भी कौरव धनुषोंके रोदों का और हाथकी तालियोंका शब्द करते हुए कर्णकासत्कार करने लगे वे तालियें वजाने लगे और शंख, नगाड़े तथा धौंसोंके शब्द भी करने लगे ॥२६॥ अर्जुनके रथकी ध्वजा, पताकावाली वल्ली पर ऊपरको पूँछ उठाये जो वानर वैठा था उसकी पूँछ वडी ऊँची पताकासी मालूम होती थी और उस पताकाकी वल्ली पर वैठे हुए अति आकुल भूत आदि भी अर्जुनके गांडीव धनुषकी टंकारके साथ२ वडा शब्द कर रहे थे, ऐसे अर्जुनको देखकर कर्ण गरजने लगा॥२७॥ तव किरीटी अर्जुनने घोड़े सारथी और रथसहित कर्णके ऊपर वाणोंकी वर्षा करके उसको खूब ही घायल किया और फिर द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यकी ओर देखकर जोर के साथ, भीष्म पितामहके ऊपर वाणोंकी वर्षा करी ॥ २८ ॥ सूर्यनन्दन कर्णने भी अर्जुनके ऊपर मेघकी समान वहुतसे वाणोंकी वर्षा करी, तैसेही किरीटमालीने भी तीखे वाणोंसे कर्णको ढकदिया ॥ २९ ॥

सुवीर्यवान् सूततो शौर्यवान् महाशरौघास्त्रविवर्दने रणे । रथे स्थितावाविव चन्द्रसूर्यौ घनान्तरेणानुददर्श लोकः ॥ ३० ॥ अथाशुकारी चतुरो हयांश्च विव्याध कर्णो निशितैः किरीटिनः । त्रिभिश्च यन्तारमसूक्ष्ममाणो विव्याध तूर्णं त्रिभिरस्य केतुम् ॥ ३१ ॥ ततोऽभिविद्धः समरावमर्दी प्रबोधितः सिंह इव प्रसुप्तः । गाण्डीवधन्वा ऋषभः कुरूणामजिह्मगैः कर्णमियाय जिष्णुः ॥ ३२ ॥ शरास्त्रवृष्ट्या निहतो महात्मा प्रादुश्चकारातिमनुष्यकर्म । प्राच्छादयत् कर्णरथं पृषत्कैर्लोकानिमान् सूर्य इवांशुजालैः ॥ ३३ ॥ स हस्तिनेवाभिहतो गजेन्द्रः प्रगृह्य भल्लान्निशितान्निषङ्गात् । आकर्णपूर्णञ्च धनुर्विकृष्य विव्याध गात्रेष्वथ सूतपुत्रम् ॥ ३४ ॥ अथास्य बाहूरुशिरोललाटं ग्रीवां वरा-

जहां बहुत बाणोंके समूह और अस्त्रोंसे मारकाट चल रही थी ऐसे रण में अब स्थित दोनों एक दूसरेके ऊपर तीखे बाण फेंक रहे थे उस समय वे दोनों रथोंमें बैठे हुए लोगोंको मेघोंके मध्यमें बैठे हुए सूर्य चन्द्रमासे दीखते थे ॥ ३० ॥ इसप्रकार संग्राम चल रहा था उस समय कर्णने आवेशमें भरकर बड़ी ही शीघ्रतासे ठीक किये हुए बाण मार कर अर्जुनके चारों घोड़ोंको बींधडाला, तीन बाण सारथीके छेद दिये और तीन बाणोंसे उसकी ध्वजाको काटडाला ॥ ३१ ॥ इसप्रकार बाणोंके प्रहारसे जब अर्जुन घायल होगया तब, संग्रामके समय वैरियोंका प्रमाथन करने वाला अर्जुन सोकर उठे हुए सिंहकी समान आगया और इस कुरुओंमें श्रेष्ठ गांडीव धनुषमेंसे कर्णके ऊपर सीधे बाण मारता हुआ उसके मारनेको दौड़नेलगा ॥ ३२ ॥ महात्मा धनञ्जयने कर्णके बाण और अस्त्रोंकी वर्षासे घायल होजाने पर, मनुष्यों से न होसकने वाला पराक्रम करना आरम्भ करदिया और जैसे सूर्य किरणोंके समूहसे इस जगत्को ढकदेता है तैसे ही धनञ्जयने भी बाणोंकी वर्षा करके कर्णके रथको ढक दिया ॥ ३३ ॥ एक हाथीके प्रहार करने पर जैसे दूसरा बड़ा हाथी जोशमें भरकर उसके ऊपरको चढ़ आता है तैसे ही अर्जुन भी कर्णके प्रहारसे आवेशमें आकर कर्णके ऊपर टूटपड़ा और उसने भाथेमेंसे भालेके आकारके तीखे बाण तुरन्त ही बाहर निकाल लिये और धनुषको कानोंतक खैंच उससे कर्णके सब शरीरमें बाणोंका प्रहार करके उसको घायल करडाला ॥ ३४ ॥ अरिमर्दन अर्जुनने इस संग्राममें गांडीव धनुषमेंसे वज्रकी समान तेजस्वी और तेज किये हुए बाण मार कर कर्णकी भुजा, जंघा,

ङ्गानि परावमर्दी। शितैश्च वाणैर्युधि निर्बिभेद गाण्डीवमुक्तैरशनिप्रकाशः॥ ३५॥ स पार्थमुक्तैरिषुभि प्रणुन्नो गजो गजेनेव जितस्तरस्वी। विहाय संग्रामशिरः प्रयातो वैकर्त्तनः पाण्डववाणतप्तः॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे कर्णापयाने
चतुःपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५४॥

वैशम्पायन उवाच। अपयाते तु राधेये दुर्य्योधनपुरोगमाः। अनीकेन यथास्वेन शनैरार्च्छन्त पाण्डवम्॥ १॥ वहुधा तस्य सैन्यस्य व्यूढस्यापततः शरैः। अधारयत वेगं स वेलेव तु महोदधेः॥ २॥ ततः प्रहस्य बीभत्सुः कौन्तेयः श्वेतवाहनः। दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वाणः प्रत्ययाद्रथसत्तमः॥ ३॥ यथा रश्मिभिरादित्यः प्रच्छादयति मेदिनीम्। तथा गांडीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो दिशो दश॥ ४॥ न रथानां न चाश्वानां न गजानां न वर्मणाम्। अनिर्विद्धः शितैर्वाणैरासीत् द्व्यङ्गुलमन्तरम्॥ ५॥ दिव्ययोगाच्च पार्थस्य हयानामुत्तरस्य च। शिक्षा-

---

मस्तक, ललाट और कण्ठ आदि उत्तम २ अङ्गोंको घायल कर डाला ३५ उस समय, जैसे आवेशमें भरा हुआ हाथी, हाथीसे हारकर भाग जाता है तैसे ही सूर्यनन्दन वली कर्ण धनञ्जयके गांडीव धनुषमेंसे छोडे हुए वाणोंसे घायल होकर वाणोंके घावोंसे व्याकुल होनेके कारण रणभूमिके मुहानेको छोड शीघ्रतासे भागा हुआ चलागया॥३६॥ चौअनवाँ अध्याय समाप्त॥ ५४॥ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि—राधाके पुत्र कर्णके रणभूमिमेंसे भाग जाने पर दुर्योधन आदि कौरव योधा अपनी २ सेनाके साथ धीरे धीरे अर्जुनके ऊपर टूटपडे॥ १॥ परन्तु उस समय जैसे किनारा समुद्रके वेगको सहता है तैसे अर्जुनने भी व्यूहरचनामें गँठकर चढ़कर आये और वाणोंकी वर्षा करते हुए कौरवोंकी सेनाके वेगको रोका२ फिर रथियोंमें श्रेष्ठ स्वेत घोडों वाले कुन्तीनन्दन धनञ्जयने हँसते हँसते कौरवोंकी सेना पर धावा किया और उनको दिव्य अस्त्रोंसे मारने लगा॥ ३॥ जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे पृथिवीको ढक देता है तैसे ही पार्थने गांडीव धनुषमेंसे निकले हुए वाणोंसे दशों दिशाओं को ढक दिया॥४॥ वैरियोंके, न रथोंमें न घोडोंमें न हाथियोंमें और न कवचोंमें कोई ऐसा था कि—जो तीखे वाणोंसे घायल न हुआ हो, केवल दो दो अंगुल स्थान वचा था और सव स्थान घायल होरहे थे५ विजयपानेवाले पार्थका दिव्य अस्त्रोंको चलाना उत्तरका घोडों

शिक्षोपगमनत्वाद्रणाच्च परिक्रमात् । वीर्यसत्त्वं शूरं चाभय दृष्ट्वा अरयोऽपूजयन् ॥ ६ ॥ कालाग्निमिव बीभत्सुं निर्दहन्तमिव प्रजाः । नारयः प्रेक्षितुं शेकुर्ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ७॥ तानि प्रस्तान्यनीकानि रेजुरर्जुनमार्गणैः । शैलं प्रति घनाभ्राणि व्याप्तानीवार्करश्मिभिः ॥ ८ ॥ अशोकानां वनानीव छन्नानि बहुशः शुभैः । रेजुः पार्थशरैस्तत्र तदा सैन्यानि भारत ॥ ९ ॥ ध्वजोत्तुङ्गशरैः शीर्णं पुष्पस्तूपं ह्रियमाणम् । छत्राणि च पताकाश्च खे बभार सदागतिः ॥१०॥ कृत्तरश्मास्तदात्रस्ताः परिपेतुर्दिशो दश । रथाङ्गदेशानादाय पार्थच्छिन्नयुगा हयाः ॥ ११ ॥ कर्णकक्षाविषाणेषु अन्तरोष्ठेषु चैव ह । [illegible] शरैरभजन् ॥ १२ ॥ कौरवाग्रगजानां तु शरीरैर्गतचेतसाम् । क्षणेन संवृता भूमिर्मेघैरिव नभस्तलम् ॥१३॥

को हाँकनेकी विद्याको अच्छेप्रकार जानना और कलाओंका ज्ञान तथा अस्त्रोंको रणभूमिमें इधर उधरको घुमाना धीरता और उत्तमताके साथ शीघ्रतासे शस्त्रोंका छोड़ना आदि देखकर सब वैरी अर्जुन की बड़ाई करनेलगे ॥ ६ ॥ जैसे प्रलयकालका अग्नि प्रजाओंको भस्म करने लगता है वैसे ही अब अर्जुन रणमें वैरियोंको भस्म करने लगा तब वैरी, धधकते हुए अग्निकी समान पार्थकी ओरको देख भी नहीं सके ॥ ७॥ जैसे पहाड़के ऊपर महाबली मेघ सूर्यकी किरणोंसे छाजाते हैं वैसेही धनञ्जयके बाणोंसे ढकीहुई कौरवोंकी चलरही सेना भी शोभाको प्राप्त हुई ॥८॥ हे भारत! उस समय तहाँ अर्जुनके बाणों से अधिकतर ढकी हुई कौरवसेनाएं पुष्पोंसे ढके हुए अशोकके वनों की समान शोभाको प्राप्त हुईं ॥९॥ जैसे पीले चम्पाके फूलोंकी माला मेंसे गिरेहुए एक सूखते हुए फूलको वायु आकाशमें उड़ाये फिरता है तैसे ही अर्जुन भी अपने बाणोंसे वैरियोंके छत्र और पताकाओंको आकाशमें उड़ा रहा था ॥ १० ॥ अर्जुनके बाणोंसे जिनके जोत कट गए हैं ऐसे वैरियोंके घोड़े अपनी सेनामेंकी व्याकुलतासे भयभीत होगए और रथोंकी धुरियोंके एक ओरके भागोंको ले ले कर दशों दिशाओंमेंको भागने लगे ॥११॥ उसने संग्राम भूमिमें हाथियोंके, कान आँख, दाँत और भीतरके होठ इन सब अङ्गोंमें घायल करके गिरा दिया ॥ १२ ॥ कौरवोंकी सेनामें आगे चलनेवाले हाथी मर मर कर गिरे तो उनके शरीरोंसे क्षणभरमें ढकीहुई पृथिवी, मेघोंसे ढके हुए आकाशसी प्रतीत होने लगी ॥ १३ ॥ हे महाराज जैसे प्रलयकालमें

युगान्तसमये सर्वं यथा स्थावरजंगमम्। कालक्षयमशेषेण दहत्कृष्णशिखः शिखी। तद्वत् पार्थो महाराज ददाह समरे रिपून् ॥ १४ ॥ ततः सर्वास्त्रतेजोभिर्धनुषो निःस्वनेन च। शब्दैरमानुषाणां च भूतानां ध्वजवासिनाम्। भैरवं शब्दमत्यर्थं वानरस्य च कुर्वतः ॥१५॥ ध्वाग्निपाश्च बीभत्सुस्तस्मिन् दौर्योधने बले। भयमुत्पादयामास बलवानरिमर्दनः ॥ १६ ॥ रथशक्तिममित्राणां प्रागेव निपतद्भुवि। सोपयात्सहसा पश्चात् साहसाच्चाभ्युपेयिवान् ॥ १७ ॥ शरव्रातैः सुतीक्ष्णाग्रैः समादिष्टैः खगैरिव। अर्जुनस्तु समावव्रे लोहितप्राशनैः खगैः ॥ १८ ॥ अभ्र मध्ये यथार्कस्य रश्मयस्तिग्मतेजसः। दिशासु च तथा राजन् न संख्याताः शरास्तदा ॥ १९ ॥ सकृदेवानतं शेकू रथमभ्यसितुं परे। अलभ्यः पुनरश्वैस्तु रथात् सोऽनिप्रपाद्येत् ॥ २० ॥ ते शरा द्विट्शरीरेषु यथैव न ससञ्जिरे। द्विडनीकेषु बीभत्सोर्न

अग्नि अपनी भयानक लपटोंसे इस चराचर सब जगत्को जला कर भस्म कर डालता है तैसे ही रणमें अर्जुन भी रिपुओंको जलाने लगा ॥ १४ ॥ फिर रिपुनाशी बलवान् अर्जुनने सब प्रकारके अस्त्रोंके तेजोंसे, धनुषकी टङ्कारसे, ध्वजामें रहने वाले अलौकिक प्राणियोंके शब्दोंसे, वानरके डरावने किलकिल शब्दसे तथा शंखके शब्दसे वैरियोंकी सेनाको भयभीत करडाला ॥ १५—१६ ॥ वैरियोंके शरीरोंकी शक्तिको प्रथम दर्शनमात्रसे ही नष्ट करदिया और फिर असमर्थोंके ऊपर हाथ छोड़ना अनुचित विचार कर धनञ्जय आप ही तहाँसे चलागया और फिर एकायकी उनके साथ युद्ध करनेको चढ़ आया ॥ १७ ॥ रुधिरका स्वाद चखनेवाले तीखी चोंचके पक्षियोंको आज्ञा देने पर जैसे उनसे आकाश ढक जाता है तैसे ही अर्जुनने रुधिर पीनेवाले और बड़ी ही तेज धारके बहुतसे बाण धनुषमेंसे छोड़कर आकाशको छादिया ॥ १८ ॥ उस समय हे राजन्! जैसे एक पात्रमें सूर्यकी किरणें संकोचसे रहती हैं तैसे ही दिशाओंमें भी असंख्यों बाण संकोचसे रहे थे ॥ १९ ॥ जब अर्जुनका रथ बहुत ही समीप आपहुँचता था, उस समय एक वार ही शत्रु उसको पहिचान सकते थे, क्योंकि-वे ज्यों ही उसको देखते थे, कि-इतनेमें ही अर्जुन उनको रथमेंसे गिरा घोड़ों सहित परलोकमें भेजदेता था ॥ २० ॥ जैसे अर्जुनके बाण वैरियोंके शरीरोंमें घुसकर अटकते नहीं थे, किन्तु आर पार निकल जाते थे तैसे ही उनका रथ भी उस समय शत्रुओं

सज्जत रथस्तदा ॥ २१ ॥ स तद्विक्षोभयामास ह्यरातिबलमञ्जसा । अनन्तभोगो भुजगः क्रीडन्निव महार्णवे ॥ २२ ॥ अस्यतो नित्यमत्यर्थं सर्वमेवातिगस्तथा । अश्रुतः श्रूयते भूतैर्धनुर्घोषः किरीटिनः २३ संसक्तास्तत्र मातङ्गा बाणैरन्तरान्तरे । संवृतास्ते न दृश्यन्ते मेघा इव गभस्तिभिः ॥ २४ ॥ दिशोऽनुभ्रमतः सर्वाः सव्यदक्षिणमस्यतः । सततं दृश्यते युद्धे सायकासनमण्डलम् ॥ २५ ॥ पतन्त्यरूपेषु यथा चक्षूंषि न कदाचन । नालक्ष्येषु शराः पेतुस्तथा गाण्डीवधन्वनः २६ मार्गो गजसहस्रस्य युगपद्गच्छतो वने । यथा भवेत्तथा जज्ञे रथमार्गः किरीटिनः ॥ २७ ॥ नूनं पार्थजयैषित्वाच्छक्रः सर्वामरैः सह । हन्त्यस्मानिति मन्यन्त पार्थेन निहताः परे ॥ २८ ॥ घ्नन्तमत्यर्थमहितान् विजयन्तत्र मेनिरे । कालमर्जुनरूपेण संहरन्तमिव प्रजाः ॥ २९ ॥ कुरुसैन्यशरीराणि पार्थेनाहतान्यपि । सेदुः पार्थहतानीव पार्थ-

---

की सेनामें शस्त्रके बिना निकला हुआ चलाजाता था ॥ २१ ॥ अनन्त फणोंवाले शेषनाग जैसे महासागरमें सुखसे विहार करके उसको झँकोल डालते हैं तैसे ही अर्जुनने भी कौरवदलमें बिना श्रमके घूम कर उसमें खलबली डाल दी ॥ २२ ॥ जिस समय अर्जुन बार२ धनुष को खैंचकर बाणोंको फैंकता था उस समय पहिले कभी न सुनेहुए सब शब्दोंसे बड़े चढ़े उसके धनुषकी टङ्कारके शब्दको लोग सुनते थे २३ उस रणभूमिमें बाणोंसे घायल होकर थोड़ी दूर पर पड़े हुए हाथियों के समूह सूर्यकी किरणोंसे छायेहुए मेघोंसरीखे दीखते थे ॥ २४ ॥ अर्जुन सब दिशाओंमें घूम२ कर दाहिने बायें ओरको बराबर बाण छोड़ता था, इसकारण रणमें उसका धनुष मण्डलाकारसा दीखता था ॥ २५ ॥ आँखें जैसे कभी आकाररहित पदार्थों पर नहीं पड़तीं तैसे ही अर्जुनके बाण निशानेसे बचकर किसी दूसरे स्थान पर नहीं पड़े ॥ २६ ॥ इकट्ठे होकर वनमें जातेहुए हजारों हाथियोंको जैसे मार्ग मिलजाता है तैसे ही कौरवदलमें जाते हुए अर्जुनके रथको भी चाहे जहाँ मार्ग मिल जाता था ॥ २७ ॥ अर्जुन जिन शत्रुओंको मारडालता था वे शत्रु यह मान लेते थे, कि-अवश्य ही इन्द्र अर्जुनकी विजय चाहता है इस कारण वही सब देवताओंके साथ आकर हमें मारडालता है ॥ २८ ॥ रणभूमिमें सबका पूरा२ संहार करतेहुए अर्जुनको देखकर वे समझते थे, कि—यह तो अर्जुनके रूपमें प्रजाका संहार करनेवाला काल ही चढ़ आया है ॥ २९ ॥ अर्जुनने कौरवदलके

कर्मानुशासनात् ॥ ३० ॥ ओषधीनां शिरांसीव छित्त्वा शीर्षाणि सोऽभ्ययात । अवनेशुः कुरूणां हि वीर्याण्यर्जुनजाद्भयात् ॥ ३१ ॥ अर्जुनानिलभिन्नानि वनान्यर्जुनविद्विषाम् । चक्रुर्लोहितधाराभिर्धरणीं लोहितान्तराम् ॥ ३२ ॥ लोहितेन समायुक्तैः पांशुभि पवनोद्धतैः । बभूवुर्लोहितास्तत्र भृशमादित्यरश्मयः ॥ ३३ ॥ सार्कं खन्तत् क्षणेनासीत् सन्ध्यायामिव लोहितम् । अप्यस्तं प्राप्य सूर्योऽपि निवर्तेत न पाण्डवः ॥३४॥ तान् सर्वान् समरे शूरः पौरुषे समवस्थितान् । दिव्यैरस्त्रैरचिन्त्यात्मा सर्वानार्च्छद्धनुर्धरान् ॥ ३५ ॥ स तु द्रोणं त्रिसप्तत्या क्षुरप्राणां समार्पयत् । दुःसहं दशभिर्बाणैर्द्रौणिमष्टाभिरेव च ॥ ३६ ॥ दुःशासनं द्वादशभिः कृपं शारद्वतं त्रिभिः । भीष्मं शान्तनवं षष्ट्या राजानञ्च शतेन ह । कर्णञ्च कर्णिना कर्णे विव्याध परवीरहा ॥ ३७ ॥ तस्मिन् विद्धे महेष्वासे कर्णे सर्वास्त्रकोविदे । हताश्व-

---

योधाओंके शरीरोंको ऐसा घायल करडाला था कि–उसकी उपमा अर्जुनके युद्धके सिवाय और किसी संग्रामसे दी ही नहीं जासकती३० उसने धानोंकी वालोंकी समान शत्रुसेनाके शिर क्रम२ से काटडाले, उस समय अर्जुनके भयसे कौरवोंका वल अपार नष्ट होगया अर्जुनके शत्रुरूपी वन अर्जुनरूपी पवनसे छिन्न भिन्न होगए और रुधिर रूपी लाल निर्यास (वृक्षमद) से भूमि बड़ी ही लाल२ होगई ।३२। रुधिरसे लाल रङ्गकी हुई धूलि, पवनसे आकाशमें उड़ने लगी इस कारण सूर्यकी किरणें भी वहुत ही लाल२ होगईं ॥ ३३ ॥ कुछ ही देरमें सूर्य सहित यह आकाश, जैसे सन्ध्याकालमें होता है तैसे लाल लाल होगया, फिर सूर्यनारायण अपनी किरणोंको रोककर अस्ताचल को प्राप्त होगये,तो भी अर्जुन अपने वाणोंको छोड़नेसे नहीं रुका३४ किन्तु जिसके मनकी बात न जानी जाय ऐसा वीर अर्जुन रणभूमि में अपने वल पर ठहरे हुए और धनुष को धारण करनेवाले सब योधाओंके सामने अपने दिव्य अस्त्रोंकी सहायतासे फिर लड़नेको चल दिया ॥ ३५ ॥ पहिले झपाटे में ही उसने क्षुप्र नामके तिहत्तर वाण द्रोणाचार्यके मारे, दश वाण दुःसह नामवाले कौरवके मारे और आठ वाण अश्वत्थामाके मारे ॥ ३६ ॥ बारह दुःशासनके और तीन शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यके मारे, साठ शान्तनुके पुत्र भीष्मके मारे, सौ दुर्योधनके मारे और फिर वैरियोंका संहार करनेवाले वीर अर्जुनने कर्णि नामका वाण मारकर कर्णके कानको बींध दिया ॥ ३७ ॥ महा-

द्रुते विकर्णे ततोऽनीकमभज्यत ॥ ३८ ॥ तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पार्थमाजिस्थितं पुनः । अभिप्रायं समाज्ञाय वैराटिरिदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ आस्थाय रुचिरं जिष्णो रथं सारथिना मया। कतमं यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया ॥४०॥ अर्जुन उवाच । लोहिताश्वमरिष्टं यं वैयाघ्रमनुपश्यसि । नीलां पताकामाश्रित्य रथे तिष्ठन्तमुत्तर ॥ ४१ ॥ कृपस्यैतद्रथानीकं प्रापयस्वैतदेव माम् । एतस्य दर्शयिष्यामि शीघ्रास्त्रं दृढधन्विनः ॥ ४२ ॥ ध्वजे कमण्डलुर्यस्य शातकौम्भमयः शुभः । आचार्य एष हि द्रोणः सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ ४३ ॥ सदा ममैष मान्यस्तु सर्वशस्त्रभृतामपि । सुप्रसन्नं महावीरं कुरुष्वैनं प्रदक्षिणम् ॥४४॥ अत्रैवाचावरोहैनमेष धर्मः सनातनः । यदि मे प्रथमं द्रोणः शरीरे प्रहरिष्यति ॥ ४५ ॥ ततोऽस्य प्रहरिष्यामि नास्य कोपो भवेदिति ।

धनुर्धारी और सब अस्त्रविद्यामें चतुर कर्णके कानको बींध देनेपर उसके रथके घोड़ोंको और सारथीको भी मार डाला तब कर्ण रथ हीन होगया और उसकी सेनामें भागड़ पड़गई ॥ ३८॥ शत्रुकी सेनामें भागड़ पड़ीहुई देखकर और अर्जुनको रणमें खड़ा देखकर तथा उसके अभिप्रायको समझकर उत्तर इसप्रकार कहने लगा कि-॥३९॥ हे विजय पानेवाले ! मनोहर रथमें बैठकर इस सारथिके साथ अब कौनसी सेनामें जाना चाहते हो ? आपके आज्ञा देते ही मैं उस सेनाको ओरको चलूँगा ॥४०॥ अर्जुनने कहा, कि-हे उत्तर ! लाल घोड़े और नीली पताकावाले व्याघ्रकी खालसे मढ़े रथमें बैठेहुए जिस महात्मा पुरुषको तू देखरहा है वह कृपाचार्य हैं उनकी सेनाके मुहाने तू वहाँ तक मुझे लेचल,इस दृढ धनुषधारीको मैं अपनी अस्त्र चलानेकी शीघ्रता (फुरती) दिखाऊँगा४१॥४२ और जिनकी ध्वजामें सुन्दर सोनेके कमण्डलुका चिन्ह है वह सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य हैं ४३ वह महात्मा मेरे तथा दूसरे शस्त्रधारियोंके भी मान्य हैं, तू इन परमप्रसन्न और महावीर आचार्यकी मेरे रथसे प्रदक्षिणा कर ४४ तू यहाँ पहिलेसे ही इनको मान्य देकर युद्ध करनेको तयार होजा, यह द्रोणाचार्य पहिले मेरे ऊपर शस्त्र छोड़ेंगे तब मैं इनके ऊपर प्रहार करूँगा, कि-जिससे इनको क्रोध न आये ॥४५॥ इनसे थोड़ीही दूर जिसकी ध्वजाके अग्रभागमें धनुषका चिन्ह दीख रहा है वह द्रोणाचार्यका पुत्र महारथी अश्वत्थामा है ॥ ४६ ॥ यह सदा मेरे तथा दूसरे सब शस्त्रधारियोंके भी मान्य हैं, इस कारण तू ।अपने रथको इनके

अस्याविदूरे हि धनुर्ध्वजाग्रं यस्य दृश्यते ॥ ४६ ॥ आचार्यस्यैष पुत्रो
वै अश्वत्थामा महारथः । सदा ममैष मान्यस्तु सर्वशस्त्रभृतामपि ४७
एतस्य त्वं रथं प्राप्य निवर्तेथाः पुनः पुनः । य एष तु रथानीके सुवर्णकवचावृतः ॥ ४८ ॥ सेनाग्र्येण तृतीयेन व्यवहार्येण तिष्ठति । यस्य
नागो ध्वजाग्रे वै हेमकेतनसंश्रितः ॥ ४९ ॥ धृतराष्ट्रात्मजः श्रीमानेष
राजा सुयोधनः । एतस्याभिमुखं वीर रथं परथारुजम् ॥ ५० ॥ प्रापयस्वैष राजा हि प्रमाथी युद्धदुर्मदः । एष द्रोणस्य शिष्याणां शीघ्रास्त्रे
प्रथमो मतः ॥ ५१ ॥ एतस्य दर्शयिष्यामि शीघ्रास्त्रं विपुलं रणे । नागकक्षा तु रुचिरा ध्वजाग्रे यस्य तिष्ठति ॥ ५२ ॥ एष वैकर्त्तनः कर्णो
विदितः पूर्वमेव ते । एतस्य रथमास्थाय राधेयस्य दुरात्मनः ॥ ५२ ॥
यत्तो भवेथाः संग्रामे स्पर्द्धते हि सदा मया । यस्तु नीलानुसारेण पंचतारेण केतुना ॥ ५३ ॥ हस्तावापी बृहद्धन्वा रथे तिष्ठति वीर्यवान् ।
यस्य तारार्कचित्रोऽसौ ध्वजो रथवरे स्थितः ॥ ५५ ॥ यस्यैतत् पांडुरं
छत्रं विमलं मूर्ध्नि तिष्ठति । महतो रथवंशस्य नानाध्वजपताकिनः ५६

रथके पास लेजाकर बारंबार तहाँसे पीछेको फेरना ॥ ४७ ॥ रथोंकी
सेनामें यह सोनेका कवच पहर कर विश्राम बिना लिये ही युद्ध करने
वाली मुख्य तीसरी सेनाके साथ जो खड़ा है और जिसकी ध्वजाके
अग्रभागमें सुवर्णके चिन्होंवाला हाथी बना है यह धृतराष्ट्रका पुत्र
श्रीमान् राजा सुयोधन है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हे वीर उत्तर ! शत्रुके रथ
को नाश करनेवाले मेरे रथको तू उसके सन्मुख ले चल, क्योंकि-वह
राजा संहार करनेवाला और रणमें सदा मदमत्त रहता है ॥५०॥ और
वह द्रोणाचार्यके शिष्योंमें शीघ्रतासे अस्त्र छोड़नेवालोंमें मुख्य गिना
जाता है, इसकारण मैं इसको रणभूमिमें अपनी अस्त्र छोड़नेकी
शीघ्रता दिखाऊँगा ॥ ५१ ॥ जिसकी ध्वजाके अग्रभागमें हाथीको
बाँधनेकी सुन्दर जंजीर लटक रही है यह सूर्यनन्दन है, जिसको तू
पहिलेसे ही पहिचानता है ॥ ५२ ॥ यह सदा ही मेरे साथ डाह किया
करता है, तू इस दुष्टात्मा कर्णके रथके पास पहुँच कर सावधान
रहना ॥ ५२ ॥ सुवर्णके पाँच मण्डलोंवाली नीले रंगकी ध्वजा वाले
रथमें बैठा हुआ जो हाथोंमें मोजे पहिरे बड़ेभारी धनुषवाला पराक्रमी
है ॥ ५४ ॥ जिसके श्रेष्ठ रथके ऊपर सूर्य और तारोंके चित्रों वाली
ध्वजा फहरा रही है और जिसके मस्तक पर श्वेत रंगका निर्मल छत्र
लगरहा है५५और जो अनेकों प्रकारकी ध्वजा पताकाओंवाली बहुत

बलाहकाग्रे सूर्यो वा य एष प्रमुखे स्थितः । हेमचन्द्रार्कसंकाशं कवचं यस्य दृश्यते ॥ ५७ ॥ जातरूपशिरस्त्राणं मनस्तापयतीव मे । एष शान्तनवो भीष्मः सर्वेषां न पितामहः ॥ ५८ ॥ राजश्रियाभिवृद्धश्च सुयोधनवशानुगः । पश्चादेष प्रयातव्यो न मे विघ्नकरो भवेत् ५९ एतेन युध्यमानस्य यत्तः संयच्छ मे हयान् । ततोऽभ्यवहदव्यग्रो वैराटिः सव्यसाचिनम् । यत्रातिष्ठत् कृपो राजन् योत्स्यमानो धनञ्जयम् ॥६०॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुनकृप-
संग्रामे पंचपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

वैशम्पायन उवाच । तान्यनीकान्यदृश्यन्त कुरूणामुग्रधन्विनाम् । संसर्पन्ते यथा मेघा घर्मान्ते मन्दमारुताः ॥ १ ॥ अभ्याशे वाजिनस्तस्थुः समारूढाः प्रहारिणः । भीमरूपाश्च मातङ्गास्तोमराङ्कुशनोदिताः । महामात्रैः समारूढा विचित्रकवचोज्ज्वलाः ॥ २ ॥ ततः शक्रः सुरगणैः समारुह्य सुदर्शनम् । सहोपायात्तदा राजन् विश्वाश्विमरुतां गणैः ॥३॥

सो रथसेनाके आगे, जैसे बादलोंके आगे सूर्य खड़ाहो तैसे खड़ा है ५६ जिसका सोनेका कवच सूर्य चन्द्रमाकेसा दमकता हुआ दीख रहा है और जिसके मस्तक पर दिपताहुआ सोनेका टोप मेरे मनको संताप सा देरहा है ॥ ५७ ॥ यह हम सबोंके पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मजी हैं, यह राजलक्ष्मीमें बढ़ेहुए हैं और दुर्योधनके अधीन रहते हैं ॥५८॥ इनके पास सबसे पीछे जाना चाहिये, क्योंकि-ये मेरे काममें विघ्नकारी नहीं होंगे, मैं जब इनके साथ युद्ध करूँ तब तू सावधान होकर रणभूमिमें मेरे रथके घोड़ोंको थामे रहना ॥५९॥ हे राजन् ! इसप्रकार बातें होनेके अनन्तर विराटनन्दन उत्तर सावधान होगया और जहाँ अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे कृपाचार्य खड़े थे तहाँ अर्जुनको लेगया ॥ ६० ॥ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥

वैशम्पायनने कहा, कि-हे जनमेजय ! जैसे बादल वर्षाकालमें मंद २ पवनकी हिलोरोंसे धीरे २ चलते हैं तैसे ही उग्र धनुष वाली कौरवोंकी सेनायें भी धीरे २ चलती हुई दीखीं॥१॥ एक भागमें घुड़सवार योधा धीरे २ ही चल रहे थे, उनके समीपमें बड़े २ महावत विचित्र झूलोंसे दमकतेहुए और भयानक आकारके हाथियोंपर सवार होकर तोमर और अंकुशोंसे उन हाथियोंको चला रहे थे२ हे राजन् ! उस समय तहाँ विश्वेदेवता, अश्विनीकुमार और मरुद्गणोंके साथ इन्द्रदेव विमानोंमें चढकर उन योधाओंका समागम देखनेके लिए आ

तदेव यक्षगन्धर्वमहोरगसमाकुलम् । शुशुभेऽभ्रविनिर्मुक्तं ग्रहाणामिव मण्डलम् ॥ ४ ॥ अस्त्राणां च बलं तेषां मानुषेषु प्रयुञ्जताम् । तच्च भीमं महद्युद्धं कृपार्जुनसमागमे । द्रष्टुमभ्यागता देवा स्वविमानैः पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥ शतं शतसहस्राणां यत्र स्थूणा हिरण्मयी । मणिरत्नमयी चान्या प्रासादं तदधारयत् ॥ ६ ॥ ततः कामगमं दिव्यं सर्वरत्नविभूषितम् । विमानं देवराजस्य शुशुभे खेचरं तदा ॥ ७ ॥ तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्तिष्ठन्ति सहवासवाः । गन्धर्वा राक्षसाः सर्पाः पितरश्च महर्षिभिः ॥ ८ ॥ तथा राजा वसुमना बलाक्षः सुप्रतर्द्दनः । अष्टकश्च शिविश्चैव ययातिर्नहुषो गयः ॥ ९ ॥ मनुः पुरू रघुर्भानुः कृशाश्वः सगरो नलः । विमाने देवराजस्य समदृश्यन्त सुप्रभाः ॥ १० ॥ अग्नेरीशस्य सोमस्य वरुणस्य प्रजापतेः । तथा धातुर्विधातुश्च कुबेरस्य यमस्य च ॥ ११ ॥ अलंबुषोग्रसेनायां गन्धर्वस्य च तुम्बुरोः । यथामानं यथोद्देशं विमानानि चकाशिरे ॥ १२ ॥ सर्वदेवनिकायाश्च सिद्धाश्च परमर्षयः । अर्जुनस्य कुरूणां च द्रष्टुं युद्धमुपागताः ॥ १३ ॥ दिव्यानां सर्वमाल्यानां

पहुँचे ॥ ३ ॥ वह देवता, यक्ष गन्धर्व और महानागोंसे भराहुआ भूमिका भाग, आकाशमेंसे टूटकर गिराहुआ ग्रहमण्डलसा शोभा पारहा था ४ कृपाचार्य और अर्जुनके महायुद्धमें मनुष्योंके ऊपर छोड़े जाते हुए अस्त्रोंके बलको, तथा उस महाभयानक युद्धको देखनेके लिए देवता अपने जुदे जुदे विमानोंमें बैठकर रणभूमिमें आए थे ॥ ५ ॥ एक लाख सोनेके थम्भ तथा और भी कितने ही मणि रत्नोंसे जड़े हुए थम्भों पर टिका हुआ, जिसमें कितनेंही महल बने थे ऐसा इन्द्रका इच्छानुसार चलने वाला, सब रत्नोंसे सजा हुआ और आकाश-चारी दिव्य विमान दिप रहा था ॥ ६ ॥ ७ ॥ और महाकान्ति वाले तैंतीस देवता, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, पितर, महर्षि, राजा वसुमना, बलाक्ष, सुप्रतर्दन, अष्टक, शिवि, ययाति, नहुष, गय, मनु, पुरु, रघु, भानु, कृशाश्व, सगर और नल ये सब कान्तिमान् राजे भी देवराज इन्द्रके विमानमें बैठेहुए दीखे ॥ ८—१० ॥ अग्नि, रुद्र, सोम, वरुण, प्रजापति, धाता, विधाता कुबेर, यम अलम्बुष उग्रसेन और तुम्बुरु आदि गन्धर्व, इनके विमान भी अपने २ मान और स्थानके अनुसार आकाशमें खड़ेहुए दीखते थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसप्रकार सब देवता, सिद्ध और परमऋषि अर्जुन और कौरवोंका युद्ध देखनेको तहाँ आये थे ॥ १३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! वसन्त ऋतुके आरंभमें जैसे वनोंके

गन्धः पुष्पोत्थ सर्वशः । प्रसस्नार वसन्ताग्रे वनानामिव भारत ॥ १४ ॥ तत्र रत्नानि देवानां समदृश्यन्त तिष्ठताम् । आतपत्राणि वासांसि स्रजश्च व्यजनानि च ॥ १५ ॥ उपाशाम्यद्रजो भौमं सर्वं व्याप्तं मरीचिभिः । दिव्यगन्धानुपादाय वायुर्योधानसेवत ॥ १६ ॥ प्रभासितमिवाकाशं चित्ररूपमलंकृतम् । सम्पतद्भिः स्थितैश्चापि नानारत्नावभासितैः ॥ १७ ॥ विमानैर्विविधैश्चित्रैरुपानीतैः सुरोत्तमैः । वज्रभृच्छुशुभे तत्र विमानस्थैः सुरैर्वृतः ॥ १८ ॥ बिभ्रन् मालां महातेजाः पद्मोत्पलसमायुताम् । विप्रेक्ष्यमाणो बहुभिर्नातृप्यत् सुमहाहवम् ॥ १९ ॥ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि देवागमने
षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

वैशम्पायन उवाच । दृष्ट्वा व्यूढान्यनीकानि कुरूणां कुरुनन्दनः । तत्र वैराटिमामन्त्र्य पार्थो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ जाम्बूनदमयी वेदी ध्वजे यस्य प्रदृश्यते । तस्य दक्षिणतो याहि कृपः शारद्वतो यतः ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । धनञ्जयवचः श्रुत्वा वैराटिस्त्वरितस्ततः । हयान्

सुगन्धित फूलोंकी पवित्र गन्ध चारों ओर फैलजाती है तैसे ही तहाँ भी नाना प्रकारके दिव्य फूलोंकी पवित्रगन्ध चारों ओर फैल रही थी १४ वहाँ खड़ेहुए देवताओंके रत्न, छत्र, वस्त्र, पुष्पमालायें और पंखे दमकतेहुए दीखरहे थे ॥ १५ ॥ सेनाके पैरोंसे धूल उड़ना बन्द होगई थी और चारों ओर गहनोंकी किरणें फैलरही थीं तथा वायु दिव्य गन्धको लेकर योधाओंकी सेवा कररहा था ॥ १६ ॥ बड़े बड़े देवताओंके साथमें लायेहुए जाति २ के अनेकों प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान आतेहुए और आकर खड़े हुए विमानोंकी कान्तिसे आकाश उज्ज्वल, विचित्र और सजायाहुआ दीखता था तथा विमानोंमें बैठे देवताओंसे घिरेहुए इन्द्र भी शोभायमान होरहे थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ पद्म और उत्पलोंकी मालाको धारण करनेवाले महातेजस्वी इन्द्र, अपने पुत्र अर्जुनके बहुतसोंके साथ होतेहुए महासंग्रामको देखकर तृप्त नहीं होते थे ॥ १९ ॥ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥५६॥ ❀ ❀

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! फिर अर्जुन कौरवोंकी व्यूहरचनावाली सेनाओंको देखकर उत्तरसे कहनेलगा, कि—॥ १ ॥ जिसकी ध्वजामें सुवर्णकी वेदी दीखरही है, उस रथके दाहिनी ओर मेरे रथको ले चल, क्योंकि—तहाँ कृपाचार्य खड़े हैं ॥ २ ॥ वैशंपायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! अर्जुनकी इस बातको सुनकर

रजतसंकाशान् हेमभाण्डानचोदयत् ॥ ३ ॥ आनुपूर्व्या तु तत्सर्वमास्थाय जवमुत्तमम् । प्राहिणोच्चन्द्रसंकाशान् कुपितानिव तान् हयान् ॥ ४ ॥ स गत्वा कुरुसेनायाः समीपं हयकोविदः । पुनरावर्तयामास तान्हयान् वातरंहसः ॥ ५ ॥ प्रदक्षिणमुपावृत्य मण्डलं सव्यमेव च । कुरून् सम्मोहयामास मत्स्यो यानेन तत्त्ववित् ॥ ६ ॥ कृपस्य रथमास्थाय वैराटिरकुतोभयः । प्रदक्षिणमुपावृत्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥ ७ ॥ ततोऽर्जुनः शंखवरं देवदत्तं महारवम् । प्रदध्मौ बलमास्थाय नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ ८ ॥ तस्य शब्दो महानासीद्धम्यमानस्य जिष्णुना । तथा वीर्यवता संख्ये पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ ९ ॥ पूजयांचक्रिरे शंखं कुरवः सहसैनिकाः । अर्जुनेन तथा ध्मातः शतधा यन्न दीर्यते ॥ १० ॥ दिवमावृत्य शब्दस्तु निवृत्तः शुश्रुवे पुनः । सृष्टो मघवता वज्रः प्रपतन्निव पर्वते ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो बलवीर्यसमन्वितः । अर्जुनं

उत्तर, शीघ्र २ रुपहली रंगके और सुनहरी गहने पहरनेवाले घोड़ोंको उधरको ही हाँकनेलगा ॥ ३ ॥ और दौड़ानेकी जितनी रीतियें हैं उन सब रीतियोंसे क्रम २ से काम लेकर चन्द्रमाकी समान स्वेत रंगके घोड़ोंको हांका और घोड़े भी कोपमें भरेहुएसे भागनेलगे ॥ ४ ॥ अश्वशास्त्रमें निपुण उत्तर, अपने रथको कौरवोंके पास लेजाकर वायुकी समान वेगवाले उन घोड़ोंको फिर लौटालाया ॥ ५ ॥ अश्वशास्त्रको जाननेवाले उत्तरने, दाहिनी और बाईं ओरसे रथको चक्कर देकर कौरवोंको मोहित करदिया ॥ ६ ॥ और फिर बली उत्तरने निर्भयताके साथ कृपाचार्यके रथकी ओरको अपना रथ हाँका और उनकी प्रदक्षिणा करके उनके सामने जाकर खड़ा होगया ॥ ७ ॥ तदनन्तर अर्जुनने अपना नाम बताकर देवदत्तनामवाले बड़े भारी शंखको जोरसे बजाया ॥ ८ ॥ पराक्रमी अर्जुनने जब रणभूमिमें शंखको बजाया उस समय उसका ऐसा बड़ा शब्द हुआ कि—मानो कोई पर्वत फट रहा है ॥ ९ ॥ कौरवोंने और उनकी सेनाने, अर्जुनके शंखकी सराहना करके कहा कि—अर्जुनके इसप्रकार बजाने पर कहीं इस शंखके सौ टुकड़े न होगये हों ! ॥ १० ॥ उस शंखका शब्द आकाशमें फैलकर तहाँसे फिर लौटा और प्रतिध्वनि (गुंजार) रूपसे फिर सुनाई आनेलगा, परन्तु जैसे ऊपर इन्द्रका माराहुआ वज्र नीचे गिरने पर शब्द करता है तैसा ही शब्द उसने किया ॥ ११ ॥ महाभुजा, बल-वीरतावाले शूर कृपाचार्य उसके शंखके शब्दको न सहसके और उनको अर्जुनके ऊपर

प्रति संरब्धः कृपः परमदुर्जयः । अमृष्यमाणस्तं शब्दं कृपः शारद्वतस्तदा ॥ १२ ॥ अर्जुनं प्रति संरब्धो युद्धार्थी स महारथः । महोदधिजमादाय दध्मौ वेगेन वीर्यवान् ॥ १३ ॥ स तु शब्देन लोकांस्त्रीनावृत्य रथिनां वरः । धनुरादाय सुमहज्ज्याशब्दमकरोत्तदा ॥ १४ ॥ तौ रथौ सूर्यसंकाशौ योत्स्यमानौ महाबलौ । शारदाविव जीमूतौ व्यरोचेतां व्यवस्थितौ ॥ १५ ॥ ततः शारद्वतस्तूर्णं पार्थं दशभिराशुगैः । विव्याध परवीरघ्नं निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥ १६ ॥ पार्थोऽपि विश्रुतं लोके गांडीवं परमायुधम् । विकृष्य चिक्षेप बहून् नाराचान्मर्मभेदिनः ॥ १७ ॥ तानप्राप्तान् शितैर्बाणैर्नाराचान् रक्तभोजनान् । कृपश्चिच्छेद पार्थस्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १८ ॥ ततः पार्थस्तु संक्रुद्धश्चित्रान् मार्गान् प्रदर्शयन् । दिशः संछादयन्बाणैः प्रदिशश्च महारथः । एकच्छायमिवाकाशमकरोत् सर्वतः प्रभुः ॥ १९ ॥ प्राच्छादयदमेयात्मा पार्थः शरशतैः कृपम् । स शरैरर्दितः क्रुद्धः शितैरग्निशिखोपमैः ॥ २० ॥ तूर्णं दशसहस्रेण पार्थमप्रतिमौजसम् । अर्दयित्वा महात्मानं ननर्द समरे

क्रोध आगया ॥ १२ ॥ और वीर महारथी कृपाचार्यने श्रीअर्जुनके ऊपर कुपित होकर युद्ध करनेके लिये अपना शंख हाथमें लेकर बजाया १३ और उस शब्दसे तीनों लोकोंको भरकर महारथी कृपाचार्यने बड़ेभारी धनुषको उठा उसका टंकार शब्द किया ॥ १४ ॥ दोनों बलवान् रथी रणभूमिमें खड़े होकर परस्पर युद्ध करनेलगे, उस समय वे शरद् ऋतु के मेघसे मालूम होते थे ॥ १५ ॥ तदनन्तर कृपाचार्यने तुरन्त ही मर्मभेदी दश बाण मारकर शत्रुमर्दन अर्जुनको बींधदिया ॥ १६ ॥ अर्जुनने भी जगत्में प्रसिद्ध श्रेष्ठ गाण्डीव धनुषको खैंचकर मर्मस्थानोंको भेदनेवाले बहुतसे बाण कृपाचार्यके मारे ॥ १७ ॥ परन्तु कृपाचार्यने रुधिरका भोजन करनेवाले अर्जुनके मारे हुए सैंकड़ों और सहस्रों बाणोंके सामने तीखे बाण मारकर उनके टुकड़े २ करडाले ॥ १८ ॥ तब समर्थ महारथी अर्जुन क्रोधमें भरगया और उसने युद्ध करनेकी अनेकों रीतियें दिखाकर बाणोंकी वर्षासे दिशाओंको और कोणोंको भरदिया तथा आकाशको चारों ओरसे अंधकारमय करदिया ॥ १९ ॥ फिर असीम बलधारी अर्जुनने आकाशको छानेके साथ २ सैंकड़ों बाणोंसे कृपाचार्यको ढकदिया तब कृपाचार्य अग्निकी लपटकी समान तेज बाणोंके प्रहारकी पीडासे क्रोधमें भरगए और अनुपम तेजस्वी महात्मा अर्जुनके ऊपर दश हजार बाणोंका प्रहार करके उस रणभूमि

कृपः ॥ २१ ॥ ततः कनकपर्वाग्रैर्वीरः सन्नतपर्वभिः । त्वरन् गांडीवनिर्मुक्तैरर्जुनस्तस्य वाजिनः ॥ २२ ॥ चतुर्भिश्चतुरस्तीक्ष्णैरविध्यत् परमेषुभिः । ते हया निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः । उत्पेतुः सहसा सर्वे कृपः स्थानादथाच्यवत् ॥ २३ ॥ च्युतन्तु गौतमं स्थानात् समीक्ष्य कुरुनन्दनः । नाविध्यत् परवीरघ्नो रक्षमाणोऽस्य गौरवम् ॥ २४ ॥ स तु लब्ध्वा पुनः स्थानं गौतमः सव्यसाचिनम् । विव्याध दशभिर्बाणैस्त्वरितः कंकपत्रिभिः ॥ २५ ॥ ततः पार्थो धनुस्तस्य भल्लेन निशितेन ह । चिच्छेदैकेन भूयश्च हस्तावापमथाहरत् ॥ २६ ॥ अथास्य कवचं बाणैर्निशितैर्मर्मभेदिभिः । व्यधमन्न च पार्थोऽस्य शरीरमवपीडयत् २७ तस्य निर्मुच्यमानस्य कवचात् काय आबभौ । समये मुच्यमानस्य सर्पस्येव तनुर्यथा ॥ २८ ॥ छिन्ने धनुषि पार्थेन सोऽन्यमादाय कार्मुकम् । चकार गौतमः सज्यं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९ ॥ स तदप्यस्य

में गरजने लगे ॥ २० ॥ २१ ॥ तब वीर अर्जुनने भलेप्रकार नमेहुए पर्वोंवाले और जिनके फलोंपर सोनेका रङ्ग होरहा था ऐसे श्रेष्ठ और तीखे चार वाण मारकर कृपाचार्यके रथमें जुते हुए चारों घोडों को घायल करडाला, उन कोपमें भरे सर्पोंकी समान तीखे वाणोंका प्रहार होते ही कृपाचार्यके रथके सब घोड़े एक साथ अचेत होगए और कृपाचार्य भी अपने स्थान परसे गिरगए ॥ २२ ॥ २३ ॥ तुरन्त ही शूर शत्रुओंका संहार करनेवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनने कृपाचार्य को अपने स्थान परसे गिरा हुआ देखकर उनका गौरव रखनेके लिये आगे को वाण मारना बन्द कर दिया ॥ २४ ॥ परन्तु कृपाचार्य तुरन्त ही सावधान होकर अपने स्थान पर बैठ गये और कंक पक्षीके पंखवाले तीखे दश वाण मार कर सव्यसाची अर्जुनको बींधदिया ॥ २५ ॥ तब तो अर्जुनने भी तेज किये हुए भल्ल नामक वाण मारकर कृपाचार्यके धनुषको काटडाला और फिर एक भल्ल नामका वाण मारकर उनके हाथोंके मौज़ोंको काटदिया और फिर तेज कियेहुए मर्मभेदी वाणोंको मार कर उनके कवचको भी टुकडे२ करदिया, परन्तु यह सब करते हुए भी उनके शरीरको जरा भी पीडा नहीं दी ॥ २६ ॥ २७ ॥ जब कृपाचार्यके शरीर परका कवच टूट पड़ा तब उनमेंसे बाहर निकला हुआ कृपाचार्यका शरीर समय पर कैंचुली छोड़नेवाले सर्पकी समान शोभायमान हुआ ॥ २८ ॥ जब अर्जुनने कृपाचार्यके धनुषको काट डाला तब कृपाचार्यने दूसरा धनुष लेकर उसको ठीक किय, यह बात

धनुश्चिच्छेद नतपर्वणा। एवमन्यानि चापानि बहूनि कृतहस्तवत्, शारद्वतस्य चिच्छेद पाण्डवः परवीरहा ॥ ३० ॥ स छिन्नधनुरादाय रथशक्तिं प्रतापवान्। प्राहिणोत्पाण्डुपुत्राय प्रदीप्तामशनीमिव ॥ ३१ ॥ तामर्जुनस्तदायान्तीं शक्तिं हेमविभूषिताम्। वियद्गतां महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ॥ ३२ ॥ सापतद्दशधा छिन्ना भूमौ पार्थेन धीमता ॥ ३३ ॥ युगपच्चैव भल्लैस्तु ततः सज्यधनुः कृपः। तमाशु निशितैः पार्थं बिभेद दशभिः शरैः ॥ ३४ ॥ ततः पार्थो महातेजा विशिखानग्नितेजसः। चिक्षेप समरे क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् ॥ ३५ ॥ अथास्य युगमेकेन चतुर्भिश्चतुरो हयान्। षष्ठेन च शिरः कायाच्छरेण रथसारथेः ॥ ३६ ॥ त्रिभिस्त्रिवेणुं समरे द्वाभ्यामक्षं महारथः। द्वादशेन तु भल्लेन चकर्तास्य ध्वजं तदा ॥ ३७ ॥ ततो वज्रनिकाशेन फाल्गुनः प्रहसन्निव। त्रयोदशेनेन्द्रसमः कृपं वक्षस्यविध्यत ॥ ३८ ॥ स छिन्न-

[illegible] हुई ॥ २९ ॥ परन्तु अर्जुनने तीखे पर्वोवाले बाण मारकर उस धनुषको भी काट डाला इसप्रकार शस्त्रविद्यामें शिक्षित पुरुषोंके समान बैरियोंको मारनेवाले अर्जुनने ऐसे बहुतसे धनुष काट डाले ॥ ३० ॥ धनुषोंके कटजाने पर प्रतापी कृपाचार्यने बलतेहुए वज्रको, रथशक्ति पाण्डुनन्दनके ऊपर फेंकी ॥ ३१ ॥ तब अर्जुनने अपने ऊपर आती हुई सुवर्णसे जड़ी और बड़ीभारी उल्काकी समान बड़ी शक्तिको आकाशमें आई त्यों ही दश बाण मारकर काटडाली ३२ बुद्धिमान् अर्जुनने भल्ल नामके बाण मारकर उस शक्तिके एकसाथ दश टुकड़े करडाले और वह शक्ति भूमि पर गिरी कि—उसी समय कृपाचार्यने भी धनुष को चढ़ा तेज किये हुए दश बाण मार कर अर्जुनको घायल करदिया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तब तो महातेजस्वी अर्जुन कोपमें भरगया और उस संग्राममें उसने सान पर धरकर तेज किये हुए अग्निकी समान तेजवाले तेरह बाण कृपाचार्यके मारे ॥ ३५ ॥ उन तेरह बाणोंमेंसे एक बाणसे इनके जुएको काटा, चार बाणोंसे चार घोड़ोंको मारडाला और छठे बाणसे रथके सारथिका शिर धड़से अलग करदिया ॥ ३६ ॥ उस महारथीने संग्राममें तीन बाणोंसे रथके जुएके तीन डण्डोंको काटदिया, दो बाणोंसे धुरीको काट डाला और उस समय बारहवाँ बाण मारकर कृपाचार्य के रथकी ध्वजाको भी काटडाला ॥ ३७ ॥ और फिर इन्द्रकी समान पराक्रमी अर्जुनने हँसता हुआसा मुक्त करके वज्रकी समान तेरहवें बाणसे कृपाचार्य की

धन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । गदापाणिरवप्लुत्य तूर्णं चिक्षेप तां गदाम् ॥ ३९ ॥ सा च मुक्ता गदा गुर्वी कृपेण सुपरिष्कृता । अर्जुनेन शरैर्नुन्ना प्रतिमार्गमथागमत् ॥ ४० ॥ तन्तु योधाः परीप्सन्तः शारद्वतममर्षणम् । सर्वतः समरे पार्थं शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ४१ ॥ ततो विराटस्य सुतो सव्यमावृत्य वाजिनः । यमकं मण्डलं कृत्वा तान् योधान् प्रत्यवारयत् ॥ ४२ ॥ ततः कृपमुपादाय विरथं ते नरर्षभाः । अपजह्रुर्महावेगा कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि-उत्तरगोहरणपर्वणि
कृपापयाने सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

वैशम्पायन उवाच । कृपेऽपनीते द्रोणस्तु प्रगृह्य सशरं धनुः । अभ्यद्रवदनाधृष्यः शोणाश्वः श्वेतवाहनम् ॥ १ ॥ स तु रुक्मरथं दृष्ट्वा गुरुमायान्तमन्तिकात् । अर्जुनो जयतां श्रेष्ठ उत्तरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ अर्जुन उवाच । यत्रैषा काञ्चनी वेदी ध्वजे यस्य प्रकाशते । उच्छ्रिता प्रवरे दण्डे पताकाभिरलङ्कृता । अत्र मां वह भद्रं ते द्रोणानीकाय

छातीको छेद दिया ॥ ३८ ॥ कृपाचार्यका धनुष कटगया, रथ टूटगया, घोडे मारेगये, और सारथीका शिर भी कटगया, तब कृपाचार्य तुरन्त ही हाथमें गदा ले रथ परसे कूदपडे और वह गदा अर्जुनके ऊपर फैंकी ॥ ३९ ॥ वह बहुत सम्हाल कर छोडीहुई कृपाचार्यकी गदा अर्जुनके बाणोंसे कटकर उलटी पीछेको ही लौट गई ॥ ४० ॥ इस समय क्रोधमें भरेहुए उन कृपाचार्यकी रक्षा करनेवाले योधा चारों ओरसे अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४१ ॥ यह देख विराटनन्दन उत्तरने बाईं ओरसे, रथको फेरकर वैरियोंको रूँधनेवाला यमक नाम का ऐसा चक्कर दिया, कि—उन पुरुषोंमें श्रेष्ठ योधाओंको शस्त्र छोडनेसे रोक दिया ॥ ४२ ॥ तब तो बडी ही शीघ्रतासे वे श्रेष्ठ योधा रथहीन हुए कृपाचार्यको कुन्तीनन्दन अर्जुनके समीपसे उठाकर ले गए ॥ ४३ ॥ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! कृपाचार्यको रणभूमिमें से उठाकर लेजानेके अनन्तर जिनको कोई भी न धमका सके ऐसे, लाल घोडोंवाले रथमें बैठहुए द्रोणाचार्य, श्वेत घोडों वाले रथमें विराजमान विजयी अर्जुनके ऊपर चढ आये ॥ १ ॥ सोनेके रथमें बैठकर आते हुए अपने गुरुको समीपमें आया हुआ देखकर अर्जुनने उत्तरसे यह कहा ॥ २ ॥ अर्जुन बोला कि—हे सारथी ! जिनकी बडे

सारथे ॥ ३ ॥ अश्वाः शोणाः प्रकाशन्ते बृहन्तश्चारुवाहिनः । स्निग्धविद्रुमसंकाशास्ताम्रास्याः प्रियदर्शनाः । युक्ता रथवरे यस्य सर्वशिक्षाविशारदाः ॥ ४ ॥ दीर्घबाहुर्महातेजा बलरूपसमन्वितः ॥ ५ ॥ सर्वलोकेषु विक्रान्तो भारद्वाजः प्रतापवान् । बुद्ध्या तुल्यो ह्युशनसा बृहस्पतिसमो नये । वेदास्तथैव चत्वारो ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥ ६ ॥ ससंहाराणि सर्वाणि दिव्यान्यस्त्राणि मारिष । धनुर्वेदश्च कार्त्स्न्येन यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितः ॥ ७ ॥ क्षमा दमश्च सत्यञ्च आनृशंस्यमथार्जवम् । एते चान्ये च बहवो यस्मिन् नित्यं द्विजे गुणाः । तेनाहं योद्धुमिच्छामि महाभागेन संयुगे । तस्मात्त्वं प्रापयाचार्यं क्षिप्रमुत्तर वाहय ॥ ९ ॥ वैशम्पायन उवाच । अर्जुनेनैवमुक्तस्तु वैराटिर्हेमभूषणान् । चोदयामास तानश्वान् भारद्वाजरथं प्रति ॥ १० ॥ तमापतन्तं वेगेन पाण्डवं रथिनां वरम् । द्रोणः प्रत्युद्ययौ पार्थं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ११ ततः प्राध्मापयच्छङ्खं भेरीशतनिनादिनम् । प्रचुक्षुभे बलं सर्वमु-

रूपहेवाली ध्वजामें सुवर्णकी वेदी पताकाओंसे शोभायमान दीख रही है वह द्रोणाचार्य खड़े हैं उनकी सेनाके समीप मुझे ले चल, तेरा कल्याण हो ॥ २ ॥ जिनके रथमें चिकने मूँगोंकेसे रङ्गके लाल लाल शरीरवाले और लाल ही मुखोंवाले, बड़े शरीरोंके तथा आनन्द देते हुए एक स्थानसे दूसरे स्थान पर लेजानेवाले, दर्शनीय और सब प्रकार चाल चलनेमें चतुर घोड़े जुत रहे हैं वे द्रोणाचार्य हैं ॥ ४ ॥ घुटनोंतक भुजावाले, महातेजस्वी, बली, रूपवान, सब लोकोंमें पराक्रमी और प्रतापी जो दीखरहे हैं वे द्रोणाचार्य हैं ॥ ५ ॥ ये बुद्धिमें शुक्राचार्यकी समान और नीतिमें बृहस्पतिकी समान हैं तथा हे सारथी! चारों वेद, ब्रह्मचर्य और छोड़ने लौटानेकी क्रिया सहित सब दिव्य शस्त्र तथा पूरा धनुर्वेद इन महात्माके पास नित्य रहता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ क्षमा, दम, सत्य, दया, सरलता और दूसरे भी बहुतसे गुण इन महात्मामें सदा निवास करते हैं ॥८॥ इसकारण इन महाभाग महात्माके साथ मैं संग्राममें युद्ध करना चाहता हूँ, अतः हे उत्तर! तू शीघ्रही रथको ले जाकर मुझे इन द्रोणाचार्यके पास पहुँचादे ॥ ९ ॥ वैशंपायन कहते हैं, कि—हे राजन्! अर्जुनके ऐसा कहनेपर विराटनंदन उत्तरने सोनेके गहने पहरनेवाले उन घोड़ोंको द्रोणाचार्यके रथकी ओरको हाँका ॥ १० ॥ महारथी अर्जुनको बड़े वेगसे अपने ऊपर चढ़कर आते हुए देखकर जैसे मदमत्त हाथी दूसरे हाथीके ऊपरको झपटता है तैसे

द्धूत इव सागरः ॥ १२ ॥ अथ शोणान् सदश्वांस्तान् हंसवर्णैर्मनोजवैः । मिश्रितान् समरे दृष्ट्वा व्यस्मयन्त रणे नराः ॥ १३ ॥ तौ रथौ वीरसम्पन्नौ दृष्ट्वा संग्राममूर्धनि । आचार्यशिष्यावजितौ कृतविद्यौ मनस्विनौ ॥ १४ ॥ समाश्लिष्टौ तदान्योऽन्यं द्रोणपार्थौ महाबलौ । दृष्ट्वा प्राकम्पत मुहुर्भरतानां महद्बलम् ॥ १५ ॥ हर्षयुक्तस्ततः पार्थः प्रहसन्निव वीर्यवान् । रथं रथेन द्रोणस्य समासाद्य महारथः ॥ १६ ॥ अभिवाद्य महाबाहुः सामपूर्वमिदं वचः । उवाच श्लक्ष्णया वाचा कौन्तेयः परवीरहा ॥ १७ ॥ उषिताः स्मो वने वासं प्रतिकर्मचिकीर्षवः । कोपं नार्हसि नः कर्तुं सदा समरदुर्जय ॥ १८ ॥ अहन्तु प्रहृते पूर्वं प्रहरिष्यामि तेऽनघ । इति मे वर्तते बुद्धिस्तद्भवान् कर्तुमर्हति ॥ १९ ॥ ततोऽस्मै प्राहिणोद् द्रोणः शरानधिकविंशतिम् । अप्राप्तांश्चैव तान् पार्थश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ २० ॥ ततः शरसहस्रेण रथं पार्थस्य वीर्यवान् । अवाकिरत् ततो द्रोणः शीघ्रमस्त्रं विद-

ही द्रोणाचार्य अर्जुनके ऊपर चढ़आये ॥ ११ ॥ और सौ नगाड़ोंके समान शब्द करनेवाला शंख वजाया, तब खलवलायेहुए महासागरकी समान सव सेना खलवला उठी और उस समय मनकी समान वेगवाले श्वेत रङ्गके घोड़ोंको लाल रङ्गके घोड़ोंके साथ रणभूमिमें अड़ेहुए देखकर लोग अचरजमें होगए ॥ १३ ॥ अस्त्रविद्याके जाननेवाले, धैर्यधारी महाबली और महारथी गुरु शिष्य अर्थात् द्रोणाचार्य और अर्जुनको आपसमें भेटहुए देखकर रणभूमिमें खड़ीहुई भरतवंशी राजाओंकी वड़ीभारी सेना काँपनेलगी ॥ १४ ॥ १५ ॥ परन्तु वैरियोंका संहार करनेवाला महारथी वीर अर्जुन हर्षमें भरगया और हँसते २ उस अपने रथको हँकवाकर द्रोणाचार्यके रथके पास गया ॥ १६ ॥ और गुरुको प्रणाम करके, महाबाहु रिपुनाशन वीर अर्जुन, कोमल वाणी में शांतिके साथ कहनेलगा ॥ १७ ॥ हम शत्रुओंसे वदला लेनेकी इच्छासे वनमें रहते थे, हे संग्रामदुर्जय ! आपको हमारे ऊपर सदा ही कोप करना उचित नहीं है ॥ १८ ॥ हे निर्दोष गुरुजी ! तुम पहले मेरे ऊपर शस्त्र छोड़ोगे तव मैं आपके ऊपर प्रहार करूँगा, यही मेराविचार है, इसकारण आपको ऐसा ही करना चाहिये ॥ १९ ॥ यह सुनकर द्रोणाचार्यने अर्जुनके इक्कीस वाण मारे परंतुअर्जुनने, शस्त्र चलाने में चतुर हाथवाले पुरुषकी समान, अपने ऊपर आनेसे पहिले ही उन वाणोंको काटडाला ॥ २० ॥ तव पराक्रमी द्रोणाचार्यने अर्जुनके रथके ऊपर और एक हजार वाण मारे तथा शस्त्र मारनेमें अपनी शीघ्रता

विदर्शयन् ॥ २१ ॥ हयांश्च रजतप्रख्यान् कङ्कपत्रैः शिलाशितैः । अवाकिरदमेयात्मा पार्थं संकोपयन्निव ॥ २२ ॥ एवं प्रववृते युद्धं भारद्वाजकिरीटिनोः । समं विमुञ्चतोः संख्ये विशिखान् दीप्ततेजसः ॥२३॥ तावुभौ ख्यातकर्माणावुभौ वायुसमौ जवे । उभौ दिव्यास्त्रविदुषावुभावुत्तमतेजसौ । क्षिपन्तौ शरजालानि मोहयामासतुर्नृपान् ॥ २४ ॥ व्यस्मयन्त ततो योधा ये तत्रासन् समागताः । शरान् विसृजतोस्तूर्णं साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ २५ ॥ द्रोणं हि समरे कोऽन्यो योद्धुमर्हति फाल्गुनात् । रौद्रः क्षत्रियधर्मोऽयं गुरुणा यदयुध्यत । इत्यब्रुवन् जनास्तत्र संग्रामशिरसि स्थिताः ॥ २६ ॥ वीरौ तावभिसंरब्धौ सन्निकृष्टौ महाभुजौ । छादयेतां शरव्रातैरन्योऽन्यमपराजितौ२७ विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपृष्ठं दुरासदम् । भारद्वाजोऽथ संक्रुद्धः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत ॥ २८ ॥ स सायकमयैर्जालैरर्जुनस्य रथं प्रति ।

दिखाईं ॥ २१ ॥ फिर जिनके मनका पार नहीं मिलसकता ऐसे द्रोणाचार्य, अर्जुनको क्रोधित करतेहुएसे, उसके श्वेत रङ्गके घोड़ोंके ऊपर, सान पर धर कर तेजकियेहुए और कङ्क पक्षीके परोंवाले बाण मारने लगे ॥ २२ ॥ इसप्रकार द्रोणाचार्य और अर्जुन, परस्पर एक दूसरेके ऊपर समान भावसे बाण मारनेलगे और उनमें युद्ध होनेलगा ॥२३॥ उन दोनोंके पराक्रम प्रसिद्ध थे, दोनों वेगमें वायुकी समान थे, दोनों दिव्यअस्त्रोंको छोड़ना जानते थे और दोनों महातेजस्वी थे, वे आपसमें बाणोंका प्रहार करके आसपास खड़ेहुए राजाओंको मोहित करने लगे ॥२४॥ उस समय जो योधा तहाँ आकर खड़े होगए थे वे अचरजमें होकर शीघ्रतासे बाणोंकी वर्षा करनेवाले उन दोनोंकी "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहकर प्रशंसा करनेलगे २५ संग्रामके मुहाने पर जो पुरुष खड़े थे, वे कहरहे थे, कि-"रणमें अर्जुनके सिवाय दूसरा कौन पुरुष द्रोणाचार्यके सामने युद्ध करसकता है ? क्षत्रियका धर्म भयङ्कर है, क्योंकि-अर्जुनको अपने गुरुके साथ भी लड़ना पड़ रहा है" ॥ २६ ॥ क्रोधमें भरेहुए लम्बी २ भुजाओंवाले वे दोनों अजित पुरुष समीपमें खड़े होकर एक दूसरेको बाणोंकी वर्षासे ढकरहे थे२७ कुछ देरमें द्रोणाचार्यने क्रोधमें भरकर सुनहरी पीठवाले और परिश्रमसे उठसकनेवाले बड़ेभारी धनुषको खेंचा और उसमेंसे सान पर धरकर तेजकिए चमकदार बाण मारकर-अर्जुनको बींध डाला

भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोराच्छदयत् प्रभाम् ॥ २९ ॥ पार्थञ्च सुमहाबाहुर्महावेगैर्महारथः। विव्याध निशितैर्बाणैर्मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ ३० ॥ तथैव दिव्यं गाण्डीवं धनुरादाय पाण्डवः । शत्रुघ्नं वेगवान् हृष्टो भारसाधनमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ विससर्ज शरांश्चित्रान् सुवर्णविकृतान् बहून् । नाशयन् शरवर्षाणि भारद्वाजस्य वीर्यवान् । तूर्णं चापविनिर्मुक्तैस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३२ ॥ स रथेन चरन् पार्थः प्रेक्षणीयो धनञ्जयः । युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वतोऽस्त्राण्यदर्शयत् ॥ ३३ ॥ एकच्छायमिवाकाशं बाणैश्चक्रे समन्ततः । नादृश्यत तदा द्रोणो नीहारेणेव संवृतः ॥ ३४ ॥ तस्याभवत्तदा रूपं संवृतस्य शरोत्तमैः । जाज्वल्यमानस्य तदा पर्वतस्येव सर्वतः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा तु पार्थस्य रणे शरैः स्वरथमावृतम् । स विस्फार्य धनुःश्रेष्ठं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥ ३६ ॥ अग्निचक्रोपमं घोरं व्याकर्षत् परमायुधम् । व्यशातयच्छरांस्तांस्तु द्रोणः

तथा अर्जुनके रथके साथ सूर्यकी कान्तिको भी ढकदिया ॥ २८ ॥ २९ ॥ जैसे मेघ वर्षा करके पहाड़को ढकदेता है तैसे ही महारथी महाबाहु द्रोणाचार्यने तीखे बाणोंसे अर्जुनको ढकदिया ॥ ३० ॥ तब वेगवाले पराक्रमी अर्जुनने प्रसन्न होकर वैरीका संहार करने वाले और वैरीके सामने टक्कर झेलनेवाले गाण्डीव नामक उत्तम और दिव्य धनुषको हाथमें लेकर तुरन्त उसमेंसे बाण छोड़ना आरम्भ करदिये और द्रोणाचार्यके बाणोंकी वर्षाका नाश करते २ सोनेसे मढ़े हुए बहुतसे विचित्र बाण शीघ्रताके साथ द्रोणाचार्यके ऊपर छोड़े, यह बात देखकर सबोंको बड़ा अचरजसा हुआ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर दर्शनीय अर्जुन रथमें बैठकर रणभूमिमें विचरने लगा और सबोंने यह देखा, कि--अर्जुन सब दिशाओंमेंको एक साथ बाण छोड़रहा है ॥ ३३ ॥ जब उसने बाण मार कर चारों ओरसे आकाशको अन्धकारमय बना दिया तब द्रोणाचार्य मानो कुहरसे ढकगए हों इस प्रकार दीखे भी नहीं ॥ ३४ ॥ उस समय बड़े २ बाणोंसे ढका हुआ द्रोणाचार्यका स्वरूप चारों ओरसे जलते हुए पहाड़सा दीखता था । ३५ । रणमें शोभा पानेवाले द्रोणाचार्यने जब अपने रथको अर्जुनके बाणोंसे ढका हुआ देखा तब उन्होंने मेघके गरजनेकेसा शब्द करने वाले अग्निके चक्रसमान अपने महाभयानक धनुषमें बाण छोड़कर अर्जुनके मारे हुए बाणोंके टुकड़े २ करडाले ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उस समय जैसे जलते हुए बाँसका फटकर उनका बड़ाभारी कड़ाका

समितिशोभनः ॥३७॥ महानभूत्ततः शब्दो वंशानामिव दह्यताम् ॥३८॥ जाम्बूनदमयैः पुंखैश्चित्रचापविनिर्गतैः। प्राच्छादयदमेयात्मा दिशः सूर्यस्य च प्रभाम् ॥ ३९ ॥ ततः कनकपुंखानां शराणां नतपर्वणाम्। वियच्चराणां वियति दृश्यन्ते बहुशो व्रजाः ॥४०॥ द्रोणस्य पुंखसक्ताश्च प्रभवन्तः शरासनात्। एको दीर्घ इवादृश्यदाकाशे संहतः शरः ॥४१॥ एवं तौ स्वर्णविकृतान्विमुञ्चन्तौ महाशरान्। आकाशं संवृतं वीरावुल्काभिरिव चक्रतुः ॥ ४२ ॥ शरास्तयोस्तु विबभुः कंकबर्हिणवाससः। पंक्त्यः शरदि खस्थानां हंसानां चरतामिव ॥ ४३ ॥ युद्धं समभवत्तत्र सुसंरब्धं महात्मनोः। द्रोणपाण्डवयोर्घोरं वृत्रवासवयोरिव ॥४४॥ तौ गजाविव चासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम्। शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योऽन्यमभिजघ्नतुः ४५ तौ व्यवाहरतां युद्धे संरब्धौ रणशोभिनौ। उदीरयन्तौ समरे दिव्यान्यस्त्राणि भागशः ४६ अथ त्वाचार्यमुख्येन शरान् सृष्टान् शिलाशितान्। न्यवारयच्छितैर्बाणैरर्जुनो जयतां वरः ४७ दर्श-

शब्द होता है तैसे ही टुकड़े २ होते हुए बाणोंका शब्द होनेलगा ३८ तदनन्तर अपारबली द्रोणाचार्यने विचित्र प्रकारके धनुषोंमेंसे बाहर निकले हुए सोनेकी पूँछवाले बाणोंसे दिशाओंको तथा सूर्यकी कान्ति को ढक दिया ॥ ३९ ॥ उस समय सुनहरी पूँछ और नमी हुई नोकों वाले बाणोंके बहुतसे समूह आकाशमें उड़ते हुए दीखे ॥४०॥ द्रोणाचार्यके धनुषमेंसे जो पूँछवाले बाण निकलते थे उनके इकट्ठा होनेपर आकाशमें एक लम्बा बाणसा दीखता था ॥ ४१ ॥ इस प्रकार वे दोनों, सुवर्णसे मढ़े हुए बड़े २ बाण एक दूसरेके ऊपर मारने लगे और उन दोनों शूरोंने, जैसे उल्काओंसे भरा हुआ हो, ऐसे आकाश को बाणोंसे भरदिया॥४२॥कङ्क पक्षीके पररूपी वस्त्रवाले उन दोनोंके बाण आकाशमें उड़तेहुए, शरद ऋतुमें आकाशमें उड़नेवाले हंसोंकी पंक्तियोंसे मालूम होते थे ॥४३॥ वृत्रासुर और इन्द्रकी समान महात्मा द्रोणाचार्य और अर्जुनका युद्ध बड़े ही क्रोधमें भरकर हुआ था ॥४४॥ और जैसे दो हाथी अपने दांतोंके अग्रभागसे परस्पर युद्ध करते हों तैसे ही वे दोनों योधा भी धनुषके रोदेको कानतक खेंचकर उनसे परस्पर बाणोंका प्रहार कर रहे थे ॥ ४५ ॥ रणभूमिमें शोभायमान दीखतेहुए दोनों योधा, बारी २ से दिव्य अस्त्रोंकी मारामार करतेहुए आवेशमें भरकर धर्मयुद्ध कर रहे थे ॥४६॥ द्रोणाचार्य, सानपर धर कर तेज करे हुए बाण अर्जुनके मार रहे थे और विजय पानेवालोंमें

यन् वीक्षमाणानामस्त्रमुग्रपराक्रमः। इषुभिस्तूर्णमाकाशं बहुभिश्च समावृणोत् ४८ जिघांसन्तं नरव्याघ्रमर्जुनं तिग्मतेजसम्। आचार्यमुख्यः समरे द्रोणः शस्त्रभृतांवरः। अर्जुनेन सहाक्रीडच्छरैः सन्नतपर्वभि ४९ दिव्यान्यस्त्राणि वर्षन्तं तस्मिन्वै तुमुले रणे। अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य्य फाल्गुनं समयोधयत् ५० तयोरासीत् सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः। अमर्षिणोस्तदान्योन्यं देवदानवयोरिव ५१ ऐन्द्रं वायव्यमाग्नेयमस्त्रमस्त्रेण पाण्डवः। द्रोणेन मुक्तमात्रन्तु ग्रसति स्म पुनः पुनः ॥५२॥ एवं शूरौ महेष्वासौ विसृजन्तौ शिताञ्छरान्। एकच्छायं चक्रतुस्तावाकाशं शरवृष्टिभिः ॥ ५३ ॥ तत्रार्जुनेन मुक्तानां पततां वै शरीरिषु। पर्वतेष्विव वज्राणां शराणां श्रूयते स्वनः ॥ ५४ ॥ ततो नागा रथाश्चैव वाजिनश्च विशाम्पते। शोणिताक्ता व्यदृश्यन्त पुष्पिता इव

श्रेष्ठ अर्जुन, तेज करे हुए वाण मारकर उनको पीछेको हटा देता था ॥४७॥ उग्रपराक्रमी अर्जुनने, उस समय दर्शकोंको, अपनी अस्त्र छोडनेकी चतुराई दिखाते हुए बहुतसे वाण मारकर जरा देरमें आकाशको छा दिया ॥ ४८ ॥ तैसे ही तीक्ष्ण तेजवाले नरव्याघ्र तथा अपने वाण छोडनेवाले अर्जुनको द्रोणाचार्यने भी ढकदिया, इसप्रकार सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, आचार्योंमें बड़े द्रोणाचार्य, अर्जुनके सामने रणभूमिमें युद्धक्रीडा कररहे थे और नमीहुई नोकवाले वाण मारकर उस घोर संग्राममें अर्जुनके वाणोंको पीछेको लौटाकर, दिव्यअस्त्रोंकी वर्षा करते हुए अर्जुनके साथ युद्ध कररहे थे ॥४९ ॥ ५०॥ उस समय क्रोधमें भरेहुए आपसमें डाह करनेवाले दोनों नरसिंहोंका देवता और दानवोंकी समान युद्ध होरहा था ॥ ५१ ॥ द्रोणाचार्य संग्राम भूमिमें, ऐन्द्र, वायव्य, आग्नेय आदि जो जो अस्त्र अर्जुनके ऊपर छोड़ते थे, उनको, अर्जुन तुरन्त ही सामनेसे दूसरा अस्त्र छोड़कर बार बार उन अस्त्रोंका नाश करदेता था ५२ इसप्रकार बड़े भारी धनुषको धारण करनेवाले वे दोनों वीर तेज करेहुए वाण परस्पर एक दूसरेके ऊपर छोडते थे और उन्होंने वाणोंकी वर्षासे आकाशको छादिया था ५३ उस संग्रामके समय अर्जुन, मनुष्योंके ऊपर जिन वाणोंको छोडताथा वे वाण जब गिरते थे तो पहाड़ोंपर पडनेवाले वज्रकेसा शब्द सुनाई आता था ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! रणमें वाणोंसे छिदेहुए हाथी रथ और घोड़े लोहूमें लथड पथड होरहे थे, इसकारण वे फलोंसे लदेहुए ढाक के वृक्षोंकी समान मालूम होते थे ॥५५॥ द्रोणाचार्य और अर्जुनके इस

किंशुकाः ५५ बाहुभिश्च सकेयूरैर्विचित्रैश्च महारथैः । सुवर्णचित्रैः कवचैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ५६ ॥ योधैश्च निहतैस्तत्र पार्थबाणप्रपीडितैः । बलमासीत्समुद्भ्रान्तं द्रोणार्जुनसमागमे ॥५७॥ विधुन्वानौ तु तौ तत्र धनुषी भारसाधने । आच्छादयेतामन्योऽन्यं तितक्षन्तौ रथेषुभिः ॥ ५८ ॥ तयोः समभवद्युद्धन्तुमुलं भरतर्षभ । द्रोणकौन्तेययोस्तत्र बलिवासवयोरिव ॥ ५९ ॥ अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः सन्नतपर्वभिः । व्यदारयेतामन्योऽन्यं प्राणद्यूते प्रवर्तिते ॥६०॥ अथान्तरिक्षे नादोऽभूत् द्रोणं तत्र प्रशंसताम् । दुष्करं कृतवान् द्रोणो यदर्जुनमयोधयत् ॥ ६१ ॥ प्रमाथिनं महावीर्यं दृढमुष्टिं दुरासदम् । जेतारं देवदैत्यानां सर्वेषां च महारथम् ॥ ६२ ॥ अविभ्रमञ्च शिक्षाञ्च लाघवं दूरपातिताम् । पार्थस्य समरे दृष्ट्वा द्रोणस्याभूच्च विस्मयः ॥ ६३ ॥ अथ गाण्डीवमुद्यम्य दिव्यं धनुरमर्षणः । विचकर्ष रणे पार्थो बाहुभ्यां भरतर्षभ ॥ ६४ ॥ तस्य बाणमयं वर्षं शलभानामिवायतिम् ।

संग्रामके समय कट २ कर भूमिपर जहाँ तहाँ पड़ेहुए बाजबन्दोंवाले हाथ, नानाप्रकारके कटेहुए रथ, सुवर्णसे जड़ेहुए विचित्र प्रकारके कवच, ध्वजायें, और अर्जुनके बाणोंसे पीड़ा पाकर मरे हुए योधा आदिकोंको देखकर कौरवोंकी सेना भयभीत होगई ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ फिर वे दोनों महात्मा बड़ीभारी भारको सहसकनेवाले धनुषोंको कानपर्यन्त अनेकप्रकार खेंचकर, नमीहुई नोकोंवाले बाणोंके समूहोंसे एक दूसरेको ढकनेलगे तथा घायल करनेलगे इन्द्रकी समान दोनों जने, प्राणोंकी बाजी लगाकर इसप्रकार युद्ध करनेलगे तब आकाशमेंसे देवता आदि द्रोणाचार्यकी सराहना करते हुए कहने लगे, कि— सब देव दैत्योंको जीतनेवाले, महारथियोंमें श्रेष्ठ, प्रबलप्रतापी, शत्रुकुलनाशक, दृढ मुट्ठीवाले और किसीकी धौंसमें न आनेवाले अर्जुनके साथ जो द्रोणाचार्यने युद्ध किया है, यह इन्होंने बड़ा ही कठिन काम किया है ॥५८॥६२॥ रणमें अर्जुनका न चूकना, शस्त्रोंकी शिक्षा हाथकी शीघ्रता और शस्त्रको दूर फेंकने की शक्ति आदि को देखकर द्रोणाचार्यको अचरज हुआ ॥ ६३॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तीखे स्वभाववाला अर्जुन गाण्डीव नामक दिव्य धनुषको हाथमें उठाकर जब दोनों हाथोंसे खेंचताथा और टीडीनलकी समान ऊपर ही ऊपर बाणोंकी वर्षा करता था, उस समय उसको देखकर सब योधा अचरजमें होजाते थे और धन्य है, धन्य है, ऐसा कहकर उसकी बड़ाई

दृष्ट्वा ते विस्मिताः सर्वे साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ ६५ ॥ न च बाणान्तरे वायुरस्य शक्नोति सर्पितुम् । अनिशं सन्दधानस्य शरानुत्सृजतस्तथा ॥ ६६ ॥ ददर्श नान्तरं कश्चित् पार्थस्याददतोऽपि च ॥ ६७ ॥ तथा शीघ्रास्त्रयुद्धे तु वर्त्तमाने सुदारुणे । शीघ्रं शीघ्रतरं पार्थः शरानन्यानुदीरयत् ॥ ६८ ॥ ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् । युगपत् प्रापतंस्तत्र द्रोणस्य रथमन्तिकात् ॥ ६९ ॥ कीर्यमाणे तदा द्रोणे शरैर्गाण्डीवधन्वना । हाहाकारो महानासीत्सैन्यानां भरतर्षभ ७० पाण्डवस्य तु शीघ्रास्त्रं मघवा प्रत्यपूजयत् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव ये च तत्र समागताः ॥ ७१ ॥ ततो वृन्देन महता रथानां रथयूथपः । आचार्यपुत्रः सहसा पाण्डवं पर्यवारयत् ॥ ७२ ॥ अश्वत्थामा तु तत् कर्म हृदयेन महात्मनः । पूजयामास पार्थस्य कोपञ्चास्याकरोद्भृशम् ॥७३॥ स मन्युवशमापन्नः पार्थमभ्यद्रवद्रणे । किरञ्छरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ७४ ॥ आवृत्य तु महाबाहुर्यतो द्रौणिस्ततो

करते थे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ अर्जुन जब बाण मारता था तो उसके बीचमेंको पवन भी नहीं निकल सकता था और रण करते समय भाथेमेंसे बाणोंको इतनी शीघ्रतासे लेता, धनुष पर चढ़ाता और मारता था, कि—इन कामोंके बीचका समय किसीके देखनेमें ही नहीं आता था ॥ ६६॥ ६७ ॥ जिसमें शस्त्र और अस्त्रोंका बड़ी शीघ्रतासे प्रयोग करना पड़ता था ऐसा वह महाघोर रण होरहा था उस समय अर्जुन बहुत ही शीघ्र शीघ्र बाणोंकी वर्षा करता था ॥ ६८ ॥ जब नमी हुई नोकवाले लाखों बाण एकसाथ द्रोणाचार्यके रथके पास आकर गिरने लगे और जब गाण्डीव धनुषको धारनेवाले अर्जुनने हे राजन्! द्रोणाचार्यको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया तब सेनामें बड़ा हाहाकार होने लगा ॥६९॥ ७० ॥ वहाँ आकर इकट्ठे हुए इन्द्र, गन्धर्व और अप्सरायें अर्जुनके अस्त्र शस्त्र छोड़नेमें शीघ्रताकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७१ ॥ तब रथियोंके समूहके अध्यक्ष, आचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने एक बड़े भारी रथोंके समूह से अर्जुन को घेर लिया ॥ ७२ ॥ उसने महात्मा अर्जुनके वीरता भरे कामकी हृदयमें सराहना की, परन्तु बाहरसे उसके ऊपर बड़ा कोप किया ॥ ७३ ॥ अश्वत्थामाने क्रोधके वशमें होकर बरसते हुए मेघकी समान रणभूमिमें अर्जुनके ऊपर हजारों बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ करदी ॥ ७४ ॥ तब अर्जुनने जिधर महाबाहु अश्वत्थामा खड़ा था उधरको अपने रथके घोड़ोंको फिरवाया और

दयान्। अन्तरं प्रददौ पार्थो द्रोणस्य व्यपसारतुम्॥७५॥ स तु लब्ध्वान्तरं तूर्णमपायाज्जवनैर्हयैः। छिन्नवर्मध्वजः शूरो निकृत्तः परमेषुभिः॥७६॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोहरणपर्वणि द्रोणा-
पयाने अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततो द्रौणिर्महाराज प्रययावर्जुनं रणे। तं पार्थः प्रतिजग्राह वायुवेगमिवोद्धतम्। शरजालेन महता वर्षमाणमिवाम्बुदम् ॥१॥ तयोर्देवासुरसमः सन्निपातो महानभूत्। किरतोः शरजालानि वृत्रवासवयोरिव ॥ २ ॥ न स्म सूर्यस्तदा भाति न च वाति समीरणः। शरजालावृते व्योम्नि छायाभूते समन्ततः ॥ ३ ॥ महांश्चटचटाशब्दो योधयोर्हन्यमानयोः। दह्यतामिव वेणूनामासीत्परपुरंजय ॥ ४ ॥ हयानस्यार्जुनः सर्वान् कृतवानल्पजीवितान्। ते राजन्न प्रजानन्त दिशं काञ्चन मोहिताः ॥ ५ ॥ ततो द्रौणिर्महावीर्यः

द्रोणाचार्य के जानेके लिये मार्ग छोड दिया ॥ ७५ ॥ अर्जुन के बडे२ बाणों से जिनका कवच और रथकी ध्वजा कट गई थी तथा जिनका शरीर भी घायल होगया था ऐसे धीर द्रोणाचार्य मार्ग मिलते ही वेगवाले घोडोंको हाँक कर तुरन्त रणभूमिमें से चले गए ॥ ७६ ॥ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर अश्वत्थामा रणमें अर्जुनके ऊपर चढ़ गया और मेघकी समान बाणों की बड़ीभारी वर्षा उसके ऊपर करने लगा, उस समय कुन्तीनन्दन अर्जुनने बड़े प्रबल वायु के वेगकी समान अपने सामने लड़ने को चढ़कर आये हुए अश्वत्थामा को पकड़ लिया ॥ १ ॥ वे दोनों वृत्रासुर और इन्द्र की समान परस्पर बाणों की वर्षा करने लगे और उन दोनोंमें देवता और असुरोंकी समान बडा भारी संग्राम होने लगा ॥ २ ॥ आकाशमें चारों ओरसे बाणोंसे छप्परसा छागया और घोर अन्धकार होगया इसकारण उस समय न सूर्यका ही प्रकाश था और न हवा ही चलती थी ॥ ३ ॥ हे वैरीके नगरोंको जीतनेवाले राजन्! जैसे जलतेहुए बांसके फटनेसे शब्द होता है तैसे ही उस समय परस्पर युद्ध करतेहुए योधाओंके हाथियोंका भी बडाभारी चटचट शब्द होने लगा ॥४॥ हे राजन् ! अर्जुनने बाणोंकी मारसे अश्वत्थामा के रथके सब घोड़ोंको अधमरे करडाला और वे मूर्छित होकर आँखों के सामने अन्धेरा आजाने से दिशाओंको भी भूल गए ॥ ५ ॥ उस

पार्थस्य विचरिष्यतः । विवरं सूक्ष्ममालोक्य ज्यां चिच्छेद क्षुरेण ह । तदस्यापूजयन् देवाः कर्म दृष्ट्वातिमानुषम् ॥ ६ ॥ द्रोणो भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्चैव महारथः । साधु साध्विति भाषन्तो पूजयन् कर्म तस्य तत् ॥ ७ ॥ ततो द्रौणिर्धनुःश्रेष्ठमपकृष्य रथर्षभम् । पुनरेवाहनत् पार्थं हृदये कङ्कपत्रिभिः ॥ ८ ॥ ततः पार्थो महाबाहुः प्रहस्य स्वनवत्तदा । योजयामास नवया मौर्व्या गाण्डीवमोजसा ॥ ९ ॥ ततोऽर्द्धचन्द्रमावृत्य तेन पार्थः समागतम् । वारणेनेव मत्तेन मत्तो वारणयूथपः ॥ १० ॥ ततः प्रववृते युद्धं पृथिव्यामेकवीरयोः । रणमध्ये द्वयोरेवं सुमहल्लोमहर्षणम् ॥ ११ ॥ तौ वीरौ ददृशुः सर्वे कुरवो विस्मयान्विताः । युध्यमानौ महावीर्यौ यूथपाविव सङ्गतौ ॥ १२ ॥ तौ समाजघ्नतुर्वीरावन्योऽन्यं पुरुषर्षभौ । शरैराशीविषाकारैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः ॥ १३ ॥ अक्षय्याविषुधी दिव्यौ पाण्डवस्य महात्मनः । तेन पार्थो रणे शूरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १४ ॥ अश्वत्थाम्नः पुन-

---

समय महावीर अश्वत्थामाने युद्धमें घूमते हुये अर्जुनकी जरासी चूक का अवसर पा, क्षुर जातिका बाण मारकर उसके धनुषकी डोरीको काट डाला, अश्वत्थामाके इस अलौकिक कामको देखकर देवता उस की प्रशंसा करने लगे ॥ ६ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, कर्ण और कृपाचार्य आदि महारथी बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, ऐसा कहकर उसके इस कामकी प्रशंसा करने लगे ॥ ७ ॥ फिर अश्वत्थामाने एक बढिया जातिका धनुष खैंचकर महारथी अर्जुनकी छातीमें मारकर फिर भी कंकपक्षीके परोंवाले बाणोंका प्रहार किया ॥८॥ उस समय महाबाहु अर्जुन खिलखिलाकर हँसपडा और तत्काल ही झपाटे से गाण्डीव धनुष पर नई डोरी चढाकर उसका टंकार किया ॥९॥ और फिर अपने रथको अर्धचन्द्राकारमें फेरकर मदमत्त हाथी जैसे दूसरे मदमत्त हाथीके पास जाता है तैसेही वह अश्वत्थामाके पासमें आकर खडा होगया ॥१०॥ और फिर भूमण्डलमें इक्के वीर गिनेजानेवाले दोनों योधाओंमें रोमाञ्च खडे करने वाला महायुद्ध होने लगा ॥११॥ यूथपतियोंकी समान महापराक्रमी वे दोनोंजने परस्पर युद्ध करने लगे और उन दोनों वीरोंको सब कौरव बडे अचरजमें होकर देखने लगे ॥ १२ ॥ ये दोनों योधा महात्मा और शूर थे वे विषसे भडभडाते हुए विषधर सर्पकी समान विषभरे बाणोंको एक दूसरेके ऊपर प्रहार कररहे थे ॥१३॥ महात्मा अर्जुनके पास दो दिव्य भाथे थे वे अक्षय थे

बाणाःक्षिप्रमभ्यस्यतोरणे।जग्मुःपरिक्षयं तूर्णमभूत्तेनाधिकोऽर्जुनः१५ ततः कर्णो महाचापं विकृष्याभ्यधिकं तथा। अवाक्षिपत्ततः शब्दो हाहाकारो महानभूत्॥ १६ ॥ ततश्चक्षुर्दधे पार्थो यत्र विस्फार्यते धनुः। ददर्श तत्र राधेयं तस्य कोपो व्यवर्धत ॥ १७ ॥ स रोषवशमापन्नः कर्णमेव जिघांसया। तमैक्षत विवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां कुरुपुङ्गवः ॥ १८ ॥ तथा तु विमुखे पार्थे द्रोणपुत्रस्य सायकात्। त्वरिताः पुरुषा राजन्नुपाजह्रुः सहस्रशः ॥१९॥ उत्सृज्य च महाबाहुर्द्रोणपुत्रं धनञ्जयः। अभिदुद्राव सहसा कर्णमेव सपत्नजित् ॥ २० ॥ तमभिद्रुत्य कौन्तेयः क्रोधसंरक्तलोचनः। कामयन् द्वैरथं तेन युद्धं वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुना-
श्वत्थामयुद्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

अर्जुन उवाच। कर्ण यत्ते सभामध्ये बहु वाचा विकत्थितम्। न मे युधि समोऽस्तीति तदिदं समुपस्थितम् ॥ १ ॥ सोऽद्य कर्ण मया

इसकारण रणमें शूरवीर अर्जुन पहाड़की समान अचल खड़ा रहा १४ क्योंकि—रणमें अश्वत्थामा बारबार बाणोंकी बरसात बरसा रहा था, इसकारण उसके बाण जरा देरमें निबड़गए इसीसे अर्जुन उसकी अपेक्षा अधिक होगया ॥ १५ ॥ यह देख कर्णने अपने बड़ेभारी धनुष को बहुत ही खेंचकर उसपर टङ्कार दी, उस समय कौरवोंकी सेनामें बड़ाभारी कोलाहल मचगया ॥१६॥ जिधरसे धनुषकी टङ्कारका शब्द सुनाई दिया था, उधरको धनञ्जयने दृष्टिडाली तो तहाँ कर्ण दीख गया, तब तो उसका क्रोध और भी बढ़गया ॥ १७ ॥ कुरुपुंगव अर्जुन क्रोधमें भरकर कर्णका ही नाश करनेके लिये दोनों नेत्र फाड़ फर उसको देखनेलगा ॥ १८ ॥ हे राजन्! जब अर्जुन द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाके बाणसे विमुख होकर कर्णकी ओरको लौटा उस समय हजारों योधाओंने झपाटेके साथ आकर घेरलिया और उसके ऊपर बाण छोड़नेलगे ॥ १९ ॥ परन्तु वैरियोंको जीतनेवाला महाबाहु अर्जुन, द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको छोड़कर एक साथ कर्णकी ओरको ही दौड़ा ॥ २० ॥ और उसके ऊपर चढ़ाई करके क्रोधसे लाल २ नेत्र कियेहुए उसके साथ द्विरथ रण करनेकी इच्छासे यह बात बोला ॥२१॥ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ छ छ

अर्जुनने कहा, कि—हे कर्ण! तूने जो सभामें बहुतसी बकवाद की थी, कि—रणमें मेरी बराबरी करने वाला कोई है ही नहीं, उस

सार्धं व्यवहृत्य महामृधे । ज्ञास्यस्यबलमात्मानं न चान्यानवमन्यसे॥२॥ अवोचः परुषा वाचो धर्ममुत्सृज्य केवलम् । इदं तु दुष्करं मन्ये यदिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ यत्त्वया कथितं पूर्वं मामनासाद्य किञ्चन । तदद्य कुरु राधेय कुरुमध्ये मया सह ॥ ४ ॥ यत्सभायां स पाञ्चालीं क्लिश्यमानां दुरात्मभिः । दृष्टवानसि तस्याद्य फलमाप्नुहि केवलम् ॥ ५ ॥ धर्मपाशनिबद्धेन यन्मया मर्षितं पुरा । तस्य राधेय कोपस्य विजयं पश्य मे मृधे ॥ ६ ॥ वने द्वादश वर्षाणि यानि सोढानि दुर्मते । तस्याद्य प्रतिकोपस्य फलं प्राप्नुहि संप्रति ॥ ७ ॥ एहि कर्ण मया सार्धं प्रतियुध्यस्व सङ्गरे । प्रेक्षकाः कुरवः सर्वे भवन्तु तव सैनिकाः ॥ ८ ॥ कर्ण उवाच । ब्रवीषि वाचा यत्पार्थ कर्मणा तत्समाचर । अतिशेते हि ते वाक्यं कर्मैतत् प्रथितं भुवि ॥ ९ ॥ यत्त्वया मर्षितं पूर्वं तदशक्तेन मर्षितम् । इतो गृह्णीमहे पार्थ तव दृष्ट्वा पराक्रमम् ॥ १० ॥ धर्मपाशनिबद्धेन यत्त्वया मर्षितं पुरा । तथैव बद्धमात्मा-

---

बातको सच्ची करके दिखानेका आज यह अवसर आया है ॥ १ ॥ सो हे कर्ण ! आज अब तू मेरे साथ महासंग्राममें रण करके अपने शरीरको बलहीन जानेगा और फिर किसीका तिरस्कार नहीं करेगा २ तूने पहिले धर्मको छोड़कर बड़ी कठोर बातें कही थीं, परन्तु तू जो कुछ करना चाहता है मेरी समझमें वह बड़ी कठिन बात है ॥ ३ ॥ अरे राधाके पुत्र कर्ण ! तूने पहिले मेरे साथ भेंटा बिना पड़े ही जो कुछ कहा था उसको आज कौरवोंके बीचमें सत्य करके दिखा ॥ ४ ॥ नहीं तो दुष्टात्माओंसे दुःखितकी हुई द्रौपदीको जो तू सभामें बैठा २ देखता रहा था, आज तू केवल उसका ही फल भोग ॥ ५ ॥ हे कर्ण ! मैंने पहिले धर्मकी पाशमें बँधकर जो तेरी बातोंको सहलिया था, परन्तु मेरे उस समयके क्रोधके विजयको तू आज देखले ॥ ६ ॥ अरे दुष्टबुद्धि ! मैंने वनमें जो बारह वर्ष बड़े दुःखके साथ बिताये हैं, उस कोपके बदलेका फल तू आज अभी भोग ॥ ७ ॥ अरे कर्ण ! चला आ, रणमें मेरे सामने लड़ और तेरे सब सिपाही तथा कौरव दर्शक बनकर हमारे रणको देखें ॥ ८ ॥ कर्णने कहा, कि-हे पार्थ ! तू जो बात मुखसे कहरहा है, उसको करके दिखा, तेरी बात तेरे भूतलपर प्रसिद्ध कर्मको लाँघरही है अर्थात् तेरी करतूत थोड़ीसी है और तू बातें बड़ी २ कररहा है ॥ ९ ॥ तूने जो पहिले मेरे अपराधको सहा था सो तूने असमर्थ होनेके कारणसे ही सहा

नमबद्धमिव मन्यसे ॥ ११ ॥ यदि तावद्वने वासो यथोक्तश्चरितस्त्वया । तत्त्वं धर्मार्थवित् क्लिष्टः स मया योद्धुमिच्छसि ॥१२॥ यदि शक्रः स्वयं पार्थ युध्यते तव कारणात् । तथापि न व्यथा काचिन्मम स्याद्विक्रमिष्यतः ॥ १३ ॥ अयं कौन्तेय कामस्ते न चिरात् समुपस्थितः । योत्स्यसे हि मया सार्द्धमद्य द्रक्ष्यसि मे बलम् ॥१४॥ अर्जुन उवाच । इदानीमेव तावत्त्वमपयातो रणान्मम । तेन जीवसि राधेय निहतस्त्वनुजस्तव ॥१५॥ भ्रातरं घातयित्वा कस्त्यक्त्वा रणशिरश्च कः । त्वदन्यः कः पुमान् सत्सु ब्रूयादेवं व्यवस्थितः ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच । इति कर्णं ब्रुवन्नेव बीभत्सुरपराजितः । अभ्ययाद्विसृजन् बाणान् कायावरणभेदिनः ॥ १७ ॥ प्रतिजग्राह तं कर्णः प्रीयमाणो महारथः । महता शरवर्षेण वर्षमाण-

---

था, परन्तु हे पार्थ! आज देखकर आगेको हम तेरे पराक्रमको मानलेंगे ॥ १० ॥ अरे पहिले जैसे तूने धर्मकी पाशमें बँधे होनेके कारण मेरे अपराधको सहा था तैसे ही इस समय भी धर्मकी पाशमें बँधा हुआ होने पर भी अपनेको न बँधा हुआसा अर्थात् छूटाहुआ कैसे मान रहा है? ॥ ११ ॥ हे धर्म तथा अर्थको जाननेवाले धनञ्जय! तू क्लेश पारहा है, यह बात तो ठीक है, परन्तु तूने यदि पहिले कियेहुए ठहरावके अनुसार वनवासको पूरा किया होता तब ही तू मेरे साथ रण करनेकी इच्छा करता तो ही ठीक होता (परन्तु तूने तैसा नहीं किया) ॥ १२ ॥ और हे अर्जुन! यदि इन्द्र अपने आप तेरे कारण मेरे साथ युद्ध करनेको चढ़ आवे तो भी मैं जब पराक्रम करने को बैठूँगा तब मुझे किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होसकती ॥ १३ ॥ हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! मेरे साथ युद्ध करनेको यदि तेरी इच्छा थी तो वह इच्छा थोड़े ही समयमें पास आगई है, सो छैल तू आज मेरे साथ संग्राम कर और मेरे बलको देख १४ अर्जुनने कहा, कि-हे राधाके पुत्र कर्ण! अभी तो मेरे साथ लड़नेमें तू रणमेंसे भाग गया था, तब ही तो तू जीता बच गया है, परन्तु तेरा छोटा भाई मारा ही गया ॥ १५ ॥ अरे! अपने भाईको मरवाकर और रणके मुहाने परसे भागकर तेरे सिवाय दूसरा कौन पुरुष, श्रेष्ठ पुरुषोंके बीचमें खड़ा होकर इसप्रकार बोलेगा? ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! ऐसा कर्णसे कहते २ ही किसीके जीतनेमें न आनेवाला अर्जुन शरीरपर पहरे हुए बख्तरको फोड़देनेवाले बाण मारताहुआ कर्णके ऊपर चढ़गया १७ तब महारथी कर्ण प्रसन्न हुआ और मेघकी समान बाणोंकी बड़ी भारी

भिवाम्बुदम् ॥ १८ ॥ उत्पेतुः शरजालानि घोररूपाणि सर्वशः । अविध्यदश्वान् वाह्वोश्च हस्तावापं पृथक् पृथक् ॥१९॥ सोऽमृष्यमाणः कर्णस्य निषङ्गस्यावलम्बनम् । चिच्छेद निशिताग्रेण शरेण नतपर्वणा ॥ २० ॥ उपासङ्गादुपादाय कर्णो वाणानथापरान् । विव्याध पाण्डवं हस्ते तस्य मुष्टिरशीर्यत ॥ २१ ॥ ततः पार्थो महावाहुः कर्णस्य धनुरच्छिनत् । स शक्तिं प्राहिणोत्तस्मै तां पार्थो व्यधमच्छरैः ॥ २२ ॥ ततोऽनुपेतुर्बहवो राधेयस्य पदानुगाः । तांश्च गाण्डीवनिर्मुक्तैः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥२३॥ ततोऽस्याश्वान् शरैस्तीक्ष्णैर्बीभत्सुर्भारसाधनैः । आकर्णमुक्तैरभ्यघ्नंस्ते हताः प्रापतन् भुवि ॥ २४ ॥ अथापरेण वाणेन ज्वलितेन महौजसा । विव्याध कर्णं कौन्तेयस्तीक्ष्णेनोरसि वीर्य्यवान् ॥ २५ ॥ तस्य भित्त्वा तनुत्राणं कायमभ्यगमच्छरः । ततः स तमसाविष्टो न स्म किञ्चित्

वर्षा करते हुए अर्जुनके सामने जाकर आप भी बहुतसे वाण छोडने लगा ॥ १८ ॥ उस समय चारों ओर भयानक वाणोंकी वर्षा होनेलगी, उसको अर्जुन सह न सका तव उसने तत्काल नमीहुई नोक और तीखी धारके अलग २ वाण मारकर कर्णके रथकेघोड़े, दोनों हाथोंके मोजे तथा भाथे लटकानेकी डोरीको काटडाला ॥ १९ ॥ २० ॥ तव तो कर्णने भाथेमेंसे दूसरे वाण लेकर अर्जुनके हाथोंको वींध दिया, जिससे अर्जुनके हाथकी मुट्ठी खुलगई ॥ २१ ॥ तव महावाहु पार्थने कर्णके धनुषके टुकड़े करडाले, उस समय कर्णने अर्जुनके ऊपर शक्ति फैंकी परन्तु अर्जुनने अपने वाणोंसे तुरन्त ही उसके टुकड़े कर दिये ॥२२॥ तव तो कर्णके पीछे चलने वाले वहुतसे योधा अर्जुनकेऊपर चढ़आये परन्तु उनको अर्जुनने, गाण्डीव धनुषमेंसे वाण छोड २ कर यमराज के घर भेजदिया ॥ २३ ॥ और फिर, अर्जुनने धनुषको कानों तक खेंचकर वैरियोंके वाणोंके सामने टक्कर झेलनेवाले तीखे वाणोंसे कर्णके रथके घोडोंको घायल करदिया और वे मरकर भूमिपर गिर पड़े ।२४। फिर वीर कुन्तीनन्दनने, वडा वलभरा, जाज्वल्यमान दूसरा वाण लेकर ज्योंही कर्णकी छातीमें मारा, कि–तुरन्त ही वह कर्णके शरीर पर पैरेहुए वक्तरको फोडकर उसके शरीरमें घुसगया तव कर्ण को मूर्छा आगई और उसको कुछ चेत न रहा ॥ २५ ॥ २६ ॥ अत्यन्त पीडा होनेसे कर्ण रणभूमिको छोडकर उत्तरकी ओरको मुख करके

प्रजघ्निवान् ॥ २६ ॥ स गाढवेदनो हित्वा रणं प्रायादुदङ्मुखः॥ ततोऽर्जुन उदक्रोशदुत्तरश्च महारथः ॥ २७ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोहरणपर्वणि
कर्णापयाने षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो वैकर्तनं जित्वा पार्थो वैराटिमब्रवीत् । एतन्मां प्रापयानीकं यत्र तालो हिरण्मयः ॥ १ ॥ अत्र शान्तनवो भीष्मो रथेऽस्माकं पितामहः । कांक्षमाणो मया युद्धं तिष्ठत्यमरदर्शनः ।२। अथ सैन्यं महद् दृष्ट्वा रथनागहयाकुलम् अब्रवीदुत्तरः पार्थमपविद्धः शरैर्भृशम् ॥ ३ ॥ नाहं शक्ष्यामि वीरेह नियन्तुं ते हयोत्तमान् । विषीदन्ति मम प्राणा मनो विह्वलतीव मे ॥ ४ ॥ अस्त्राणामिह दिव्यानां प्रभावाः सम्प्रयुज्यताम् । त्वया च कुरुभिश्चैव द्रवन्तीव दिशो दश ॥५॥ गन्धेन मूर्च्छितश्चाहं वसारुधिरमेदसाम् । द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य तव चैव प्रपश्यतः ॥ ६ ॥ अदृष्टपूर्वः शूराणां मया संख्ये समागमः । गदापातेन महता शंखानां निःस्वनेन च ॥७ ॥ सिंहनादैश्च शूराणां गजानां बृंहि-

भाग गया तब महारथी अर्जुन और उत्तर बडी गर्जना करनेलगे ।२७। साठवाँ अध्यायः समाप्त ॥ ६० ॥ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि—इस प्रकार कर्णको जीतकर अर्जुनने विराटनन्दन उत्तरसे कहा, कि—जिस रथ की ध्वजा में सुवर्ण के तालका चिन्ह है ऐसे रथमें मेरे पितामह भीष्मजी बैठे हैं यह देखने में देवतासे मालूम होते हैं और मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं इस कारण तू मुझे इनके समीप लेचल ॥ १ ॥ २ ॥ परन्तु बाणोंके लगनेसे बडा घायल हुआ उत्तर, रथ, हाथी और घोडोंसे भरे हुए बड़े भारी सेनादलको देखकर अर्जुनसे कहने लगा, कि—॥ ३ ॥ हे वीर! मैं तुम्हारे इन श्रेष्ठ घोडोंको यहाँ अपने वशमें नहीं रख सकता, क्यों कि—मेरे प्राण मुरझा रहे हैं और मेरा मन घबडायासा जाता है ४ जब तुम्हारे और कौरवोंके दिव्य अस्त्रोंकी मारामार चलती है तब दशों दिशायें नष्टसी होजाती हैं अर्थात् मुझे जहाँ तहाँ सूना ही सूना दीखता है ॥ ५ ॥ और मैं चरबी रुधिर और मेदकी गन्धसे मूर्छितसा होरहा हूँ, तुम्हारा तथा अन्य शूरोंका मैं रणभूमिमें जो यह युद्ध देख रहा हूँ, ऐसा युद्ध मैंने पहिले कभी नहीं देखा था, इस युद्धको देखनेसे मेरा मन आज चलायमान होरहा है; हे वीर! गदाओंके बडे भारी पटापट शब्दसे शंखोंकी ध्वनियोंसे, शूरोंके सिंहनादोंसे,

तैस्तथा । गाण्डीवशब्देन भृशमशनिप्रतिमेन च । श्रुतिः स्मृतिश्च मे वीर प्रनष्टा मूढचेतसः ॥८॥ अलातचक्रप्रतिमं मण्डलं सततं त्वया । व्याक्षिप्यमाणं समरे गाण्डीवञ्च प्रकर्षता । दृष्टिः प्रचलिता वीर हृदयं दीर्यतीव मे ॥ ९ ॥ वपुश्चोग्रं तव रणे क्रुद्धस्येव पिनाकिनः व्यायच्छतस्तव गर्जं दृष्ट्वा भीर्मे भवत्यपि ॥ १० ॥ नाददानं न सन्धानं न मुञ्चन्तं शरोत्तमान् । त्वामहं संप्रपश्यामि पश्यन्नपि न चेतनः ॥ ११ ॥ अवसीदन्ति मे प्राणा भूरियं चलतीव च । न च प्रतोदं रश्मींश्च संयन्तुं शक्तिरस्ति मे ॥ १२ ॥ अर्जुन उवाच । मा भैषीस्त्वं भयात्मानं त्वयापि नरपुङ्गव । अत्यद्भुतानि कर्माणि कृतानि रणमूर्धनि ॥१३॥ राजपुत्रोऽसि भद्रन्ते कुले मत्स्यस्य विश्रुते । जातस्त्वं शत्रुदमने नावसीदितुमर्हसि ॥ १४ ॥ धृतिं कृत्वा सुविपुलां राजपुत्र रथे मम । युध्यमानस्य समरे हयान् संयच्छ शत्रुहन् ॥ १५ ॥

हाथियोंकी चिंघारोंसे तथा वज्रकी समान महाप्रचण्ड गाण्डीव धनुष के टङ्कारशब्दोंसे मेरा मन मूढसा होगया है और मेरी सुननेकी शक्ति तथा स्मरणशक्ति भी नष्ट होगई है ॥ ६-८ ॥ और हे वीर ! रणभूमि में तुम वार वार गाण्डीव धनुषको खेंच कर बनैटीके चक्रकी समान उसको गोलाकार करके घुमाते हो तो उसको देखकर मेरी दृष्टि चौंधाजाती है और हृदय मानो फटासा जाता है ॥ ९ ॥ रणमें कुपित हुए पिनाकधारी महादेवजीकी समान तुम जब बाणोंको छोडते हो तो उस समयके तुम्हारे उग्र शरीर और बाणोंको देखकर मुझे भय भी लगने लगता है ॥ १० ॥ मैं आपको देखता हुआ भी आप कब बाण लेते हो, कब धनुष पर चढ़ाते हो और कब छोडदेते हो, यह जरा भी नहीं देखसकता हूँ; किन्तु भौचक्कासा होजाता हूँ ॥ ११ ॥ इस समय मेरे प्राण अकुला रहे हैं, यह भूमि घूमती हुईसी मालूम होती है और अब चाबुक तथा बागडोरोंको पकडे रहनेकी शक्ति भी मुझमें नहीं है ॥ १२ ॥ यह सुनकर अर्जुनने कहा, कि-हे नरपुंगव ! तू भयभीत न हो, किन्तु अपने आत्माको धीरजसे स्थिर रख, तूने तो रणके मुहाने पर बडे २ ॥ अचरजके काम किये हैं ॥१३॥ तू वैरियोंके दबानेवाले मत्स्यके प्रसिद्ध वंशमें उत्पन्न हुआ है, राजकुमार है, तेरा कल्याण हो तुझे इसप्रकार भयभीत होजाना नहीं चाहिये किन्तु हे वैरियोंका नाश करनेवाले राजकुमार ! मैं रणभूमिमें युद्ध करूँ उस समय तू अच्छेप्रकार धीरज रखकर मेरे घोडोंका थामे रख ॥ १४ ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच। एवमुक्त्वा महाबाहुर्वैराटिं नरसत्तमः। अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठ उत्तरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥ सेनाग्रमाशु भीष्मस्य प्रापयस्वैतदेव माम्। आच्छेत्स्याम्यहमेतस्य धनुर्ज्यामपि चाहवे ॥ १७ ॥ अस्यन्तं दिव्यमस्त्रं मां चित्रमद्य निशामय। शतह्रदामिवायांतीं स्तनयित्नोरिवाम्बरे ॥ १८ ॥ सुवर्णपृष्ठं गांडीवं द्रक्ष्यन्ति कुरवो मम। दक्षिणेनाथ वामेन कतरेण स्विदस्यति ॥ १९ ॥ इति मां संगताः सर्वे तर्कयिष्यन्ति शत्रवः। शोणितोदां रथावर्त्तां नागनक्रां दुरत्ययाम्। नदीं प्रस्कन्दयिष्यामि परलोकप्रवाहिनीम् ॥ २० ॥ पाणिपादशिरःपृष्ठबाहुशाखानिरन्तरम्। वनं कुरूणां छेत्स्यामि शरैः सन्नतपर्वभिः २१ जयतः कौरवीं सेनामेकस्य मम धन्विनः। शतं मार्गा भविष्यन्ति पावकस्येव कानने ॥ २२ ॥ मया चक्रमिवाविद्धं सैन्यं द्रक्ष्यसि केवलम्। इष्वस्त्रे शिक्षितं चित्रमहं दर्शयितास्मि ते ॥ २३ ॥ असम्भ्रान्तो रथे तिष्ठ समेषु विषमेषु च। दिवमावृत्य तिष्ठन्तं गिरिं भिद्यां स्वपत्रिभिः २४

वैशम्पायन कहते हैं, कि—महाबाहु पुरुषोंमें श्रेष्ठ, महारथी अर्जुनने उत्तरसे इसप्रकार कह कर फिर कहा, कि—॥ १६ ॥ तू मुझे भीष्म पितामहकी सेनाके मुहाने पर शीघ्र ही लेचल, तब मैं संग्राममें उनके धनुषकी डोरीको काटडालूँ ॥ १७ ॥ आज तू देखना, कि—मैं आश्चर्य में डालनेवाले दिव्य अस्त्रोंका प्रहार करूँगा, जैसे आकाशमें घनघटा मेंसे बिजली बाहरको निकलती है और उसको लोग देखते हैं, तैसे ही आज कौरव, अपनी सोनेकी पीठवाले गाण्डीव धनुषमेंसे बाणोंकी वर्षा करनेलगूँगा तब इकट्ठे हुए सब वैरी विचार करेंगे कि—यह धनञ्जय, बायें हाथसे बाण फेंकरहा है या दाहिने हाथसे ? आज मैं, जिसमें रथरूपी भँवर पड़रहे होंगे और जिसमें हाथीरूपी मगरमच्छ पड़े होंगे ऐसी परलोकमेंको बहाकर लेजानेवाली लोहूकी भयानक नदी बहाऊँगा ॥ १८—२० ॥ और नमीहुई नोकवाले बाण मारकर हाथ, पैर, मस्तक और पीठ आदि जिसमें बहुतसी घनी शाखा हैं, ऐसे कौरवरूपी वनको काटडालूँगा ॥ २१ ॥ मैं अकेला ही धनुर्धारी कौरवोंकी सेनाका तिरस्कार करूँगा तब जैसे अग्निको वनमें सैंकड़ों मार्ग मिलते हैं तैसे ही सैंकड़ों मार्ग मुझे भी कौरवसेनामें मिलेंगे ॥ २२ ॥ अरे ! आज मेरे अस्त्रोंके प्रहारसे तू कौरवोंकी सेनाको चक्रकी समान चारोंओरको भागती हुई ही देखेगा और आज मैं तुझे अपनी धनुषविद्याकी तथा अस्त्रविद्याकी विचित्र शिक्षा दिखाऊँगा ॥ २३

अहमिन्द्रस्य वचनात् संग्रामेऽभ्यहनं पुरा । पौलोमान् कालखञ्जांश्च सहस्राणि शतानि च ॥ ३५ ॥ अहमिन्द्राद् दृढां मुष्टिं ब्रह्मणः कृतहस्तताम् । प्रगाढे तुमुलं चित्रमिति विद्धि प्रजापतेः ॥ २६ ॥ अहंपारं समुद्रस्य हिरण्यपुरवासिनाम् । जित्वा षष्टिं सहस्राणि रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥ २७ ॥ शीर्यमाणानि कूलानि प्रवृद्धेनेव वारिणा । मया कुरूणां वृन्दानि पात्यमानानि पश्य वै ॥ २८ ॥ ध्वजवृक्षं पत्तितृणं रथसिंहगणायुतम् । वनमादीपयिष्यामि कुरूणामस्त्रतेजसा ॥ २९ ॥ तानहं रथनीडेभ्यः शरैः सन्नतपर्वभिः । यत्तान् सर्वानतिबलान् योत्स्यमानानवस्थितान् । एकः संकालयिष्यामि वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ ३० ॥ रौद्रं रुद्रादहं ह्यस्त्रं वरुणादपि वारुणम् । अस्त्रमाग्नेयमग्नेश्च वायव्यं मातरिश्वनः । वज्रादीनि तथास्त्राणि शक्रादहमवाप्तवान् ३१ धार्तराष्ट्रवनं

तू सम और विषम संग्राम होते समय रथ पर सावधान होकर बैठा रहना, क्योंकि—यदि एक वारको आकाशमें फैलकर पहाड़ आखड़े हों तो उनको भी अपने बाणोंसे काटडालनेका बल रखता हूँ ॥ २४ ॥ मैंने पहले इन्द्रके कहनेसे रणमें सैंकड़ों और सहस्रों पौलोमोंको और कालखञ्जोंको मारडाला था ॥ २५ ॥ मैंने इन्द्रसे मुट्ठीको दृढ़ रखना, ब्रह्माजीसे बाण आदिको चलानेमें शीघ्रता और प्रजापतिसे, सङ्कटवाले संग्रामके समय अनेकों प्रकारके विचित्र रण करनेकी रीतियें सीखी हैं यह तू जानले ॥ २६ ॥ मैंने पहिले समुद्रके परले पार हिरण्यपुरमें रहनेवाले उग्र धनुषधारी साठ हजार रथियोंको जीतलिया था ॥ २७ ॥ और जैसे पानीका वेग बढ़जाने पर नदीके किनारे गिरजाते हैं तैसे ही मैं कौरवोंके सेनादलोंको गिरादूँगा, यह तू देखना ॥ २८ ॥ जिसमें ध्वजारूपी वृक्ष, पैदलरूप तृण और चारों ओर रथरूपी सिंह हैं ऐसे कौरवरूपी वनको आज मैं अपने अस्त्रके तेजसे भस्म करडालूँगा ॥ २९ ॥ जैसे वज्रको हाथमें लेने वाला इन्द्र अकेला ही असुरोंको रथपरसे नीचे गिरादेता है तैसे ही मैं भी अकेला ही अपनी नमी नोकवाले बाणोंको मारकर, लड़नेके लिये आयेहुए सब महाबली योधाओंको रथों परसे नीचे गिरादूँगा ३० मैंने रुद्रसे रुद्रास्त्र सीखा है, वरुणसे वारुणास्त्र सीखा है अग्निसे आग्नेय अस्त्र सीखा है, वायुदेवतासे वायव्य अस्त्र सीखा है और इन्द्रसे मैंने वज्र आदि अस्त्र सीखे हैं ॥ ३१ ॥ हे विराटनन्दन ! धृतराष्ट्रके सब बेटे मानो एक महाभयानक वन है, बड़े २ वीर पुरुषरूपी

घोरं नरसिंहाभिरक्षितम्। अहमुत्पाटयिष्यामि वैराटे व्येतु ते भयम् ३२ वैशंपायन उवाच ॥ एवमाश्वासितस्तेन वैराटिः सव्यसाचिना। व्यवगाह्य रथानीकं भीमं भीष्माभिरक्षितम् ॥ ३३ ॥ तमायान्तं महाबाहुं जिगीषन्तं रणे कुरून्। अभ्यवारयदव्यग्रः क्रूरकर्मापगासुतः ॥ ३४ ॥ तस्य जिष्णुरुपावृत्य ध्वजं मूलादपातयत्। विकृष्य कलधौताग्रैः स विद्धः प्रापतद्भुवि ॥ ३५ ॥ तं चित्रमाल्याभरणाः कृतविद्या मनस्विनः। आगच्छन् भीमधन्वानं चत्वारश्च महाबलाः ॥ ३६ ॥ दुःशासनो विकर्णश्च दुःसहोऽथ विविंशतिः। आगत्य भीमधन्वानं बीभत्सुं पर्यवारयन् ॥ ३७ ॥ दुःशासनस्तु भल्लेन विद्ध्वा वैराटिमुत्तरम्। द्वितीयेनार्जुनं वीरः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ३८ ॥ तस्य जिष्णुरुपावृत्य पृथुधारेण कार्मुकम्। चकर्त गार्ध्रपत्रेण जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ३९ ॥ अथैनं पञ्चभिः पश्चात् प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे। सोऽपयातो रणं हित्वा

सिंह उसकी रक्षा कर रहे हैं, परन्तु मैं उस वनको उखेड़ डालूँगा, इसलिये तू उससे डरै मत ॥ ३२ ॥ वैशम्पायन कहते है, कि—सव्यसाचीने इसप्रकार उत्तरको धीरज दिया तब उत्तरकुमार, भीष्मजीकी रक्षाकी हुई भयानक रथ सेनामें धनंजयको लेगया ॥ ३३ ॥ महाबाहु धनंजय रणमें कौरवोंका पराजय करनेकी इच्छासे आने लगा, तब भयानकपराक्रमी गंगानन्दन भीष्मजीने, धीरजके साथ उसे आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ ३४ ॥ तब धनंजयने भीष्मजीके सामने जा, जिनके फलों पर सोनेका झोल होरहा था ऐसे बाण धनुष पर चढ़ाये और धनुषको खैंचकर भीष्मजीकी ध्वजाको जड़से काट दिया और वह भूमिपर गिरपड़ी ॥ ३५ ॥ उस समय फूलोंकी विचित्र मालाओंके गहने पहरकर सजेहुए, विद्यावान्, धैर्यधारी महाबली दुःशासन, विकर्ण, दुःसह और विविंशति ये चार योधा चढ़ आये और इन्होंने आकर भयानक धनुषधारी धनंजयको चारों ओरसे घेरलिया ३६॥३७ वीर दुःशासनने भाला मारकर विराटनन्दन उत्तरको घायल कर दिया और दूसरे भालेसे धनञ्जयके स्तनोंके मध्य भागको घायल कर दिया ॥ ३८ ॥ तब विजय चाहने वाले धनञ्जयने दुःशासनके समीप में आकर गीधपक्षीके परोंवाले और बड़े धारदार बाणोंसे मढ़ेहुए दुःशासनके धनुषको काटडाला ॥ ३९ ॥ और फिर पाँच तीर मार कर दुःशासनकी छातीको भी घायल करदिया तब धनञ्जयके बाणके प्रहारसे अत्यन्त पीड़ित हुआ दुःशासन रणभूमिको छोड़कर भाग

पार्थबाणप्रपीडितः ॥ ४० ॥ तं विकर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्गृध्रपत्रैरजिह्मगैः विव्याध परवीरघ्नमर्जुनं धृतराष्ट्रजः ॥ ४१ ॥ ततस्तमपि कौन्तेयः शरेणानतपर्वणा । ललाटेऽभ्यहनत्तूर्णं स विद्धः प्रापतद्रथात् ॥ ४२ ॥ ततः पार्थमभिद्रुत्य दुःसहः स विविंशतिः । अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णैः परीप्सुर्भ्रातरं रणे ॥ ४३ ॥ तावुभौ गार्ध्रपत्राभ्यां निशिताभ्यां धनञ्जयः । विद्ध्वा युगपदव्यग्रस्तयोर्वाहानसूदयत् ॥ ४४ ॥ तौ हताश्वौ विभिन्नांगौ धृतराष्ट्रात्मजावुभौ । अभिपत्य रथैरन्यैरपनीतौ पदानुगैः ॥ ४५ ॥ सर्वा दिशश्चाभ्यपतद् बीभत्सुरपराजितः । किरीटमाली कौन्तेयो लब्धलक्षो महाबलः ॥ ४६ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुनदुःशासनादियुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ सङ्गम्य सर्वे ते कौरवाणां महारथाः । अर्जुनं सहिता यत्ताः प्रत्ययुध्यन्त भारत ॥ १ ॥ ससायकमयैर्जालैः सर्वतस्तान्महारथान् । प्राच्छादयदमेयात्मा नीहारेणेव पर्वतान् ॥ २ ॥

गया ॥ ४० ॥ तब धृतराष्ट्रनन्दन विकर्णने सीधेजाने वाले और जिनमें गीध पक्षीके पर लगरहे थे ऐसे तेज बाण मारकर वीर वैरीका नाश करनेवाले धनंजयको बींध दिया ॥ ४१ ॥ उसी समय धनंजयने नमी हुई नोकवाला बाण उसके ललाटमें मारा और वह घायल होकर रथ परसे नीचे गिरपड़ा ॥ ४२ ॥ तब रणभूमिमें भाईकी रक्षा करनेकी इच्छासे दुःसह और विविंशति धनंजयके ऊपर चढ़ आये और उसके तेज तीर मारनेलगे ॥ ४३ ॥ परन्तु धनंजय घबड़ाया नहीं उसने बड़े धीरजसे गीध पक्षीके परोंवाले दो तेज बाण मारकर उन दोनोंको एक साथ ही घायल कर दिया और उन दोनोंके रथोंके घोड़ोंको भी तीरोंसे मारडाला ॥ ४४ ॥ इस प्रकार धृतराष्ट्रके दोनों बेटोंके घोड़े मरणको शरण होगए और उनके शरीर भी घायल होगए तब कितने ही दूसरे रथी तथा पैदल तुरन्त वहां आ उन दोनोंको उठाकर लेगए ॥ ४५ ॥ तदनन्तर निशाना लगानेमें एक ही गिना जानेवाला अजित, महाबली, किरीटमाली धनंजय रणभूमिमें सब ओर घूमने लगा ॥ ४६ ॥ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! इसके पीछे कौरवोंके सब महारथी योधा इकट्ठे होकर सावधानीके साथ धनंजयके सामने लड़ने लगे ॥ १ ॥ तब जैसे कुहर पहाड़ोंको ढकदेता है तैसे ही बड़े भारी आत्मबल वाले धनंजयने तीरोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उन्हें

नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः । भेरीशङ्खनिनादैश्च स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ ३ ॥ नराश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च । पार्थस्य शरजालानि विनिष्पेतुः सहस्रशः ॥ ४ ॥ त्वरमाणः शरानस्यन् पाण्डवः प्रबभौ रणे । मध्यन्दिनगतोऽर्चिष्मान् शरदीव दिवाकरः ॥ ५ ॥ उपप्लवन्ति वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तथा । सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चैव पदातयः ॥ ६ ॥ शरैः संछिद्यमानानां कवचानां महात्मनाम् । ताम्रराजतलौहानां प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ७ ॥ छन्नमायोधनं सर्वं शरीरैर्गतचेतसाम् । गजाश्वसादिनां तत्र शितबाणात्तजीवितैः ॥ ८ ॥ रथोपस्थाभिपतितैरास्तृता मानवैर्मही । प्रनृत्यतीव संग्रामे चापहस्तो धनञ्जयः ॥ ९ ॥ श्रुत्वा गांडीवनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः । त्रस्तानि सर्वसैन्यानि व्यपागच्छन् महाहवात् १० कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपस्रजस्तथा । पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि रणमूर्द्धनि ॥ ११ ॥ विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सका-

---

चारों ओरसे ढकदिया ॥२॥ इस समय चिंघारते हुए बड़े २ हाथियों से हींसतेहुए घोड़ोंसे और भेरी तथा शंखोंके शब्दोंसे भी रणभूमिमें घोर शब्द हो उठा ॥३॥ धनञ्जयके छोड़ेहुए हजारों बाणोंके समूह पड़तेही मनुष्य और घोड़ोंके शरीरोंको तथा शरीरों पर पहरेहुए लोहेके बख्तरों को काटडालते थे ॥ ४ ॥ और उस समय संग्राममें शीघ्रतासे तीर छोड़ता हुआ धनञ्जय, शरदृतुमें मध्याह्नकालके तेजस्वी सूर्यकी समान शोभाको प्राप्त हुआ ॥५॥ और उसके भयसे डरेहुए रथी, रथों परसे पटापट गिरनेलगे, घोड़ेसवार घोड़ों परसे गिरनेलगे और पैदल भूमि परही लुढ़कनेलगे ॥६॥ और धनञ्जयके बाणोंकी मारसे महात्मा पुरुषोंके तांबेके, चाँदीके और लोहेके जो बख्तर कटते थे उनका बड़ा भारी शब्द होता था ॥७॥ धनञ्जयके तीखे तीर लगनेसे मरेहुए हाथी और घोड़ोंके सवारोंके शरीरोंसे सब रणभूमि ढकगई थी ॥ ८ ॥ तथा रथोंकी बैठकों परसे नीचे गिरे हुए योधाओंसे भी पृथ्वी ढकगई थी, उस समय हाथमें धनुष लेकर खड़ाहुआ धनञ्जय, संग्राममें नाचता हुआसा दीखता था ॥ ९ ॥ तदनन्तर धनञ्जयने अपने गाण्डीव धनुष पर टँकार दी, उसके वज्रकेसे भयंकर शब्दको सुनकर सबसेना घबड़ा कर महासंग्राममेंसे भागनेलगी ॥ १० ॥ उस समय रणभूमिमें, कुण्डल और पगड़ियों सहित सोनेकी मालाओं वाले शिर पड़े हुए दीखते थे ११ तथा पार्थके तीरोंसे फटेहुए शरीरोंसे, धनुषों सहित हाथोंसे

मुकुटैः । सहस्ताभरणैश्चान्यैः प्रच्छन्ना भाति मेदिनी ॥ १२ ॥ शिरसां पात्यमानानामन्तरा निशितैः शरैः । अश्मवृष्टिरिवाकाशादभवद्भरतर्षभ ॥ १३ ॥ दर्शयित्वा तथात्मानं रौद्रं रुद्रपराक्रमः । अवरुद्धोऽचरत् पार्थो वर्षाणि त्रिदशानि च । क्रोधाग्निमुत्सृजन् घोरो धार्तराष्ट्रेषु पाण्डवः ॥ १४ ॥ तस्य तद्दहतः सैन्यं दृष्ट्वा चैव पराक्रमम् । सर्वे शांतिपरा योधा धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥ १५ ॥ वित्रासयित्वा तत् सैन्यन्द्रावयित्वा महारथान् । अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः पर्य्यवर्त्तत भारत ॥ १६ ॥ प्रावर्त्तयन्नदीं घोरां शोणितोदां तरङ्गिणीम् । अस्थिशैवालसम्बाधां युगान्ते कालनिर्मिताम् ॥ १७ ॥ शरचापप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् । तनुत्रोष्णीषसम्बाधां नागकूर्ममहाद्विपाम् ॥ १८ ॥ मेदोवसासृक्प्रवहां महाभयविवर्धिनीम् । रौद्ररूपां महाभीमां श्वापदैरभिनादिताम् ॥ १९ ॥ तीक्ष्णशस्त्रमहाग्राहां क्रव्यादगणसेविताम् ।

तथा हाथके कंकण आदिसे एवं और गहनोंसे भी ढकीहुई भूमि शोभा पारही थी ॥ १२ ॥ बीचबीचमें तेज कियेहुए बाणोंने जो योधाओंके शिर काट२ कर नीचे गिराये जारहे थे, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्। पत्थरों की वर्षाकी समान आकाशमेंसे तीरोंकी वर्षा होरही थी ॥ १३ ॥ इस प्रकार रुद्रकी समान पराक्रमी पाण्डुनन्दन धनञ्जय, जोकि–तेरह वर्ष पर्यन्त बनमें रुकारहा था वह, धृतराष्ट्रके बेटोंके ऊपर क्रोधकी आग बरसाता तथा अपनी भयानकता दिखाता हुआ रणभूमिमें घूमता था ॥१४॥ सेनाको भस्म करनेवाले धनञ्जयकी उस वीरताको देखकर दुर्योधनके देखते हुए सब योधा शान्त पडगए ॥ १५ ॥ हे भरतवंशी राजन्! विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ धनञ्जय, कौरवसेनाको भयभीतकरके और महारथियोंको भगाकर रणभूमिमें चारो ओर घूमने लगा ॥ १६ ॥ और कुंतीनन्दन धनञ्जयने, रणभूमिमें लोहूकी दुस्तर नदी बहा दी रुधिररूप पानीसे भरीहुई वह तरङ्गोंवाली नदी बडी भयानक थी जिसमें हड्डियेंरूप सिवार थे ऐसी वह नदी प्रलयके समय, कालकी रचीहुईसी दीखती थी ॥ १७ ॥ जिसमें धनुष बाण डोंगेसे तैर रहे थे, जो बालोंरूपी सिवारसे किचौंदी दीख रही थी बख्तर और पगड़ियों से खचाखच भरीं हुई थी, जिसमें हाथीरूप कछुए और बड़े २ जलहाथी थे ॥ १८ ॥ मेद, बसा और लोहूसे बह रही थी, ऐसी घोररूप महाभयानक थी, कि—उसको देखने पर भय बढ़ता था, ज़ंगली जीव तहाँ कोलाहल कररहे थे ॥ १९ ॥ उसमें तेज़ शस्त्ररूपी

मुक्ताहारोर्मिकलिलां चित्रालंकारबुद्बुदाम् ॥ २० ॥ शरसंघमहावर्त्तां नागनक्रां दुरत्ययाम् । महारथमहाद्वीपां शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाम् २१ चकार च तदा पार्थो नदीं दुस्तरशोणिताम् । आददानस्य हि शरान् सन्धाय च विमुञ्चतः । विकर्षतश्च गाण्डीवं न कश्चिद्ददृशे जनः ॥२२॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुन-
घोरसंग्रामे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो दुर्य्योधनः कर्णो दुःशासनविविंशती । द्रोणश्च सह पुत्रेण कृपश्चापि महारथः ॥ १ ॥ पुनर्ययुश्च संरब्धा धनञ्जयजिघांसवः । विस्फारयन्तश्चापानि बलवन्ति दृढानि च ॥ २ ॥ तान् विकीर्णपताकेन रथेनादित्यवर्चसा । प्रत्युद्ययौ महाराज समन्ताद्वानरध्वजः ॥ ३ ॥ ततः कृपश्च कर्णश्च द्रोणश्च रथिनां वरः । तं महास्त्रैर्महावीर्यं परिवार्य्य धनञ्जयम् ॥ ४ ॥ शरौघान् सम्यगस्यन्तो जीमूता इव वार्षिकाः । ववर्षुः शरवर्षाणि पातयन्तो धनञ्जयम् ॥ ५ ॥

ड़े २ नाके पड़े थे, मांसभक्षी जीवोंके समूह उसकी सेवा कररहे थे उसमें मोतियोंकी मालायेंरूपी तरङ्गें उठरही थीं और भांति २ के गहने जो पड़े थे, वे ही उसमें बुद्बुदसे दीखते थे ॥ २० ॥ बाणोंके समूह रूप बड़े २ भँवर पड़ रहे थे, हाथी रूप नाके महारथी रूप बड़े २ टापू और शंख नगाड़ोंके बड़े भारी शब्द रूप गड़गड़ाहट वाली रुधिर की महादुस्तर नदी उस समय अर्जुन ने बहाई ॥ २१ ॥ धनञ्जय किस समय गाण्डीव धनुष को खेंचता था, किस समय तीरोंको लेकर धनुष पर चढ़ाता था और किस समय छोड़ता था वह किसीने देख ही न पाया ॥ २२ ॥ बासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय ! धनंजयके ऐसे पराक्रम को देख कर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और महारथी कृपाचार्य भी क्रोधमें भर गए और उसको मार डालनेकी इच्छासे बलवान् और दृढ़ धनुषोंका टंकार शब्द करते करते फिर धनंजयके ऊपर चढ़ गए ॥ १ ॥ २ ॥ तब हे महाराज ! जिसकी ध्वजामें वानर है ऐसा धनंजय, जिसकी ध्वजा पताका पवनसे फहरा रही थीं ऐसे सूर्यकी समान तेजस्वी रथमें बैठकर उनके सामने लड़ने को गया ॥ ३ ॥ तब महारथी कृपाचार्य, कर्ण और द्रोणाचार्य बड़े २ अस्त्रोंसे महापराक्रमी धनंजयको चारों ओरसे घेर कर वर्षाकालके मेघों की समान बाणोंके समूह छोड़ते हुए उसके ऊपर वर्षा करने

इषुभिर्बाहुभिस्तूर्णं समरे लोमवाहिभिः । अदूरात् पर्य्यवस्थाप्य पूरयामासुराहताः ॥ ६ ॥ तथा तैरवकीर्णस्य दिव्यैरस्त्रैः समन्ततः । न तस्य द्व्यङ्गुलमपि विवृतं समदृश्यत ॥ ७ ॥ ततः प्रहस्य बीभत्सुर्दिव्यमैन्द्रं महारथः । अस्त्रमादित्यसंकाशं गाण्डीवे समयोजयत् ॥८॥ शररश्मिरिवादित्यः प्रतस्थे समरे बली । किरीटमाली कौन्तेयः सर्वान् प्राच्छादयत् कुरून् ॥ ९ ॥ यथा बलाहके विद्युत्पावको वा शिलोच्चये । तथा गाण्डीवमभवदिन्द्रायुधमिवानतम् ॥ १० ॥ यथा वर्षति पर्ज्जन्ये विद्युद्विभ्राजते दिवि । द्योतयन्ती दिशः सर्वाः पृथिवीञ्च समन्ततः ॥ ११ ॥ तथा दश दिशः सर्वाः पतद्गाण्डीवमावृणोत् । नागाश्च रथिनः सर्वे मुमुहुस्तत्र भारत ॥ १२ ॥ सर्वे शान्तिपराः योधाः स्वचित्तानि न लेभिरे । संग्रामे विमुखाः सर्वे योधास्ते हतचेतसः ॥१३॥ एवं सर्वाणि सैन्यानि भग्नानि भरतर्षभ । व्यद्रवन्त दिशः सर्वा निराशानि स्वजीविते ॥ १४ ॥ छ ॥ छ ॥

लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ उन्होंने परों वाले बहुतसे बाण मारकर पास खड़ेहुए धनंजयको एक साथ घेर कर बाणोंसे ढक दिया ॥६॥ इसप्रकार उनके छोड़े हुए दिव्य अस्त्रोंसे चौतरफा ढके हुए धनंजयके शरीरका दो अंगुलका भाग भी विनाबाणोंका नहीं दीखता था ॥ ७ ॥ तदनन्तर महारथी धनंजयने हँसकर गांण्डीव धनुष पर ऐन्द्र अस्त्रको चढ़ाया और किरीटमाली बलवान् कुन्तीनन्दनने, बाण रूपी किरणों वाले सूर्यकी समान प्रकाश करके सब कौरवोंको ढक दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ जैसे जल बरसाते हुए मेघ में बिजली शोभा देती है और जैसे पहाड़के ऊपर अग्नि शोभा देता है तैसे ही उस समय इन्द्रधनुषकी समान सब ओरसे नमा हुआ गाण्डीव धनुष शोभा दे रहा था ॥ १० ॥ और वर्षा होते समय जैसे बिजली, आकाश दशों दिशा और भूमण्डलको छालेती है तैसे ही गाण्डीव धनुषने भी अपनेमेंसे बाण छोड़ कर दशों दिशाओंको छा दिया हे भारत ! उस समय रण भूमिमें खड़े हुए हाथी सवार और रथी सब मूर्छित होगए ॥ ११ ॥ १२ ॥ और सब योधा भयके मारे ठंडे पड़ गए, अपना चित्त भी उनके हाथ नहीं आता था, इस प्रकार अचेत हुए वे सब योधा संग्रामको छोड़ २ कर भागने लगे ॥ १३ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इस प्रकार कौरवोंकी सब सेना अपने जीवनकी आशाको छोड़ कर सब दिशाओंमेंको भागनेलगी ॥ १४ ॥ तरेसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ छ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः । वध्यमानेषु योधेषु धनंजयमुपाद्रवत् ॥ १ ॥ प्रगृह्य कार्मुकश्रेष्ठं जातरूपपरिष्कृतम् । शरानादाय तीक्ष्णाग्रान्मर्मभेदान् प्रमाथिनः ॥ २ ॥ पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि । शुशुभे स नरव्याघ्रो गिरिः सूर्योदये यथा ॥ ३ ॥ प्रध्माय शंखं गांगेयो धार्त्तराष्ट्रान् प्रहर्षयन् । प्रदक्षिणमुपावृत्य बीभत्सुं समवारयत् ॥ ४ ॥ तमुद्वीक्ष्य समायान्तं कौन्तेयः परवीरहा । प्रत्यगृह्णात् प्रहृष्टात्मा धाराधरमिवाचलः ॥ ५ ॥ ततो भीष्मः शरानष्टौ ध्वजे पार्थस्य वीर्यवान् । समर्पयन्महावेगान् श्वसमानानिवोरगान् ॥ ६ ॥ ते ध्वजं पाण्डुपुत्रस्य समासाद्य पतत्रिणः । ज्वलन्तं कपिमाजघ्नुर्ध्वजाग्रनिलयांश्च तान् ॥ ७ ॥ ततो भल्लेन महता पृथुधारेण पाण्डवः । छत्रं चिच्छेद भीष्मस्य तूर्णं तदपतद्भुवि ॥ ८ ॥ ध्वजं चैवास्य कौन्तेयः शरैरभ्यहनद् भृशम् ।

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! जब रणभूमिमें योधा मारे जाने लगे तब, भरतवंशी राजाओंके पितामह शन्तनुनन्दन भीष्मजी, सोने से मढ़े हुए श्रेष्ठ धनुष और मर्मभेदी, प्राणलेवा तीखी धारों वाले तीरोंको लेकर अर्जुनके ऊपरको झपटे ॥ १ ॥ २ ॥ इस समय नरव्याघ्र भीष्मजीके ऊपर स्वेत छत्र लग रहा था, इस कारण जैसे सूर्योदयके समय पहाड़ शोभा पाता है तैसे शोभित होरहे थे ॥ ३ ॥ गङ्गानन्दन भीष्मजीने संग्रामका आरम्भ करते समय शंख बजाकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंको बड़ा आनन्द दिया और फिर दाहिनी ओरसे रथको चक्कर देकर धनंजयको घेरलिया ॥ ४ ॥ भीष्म पितामहको चढ़कर आया हुआ देखकर, वीर वैरियोंका संहार करने वाला धनंजय मनमें प्रसन्न हुआ और पर्वत जैसे बरसातको झेल लेता है तैसे उसने भीष्मपितामहको युद्धके लिये स्वीकार कर लिया ॥ ५ ॥ तदनन्तर वीर्यवान् भीष्मजीने, बड़े वेगवाले और श्वासें छोड़ते हुए सर्पोंकी समान सरसराते हुए आठ तीर धनंजयकी ध्वजामें मारे ॥ ६ ॥ उन तीरोंने पाण्डुनन्दनकी ध्वजामें आकर पहिले तेजस्वी वानरको घायल किया तथा ध्वजामें रहने वाले भूतोंको भी घायल किया ॥ ७ ॥ तब तो तत्काल अर्जुनने बड़ी धारवाले बड़ेभारी भालेसे भीष्मजीके छत्रको काटडाला सो वह पृथिवी पर गिरपड़ा ॥ ८ ॥ इसीप्रकार कुन्तीनन्दनने भीष्मजीकी ध्वजाके ऊपर भी बहुतसे प्रहार कर उसको काटदिया, फिर बड़ी ही शीघ्रतासे रथके घोड़ोंको,

शीघ्रकृद्रथवाहांश्च तथाभो पार्ष्णिसारथी ॥ ९ ॥ अमृष्यमाणस्तद्भीष्मो जानन्नपि स पाण्डवम् । दिव्येनास्त्रेण महता धनंजयमवाकिरत् ॥ १० ॥ तथैव पाण्डवो भीष्मे दिव्यमस्त्रमुदीरयन् । प्रत्यगृह्णादमेयात्मा महामेघमिवाचलः ॥ ११ ॥ तयोस्तदभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । भीष्मेण सह पार्थेन बलिवासवयोरिव ॥ १२ ॥ प्रैक्षन्त कुरवः सर्वे योधाश्च सह सैनिकाः । भल्लैर्भल्लाः समागम्य भीष्मपाण्डवयोर्युधि । अन्तरिक्षे व्यराजन्त खद्योताः प्रावृषीव हि ॥ १३ ॥ अग्निचक्रमिवाविद्धं सव्यदक्षिणमस्यतः । गाण्डीवमभवद्राजन् पार्थस्य सृजतः शरान् ॥ १४ ॥ ततः संछादयामास भीष्मं शरशतैः शितैः । पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ १५ ॥ तां स वेलामिवोद्भूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् । व्यधमत्सायकैर्भीष्मः पाण्डवं समवारयत् ॥ १६ ॥ ततस्तानि निकृत्तानि शरजालानि भागशः । संगरे च व्यशीर्यन्त फाल्गुनस्य रथं प्रति ॥ १७ ॥ ततः कनकपुङ्खानां शर-

---

रथके पीछेके रक्षकोंको तथा सारथीको भी घायल करदिया ॥ ९ ॥ भीष्मपितामह इस बातको सह न सके और उन्होंने धनंजयके ऊपर दिव्य अस्त्रोंकी बड़ी भारी वर्षा करी ॥ १० ॥ तुरन्त ही धनंजयने भी भीष्मजीके ऊपर दिव्य अस्त्र वर्षाना आरम्भ करदिये और अपार बली भीष्मजीने, जैसे पहाड़ महामेघको झेल लेता है तैसे ही उस अस्त्रवर्षाको झेल लिया ॥ ११ ॥ उस समय भीष्मपितामह और अर्जुनमें, बलि और इन्द्रकेसा रोमांच खड़े करनेवाला घोर संग्राम होनेलगा ॥ १२ ॥ और सब कौरव योधा तथा सेनाके लोग खड़े २ उन दोनोंके संग्रामको देखने लगे, रणमें भीष्म और धनंजयके भाले आकाशमें एक दूसरेके साथ अड़ कर वर्षाकालमें जैसे पटबीजने चमकते हैं तैसे शोभा पाने लगे ॥ १३ ॥ हे राजन्! धनंजय गाण्डीवको बाईं तथा दाईं ओरको घुमाकर उसमेंसे बाण छोड़ता था इसकारण वह धनुष धधकर बांधकर घुमाई हुई बनैटीसा मालूम होता था ॥ १४ ॥ फिर जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पहाड़को ढकदेता है तैसे धनंजयने सैकड़ों तेज बाणोंसे भीष्मजी को ढक दिया ॥ १५ ॥ और भीष्मजीने भी बढ़ेहुए समुद्रके ज्वारभाटेकी समान धनंजयके बाणोंकी वर्षाके सामने अपने बाण छोड़कर उसका नाश कर दिया तथा धनंजयको बाणोंकी वर्षा करनेसे रोकदिया ॥ १६ ॥ और विभागके अनुसार भीष्मजीके काटे हुए तीरोंका समूह रणमें खड़ेहुए अर्जुनके रथ पर

वृष्टिं समुत्थिताम् । पाण्डवस्य रथात्तूर्णं शलभानामिवायतिम् । व्यधमत्तां पुनस्तस्य भीष्मः शरशतैः शितैः ॥१८॥ ततस्ते कुरवः सर्वे साधु साध्विति चाब्रुवन् । दुष्करं कृतवान् भीष्मो यदर्जुनमयोधयत् १९. बलवांस्तरुणो दक्षः क्षिप्रकारी धनञ्जयः । कोऽन्यः समर्थः पार्थस्य वेगं धारयितुं रणे ॥ २० ॥ ऋते शान्तनवात् भीष्मात् कृष्णाद्वा देवकीसुतात् । आचार्यप्रवराद्वापि भारद्वाजान्महाबलात् ।२१। अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य क्रीडन्तौ भरतर्षभौ । चक्षूंषि सर्वभूतानां मोहयन्तौ-महाबलौ ॥ २२ ॥ प्राजापत्यं तथैवैन्द्रमाग्नेयं रौद्रदारुणम् । कौबेरं वारुणं चैव याम्यं वायव्यमेव च । प्रयुञ्जानौ महात्मानौ समरे तौ विचेरतुः २३ विस्मितान्यथ भूतानि तौ दृष्ट्वा संयुगे तदा । साधु पार्थ महाबाहो साधु भीष्मेति चाब्रुवन् ॥ २४ ॥ नायं युक्तो मनुष्येषु योऽयं-संदृश्यते महान् । महास्त्राणां सम्प्रयोगः समरे भीष्मपार्थयोः ॥ २५ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं सर्वास्त्रविदुषोरस्त्रयुद्धमवर्त्तत । अस्त्रयुद्धे तु

आकर गिरने लगा ॥ १७ ॥ तत्काल धनञ्जयके रथमेंसे टीड़ियोंकी वर्षाकी समान सोनेके परोंवाले बाणोंकी वर्षा होनेलगी तब तो फिर भीष्मजीने सैकड़ों तेज बाण मारकर उसको काटदियो ॥ १८ ॥ यह देखकर सब कौरव कहनेलगे, कि-बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया और फिर बोल उठे, कि—भीष्मजीने जो धनञ्जयके साथ युद्ध किया है यह बड़ा ही कठिन काम किया है ॥ १९ ॥ अर्जुन बलवान् तरुण, चतुर और शीघ्र अस्त्र छोड़नेवाला है ऐसे पार्थके वेगको रण में शन्तनुनन्दन भीष्मजीके सिवाय वा देवकीनन्दन श्रीकृष्णके सिवाय अथवा आचार्योंमें श्रेष्ठ महाबली भारद्वाज (द्रोणाचार्य) के सिवाय दूसरा कौन सहसकता है ॥ २० ॥ २१ ॥ भरतवंशमें श्रेष्ठ वे दोनों महाबली पुरुष, अस्त्र फैंककर सामनेसे आते हुए अस्त्रको रोकते थे, और सब प्राणियोंकी आँखोंको भौचक्कीसी कररहे थे ॥२२॥ वे दोनों महात्मा प्रजापतिके, इन्द्रके, अग्निके, महाभयानक रुद्र कुबेरके वरुणके यमके और वायुके अस्त्रोंको छोड़ते हुए रणभूमिमें घूम रहे थे ॥ २३ ॥ उस समय उन दोनोंके संग्रामको देखकर सब प्राणी अचरज मान रहे थे, और कहते थे कि-हे महाबाहु धनञ्जय तुम ठीक लड़ते हो-! हे भीष्मजी तुम भी ठीक काम करते हो॥२४॥ भीष्म और धनञ्जयके संग्राममें जिन बड़े २ अस्त्रोंकी मारामार होती हुई देखते हैं, ये अस्त्र मनुष्योंके पास नहीं होसकते ये तो देवताओंके

निर्वृत्ते शरयुद्धमवर्त्तत ॥ २६ ॥ अथ जिष्णुरुपावृत्य क्षुरधारेण कार्मुकम् । चकर्त भीष्मस्य तदा जातरूपपरिष्कृतम् ॥ २७ ॥ निमेषान्तरमात्रेण भीष्मोऽन्यत्कार्मुकं रणे । समादाय महाबाहुः सज्यं चक्रे महारथः । शरांश्च सुबहून् क्रुद्धो मुमोचाशु धनञ्जये ॥ २८ ॥ अर्जुनोऽपि शरांस्तीक्ष्णान् भीष्माय निशितान् बहून् । चिक्षेप सुमहातेजास्तथा भीष्मश्च पाण्डवे ॥ २९ ॥ तयोर्दिव्यास्त्रविदुषोरस्यतोर्निशितान् शरान् । न विशेषस्तदा राजन् लक्ष्यते स्म महात्मनोः ॥ ३० ॥ अथावृणोद्दश दिशः शरैरतिरथस्तदा । किरीटमाली कौन्तेयः शूरः शान्तनवस्तथा ।३१। अतीव पाण्डवो भीष्मं भीष्मश्चातीव पाण्डवम् । बभूव तस्मिन् संग्रामे राजन् लोके तदद्भुतम् ॥ ३२ ॥ पाण्डवेन हताः शूरा भीष्मस्य रथरक्षिणः । शेरते स्म तदा राजन् कौन्तेयस्याभितो रथम्३३ ततो गाण्डीवनिर्मुक्ता निरमित्रं चिकीर्षवः । आगच्छन् पुङ्ख-

पास ही होसकते हैं ॥ २५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, सब अस्त्रोंको जाननेवाले दोनों वीरोंका इसप्रकार संग्राम हुआ था, इस अस्त्र युद्धके होचुकने पर बाणोंकी लड़ाई हुई ॥ २६ ॥ तदनन्तर विजयशील अर्जुनने भीष्मजीके पास आकर उनके सोनेसे मढ़ेहुए धनुषको क्षुर नामके तीरकी धारसे काटडाला २७ तब महारथी महाबाहु भीष्मने पलक भरमें रणमें अपना धनुष लेकर उसको ठीक किया और फिर कोपमें भरकर उन्होंने धनञ्जयके ऊपर बहुतसे बाण बरसाना आरम्भ करदिये २८ उधर महातेजस्वी धनञ्जय भी भीष्मजीके ऊपर सानपर धरेहुए अनेकों तीक्ष्ण बाणोंकी मारामार करने लगा तैसेही भीष्मजी भी अर्जुनके ऊपर बाण बरसाने लगे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार दिव्य शस्त्रोंको जाननेवाले वे दोनोंजने, तेज कियेहुए तीर फैंकरहे थे परन्तु उन दोनों महात्माओंमें बढ़कर कौन है, यह नहीं मालूम होता था ॥ ३० ॥ तिस संग्राममें उस समय किरीटमाली वीर कुन्तीनन्दन और शूर भीष्म पितामह इन दोनों अतिरथियोंने बाणोंकी मारसे दशों दिशाओंको घेरलिया था ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! उस संग्राममें जैसे किसी समय अर्जुन भीष्मजीसे बढ़ जाता था तैसे ही कभी भीष्मजी उससे बढ़जाते थे, लोकमें यह काम अचरजसा मालूम होता था ॥ ३२ ॥ और हे राजन् ! भीष्मजीके रथकी रक्षा करनेवाले जिन वीर पुरुषोंको धनञ्जयने रणमें मारडाला था वे उसके रथके आस पास भूमिमें पड़े हुए थे ॥ ३३ ॥ तदनन्तर

संश्लिष्टाः श्वेतवाहनपत्रिणः ॥ ३४ ॥ निष्पतन्तो रथात्तस्य धौता हैर-
ण्यवाससः । आकाशे समदृश्यन्त हंसानामिव पंक्तयः ॥ ३५ ॥ तस्य
तद्दिव्यमस्त्रं हि विगाढं चित्रमस्यतः । प्रेक्षन्ते स्मान्तरिक्षस्थाः
सर्वेदेवाः सवासवाः ॥ ३६ ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतो गन्धर्वश्चित्रमद्भु-
तम् । शशंस देवराजाय चित्रसेनः प्रतापवान् ॥ ३७ ॥ पश्येमान् पार्थ-
निर्मुक्तान् संसक्तानिव गच्छतः । चित्ररूपमिदं जिष्णोर्दिव्यमस्त्रमु-
दीर्यतः ॥३८॥ नेदं मनुष्याः संदध्युर्नहीदं तेषु विद्यते । पौराणानां
महास्त्राणां विचित्रोऽयं समागमः ॥ ३९ ॥ आददानस्य हि शरान्
सन्धाय च विमुञ्चतः । विकर्षतश्च गाण्डीवं नान्तरं समदृश्यत ४०
मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे । नाशक्नुवन्त सैन्यानि पाण्डवं
प्रतिवीक्षितुम् ॥ ४१ ॥ तथैव भीष्मं गांगेयं द्रष्टुं नोत्सहते जनः ।४२।
उभौ विश्रुतकर्माणावुभौ तीव्रपराक्रमौ । उभौ सदृशकर्माणावुभौ

श्वेत घोड़ों वाले धनञ्जयके, सोनेके पर लगे, सोनेके पत्तरसे
जड़े और पानी पिलाकर तेज किए हुए तीर वैरियोंके प्राण लेनेकी
इच्छासे अर्जुनके रथके भीतरसे गाण्डीव धनुषमेंसे छूट छूट कर
आकाशमें उड़ने लगे, वे हंसोंकी पंक्तिसे मालूम होते थे ॥ ३४ ॥३५॥
धनञ्जय विचित्र प्रकारसे तीर छोड़ रहा था, उस समय उसके बाण
फेंकनेके दिव्य कर्मको आकाशमें विराजमान् देवता और इन्द्र देख
ही रहे थे ॥३६॥ चित्रसेन नामवाला प्रतापी गन्धर्व, अर्जुनके आश्चर्य
में डालने वाले वाण चलानेके विचित्र कर्मको देखकर बड़ा ही प्रसन्न
हुआ और उसने इन्द्रसे कहा, कि—॥ ३७ ॥ उस अर्जुनके गाण्डीव
धनुषमेंसे छोड़े हुए और एक दूसरेके पीछे जाते हुए बाणोंको देखो,
देखो ! दिव्य अस्त्रोंको छोडनेवाले विजयशील अर्जुनका यह काम
कैसा अचरज भरा है ॥ ३८ ॥ इस अस्त्रको मनुष्य धनुष पर नहीं
चढ़ासकते और यह अस्त्र मनुष्योंके पास है भी नहीं, यह तो प्राचीन
कालके बड़े २ अस्त्रोंका विचित्र समागम हो रहा है ॥ ३९ ॥ अर्जुन
कब बाणोंको लेता है, कब धनुष पर चढ़ाता है कब गाण्डीव धनुष
को खेंचता है और कब वाण छोडना है, इसका अवसर देखने में ही
नहीं आता ॥ ४० ॥ जैसे आकाशमें तपते हुए सूर्यको मनुष्य मध्याह्नके
समय नहीं देखसक्ते तैसे ही यह सेना भी धनञ्जयको नहीं देख सकती
इसीप्रकार गङ्गाके पुत्र भीष्मको भी लोग नहीं देखसक्ते ॥४१-४२॥
ये दोनोंजने प्रसिद्ध कर्म करनेवाले तीव्र पराक्रमी, समान काम करने

युधि सुदुर्जयौ ॥ ४३ ॥ इत्युक्तो देवराजस्तु पार्थभीष्मसमागमम् । पूजयामास दिव्येन पुष्पवर्षेण भारत ॥ ४४ ॥ ततः शान्तनवो भीष्मो वामपार्श्वमताडयत् । पश्यतः प्रतिसन्धाय विध्यतः सव्यसाचिनः ॥ ४५ ॥ ततः प्रहस्य बीभत्सुः पृथुधारेण कार्मुकम् । चिच्छेद गार्ध्रपत्रेण भीष्मस्यादित्यतेजसः ॥ ४६ ॥ अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनांतरे । यतमानं पराक्रान्तं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ ४७ ॥ स पीडितो महाबाहुर्गृहीत्वा रथकूबरम् । गांगेयो युद्धदुर्धर्षस्तस्थौ दीर्घमिवान्तरम् ॥ ४८ ॥ तं विसंज्ञमपोवाह संयन्ता रथवाजिनाम् । उपदेशमनुस्मृत्य रक्षमाणो महारथम् ॥ ५९ ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोहरणपर्वणि
भीष्मापयाने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ भीष्मे तु संग्रामशिरो विहाय पलायमाने धृतराष्ट्रपुत्रः । उत्सृज्य केतुं विनदन्महात्मा धनुर्विगृह्यार्जुनमाससाद ॥ १ ॥ स भीमधन्वानमुदग्रवीर्यं धनञ्जयं शत्रुगणे चरन्तम् ।

वाले और रणमें बड़े दुर्जय हैं ॥४३॥ हे भरतवंशी राजन्। इसप्रकार चित्रसेन गन्धर्वने इन्द्रसे दोनोंके विषयमें कहा तब इन्द्रने दिव्य फूलोंकी वर्षासे अर्जुन और भीष्म दोनोंका सत्कार किया ॥ ४४ ॥ उस समय शन्तनुनन्दन भीष्मजीने, बाणोंका प्रहार करकै बींधतेहुए अर्जुनके देखते २ धनुष पर बाण चढ़ाकर अर्जुनके बायें खभेपर प्रहार किया ॥ ४५ ॥ तब अर्जुनने खिलखिलाके हँस कर गीधके परों वाले और बड़ी धारके तीरसे सूर्यकी समान तेजस्वी भीष्मके धनुषको काट दिया ॥ ४६ ॥ और फिर धनंजय अर्जुनने, महापराक्रमी उद्योग करते हुए भीष्मजीकी छातीमें दश बाणं मार कर उनको बींध दिया ४७ अर्जुनके इस प्रहारसे, रणमें किसीकी धौंसमें न आने वाले महाबाहु भीष्मजीके पीड़ा होने लगी और वह बहुत देर तक रथके कूबरको पकड़ कर ही बैठे रहे ॥ ४८ ॥ उसी समय रथके घोड़ोंको वशमें रखने वाला सारथी अपने कर्त्तव्य कर्मको स्मरण करकै, अचेत हुए भीष्मजीकी रक्षा करनेके लिये उनको रणभूमिमेंसे दूर लेगया ४९ चौंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि--हे जनमेजय! भीष्मपितामहके रणके मुहानेको छोड़कर चले जाने पर महात्मा दुर्योधन रथकी ध्वजाको फहराता तथा गरजता हुआ धनुष लेकर धनंजयके ऊपर चढ़

आकर्णपूर्णायतचोदितेन विव्याध भल्लेन ललाटमध्ये ॥ २ ॥ स तेन बाणेन समर्पितेन जाम्बूनदाग्रेण सुसंहितेन । रराज राजन् महनीयकर्मा यथैकपर्वा रुचिरैकशृङ्गः ॥ ३ ॥ अथास्य बाणेन विदारितस्य प्रादुर्बभूवासृगजस्रमुष्णम् स तस्य जाम्बूनदपुङ्खचित्रो भित्वा ललाटं सुविराजते स्म ॥ ४ ॥ स तेन बाणाभिहतस्तरस्वी दुर्योधनेनोद्धतमन्युवेगः । शरानुपादाय विषाग्निकल्पान् विव्याध राजानमदीनसत्वः ॥ ५ ॥ दुर्योधनश्चापि तमुग्रतेजाः पार्थश्च दुर्योधनमेकवीरः । अन्योऽन्यमाजौ पुरुषप्रवीरौ समौ समाजग्मतुराजमीढौ ॥ ६ ॥ ततः प्रभिन्नेन महागजेन महीधराभेन पुनर्विकर्णः । रथैश्चतुर्भिर्गजपादरक्षैः कुन्तीसुतं जिष्णुमथाभ्यधावत् ॥ ७ ॥ तमापतन्तं त्वरितं गजेन्द्रं धनञ्जयः कुम्भविभागमध्ये । आकर्णपूर्णेन महायसेन बाणेन विव्याध महाजवेन ॥ ८ ॥ पार्थेन सृष्टः स तु गार्ध्रपत्र आपुङ्खदेशात् प्रविवेश

आया ॥ १ ॥ और उसने धनुषको कान तक पूर्ण रीतिसे खेंच कर रणभूमिमें वैरियोंके समूहमें विचरते हुए भयानक धनुर्धारी और उग्रपराक्रमी अर्जुनके ललाटका मध्यभाग भालेसे बींध दिया ॥ २ ॥ हे राजन् ! ललाटमें खूब गुभे हुए सोनेके फल वाले उस बाणसे जैसे एक शिखर वाला पहाड़ उस शिखर पर उगे हुए एक लंबे बाँससे शोभा पाता है तैसे ही परम उत्तम कर्म करनेवाला धनंजय भी शोभा पानेलगा ॥ ३ ॥ बाणसे चिरे हुए ललाटमेंसे गरम लोहू बारंबार टपकनेलगा और सुनहरी परसे विचित्र प्रकारका मालूम होनेवाला भाला नामक बाण भी धनंजयके ललाटको भेदनेसे बड़ी ही शोभा पाने लगा ४ रणमें दुर्योधन अर्जुनकेसाथ और उग्रतेज वाला एक वीर अर्जुन दुर्योधनके साथ, इस प्रकार अजमोढ़ वंशके दोनों एक समान महावीर पुरुष रणमें परस्पर लड़ने लगे ॥ ५ ॥ तदनन्तर दुर्योधनका भाई विकर्ण, मद टपकाने वाले और पर्वतकी समान बहुत ऊँचे हाथीके ऊपर बैठ कर चार रथी कितने हाथी सवार और पैदलोंके साथ विजय पाने वाले कुन्तीनन्दन धनंजयके साथ लड़नेको आया ॥ ६ ॥ उसी समय धनञ्जयने बड़े वेग वाले फौलादके बाणको कानतक खेंच कर झपाटेसे चले आतेहुए उसके हाथीके गण्डस्थलमें मारकर उसको बींध दिया ७ उस समय जैसे इन्द्रका माराहुआ वज्र बड़ेभारी पहाड़को फोड़कर उसके भीतर घुसजाता है तैसे ही धनंजयका माराहुआ गिद्ध पक्षीके परोंवाला बाण भी पूँछसमेत हाथीके शरीरमें घुस

नागम् । विदार्य शैलप्रवरं प्रकाशं यथाशनिः पर्वतमिन्द्रसृष्टः ॥ ९ ॥ शरक्षतः स तु नागराजः प्रवेपिताङ्गो व्यथितान्तरात्मा । संसीदमानो निपपात मह्यां वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ १० ॥ निपातिते दन्तिवरे पृथिव्यां त्रासाद्विकर्णः सहसावतीर्य । तूर्णं पदान्यष्टशतानि गत्वा विविंशतेः स्यन्दनमारुरोह ॥ ११ ॥ निहत्य नागन्तु शरेण तेन वज्रोपमेनाद्रिवराम्बुदाभम् । तथाविधेनैव शरेण पार्थो दुर्योधनं वक्षसि निर्बिभेद ॥ १२ ॥ ततो गजे राजनि चैव भिन्ने भग्ने विकर्णे च सपादरक्षे । गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैः प्रणुन्नास्ते योधमुख्याः सहसापजग्मुः ॥१३॥ दृष्ट्वैव पार्थेन हतञ्च नागं योधांश्च सर्वान् द्रवतो निशम्य । रथं समावृत्य कुरुप्रवीरो रणात् प्रदुद्राव यतो न पार्थः ॥ १४ ॥ तं भीमरूपं त्वरितं द्रवन्तं दुर्योधनं शत्रुसहोऽभिषङ्गात् । प्रास्फोटयद्योद्धुमनाः किरीटी बाणेन विद्धं रुधिरं वमंतम् । १५ ॥ अर्जुन उवाच । विहाय

गया ८ उस बाणके लगनेसे गजराजके शरीरमें दाह होने लगा, उसका शरीर कांपने लगा और उसके मनमें भी खेद होनेलगा और जैसे वज्रके लगनेसे पहाड़का शिखर टूटकर पृथ्वी पर गिरपड़ता है तैसे ही वह गजराज भी बहुत ही व्याकुल होकर भूमिपर खस पड़ा ॥९॥ बड़े भारी हाथीको भूमि पर गिराया, कि—विकर्ण भयके मारे तुरन्त नीचे कूदपड़ा और आठ सौ पग पैरों चलकर विविंशतिके रथ पर जाबैठा ॥ १० ॥ धनञ्जयने इसप्रकार वज्रकी समान बाणसे बड़ेपहाड़ और मेघकी समान हाथीका नाश करके तैसा ही दूसरा बाण मारकर दुर्योधनको छाती चीरडाली ॥ ११ ॥ इसप्रकार हाथीको तथा राजाको घायल करदिया और विकर्ण अपने पादरक्षकों सहित रणभूमिमेंसे भागगया तब धनंजयने गाण्डीवमेंसे तीर छोड़कर मुख्य २ योधाओंको मारना आरम्भ करदिया तब वे भी रणमेंसे एकसाथ भागनेलगे ॥१२॥ अर्जुनने हाथीको मारडाला, यह तथा सब योधाओंको भागते हुए देखकर कुरुवंशके महावीर दुर्योधनने रथको पीछेको लौटाया और जहाँ अर्जुन नहीं था ऐसे स्थानमेंको भाग गया १३ भयानक रूपवाला दुर्योधन हारगया और वह मुखमेंसे रुधिर ओकता ओकता रणभूमिमेंसे घबड़ाकर भागनेलगा, तब वैरियोंको सहनेवाले और संग्राम करनेके अभिलाषी अर्जुनने, दोनों हाथोंसे भुजदण्डोंको ठोंककर दुर्योधनसे इसप्रकार कहा ॥१४॥ अर्जुन बोला, कि—हे दुर्योधन ! तू कीर्ति तथा यशको त्याग युद्धमेंसे पीठ फेरकर क्यों भागा-

कीर्त्तिं विपुलं यशश्च युद्धात् परावृत्य पलायसे किम्। न तेऽद्य तूर्याणि समाहतानि तथैव राज्यादवरोऽपि तस्य ॥ १६ ॥ युधिष्ठिरस्यास्मि निदेशकारी पार्थस्तृतीयो युधि संस्थितोऽस्मि। यदर्धमावृत्य मुखं प्रयच्छ नरेन्द्रवृत्तं स्मर धार्त्तराष्ट्र १७ मोघं तवेदं भुवि नामधेयं दुर्योधनेतीह कृतं पुरस्तात्। न हीह दुर्योधनता तवास्ति पलायमानस्य रणं विहाय ॥ १८ ॥ न ते पुरस्तादथ पृष्ठतो वा पश्यामि दुर्योधन रक्षितारम्। अपेहि युद्धात् पुरुषप्रवीर प्राणान् प्रियान् पाण्डवतोऽद्य रक्ष ॥ १९ ॥

* * * *

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि दुर्योधनापयाने पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

वैशम्पायन उवाच। आहूयमानश्च स तेन सङ्ख्ये महात्मना वै धृतराष्ट्रपुत्रः। निवर्तितस्तस्य गिराङ्कुशेन महागजो मत्त इवाङ्कुशेन १ सोऽमृष्यमाणो वचसाभिमृष्टो महारथेनातिरथस्तरस्वी। पर्य्याववर्त्ताथ रथेन

जाता है, तेरे विजयके बाजे जैसे पहले बजते थे तैसे अब नहीं बजेंगे तूने जिनको अधर्म करके राजसिंहासन परसे उतारदिया था, उन युधिष्ठिरकी आज्ञा बजाने वाला मैं तीसरा पाण्डुपुत्र धनंजय, इस संग्राममें खड़ा हूँ, इसलिये हे धृतराष्ट्रके पुत्र राजा दुर्योधन ! तू पीछेको फेरकर अपना मुख तो दिखला, अरे जुए आदिमें जो अधर्म किया था उसको याद कर ॥ १५ ॥ १६ ॥ भूतल पर पहिले तेरा दुर्योधन नाम रक्खा गया था सो व्यर्थ है क्योंकि तू रणभूमिको छोड़कर भागा जाता है, इसलिये तुझमें दुर्योधनपना नहीं है ॥१७॥ हे दुर्योधन ! मैं तेरे आगे या पीछे तेरी रक्षा करनेवाला किसीको नहीं देखता हूँ, इसलिये हे बड़ेभारी वीर पुरुष ! तू युद्धमेंसे भाग जा भाग जा और अपने प्यारे प्राणोंकी इस अर्जुनसे रक्षा करले ॥१८॥ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥

* * *

वैशम्पायन कहते हैं, कि–यह बात कहकर महात्मा अर्जुनने, दुर्योधनको फिर रणमें बुलाया तो तुरन्त ही जैसे मदमत्त हाथी अंकुशके प्रहारसे पीछेको लौट पड़ता है तैसे ही दुर्योधन, अर्जुनकी वाणीरूपी अंकुशके प्रहारसे पीछेको लौटा ॥ १ ॥ महारथी अर्जुनने, अतिरथी और वेगवाले दुर्योधनका तीखी बातोंसे तिरस्कार किया तो वह उसको सह न सका और जैसे पैरकी ठोकर मार देनेसे सांप पीछेको लौट पड़ता है तैसे ही वीर दुर्योधन भी रथसहित पीछेको

वीरो भोगी यथा पादतलाभिमृष्टः ॥२॥ तं प्रेक्ष्य कर्णः परिवर्तमानं निवर्त्य संस्तभ्य च विद्धगात्रम् । दुर्योधनस्योत्तरतोऽभ्यगच्छत् पार्थं नृवीरो युधि हेममाली ॥ ३ ॥ भीष्मस्ततः शान्तनवो निवृत्य हिरण्यकक्षस्त्वरयाभिपन्नो । दुर्योधनं पश्चिमतोऽभ्यरक्षत् पार्थान्महाबाहुरधिज्यधन्वा ॥४॥ द्रोणः कृपश्चैव विविंशतिश्च दुःशासनश्चैव विवृत्य शीघ्रम् । सर्वे पुरस्ताद्विततोरुचापा दुर्योधनार्थं त्वरिताभ्युपेयुः ॥ ५ ॥ स तान्यनीकानि निवर्तमानान्यालोक्य पूर्णौघनिभानि पार्थः । हंसो यथा मेघमिवापतन्तं धनंजयः प्रत्यपतत्तरस्वी ॥ ६ ॥ ते सर्वतः सम्परिवार्य्य पार्थमस्त्राणि दिव्यानि समाददानाः । ववर्षुरभ्येत्य शरैः समन्तान्मेघा यथा भूधरमम्बुवेगैः ॥ ७ ॥ ततोऽस्त्रमस्त्रेण निवार्य्य तेषां गाण्डीवधन्वा कुरुपुङ्गवानाम् । संमोहनं शत्रुसहोऽन्यदस्त्रं प्रादुश्चकारैन्द्रिरपारणीयम् ॥ ८ ॥ ततो दिशश्चानुदिशो विवृत्य शरैः

लौट पड़ा ॥ २ ॥ जिसका शरीर बाणोंके लगनेसे घायल होगया था ऐसे दुर्योधनको पीछेको लौटताहुआ देखकर कर्णने उसको रोका और वह सोनेकी माला पहरनेवाला मनुष्योंमें वीर कर्ण, दुर्योधनकी उत्तरकी ओरसे रक्षा करताहुआ अर्जुनसे लड़नेको चढ़आया ॥ ३ ॥ वैरियोंको हरादेनेकी शक्तिवाले, शरीर पर सोनेका कवच पहरे, विशालबाहु भीष्मपितामह, धनुष पर डोरी चढ़ायेहुए शीघ्रतासे लौटआये और धनंजयसे दुर्योधनकी रक्षा करनेके लिये पश्चिमकी ओर खड़े होगए ॥ ४ ॥ इसीप्रकार द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विविंशति और दुःशासन भी तुरन्त पीछेको लौट कर दुर्योधनकी रक्षाके लिये बड़े २ और लम्बे २ धनुष लेकर शीघ्रतासे वहाँ आपहुँचे ॥ ५ ॥ उस समय जलके पूर (अहले) की समान पीछेको लौटती हुई सेनाओंको देखकर, जैसे सूर्य पीछे आतेहुए मेघको तपाता है तैसे ही वेगवाला अर्जुन उन सेनाओंको ताप देनेलगा ॥ ६ ॥ दिव्य अस्त्र धारण करनेवाले उन सब योधाओंने अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया और जैसे मेघ पहाड़ोंके ऊपर चारों ओरसे जल बरसाते हैं तैसे ही वे चारों ओरसे अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ तब गाण्डीव धनुषधारी वैरियोंको सहनेवाले इन्द्रपुत्र अर्जुनने, अस्त्र छोड़कर उन बड़े २ कुरुवंशियोंके अस्त्रोंको पीछेको लौटादिया और जिसको कोई पहुँच ही न सकै ऐसा समोहन नामका दूसरा अस्त्र गाण्डीव धनुष पर चढ़ाकर कौरवोंकी ओरको फैंका ॥ ८ ॥ तथा

सुधारैर्निशितैः सुपुङ्खैः । गाण्डीवघोषेण मनांसि तेषां महाबलः प्रव्यथयांचकार ॥ ९ ॥ ततः पुनर्भीमरवं प्रगृह्य दोर्भ्यां महाशंखमुदारघोषम् । व्यनादयत् स प्रदिशो दिशः खं भुवञ्च पार्थो द्विषतां निहन्ता ॥ १० ॥ ते शंखनादेन कुरुप्रवीराः संमोहिताः पार्थसमीरितेन। उत्सृज्य चापानि दुरासदानि सर्वे तदा शान्तिपरा बभूवुः ॥ ११ ॥ तथा विसंज्ञेषु च तेषु पार्थः स्मृत्वा च वाक्यानि तथोत्तरायाः निर्याहि मध्यादिति मत्स्यपुत्रमुवाच यावत् कुरवो विसंज्ञाः ॥ १२ ॥ आचार्य्यशारद्वतयोः सुशुक्ले कर्णस्य पीतं रुचिरञ्च वस्त्रम् । द्रौणेश्च राज्ञश्च तथैव नीले वस्त्रे समादत्स्व नरप्रवीर ॥१३॥ भीष्मस्य संज्ञान्तु तथैव मन्ये जानाति सोऽस्त्रप्रतिघातमेषः । एतस्य वाहान् कुरु सव्यतस्त्वमेवं हि यातव्यममूढसंज्ञैः ॥ १४ ॥ रश्मीन् समुत्सृज्य ततो महात्मा रथादवप्लुत्य विराटपुत्रः । वस्त्राण्युपादाय महारथानां तूर्णं पुनः स्वं रथमारुरोह ॥ १५ ॥ ततोऽन्वशासच्चतुरः सदश्वान्

और भी कितने ही अच्छी धार और उत्तम परोंवाले तेज बाण मार कर दिशा और कोनोंको छादिया तथा गाण्डीव धनुषका टङ्कार शब्द करके महाबली अर्जुनने कौरवोंके मनको खिन्न करदिया ॥ ९ ॥ वैरियोंका नाश करनेवाले अर्जुनने फिर भयंकर और उदार शब्द करनेवाला बड़ाभारी शंख दोनों हाथोंमें थामकर बजाया और दिशा, कोने, आकाश तथा भूमिको भरदिया ॥ १० ॥ अर्जुनके बजायेहुए शंखके शब्दसे कौरवदलके बड़े २ वीर घबडागए और जिनको हाथमें थामनाभी कठिन होगया ऐसे बड़े२ धनुषोंको डालकर शान्त बनगए सब कौरव जब अचेत होगए उस समय राजकुमारी उत्तराकी बात याद करके अर्जुनने विराटनन्दन उत्तरसे कहा, कि-हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ वीर ! जबतक कौरव अचेत पड़ेहुए हैं, इतनेमें ही तुम यहाँसे निकल कौरवोंकी सेनामें चलेजाओ ॥ ११ ॥ १२ ॥ और द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यके श्वेत कपड़े कर्णके पीले तथा मनोहर कपड़े और अश्वत्थामा तथा दुर्योधनके काले कपड़े लेकर लौट आओ ॥ १३ ॥ मेरी समझमें भीष्मजी सचेत हैं और वह इस संमोहन अस्त्रको धारण करना भी जानते हैं, इसलिये तुम भीष्मजीके घोड़ोंको दाहिनी ओरको होकर जाना क्योंकि-जो सावधान हो उससे सावधान रहना; यह समझदार पुरुषोंका काम है ॥ १४ ॥ विराटनन्दन महात्मा उत्तर घोड़ोंकी रासोंको छोड़ रथपरसे नीचेको कूदकर उतरपड़ा और कौरव महारथियोंकी सेनामें पहुँच उनके वस्त्र लेकर तुरन्तही फिर

पुत्रो विराटस्य हिरण्यकक्षान् । ते तद्व्यतीयुर्ध्वजिनामनीकं श्वेता वहन्तोऽर्जुनमाजिमध्यात् ॥ १६ ॥ तथानुयान्तं पुरुषप्रवीरं भीष्मः शरैरभ्यहनत्तरस्वी । स चापि भीष्मस्य हयान्निहत्य विव्याध पार्थो दशभिः पृषत्कैः ॥ १७ ॥ ततोऽर्जुनो भीष्ममपास्य युद्धे विद्ध्वास्य यन्तारमरिष्टधन्वा । तस्थौ विमुक्तो रथवृन्दमध्याद्राहुं विदार्येव सहस्ररश्मिः ॥ १८ ॥ लब्ध्वा हि संज्ञां तु कुरुप्रवीरः पार्थं निरीक्ष्याथ सुरेन्द्रकल्पम् । रणे विमुक्तं स्थितमेकमाजौ स धार्तराष्ट्रस्त्वरितं बभाषे १९ अयं कथं वै भवतो विमुक्तस्तथा प्रमथ्नीत यथा न मुच्येत् तमब्रवीच्छान्तनवः प्रहस्य क्व ते गता बुद्धिरभूत् क्व वीर्यम् ॥२०॥ शान्ति परां प्राप्य यदा स्थितो भूस्त्यक्त्वा बाणांश्च धनुर्विचित्रम् । न त्वेष बीभत्सुरलं नृशंसं कर्तुं न पापोऽस्य मनो विशिष्टम् ॥ २१ ॥ त्रैलोक्यहेतोर्न जहेत् स्वधर्मं सर्वे न तस्मान्निहता रणेऽस्मिन् ।

अपने रथपर आबैठा ॥ १५ ॥ तदनन्तर विराटकुमारने सोनेके जोतों वाले उत्तम रीतिसे सिखायेहुए श्वेत रङ्गके चार घोड़ोंको हांका और वे घोड़े अर्जुनको रणभूमिमें खड़ी हुई ध्वजाओंवाली सेनामेंसे बाहर लेआनेलगे १६ इसप्रकार पुरुषोंमें महावीर अर्जुनको रणमेंसे जातेहुए देखकर भीष्मजी, वेगके साथ उसके बाण मारनेलगे तब अर्जुनने भी दश बाण मारकर भीष्मजीके घोड़ोंको मारडाला और भीष्मजीको भी घायल कर दिया ॥ १७ ॥ फिर भीष्मजीको छोड़कर विनाशकारक धनुषको धारण करनेवाले अर्जुनने, उनके रथको हांकनेवालेको भी बाणोंसे बींधदिया और फिर जैसे सूर्य बादलोंको तितर बितर करके उनमेंसे बाहर निकलकर प्रकाश करने लगता है तैसे ही अर्जुन भी रथियोंके समूहोंको तितर बितर करता हुआ उनमेंसे बाहर निकलकर सबके सामने खड़ा रहा ॥ १८ ॥ जब कुरुवंशके बड़े २ वीर योधा सावधान हुए और धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने सुरेन्द्रकी समान इन्द्रकुमार अर्जुनको, रणमेंसे बाहर निकला और अकेला खड़ाहुआ देखा तब घबड़ाया २ भीष्मजीसे कहनेलगा, कि—॥१९॥ हे पितामह ! आपके हाथमेंसे यह अर्जुन कैसे बचगया ? अब भी इसको इसप्रकार मथडालो, कि—यह किसी प्रकार बचै ही नहीं यह सुनकर भीष्मजी खिलखिलाकर हँसे और कहनेलगे, कि—अरे कुरुराज ! जब तू अपने विचित्र धनुष और सब बाणोंको त्यागकर अचेतदशामें पड़ाथा उस समय तेरी यह बुद्धि और पराक्रम कहां जाता रहा था ? अर्जुनका

क्षिप्रं कुरून् याहि कुरुप्रवीर विजित्य गाश्च प्रतियातु पार्थः । मा ते स्वकोऽर्थो निपतेत मोहात्स्वार्थं विधातव्यमहिप्रबन्धम् ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच । दुर्योधनस्तस्य तु तन्निशम्य पितामहस्यात्महितं वचोऽथ । अतीतकामो युधि सोऽत्यमर्षी राजा विनिःश्वस्य बभूव तूष्णीम् ॥ २३ ॥ तद्भीष्मवाक्यं हितमीक्ष्य सर्वे धनञ्जयाग्निं च विवर्द्धमानम् । निवर्त्तनायैव मनो निदध्युर्दुर्योधनं ते परिरक्षमाणाः ॥ २४ ॥ तान् प्रस्थितान् प्रीतमनाः स पार्थो धनञ्जयः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीरान् । अभाषमाणोऽनुनयं मुहूर्त्तं वचोऽब्रवीत् सम्परिहृत्य भूयः ॥ २५ ॥ पितामहं शान्तनवञ्च वृद्धं द्रोणं गुरुञ्च प्रणिपत्य मूर्ध्ना । द्रौणिं कृपञ्चैव कुरूंश्च मान्यांश्शरैर्विचित्रैरभिवाद्य चैव ॥ २६ ॥ दुर्योधनस्योत्तमरत्नचित्रं चिच्छेद पार्थो मुकुटं शरेण । आमन्त्र्य वीरांश्च तथैव मान्यान् गाण्डीवघोषेण विनाद्य लोकान् ॥ २७ ॥ स

उदारचित्त कभी भी क्रूर कर्म करनेमें प्रवृत्त नहीं होसकता २०-२१ तथा वह त्रिलोकीके लाभके लिये भी अपने धर्मको नहीं छोड़ेगा, इस कारण ही उसने इस संग्राममें सब योधाओंके प्राण नहीं लिये होंगे, परन्तु अब तो तू हस्तिनापुरकी ओरको चला जा और अर्जुन विजय पा गौओंको लेकर पीछेको लौटजाय (यही ठीक है) अरे! तू स्वार्थवश अपने कामको नष्ट मतकरे, हरएक प्राणीको अपना हितकारी काम ही करना चाहिये ॥ २२ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-बड़ा ही डाह करनेवाला दुर्योधन, भीष्मपितामहकी इस हितकी बातको सुनकर संग्राम करनेकी इच्छासे हटगया और गहरा सांस मारकर चुप होरहा दूसरे सब योधाओंनेभी भीष्मजीकी बातको हितकारक जानकर तथा अर्जुनरूपी अग्निको बढते हुए देखकर दुर्योधनकी रक्षा करनेके लिये तहांसे पीछेको लौटजानेका ही मनमें विचार किया ॥ २४ ॥ उन कौरवदलके वीरोंको पीछेको लौटते हुए देखकर अर्जुन मनमें प्रसन्न हुआ और उनके साथ विनय पूर्वक बात चीत और आदर करनेकी इच्छासे वह कुछ देरतक उनके पीछे२ गया और पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मजी तथा वृद्ध गुरु द्रोणाचार्य को शिर झुकाकर प्रणाम किया और फिर अश्वत्थामा कृपाचार्य तथा माननीय कौरवोंको विचित्र बाणमालासे प्रणाम किया और फिर एक तीर छोड़ कर दुर्योधनके रत्नजड़े उत्तम मुकुटको काट डाला, इस प्रकार माननीय वीरपुरुषोंका, शास्त्रमें कही हुई विधिसे सत्कार करके धनु-

देवदत्तं सहसा विनाद्य विदार्य वीरो द्विषतां मनांसि । ध्वजेन सर्वानभिभूय शत्रून् सहेमनालेन विराजमानः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा प्रयातांस्तु कुरून् किरीटी हृष्टोऽब्रवीत्तत्र स मत्स्यपुत्रम् । आवर्तयाश्वान् पशवो जितास्ते याता परे याहि पुरं प्रहृष्टः ॥ २९ ॥ देवास्तु दृष्ट्वा महदद्भुतं तद् युद्धं कुरूणां सह फाल्गुनेन । जग्मुर्यथा स्वं भवन प्रतीताः पार्थस्य कर्माणि विचिन्तयन्तः ॥ ३० ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि समस्त-
कौरवपलायने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो विजित्य संग्रामे कुरून् स वृषभेक्षणः । समानयामास तदा विराटस्य धनं महत् ॥ १ ॥ गतेषु च प्रभग्नेषु धार्त्तराष्ट्रेषु सर्वशः । वनान्निष्क्रम्य गहनाद् बहवः कुरुसैनिकाः ॥ २ ॥ भयात् सन्त्रस्तमनसः समाजग्मुस्ततस्ततः । मुक्तकेशास्त्वदृश्यन्त स्थिताः प्रांजलयस्तदा ॥ ३ ॥ क्षुत्पिपासापरिश्रांता विदेशस्था विचे-

---

जयने गाण्डीव धनुषको टङ्कारके शब्दसे त्रिलोकीको गुञ्जारदिया २५ ॥ २७ ॥ फिर देवदत्त नाम वाले शङ्खको बजा कर वैरियोंके हृदयको दहलादिया और फिर सोनेकी मालासे शोभायमान विजयकी पताका को फहराता हुआ वैरियोंके समूहका तिरस्कार करके शोभायमान हुआ ॥२८॥ अन्तमें सब कौरवोंको भागकर जाते हुए देखा तब अर्जुन ने मनमें प्रसन्न होकर उत्तरसे कहा, कि–हे राजकुमार ! अब घोड़ों को पीछेको फेर तेरी गौओंको मैंने जीत लिया देख, ये शत्रु अपने देश की ओरको भागे चले जारहे हैं, इस लिए अब तू प्रसन्न मनसे अपने नगरको चल ॥ २९ ॥ कौरवोंके साथ अर्जुनके कियेहुए बड़े आश्चर्य कारी संग्रामको देखकर देवता भी प्रसन्न होगए और अर्जुनके अलौकिक कर्मका विचार करते २ अपने स्थानको चलेगए ॥ ३० ॥ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि–उत्तम दृष्टिवाला अर्जुन, इसप्रकार सब कौरवोंको संग्राममें हराकर राजा विराटके बड़े भारी गोधनको उसी समय लौटा कर लाया १ और धृतराष्ट्रके पुत्रोंमें चारों ओरसे भागड़ पड़गई, जब वह भागगए तब कौरवोंके बहुतसे सैनिक भी गहन वनमेंसे बाहर निकल पडे, परन्तु उनके मन डरके मारे कांपने लगे और जुदे २ स्थानोंसे इकट्ठे हो खुले, केश, दोनों हाथ जोड़े रणमें खड़े हुए अर्जुनके पास आये ॥ २ ॥ ३ ॥ वे भूखे, प्यासे और थके हुए

ततः । ऊचुः प्रणम्य सम्भ्रान्ताः पार्थ किं करवाम ते ॥४॥ अर्जुन उवाच स्वस्ति व्रजत वो भद्रं न भेतव्यं कथञ्चन । नाहमार्त्तान् जिघांसामि भृशमाश्वासयामि वः ॥५॥ वैशम्पायन उवाच । तस्य तामभयां वाचं श्रुत्वा योधाः समागताः । आयुःकीर्त्तियशोदाभिस्तमाशीर्भिरनन्दयन् ततोऽर्जुनं नागमिव प्रभिन्नमुत्सृज्य शत्रून् विनिवर्तमानम् । विराटराष्ट्राभिमुखं प्रयान्तं नाशक्नुवंस्तं कुरवोऽभयातुम् ॥७॥ ततः स तन्मेघमिवापतन्तं विद्राव्य पार्थः कुरुमेघसैन्यम् । मत्स्यस्य पुत्रं द्विषतां निहन्ता वचोऽब्रवीत् सम्परिरभ्य भूयः ॥ ८ ॥ पितुः सकाशे तव तात सर्वे वसन्ति पार्था विदितं तवैव । तान्मा प्रशंसेर्नगरं प्रविश्य भीतः प्रणश्येद्धि स मत्स्यराजः ॥९॥ मया जिता सा ध्वजिनी कुरूणां मया च गावो विजिता द्विषद्भ्यः । पितुः सकाशं नगरं प्रविश्य त्वमात्मनः कर्म कृतं ब्रवीहि ॥ १० ॥ उत्तर उवाच ॥ यत्ते कृतं कर्म न पारणीयं

थे, परदेशमें फँस जानेसे घबड़ा रहे थे उन्होंने दोनों हाथ जोड़ कर कहा, कि-हे धनंजय ! हम आपका कौनसा काम करें, उसकी आज्ञा दीजिये ॥ ४ ॥ अर्जुनने कहा, कि-तुम्हारा कल्याण हो, तुम किसी प्रकारसे डरो मत, तुम अपने मार्गसे चले जाओ, मैं शरणमें आये हुओंको मारना नहीं चाहता हूँ, इस बातका मैं तुम्हें पूरा २ विश्वास दिलाता हूँ ॥ ५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-वे योधा, अर्जुनकी अभयवाणी सुन कर इकट्ठे हुए और आयु, कीर्ति तथा यश देनेवाले आशीर्वादोंसे उसको आनन्द देने लगे ॥६॥ और मद टपकानेवाले हाथीकी समान मदोन्मत्त अर्जुनको, वैरियोंका त्याग करके विराट नगरकी ओरको जाते हुए देखा तो भी कौरव उसके पीछे चढ़ाई करके न जा सके ॥ ७ ॥ मेघकी समान अपने पीछे आनेवाले कौरवोंकी सेनारूपी मेघको पीछेको हटा कर वैरियोंका नाश करने वाले अर्जुनने विराटपुत्र उत्तरको भलेप्रकार आलिङ्गन करके उससे कहा कि-॥ ८ ॥ हे तात ! तेरे पिताके पास सब पाण्डव रहते हैं, यह बात तुझे मालूम हो गई है, परन्तु तू नगरमें पहुँच कर अपने पिताके सामने पाण्डवोंकी प्रशंसा न करना, क्यों कि-राजा विराट यह सुन कर डरके मारे मर जायगा ॥ ९ ॥ इसकारण तू नगरमें जाकर अपने पितासे कहना, कि-मैंने ही कौरवोंकी सेनाको हराया है और मैंने ही वैरियोंसे गौएँ जीत करली हैं इस प्रकार तू नगरमें जाकर अपने पिताके सामने सब काम अपना किया हुआ ही बताना ॥ १० ॥ उत्तर बोला, कि-तुमने

तत्कर्म कर्त्तुं मम नास्ति शक्तिः । न त्वां प्रवक्ष्यामि पितुः सकाशे यावन्न मां वक्ष्यसि सव्यसाचिन् ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स शत्रुसेनामवजित्य जिष्णुराच्छिद्य सर्वञ्च धनं कुरुभ्यः । श्मशानमागत्य पुनः शमीं तामभ्येत्य तस्थौ शरविक्षताङ्गः ॥ १२ ॥ ततः स वह्निप्रतिमो महाकपिः सहैव भूतैर्दिवमुत्पपात । तथैव माया विहिता बभूव ध्वजञ्च सैंहं युयुजे रथे पुनः ॥ १३ ॥ विधाय तच्चायुधमाजिवर्द्धनं कुरूत्तमानामिषुधीः शरांस्तथा । प्रायात्स मत्स्यो नगरं प्रहृष्टः किरीटिना सारथिना महात्मना ॥ १४ ॥ पार्थस्तु कृत्वा परमार्यकर्म निहत्य शत्रून् द्विषतां निहन्ता । चकार वेणीं च तथैव भूयो जग्राह रश्मीन् पुनरुत्तरस्य । विवेश हृष्टो नगरं महात्मा बृहन्नलारूपमुपेत्य सारथिः ॥ १५ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततो निवृत्ताः कुरवः प्रभग्ना वशमास्थिताः । हस्तिनापुरमुद्दिश्य सर्वे दीना ययुस्तदा ॥ १६ ॥

जो काम किया है, वह मुझसे नहीं होसकता क्योंकि—उस कामको करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, परन्तु हे सव्यसाचिन् ! जब तक तुम अपने विषयकी बात कहनेके लिए कहोगे नहीं तब तक मैं पिताजीके सामने तुम्हारे विषयमें जरासा शब्द भी नहीं बोलूँगा ॥ ११ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! संग्राममें जिसका शरीर बाणोंसे बिंध गया था ऐसा वह अर्जुन वैरियोंकी सेनाको जीतकर कौरवोंसे गौएँरूपी सब धन छीनलाया, फिर वह श्मशानभूमिमें आया और उस ही शमीके पेड़के पास आकर खड़ा होगया ॥ १२ ॥ उसी समय अर्जुनके रथकी ध्वजा पर बैठा हुआ, अग्निके समान तेजस्वी बड़ा भारी वानर भूतोंके साथ आकाशमेंको उड़ गया तैसे ही जो माया थी वह भी विला गई और रथके ऊपर फिर सिंहके चिन्ह वाली राजा विराटकी ध्वजा चढ़ादीगई ॥ १३ ॥ और अर्जुनके वैरियोंके प्राणलेवा सब शस्त्र, गाण्डीव धनुष पाण्डवोंके भाथे तथा बाण फिर शमीके वृक्षमें बाँधदिये, महात्मा उत्तर रथमें बैठा और अर्जुनको सारथी बनाकर बड़ा प्रसन्न होताहुआ विराटनगरमेंको चलदिया ॥ १५ ॥ वैरियोंका संहार करनेवाले अर्जुनने वैरियोंका नाश करके बड़ा अच्छा काम किया, परन्तु उसने फिर माथे पर वेणी गूँथकर बृहन्नलाका रूप बनालिया तदनन्तर उदार चित्तवाला अर्जुन उत्तरका सारथी बन घोड़ोंकी लगाम पकड़कर प्रसन्न होताहुआ विराटनगरमें घुस गया ॥ १५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! पराधीन हुए

पन्थानमुपसंगम्य फाल्गुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥ राजपुत्र प्रत्यवेक्ष समानीतानि सर्वशः । गोकुलानि महाबाहो वीरगोपालकैः सह ॥१८॥ ततोऽपराह्णे यास्यामो विराटनगरं प्रति । आश्वास्य पाययित्वा च परिप्लाव्य च वाजिनः ॥ १९ ॥ गच्छन्तु त्वरिताश्चेमे गोपालाः प्रेषितास्त्वया । नगरे प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम् ।२०। वैशम्पायन उवाच । अथोत्तरस्त्वरमाणः स दूतानां ज्ञापयद्वचनात् फाल्गुनस्य । आचक्षध्वं विजयं पार्थिवस्य भग्नाः परे विजिताश्चापि गावः २१ इत्येवं तौ भारतमत्स्यवीरौ संमन्त्र्य संगम्य ततः शमीं ताम् । अभ्येत्य भूयो विजयेन तुष्टावुत्सृष्टमारोपयतां स्वभाण्डम् ॥ २२ ॥ स शत्रुसेनामभिभूय सर्वामाच्छिद्य सर्वञ्च धनं कुरुभ्यः । वैराटिरायान्नगरं प्रतीतो बृहन्नलासारथिना प्रवीरः ॥ २३ ॥

सब कौरव, सेनामेंसे पीछा छुटाकर हस्तिनापुरकी ओरको भागगए १६ तब मार्गमें जातेहुए अर्जुनने गौओंके समूहके साथ इकट्ठे होनेपर उत्तर से कहा, कि—हे महाबाहु वीर राजकुमार ! हम गौओंके समूहोंका उनके रक्षकों सहित चारों ओरसे लौटालाये हैं, इनकी ओरको तुम देखो ॥ १७ ॥ १८ ॥ हम यहाँ ही विश्राम ले घोड़ोंको पानी पिलाकर तथा दम देकर पिछले पहर विराट नगरमें चलेंगे ॥ १९ ॥ अब ग्वालियोंको आज्ञा दो, कि-वे तुम्हारे विजयकी बात कहनेके लिये शीघ्रतासे नगरमें जाँय और तुम्हारी विजयको सुखसे प्रकट करें२० वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजन् ! अर्जुनके कहनेसे उत्तरने, उस समय ही दूतोंको आज्ञा दी, कि-तुम मेरे जीतनेकी वैरियोंके हारजाने की और जीती हुई गौओंकी बात जाकर राजासे कहो ॥ २१ ॥ इस प्रकार ग्वालियोंको नगरसे भेजकर भरतवंशी वीर अर्जुन और मत्स्य वीर उत्तर दोनों विचार करके परस्पर एक दूसरेको हृदयसे लगाकर विजय करनेसे बहुत ही प्रसन्न हुए वे दोनों उस शमीके वृक्ष के पास आये और पहले जो गहने अपने शरीर परसे उतारकर शमीके पेड़ पर धरदिये थे उनको उतार कर फिर पहर लिया तथा रथका भी जो सामान शमीके वृक्षपर धरदिया था उसको फिर रथ पर जहाँका तहाँ लगादिया ॥ २२ ॥ इसप्रकार वैरीकी सेनाको हराकर तथा कौरवोंसे सब गौरूपी धन छीनकर महावीर उत्तरकुमार प्रसन्न होता हुआ बृहन्नला सारथीके साथ विराटनगरमें चलागया ॥ २३ ॥

सड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥६७॥

वैशम्पायन उवाच । धनं चापि विजित्याशु विराटो वाहिनीपतिः। विवेश नगरं हृष्टश्चतुर्भिः पाण्डवैः सह ॥ १ ॥ जित्वा त्रिगर्त्तान् संग्रामे गाश्चैवादाय स शिः । अशोभत महाराज सह पार्थैः श्रिया वृतः ।२। तमासनगतं वीरं सुहृदां हर्षवर्द्धनम् । उपासाञ्चक्रिरे सर्वे सह पार्थैः परन्तप ॥ ३ ॥ उपतस्थुः प्रकृतयः समस्ता ब्राह्मणैः सह सभाजितः ससैन्यस्तु प्रतिनन्द्याथ मत्स्यराट् ॥ ४ ॥ विसर्जयामास तदा द्विजांश्च प्रकृतीस्तथा । तथा स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ॥ ५ ॥ उत्तरं परिपप्रच्छ क्व यात इति चाब्रवीत् । आचख्युस्तस्य तत्सर्वं स्त्रियः कन्याश्च वेश्मनि ॥६॥ अन्तःपुरचराश्चैव कुरुभिर्गोधनं हृतम् । विजेतुमभिसंरब्ध एक एवातिसाहसात् । बृहन्नलासहायश्च निर्गतः पृथिवींजयः ॥ ७ ॥ उपायातानतिरथान् भीष्मं शान्तनवं कृपम् । कर्णं दुर्योधनं द्रोणं द्रोणपुत्रञ्च षड्रथान् ॥ ८ ॥ वैशं-

---

वैशम्पायन कहते हैं, कि हे जनमेजय ! सेनापति राजा विराट भी दक्षिण दिशाकी ओरकी गौओंके समूहको सपाटेमें जीतकर प्रसन्न होताहुआ चारों पाण्डवोंकेसाथ विराटनगरमें आपहुँचा । १ । हे महाराज ! राजलक्ष्मीसे शोभायमान और पाण्डवोंसे घिराहुआ राजा विराट संग्राममें त्रिगर्त्तोंको जीतकर तथा चारों ओरसे गौओंको लौटा कर नगरमें आया,उस समयका उसका दृश्य बड़ा ही अच्छा मालूम होता था ॥ २ ॥ वह राजा राजसभामें आसन पर बैठ कर सब सम्बन्धियोंके हर्षको बढ़ानेलगा और वैरियोंको ताप देने वाले सब वीर पुरुष भी पाण्डवोंके साथ मिलकर उस वीर राजाकी सेवा करनेलगे ॥ ३ ॥ ब्राह्मणके सोथ सब प्रकृति मण्डल भी तहाँ आया और सेना सहित राजा विराटका सन्मानके साथ आदर सत्कार किया और उनको धन्यवाद दिया ॥ ४ ॥ सेनापति राजा विराटने सब ब्राह्मण और प्रकृतिमंडलको विदा करके बूझा, कि—उत्तरकुमार कहाँगया है ? तब रनवासमें रहनेवाली स्त्रियें हीजड़े और कन्याओं ने राजासे निवेदन किया, कि–हे महाराज ! आपके रणमें चलेजाने पर कौरव हमारी गौओंके समूहोंको यहाँसे हाँककर लेगए थे, तब पृथ्वीका विजय करनेवाला उत्तरकुमार क्रोधमें भरगया और चढ़ाई करके आयेहुए महारथी भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण दुर्योधन, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा इन छः महारथियोंको जीतनेके लिये बृहन्नला को साथ लेकर बड़े साहसके साथ अकेला ही लड़नेके लिये नगरमेंसे

म्पायन उवाच ॥ राजा विराटोऽथ भृशाभितप्तः श्रुत्वा सुतं त्वेकरथेन यातम् । बृहन्नलासारथिमाजिवर्धनं प्रोवाच सर्वानथ मन्त्रिमुख्यान् ॥ ९ ॥ सर्वथा कुरवस्ते हि ये चान्ये वसुधाधिपाः । त्रिगर्त्तान्निः सृतान् श्रुत्वा न स्थास्यन्ति कदाचन ॥ १० ॥ तस्माद्गच्छन्तु मे योधा बलेन महता वृताः । उत्तरस्य परीप्सार्थं ये त्रिगर्तैरविक्षताः ॥ ११ ॥ हयांश्च नागांश्च रथांश्च शीघ्रं पदातिसंघांश्च ततः प्रवीरान् । प्रस्थापयामास सुतस्य हेतोर्विचित्रशस्त्राभरणोपपन्नान् ॥ १२ ॥ एवं स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः । व्यादिदेशाथ तां क्षिप्रं वाहिनीं चतुरङ्गिणीम् ॥ १३ ॥ कुमारमाशु जानीत यदि जीवति वा न वा । यस्य यन्ता गतः षण्ढो मन्येऽहं स न जीवति ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तमब्रवीद्धर्मराजो विहस्य विराटराजं तु भृशाभितप्तम् । बृहन्नला-सारथिश्चेन्नरेन्द्र परे न नेष्यन्ति तवाद्य गास्ताः ॥ १५ ॥ सर्वान् मही-

---

बाहर चला गया है ॥५-८॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-राजा विराट तो अकेला मेरा पुत्र उत्तर ही एक रथ और रणमें वैरियोंका संहार करनेवाले बृहन्नला सारथीके साथ रणमें गया है, यह सुन कर बड़ा दुःखी हुआ और सब मुख्य मंत्रियोंसे कहने लगा, कि-॥ ९ ॥ कौरव राजे तथा दूसरे जो राजे होंगे वे, त्रिगर्त्तोंको भागेहुए सुनकर कभी भी रणमें खड़े नहीं रहेंगे ॥ १० ॥ इसलिये मेरे जो योधा त्रिगर्त्तोंके साथ संग्राम करतेमें घायल न हुए हों वे बहुत सी सेनाको साथ लेकर उत्तरकी रक्षा करनेको चलेजाओ ॥११॥ इसप्रकार आज्ञा देकर राजा ने अपने पुत्रकी रक्षाके लिए घोड़े सवार, हाथी सवार, रथी, पैदल और वीर पुरुषोंको अनेकों प्रकारके रणके आभूषण और शस्त्र देकर रणभूमिकी ओरको भेजा ॥१२॥ मत्स्य देशके राजा और सेनापतिके नामसे प्रसिद्ध राजा विराटने उस समय चतुरङ्गिणी सेनाको चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी ॥१३॥ और फिर कहा, कि-पहिले पता तो लगाओ कि कुमार जीवित है या मारागया ? मेरी समझमें तो जिसका सारथी हीजड़ा है वह कभी जीता नहीं रहसकता ॥ १४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार राजा बहुत ही दुःखित हुआ तब धर्मराजने हँसकर उससे कहा, कि-हे नरेन्द्र ! यदि बृहन्नला सारथि होगा तो आज वैरी तुम्हारी गौओंको हरकर कभी भी नहीं ले जा सकेंगे ॥ १५ ॥ तुम्हारा कुमार बृहन्नलाके सारथीपनेके कारण सब राजाओंको कौरवोंको तथा देवता, असुर, सिद्ध और यक्षोंको भी

पान् सहितान् कुरूंश्च तथैव देवासुरसिद्धयक्षान् । अतीव जेतुं समरे सुतस्ते स्वनुष्ठितः सारथिना हि तेन ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच । अथोत्तरेण प्रहिता दूतास्ते शीघ्रगामिनः । विराटनगरं प्राप्य विजयं समवेदयन् ॥ १७ ॥ राज्ञस्तत्सर्वमाचख्यौ मन्त्री विजयमुत्तमम् । पराजयं कुरूणां चाप्युपायान्तं तथोत्तरम् ॥ १८ ॥ सर्वा विनिर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः । उत्तरः सह सूतेन कुशली च परन्तपः ॥ १९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ दिष्ट्या विनिर्जिता गावः कुरवश्च पलायिताः । नाद्भुतं त्वेव मन्येऽहं यत्ते पुत्रोऽजयत् कुरून् ॥ २० ॥ ध्रुव एव जयस्तस्य यस्य यन्ता बृहन्नला । वैशम्पायन उवाच ॥ ततो विराटो नृपतिः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ २१ ॥ श्रुत्वा स विजयं तस्य कुमारस्यामितौजसः । आच्छादयित्वा दूतांस्तान् मन्त्रिणं सोऽभ्यचोदयत् ॥२२॥ राजमार्गाः क्रियन्तां मे पताकाभिरलंकृताः । पुष्पोपहारैरर्च्यन्तां देवताश्चापि सर्वशः ॥ २३ ॥ कुमारा योधमुख्याश्च गणिकाश्च स्वलं-

रणमें अच्छेप्रकारसे जीत सकेगा ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—धर्मराज यह बात कर रहे थे, उसी समय, उत्तरकुमारके भेजेहुए दूत झपटे २ विराट नगरीमें आपहुँचे और उन्होंने नगरमें प्रसिद्ध किया, कि-उत्तर कुमारकी विजय होगई ॥ १७ ॥ उसी समय मन्त्रीने राजा के पास आकर उत्तरकी उत्तम प्रकारकी विजय और कौरवोंके पराजय और उत्तर कुमारके लौट कर आनेका समाचार सुनाया ॥ १८ ॥ और कहा, कि–उत्तर सब गौओंको जीत लाया है, कौरव हार गए हैं और परन्तप उत्तर तथा उसका सारथी कुशलपूर्वक हैं ॥ १९ ॥ यह सुन कर युधिष्ठिर बोले, कि-गौएँ जीत लीं और कौरव भागगए यह बहुत अच्छा हुआ, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रने कौरवोंको हरा दिया इसमें मैं बड़ा अचरज नहीं मानता हूँ ॥ २० ॥ क्योंकि-बृहन्नला जिसका सारथी हो उसकी विजय होनेमें सन्देह ही क्या है ? ॥२१॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-पुत्रकी विजयका समाचार सुनकर बड़ेभारी हर्षसे जिसके शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगए हैं ऐसे राजा विराटने अपारबली राजकुमारकी विजयका समाचार सुन कर कहनेको आये हुए दूतोंको वस्त्रोंकी भेटोंसे ढकदिया और फिर मन्त्रीको आज्ञादी, कि-२२ तुम राजमार्गों पर पताकाएँ लटकवाकर सजवाओ और फूलोंसे तथा पूजनकी दूसरी सामग्रियोंसे देवताओंकी पूजा करवाओ ॥२३॥ सब कुमार, मुख्य २ योधा और वेश्यायें शृङ्गार करके सब प्रकारके बाजों

कृताः । वादित्राणि च सर्वाणि प्रत्युद्यान्तु सुतं मम ॥ २४ ॥ घण्टावान्मानवः शीघ्रं मत्तमारुह्य वारणम् । शृङ्गाटकेषु सर्वेषु आख्यातु च जयं मम ॥ २५ ॥ उत्तरा च कुमारीभिर्बह्वीभिः परिवारिता । शृङ्गारवेषाभरणा प्रत्ययातु सुतं मम ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वा चेदं वचनं पार्थिवस्य सर्वं पुरं स्वस्तिकपाणिभूतम् । भेर्यश्च तूर्याणि च वारिजाश्च वेषैः परार्ध्यैः प्रमदाः शुभाश्च ॥ २७ ॥ तथैव सूतैः सह मागधैश्च नान्दीवाद्याः पणवास्तूर्यवाद्याः । पुराद्विराटस्य महाबलस्य प्रत्युद्ययुः पुत्रमनन्तवीर्यम् ॥ २८ ॥ वैशम्पायन उवाच । प्रस्थाप्य सेनां कन्याश्च गणिकाश्च स्वलंकृताः । मत्स्यराजो महाप्राज्ञः प्रहृष्ट इदमब्रवीत् ॥ २९ ॥ अक्षानाहर सैरन्ध्रि कङ्क द्यूतं प्रवर्त्तताम् । तं तथा वादिनं दृष्ट्वा पाण्डवः प्रत्यभाषत ॥ ३० ॥ न देवितव्यं हृष्टेन कितवेनेति नः श्रुतम् । तं त्वामद्य मुदा युक्तं नाहं देवितुमुत्सहे । प्रियं

के साथ मेरे बेटेको लेने जायं, ऐसा प्रबंध करो ॥ २४ ॥ एक मनुष्य मतवाले हाथी पर चढ़कर आगे घंटा बजाता हुआ नगरमें सब ओर मेरी विजयको प्रसिद्ध करे ऐसी व्यवस्था करो ॥२५॥ और मेरी पुत्री उत्तराकुमारी अनेकों प्रकारके सुन्दर वस्त्र और गहने पहरकर भलेप्रकार शृङ्गार किये हुये सब कन्याओंके साथ मेरे पुत्रके सन्मुख जाय ॥ २६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! राजाकी इस बातको सुनकर सब नगर हाथमें मांगलिक मानी जानेवाली आरतियें, दही और दूध आदि वस्तुएं लेकर, महाबली राजा विराटके अपार पराक्रमी पुत्र उत्तर कुमारकी अगवानीको चला, उनके साथमें बहुमूल्य पोशाकें पहरकर भेरी तुरही और शंखवाले, सौभाग्यवती तरुणी स्त्रियें तथा सूत मागध भी चले, उनके साथ माङ्गलिक बाजे बजाने वाले और विजयके बाजे बजाने वाले आदि भी महाबली राजा विराटके, अपार शारीरिक बलवाले उत्तर कुमारकी अगवानीको गए थे ॥ २७ ॥ २८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—इस प्रकार सजीहुई सेना, कन्याएँ और गणिकाओंको परमबुद्धिमान् राजा विराटने अपनेपुत्रकी अगवानी करनेके लिये भेजा और फिर बड़ेभारी हर्षके उभारमें आकर इसप्रकार कहा, कि—॥ २९ ॥ अरी ओ सैरन्ध्री ! पांसेला, और हे कङ्क ! हमारी तुम्हारी चौसर होय, राजाविराटको ऐसा कहतेहुए देखकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने कहा ॥ ३० ॥ मेरे सुननेमें आया है, कि—आनन्दमें आये हुए मनुष्यके साथ जुआ नहीं खेलै, इसकारण मैं भी आज

तु ते चिकीर्षामि वर्त्ततां यदि मन्यसे ॥३१॥ विराट उवाच । स्त्रियो गावो हिरण्यञ्च यच्चान्यद्वसु किंचन । न मे किंचित्त्व-रक्ष्यन्ते अन्तरेणापि देवितुम् ॥३२॥ कङ्क उवाच । किं ते द्यूतेन राजेन्द्र बहुदोषेण मानद । देवने बहवो दोषास्तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ३३ ॥ श्रुतस्ते यदि वा दृष्टः पाण्डवेयो युधिष्ठिरः।स राष्ट्रं सुमहत् स्फीतं भ्रातॄंश्च त्रिदशोपमान्॥३४॥ राज्यं हारितवान् सर्वं तस्मात् द्यूतं न रोचये । अथवा मन्यसे राजन् दीव्याम यदि रोचते ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रवर्त्तमाने द्यूते तु मत्स्यः पांडवमब्रवीत्।पश्य पुत्रेण मे युद्धे तादृशाः कुरवो जिताः ३६ ततोऽब्रवीन्महात्मा स एनं राजा युधिष्ठिरः । बृहन्नला यस्य यन्ता कथं स न जयेद् युधि ॥ ३७ ॥ इत्युक्तः कुपितो राजा मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत् । समं पुत्रेण मे षण्ढं ब्रह्मबन्धो प्रशंससि ॥ ३८ ॥ वाच्यावाच्यं न जानीषे नूनं मामवमन्यसे । भीष्मद्रोणमुखान् सर्वान्

हर्षमें भरेहुए तुम्हारे साथ चौसर खेलना नहीं चाहता परन्तु इतने पर भी आपकी इच्छा हो तो खेलनेका आरम्भ कर दीजिये,क्योंकि-मैं तो आपका प्रिय काम करना चाहता हूँ, ॥ ३१ ॥ विराटने कहा, कि-स्त्रियें, गौएं, सुवर्ण तथा और भी जो कुछ तुम्हारा धन हो उसमेंसे मुझे कुछ भी नहीं चाहिये, मुझे तो केवल तुम्हारे साथ चौसर खेलनी है ॥ ३२ ॥ कंकने कहा, कि-हे सन्मान करनेवाले राजेन्द्र!आप जुआ किस कारणसे खेलते हैं ? इसमें तो बड़े दोष भरेहुए हैं इसकारण इसको त्याग ही देना चाहिये ॥ ३३ ॥ तुमने राजा युधिष्ठिरको देखा होगा अथवा उनका हालसुना होगा वह राजा बड़ेभारी समृद्धिवाले देश, देवताओंको समान भाई और सब राज्यको जुआ खेलनेमें ही हारगया था, इसकारण ही मैं जुएको अच्छा नहीं समझता हूँ तो भी हे राजन् ! यदि तुम्हारी इच्छा होय तो चलो खेलें ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—उसी समय चौसरके खेलका आरम्भ हुआ, खेलते २ राजा विराटने तुरन्त ही राजा युधिष्ठिरसे कहा, कि-देखो मेरे पुत्रने महाबली कौरवोंको युद्धमें कैसा हराया ॥ ३६ ॥ तब उन महात्मा राजा युधिष्ठिरने राजा विराटसे कहा, कि—जिसका सारथी बृहन्नला हो वह रणमें क्यों नहीं जीतेगा ॥ ३७ ॥ यह बात सुनते ही राजा विराटको क्रोध आगया और उसने राजा युधिष्ठिरसे कहा, कि—अरे ब्राह्मणोंमें नीच ! तू मेरे पुत्रकी प्रशंसा एक हीजड़ेके साथमें क्यों करता है ? ॥ ३८ ॥ कौनसी बात कहनी चाहिये और

कस्मान्न स विजेष्यति ॥ ३९ ॥ वयस्यत्वात्तु ते ब्रह्मन्नपराधमिमं क्षमे । नेदृशं तु पुनर्वाच्यं यदि जीवितुमिच्छसि ॥ ४० ॥ युधिष्ठिर उवाच । यत्र द्रोणस्तथा भीष्मो द्रौणिर्वैकर्तनः कृपः । दुर्योधनश्च राजेन्द्रस्तथान्ये च महारथाः ॥ ४१ ॥ मरुद्गणैः परिवृतः साक्षादपि मरुत्पतिः । कोऽन्यो बृहन्नलायास्तान् प्रतियुध्येत सङ्गतान् ॥ ४२ ॥ यस्य बाहुबले तुल्यो न भूतो न भविष्यति । अतीव समरं दृष्ट्वा हर्षो यस्योपजायते ॥ ४३ ॥ योऽजयत् संगतान् सर्वान् ससुरासुरमानवान् तादृशेन सहायेन कस्मात् स न विजेष्यते ॥ ४४ ॥ विराट उवाच । बहुशः प्रतिषिद्धोऽसि न च वाचं नियच्छसि । नियन्ता चेन्न विद्येत न कश्चिद्धर्ममाचरेत् ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततः प्रकुपितो राजा तमक्षेणाहनद्भृशम् । मुखे युधिष्ठिरं कोपान्नैवमित्येव भर्त्सयन् ॥४६॥ बलवत् प्रतिविद्धस्य नस्तः शोणितमावहत् । तदप्राप्तं महीं

कौनसी बात नहीं कहना चाहिये, इस बातकी तुझे खबर ही नहीं है तू चाहे सो बात मुखमेंसे निकालकर मेरा सर्व प्रकारसे अपमान ही करता है. मेरा पुत्र भीष्म द्रोणाचार्य आदि बड़े २ योधाओंको क्यों नहीं जीतेगा ? ॥ ३९ ॥ हे ब्राह्मण ! तू मेरा मित्र है, इसकारण मैं तेरे इस अपराधको सहरहा हूँ, परन्तु अब यदि तुझे जीवित रहनेकी इच्छा होय तो दूसरीवार ऐसी बात नहीं कहना ॥ ४० ॥ राजा युधिष्ठिरने कहा, कि-जहाँ द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह अश्वत्थामा, कर्ण कृपाचार्य राजेन्द्र दुर्योधन तथा दूसरे महारथी भी युद्ध करनेकी इच्छासे इकट्ठे हुए हों तहाँ बृहन्नलाके सिवाय दूसरा कौन ऐसा है, कि-जो उन इकट्ठे हुओंके साथ संग्राम करनेको बाहर निकले॥४१-४२॥ जिसकी समान बाहुबलवाला पहले कोई भी नहीं हुआ और न अब है तथा आगेको भी होनेकी आशा नहीं है, जिसको संग्राम देखकर बड़ा आनन्द होता है ॥ ४३ ॥ तथा जिसने इकट्ठे हुए देवता, असुर और मनुष्य सबोंको जीतलिया था, ऐसे पुरुषकी सहायता होनेपर उत्तर क्यों नहीं जीतेगा ? ॥ ४४ ॥ राजा विराटने कहा, कि-मैंने तुझे बहुत बार बोलनेसे रोका परन्तु तू चुप नहीं रहता, इससे मुझे मालूम होता है, कि—यदि जगत्में कोई दण्ड देनेवाला न होय तो कोई भी मनुष्य धर्मका आचरण ही न करें ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-ऐसा कह कर कोपमें भरे हुए राजा विराटने चुप बैठा रह, कह कर युधिष्ठिरका तिरस्कार किया और पाशा फेंककर उनके मुखपर मार

पार्थः पाणिभ्यां प्रत्यगृह्णत ॥ ४७ ॥ अवैक्षत स धर्मात्मा द्रौपदीं पार्श्वतः स्थिताम् । सा ज्ञात्वा तमभिप्रायं भर्तुश्चित्तवशानुगा ॥४८॥ पात्रं गृहीत्वा सौवर्णं जलपूर्णमनिन्दिता । तच्छोणितं प्रत्यगृह्णाद्यत् प्रसुस्राव नस्ततः ॥ ४९ ॥ अथोत्तरः शुभैर्गन्धैर्माल्यैश्च विविधैस्तथा अवकीर्यमाणः संहृष्टो नगरं स्वैरमागतः ॥ ५० ॥ सभाज्यमानः पौरैश्च स्त्रीभिर्जानपदैस्तथा । आसाद्य भवनद्वारं पित्रे सम्प्रत्यवेदयत् ५१ ततो द्वास्थः प्रविश्यैव विराटमिदमब्रवीत् । बृहन्नलासहायश्च पुत्रो द्वार्युत्तरः स्थितः ॥ ५२ ॥ ततो हृष्टो मत्स्यराजः क्षत्तारमिदमब्रवीत् । प्रवेश्येतामुभौ तूर्णं दर्शनेप्सुरहं तयोः ॥ ५३ ॥ क्षत्तारं कुरुराजस्तु शनैः कर्ण उपाजपत् । उत्तरः प्रविशत्वेको न प्रवेश्या बृहन्नला ॥ ५४ ॥ एतस्य हि महाबाहो व्रतमेतत् समाहितम् । यो

वह पासा जोरसे लगनेके कारण युधिष्ठिरकी नकसीर फूटगई और लोहू गिरनेलगा, परन्तु भूमिपर गिरनेसे पहिले ही उन्होंने उसको अपने दोनों हाथोंमें लेलिया ॥ ४६-४७ ॥ और तुरन्त ही युधिष्ठिर ने पास खड़ीहुई द्रौपदीकी ओर को देखा, द्रौपदी राजा युधिष्ठिरके मनके अधीन थी वह उनके मनके अभिप्रायको समझगई ॥४८॥ और एक जलसे भराहुआ सोनेका पात्र लाकर पवित्र चरित्रवाली द्रौपदी ने युधिष्ठिरकी नाकमेंसे जो लोहू टपक रहा था उसको उस पात्रमें लेलिया ॥ ४९ ॥ इतनेमें ही राजकुमार उत्तर, सुन्दर और सुगन्धित नाना प्रकारके फूलोंकी वर्षाको लेता २ बड़े आनन्दके साथ इच्छानुसार अपने नगरमें जा पहुँचा ॥ ५० ॥ नगरके मनुष्य स्त्री तथा देश के लोगोंने उसका सत्कार किया, तदनन्तर वह राजमहलके द्वारपर आ पहुँचा और अपने पिताको अपने आजानेकी खबर भेजी ॥ ५१ ॥ उसीसमय राजभवनके द्वारपालने राजभवनमें पहुँचकर राजा विराट से विनय करी, कि-महाराज ! उत्तरकुमार बृहन्नलाके सहित ड्योढ़ी पर आया खड़ा है ॥ ५२ ॥ राजा विराटने प्रसन्न होकर द्वारपालसे कहा, कि-तू दोनोंको शीघ्रही भीतर लिवाला, मैं उन दोनोंसे मिलना चाहता हूँ ॥ ५३ ॥ उस समय युधिष्ठिरने द्वारपालके कानमें धीरेसे कहा, कि—तू अकेले उत्तरकुमाको ही भीतर आनेदेना बृहन्नलाको न आनेदेना ॥५४॥ क्योंकि-हे महाबाहु ! उसने यह नियम कररक्खा है, कि-युद्धके सिवाय शान्तिके समय यदि कोईभी मेरे शरीरमें घाव करदेय अथवा लोहू निकाल देय तो वह मनुष्य चाहे कोई हो उस

समागमे व्रणं कुर्याच्छोणितं वापि दर्शयेत् । अन्यत्र संग्रामगतान्न स जीवेत् कथञ्चन ॥ ५५ ॥ न मृष्याद् भृशसंक्रुद्धो मां दृष्ट्वा तु सशोणितम् । विराटमिह सामात्यं हन्यात् सबलवाहनम् ॥ ५६ ॥ ततो राज्ञः सुतो ज्येष्ठः प्राविशत् पृथिवींजयः । सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कङ्कञ्चाप्युपतिष्ठत ॥ ५७ ॥ ततो रुधिरसंयुक्तमनेकाग्रमनागसम् भूमावासीनमेकान्ते सैरन्ध्र्या प्रत्युपस्थितम् ॥ ५८ ॥ ततः पप्रच्छ पितरं त्वरमाण इवोत्तरः । केनायं ताडितो राजन् केन पापमिदं कृतम्५९ विराट उवाच । मयायं ताडितो जिह्मो न चाप्येतावदर्हति । प्रशस्यमाने यः शूरे त्वयि षण्ढं प्रशंसति ॥ ६० ॥ उत्तर उवाच । अकार्यं ते कृतं राजन् क्षिप्रमेव प्रसाद्यताम् । मा त्वां ब्रह्मविषं घोरं समूलमिह निर्दहेत् ॥ ६१ ॥ वैशम्पायन उवाच । स पुत्रस्य वचः श्रुत्वा विराटो राष्ट्रवर्द्धनः । क्षमयामास कौन्तेयं भस्मच्छन्नमिवान-

को जीता नहीं छोड़ता ॥५५॥ इसकारण मुझे लोहू लुहान हुआ देखकर वह बड़ाही क्रोधमें होजायगा और सह नहीं सकेगा तथा मन्त्री सेना और वाहनों सहित राजा विराटको मारडालेगा ॥ ५६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—उसी समय राजाका बड़ा कुमार पृथिवीको जीतनेवाला उत्तर भीतरके महलमें आया और उसने पिताके चरणोंमें प्रणाम करके कङ्कको भी प्रणाम किया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर निरपराधी कङ्कको लोहूलुहान, व्याकुल और एकान्तस्थानमें भूमि पर नीचे बैठा हुआ देखकर तथा उसके पास सैरन्ध्रीको खड़ी हुई देखकर उत्तरने घबराहटके साथ पितासे बूझा कि—हे राजन्! इनको किसने मारा है ? यह पाप किसने किया है ? ॥५८-५९॥ विराटने कहा, कि—हे कुमार! इस कपटीको मैंने मारा है इस दुष्टका हम जितना सत्कार करते हैं यह उतने सत्कारके योग्य नहीं है, मैं तुझ शूरकी प्रशंसा कररहा था, उस समय यह हीजड़ेकी प्रशंसा करनेलगा ॥ ६० ॥ उत्तरने कहा, कि-हे राजन्! तुमने यह बड़ा बुरा काम किया है, तुम्हें भयानक ब्रह्मविष जड़मूलसे नष्ट न करदेय, इसलिये तुम इनको शीघ्र ही प्रसन्न करलो ॥ ६१ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—देशकी वृद्धि करनेवाले राजा विराटने बेटेकी बात सुनकर राखके ढेरमें ढकेहुए अग्निकी समान छिपकर रहनेवाले, कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरसे क्षमा मांगी ॥ ६२ ॥ क्षमा माँगते समय राजा विराटसे युधिष्ठिरने कहा, कि-मुझे क्रोध आया ही नहीं, मैं तो बहुत दिनोंसे

लम् ॥ ६२ ॥ क्षमयन्तन्तु राजानं पाण्डवः प्रत्यभाषत । चिरं क्षान्तमिदं राजन् न मन्युर्विद्यते मम ॥ ६३ ॥ यदि ह्येतत् पतेद्भूमौ रुधिरं मम नस्ततः । सराष्ट्रस्त्वं महाराज विनश्येथा न संशयः ॥ ६४ ॥ न दूषयामि ते राजन् यद्वै हन्याददूषकम् । बलवन्तं प्रभुं राजन् क्षिप्रं दारुणमाप्नुयात् ॥ ६५ ॥ वैशम्पायन उवाच । शोणिते तु व्यतिक्रान्ते प्रविवेश बृहन्नला । अभिवाद्य विराटन्तु कंकं चाप्युपतिष्ठत ॥ ६६ ॥ क्षामयित्वा तु कौरव्यं रणादुत्तरमागतम् । प्रशशंस ततो मत्स्यः शृण्वतः सव्यसाचिनः ॥ ६७ ॥ त्वया दायादवानस्मि कैकेयीनन्दिवर्द्धन । त्वया मे सदृशः पुत्रो न भूतो न भविष्यति ॥ ६८ ॥ पदं पदसहस्रेण यश्चरन्नापराध्नुयात् । तेन कर्णेन ते तात कथमासीत्समागमः ॥ ६९ ॥ मनुष्यलोके सकले यस्य तुल्यो न विद्यते । तेन भीष्मेण ते तात कथमासीत्समागमः ॥७०॥ आचार्य्यो वृष्णिवीराणां कौरवाणाञ्च यो द्विजः । सर्वक्षत्रस्य चाचार्य्यः सर्वशस्त्रभृताम्वरः । तेन

क्रोधको सहता चला आरहा हूँ, ॥ ६३ ॥ परन्तु यह लोहू मेरी नाकमें से भूमिपर गिरपडता तो हे महाराज ! तुम्हारा और तुम्हारे देश का नाश होजाता ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! मुझ समान निरपराधी पुरुषको भी दण्ड देनेवाले तुमसे अन्यायका काम करनेवाले की मैं निन्दा नहीं करता हूँ, क्योंकि-जो राजा बलवान् होजाता है वह तुरन्त ही दारुण कर्म करनेलगता है ॥ ६५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि--जब युधिष्ठिरके लोहू निकलना बन्द होगया तब बृहन्नला भी भीतर पहुँच कर विराट तथा कङ्कके पैरों पड़ी और उनके पास बैठगई ६६ राजा विराटने युधिष्ठिरसे क्षमा माँगनेके अनन्तर रणमेंसे आये हुए उत्तर की अर्जुनके सुनते हुए ही प्रशंसा करना आरम्भ करदी ६७ राजाने कहा कि हे कैकेयीके आनंदको बढानेवाले उत्तर ! आज मैं, तुझसे पुत्रवाला हुआ हूँ, तुझसा पुत्र मेरे पहिले भी नहीं हुआ और आगे को भी होनेकी आशा नहीं है ॥ ६८ ॥ एक साथ एक हजार निशाने बींधने हों तो भी जो पुरुष बाणोंका प्रहार करते समय एक भी निशानेको खाली नहीं जाने देता है ऐसे कर्णके साथ हे तात उत्तर ! तेरा युद्ध कैसे हुआ था ॥ ६९ ॥ हे बेटा ! इस मनुष्यलोकमें जिसकी समान कोई है ही नहीं ऐसे भीष्मजीके साथ तेरा युद्ध कैसे हुआ था ७० हे बेटा ! जो ब्राह्मण वृष्णिवंशके वीर पुरुषोंके, कौरवोंके और सब क्षत्रियोंके आचार्य हैं तथा सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं

द्रोणेन ते तात कथमासीत्समागमः ॥ ७१ ॥ आचार्यपुत्रो यः शूरः सर्वशस्त्रभृतामपि । अश्वत्थामेति विख्यातस्तेनासीत् सङ्गरः कथम् ७२ रणे यं प्रेक्ष्य सीदन्ति हृतस्वा वणिजो यथा । कृपेण तेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥ ७२ ॥ पर्वतं योऽभिविध्येत राजपुत्रो महेषुभिः । दुर्योधनेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥ ७४ ॥ अवगाढा द्विषन्तो मे सुखो वातोऽभिवाति माम् । यस्त्वं धनमथाजैषीः कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे ॥ ७५ ॥ तेषां भयाभिपन्नानां सर्वेषां बलशालिनाम् । नूनं प्रकाल्य तान् सर्वांस्त्वया युधि नरर्षभ । आच्छिन्नं गोधनं सर्वं शार्दूलेनामिषं यथा ॥ ७६ ॥ ※ ॥ ※ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोहरणपर्वणि विराटोत्तरसंवादेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

उत्तर उवाच ॥ न मया निर्जिता गावो न मया निर्जिताः परे । कृतं तत् सकलं तेन देवपुत्रेण केनचित् ॥ १ ॥ स हि भीतं द्रवन्तं मां देवपुत्रो न्यवर्तयत् । स चातिष्ठद्रथोपस्थे वज्रसं-

---

उन द्रोणाचार्यके साथ तूने किस प्रकार संग्राम किया था ? ॥ ७१ ॥ जो सब ही शस्त्रधारियोंमें वीर हैं और जो अश्वत्थामा नामसे प्रसिद्ध हैं उन द्रोणाचार्यके पुत्रके साथ तेरा युद्ध किस प्रकार हुआ था ? ॥ ७२ ॥ बनिया जैसे धनकी चोरी होजाने पर रोने लगता है तैसे ही रणमें जिसके देखने मात्रसे योधा काँप उठते हैं ऐसे कृपाचार्यके साथ हे बेटा ! तेरा युद्ध किस प्रकार हुआ था ? ॥ ७३ ॥ जो राजपुत्र बड़े २ बाणोंसे पहाड़को चूरा २ करडालता है उस दुर्योधनके साथ हे बेटा ! तेरा युद्ध किस प्रकार हुआ था ? ॥७४॥ कौरवोंकी हरण की हुई गौओंके समूहोंको तू आज रणभूमिमें रण करके जीत लाया है इस लिए आज मेरे वैरियोंने तिरस्कार पाया है और मेरे शरीरको लगने वाला पवन सुखकारी चल रहा है ॥७५॥ हे नरश्रेष्ठ ! आज तूने सब बलवान् योधाओंको रणमें हरा कर भयभीत करडाला है और जैसे सिंह मांसको छीन लेता है तैसे ही तूने कौरवोंसे अपना सब गोधन छीन लिया है ॥ ७६ ॥ अड़सठवां अध्याय समाप्त ॥६८॥

उत्तरने कहा, कि—हे राजन् ! मैंने गौएं नहीं जीती हैं और न मैंने वैरियोंको ही जीता है, यह सब काम किसी देवपुत्रने किया है १ मैं तो डर कर भागा आता था, परन्तु वज्रसमान दृढ़ शरीर वाले उस तरुण देवपुत्रने मुझे लौटालिया था और उसने ही रथमें बैठ रण

न्महतो युवा ॥ २ ॥ तेन ता निर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः । तस्य तत्कर्म वीरस्य न मया तात तत्कृतम् ॥ ३ ॥ स हि शारद्वतं द्रोणं द्रोणपुत्रञ्च षड्रथान् । सूतपुत्रं च भीष्मञ्च चकार विमुखाञ्छरैः ॥४॥ दुर्योधनं विकर्णञ्च सनागमिव यूथपम् । प्रभग्नमब्रवीद्भीतं राजपुत्रं महाबलः ॥ ५ ॥ न हास्तिनपुरे त्राणं तव पश्यामि किञ्चन । व्यायामेन परीप्सस्व जीवितं कौरवात्मज ॥ ६ ॥ न मोक्ष्यसे पलायंस्त्वं राजन् युद्धे मनः कुरु । पृथिवीं भोक्ष्यसे जित्वा हतो वा स्वर्गमाप्स्यसि ॥ ७ ॥ स निवृत्तो नरव्याघ्रो मुञ्चन् वज्रनिभान् शरान् । सचिवैः संवृतो राजा रथे नाग इव श्वसन् ॥ ८ ॥ तं दृष्ट्वा रोमहर्षोऽभूदूरुकम्पश्च मारिष । स तत्र सिंहसङ्काशमनीकं व्यधमच्छरैः ॥ ९ ॥ तत्प्रणुद्य रथानीकं सिंहसंहननो युवा । कुरूंस्तान् प्रहसन् राजन् संस्थितान् हृतवाससः ॥१०॥ एकेन तेन वीरेण षड्रथाः परिनिर्जिताः ।

करके गौओंको जीता तथा कौरवोंको हराया है, हे पिताजी ! यह काम उस शूर वीर पुरुषने ही किया है, मैंने इसमें कुछ भी नहीं किया है ॥ २ ॥ ३ ॥ उसने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भीष्म और दुर्योधन इन छः महारथियोंको बाण मार कर रणमेंसे भगा दिया ॥ ४ ॥ जैसे हाथियोंका समूह अपने स्वामी गजराज सहित भाग जाता है तैसे ही जब दुर्योधन और विकर्ण भय भीत होकर अपनी सेनासहित भागने लगे उस समय उस महाबली देवपुत्रने कहा था, कि—तेरी हस्तिनापुरमें जरा भी रक्षा होसकै, यह मुझे नहीं दीखता, इस लिये हे धृतराष्ट्रके पुत्र ! नित्य देश देशान्तरोंमें विचर कर अपने जीवनकी रक्षा कर ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राजन् ! केवल भागजानेसे तेरा छुटकारा नहीं होगा, इस लिए तू अपने मनको संग्राममें ही लगा, यदि तू जीत जायगा तो पृथ्वीका राज्य करेगा और यदि मारा गया तो स्वर्ग पावेगा ॥ ७ ॥ यह बात सुन कर पुरुषव्याघ्र दुर्योधन फुंकारें मारते हुए सर्पकी समान साँसें भरता हुआ मंत्रियों सहित रथमें बैठ कर फिर लड़नेके लिए रणभूमिमें आया और उसने वज्र समान बाणोंका प्रहार करना आरंभ कर दिया ॥ ८ ॥ हे महाराज ! उसको देखकर मेरे शरीरके रोमाञ्च खड़े होगए और मेरी टाँगें काँपने लगीं, परन्तु इतनेमें ही उस देवपुत्रने बाण मार कर सिंहकी समान सेनाको तितर बितर कर दिया ॥९॥ सिंहकी समान दृढ़ शरीरवाले उस तरुण देवपुत्रने; उन महारथियोंकी सेनाको हटाया है और हँसते २

शार्दूलेनेव मत्तेन यथा वनचरो मृगाः ॥ ११ ॥ विराट उवाच । क्व स वीरो महाबाहुर्देवपुत्रो महायशाः । यो मे धनमवाजैषीत् कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे ॥ १२ ॥ इच्छामि तमहं द्रष्टुमर्चितुं च महाबलम् । येन मे त्वं च गावश्च रक्षिता देवसूनुना ॥ १३ ॥ उत्तर उवाच । अन्तर्धानं गतस्तत्र देवपुत्रो महाबलः । स तु श्वो वा परश्वो वा मन्ये प्रादुर्भविष्यति ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमाख्यायमानं तु छन्नं सत्रेण पाण्डवम् । वसन्तं तत्र नाज्ञासीद्विराटो वाहिनीपतिः ॥ १५ ॥ ततः पार्थोऽभ्यनुज्ञातो विराटेन महात्मना । प्रददौ तानि वासांसि विराटदुहितुः स्वयम् ॥ १६ ॥ उत्तरा तु महार्हाणि विविधानि तनूनि च । प्रतिगृह्याभवत् प्रीता तानि वासांसि भामिनी ॥ १७ ॥ मन्त्रयित्वा तु कौन्तेय उत्तरेण महात्मना । इति कर्त्तव्यतां सर्वां राजन्

तहाँ खड़े हुए कौरवोंको मूर्छित करके उनके वस्त्र भी छीन लिये ॥१०॥ जैसे मद माता सिंह वनमें फिरनेवाले पशुओंको जीतलेता है तैसे ही उस अकेले वीरने छहों महारथियोंको हरादिया ॥ ११ ॥ राजा विराट बोला, कि—बड़ी कीर्तिवाला वह महाबाहु वीर देवकुमार कहाँ है, कि जिस देवकुमारने, कौरवोंकी हरणकी हुई गौएँ रूपी मेरे धनको रणमें जीत कर लौटाया है ॥ १२ ॥ उस महाबली देवकुमारके देखने को मेरा जी चाहता है और उसका पूजन करनेकी भी मेरी इच्छा है, क्योंकि—उसने मेरी गौओंकी और तेरी रक्षा करी है ॥ १३ ॥ उत्तरने कहा, कि—वह महाबली देवपुत्र तहाँ ही अन्तर्धान होगया, परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि—वह कल वा परसोंको यहाँ ही प्रकट होकर दर्शन देगा ॥ १४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—इसप्रकार उत्तर ने अर्जुनके विषयमें कहा, उस समय अर्जुन भी तहां ही था, तो भी वह नपुंसकके वेषमें छिपाहुआ था, इसकारण सेनापति राजा विराट उसको पहिचान नहीं सका ॥१५॥ फिर महात्मा राजा विराटने अर्जुन को आज्ञा दी, कि—हे बृहन्नला तू जिन वस्त्रोंको रणमेंसे लाई है वह वस्त्र मेरी बेटीको देदे तब अर्जुनने अपने आप वे वस्त्र विराटकी बेटी को देदिये ॥ १६ ॥ बहुमूल्य और भाँति २ के उन नए वस्त्रोंको लेकर उत्तराकुमारी प्रसन्न हुई ॥ १७ ॥ फिर हे जनमेजय राजन् ! कुन्तीनन्दन अर्जुनने महात्मा उत्तरके साथ राजा युधिष्ठिरके प्रकट होनेके विषयमें जो कुछ करना था उसकी सलाह करके ॥ १८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ जनमेजय ! उस सलाहके अनुसार ही सब काम किये और भरत-

पार्थे युधिष्ठिरे ॥ १८ ॥ ततस्तथा तद्व्यवदधाद्यथावत् पुरुषर्षभ । सह पुत्रेण मत्स्यस्य प्रहृष्टा भरतर्षभाः ॥ १९ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि विराटोत्तरसंवादे
एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

समाप्तंच गोहरणपर्व

अथ वैवाहिकपर्व ॥

वैशम्पायन उवाच । ततस्तृतीये दिवसे भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः । स्नाता शुक्लाम्बरधराः समये चरितव्रताः ॥१॥ युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य सर्वाभरणभूषिताः । द्वारि मत्ता यथो नागा भ्राजमाना महारथाः ॥२॥ विराटस्य सभां गत्वा भूमिपालासनेष्वथ । निषेदुः पावकप्रख्याः सर्वे धिष्ण्येष्विवाग्नयः ॥ ३ ॥ तेषु तत्रोपविष्टेषु विराटः पृथिवीपतिः आजगाम सभां कर्त्तुं राजकार्याणि सर्वशः ॥ ४ ॥ श्रीमतः पाण्डवान् दृष्ट्वा ज्वलतः पावकानिव । मुहूर्त्तमिव च ध्यात्वा सरोषः पृथिवीपतिः ॥ ५ ॥ अथ मत्स्योऽब्रवीत् कंकं देवरूपमिव स्थितम् । मरुद्गणैरुपासीनं त्रिदशानामिवेश्वरम् ॥ ६ ॥ स किलाक्षातिवापस्त्वं सभास्तारो मया वृतः । अथ राजासने कस्मादुपविष्टस्त्वलंकृतः ॥७॥

वंशमें श्रेष्ठ पाण्डव उत्तरकेसहित बड़े प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥ छ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! फिर समय पर अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करनेवाले अग्निकी समान तेजस्वी और प्रतापी महारथी पाँचों पाण्डव तीसरे दिन स्नान करके शुद्ध हुए, श्वेत वस्त्र पहरे राजाकेसे गहने धारण किये और फिर राजसभाके द्वारपर खड़े हुए मदमत्त हाथियोंकी समान शोभाको प्राप्त हुए तदनन्तर सभामण्डपमें पहुँचे और धर्मराजको आगे करके, जैसे यज्ञमें वेदियों पर अग्नि विराजमान होते हैं तैसे वे राजसिंहासनों पर क्रमवार विराजमान होगए ॥ १-३ ॥ उनके राजसिंहासनों पर विराजनेके अनन्तर राजा विराट सकल राजकाज करनेके लिये राजसभामें आया ॥ ४ ॥ तब जलतेहुए अग्नियोंकी समान शोभायमान पाण्डवोंको देखकर वह क्रोधमें भरगया और उसने दो घड़ीतक तो मनमें ही विचार किया ।५। फिर राजा विराटने, मरुत्गणोंसे सेवित देवताओंके स्वामी इन्द्रकी समान सभामें बैठेहुए देवसमान दर्शनीय कङ्कसे कहा, कि-६ तू तो एक जुआ खेलने वाला है और मैंने तुझे अपना सभासद्

वैशम्पायन उवाच । परिहासेप्सया वाक्यं विराटस्य निशम्य तत् । स्मयमानोऽर्जुनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ अर्जुन उवाच । इन्द्रस्यार्द्धासनं राजन्नयमारोढुमर्हति ब्रह्मण्यः श्रुतवांस्त्यागी यज्ञशीलो दृढव्रतः ॥ ९ ॥ एष विग्रहवान् धर्म एष वीर्यवतां वरः । एष बुद्ध्याधिको लोके तपसां च परायणम् । १० ॥ एषोऽस्त्रं विविधं वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे । न चैवान्यः पुमान् वेत्ति न वेत्स्यति कदाचन ॥ ११ ॥ न देवा न सुराः केचिन्न मनुष्या न राक्षसाः । गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिन्नरमहोरगाः ॥ १२ ॥ दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः । पाण्डवानामतिरथो यज्ञधर्मपरो वशी ॥ १३ ॥ महर्षिकल्पो राजर्षिः सर्वलोकेषु विश्रुतः । बलवान् धृतिमान् दक्षः सत्यवादी जितेन्द्रियः । धनैश्च सञ्चयैश्चैव शक्रवैश्रवणोपमः ॥ १४ ॥ यथा मनुर्महातेजा लोकानां परिरक्षिता । एवमेव महातेजाः प्रजानुग्रहकारकः ॥ १५ ॥ अयं कुरूणामृषभो धर्मराजो युधिष्ठिरः । अस्य

बनाया है सो भी तू सजकर राजसिंहासन पर कैसे बैठा है ? ॥ ७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-राजा विराटकी हास्यके साथ इस तानेको सुनकर हे राजन् ! अर्जुन कुछ एक मुस्कुरा कर विराटसे इसप्रकार कहनेलगा ॥ ८ ॥ अर्जुनने कहा, कि-हे राजन् ! यह मनुष्य इन्द्रके आधे आसन पर बैठनेके योग्य, ब्राह्मणोंके रक्षक शास्त्रको जानने वाले त्यागी, यज्ञ करनेवाले अटल नियमवाले, मूर्त्तिमान् धर्म, वीरोंमें श्रेष्ठ लोकोंमें बुद्धिमान् और तपके प्रेमी हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ और यह मनुष्य, इस स्थावर जङ्गमरूप नानाप्रकारकी सब अस्त्रविद्याओंमें प्रवीण हैं, जगत्में दूसरा कोई भी उन अस्त्रोंको नहीं जानता है और न कभी कोई जानेगा ११और यह राजा जिन नानाप्रकारके अस्त्रोंको जानते हैं, उन अस्त्रोंको, देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस गन्धर्व, बड़े २ यक्ष, किन्नर, सर्प और बड़े २ नाग भी नहीं जानते हैं ॥ १२ ॥ तथा यह मनुष्य, दीर्घदर्शी, महातेजस्वी, नगरनिवासी और देशवासियोंके प्रेमपात्र, पाण्डवोंमें अतिरथी, यज्ञ और धर्ममें तत्पर, जितेन्द्रिय, महर्षिकी समान पवित्र सब लोकोंमें प्रसिद्ध राजऋषि, बलवान् धीर, चतुर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ऐश्वर्यमें इन्द्रकी समान और धनमें कुबेरकी समान हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ जैसे महातेजस्वी मनु लोकोंकी रक्षा करनेवाले हैं तैसे ही यह महातेजस्वी राजा भी प्रजाके ऊपर दया करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ यह कुरुवंशमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर हैं

कीर्त्ति स्थिता लोके सूर्यस्येवोद्यतः प्रभा ॥ १६ ॥ संसरन्ति दिशः सर्व्वा यशसोऽस्य गभस्तयः । उदितस्येव सूर्यस्य तेजसोऽनुगभस्तयः ॥ १७ ॥ एनं दशसहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् । अन्वयुः पृष्ठतो राजन् यावदध्यावसत् कुरून् ॥ १८ ॥ त्रिंशदेवं सहस्राणि रथाः काञ्चनमालिनः । सदश्वैरुपसम्पन्नाः पृष्ठतोऽनुययुस्तदा ॥ १९ ॥ एनमष्टशताः सूता सुमृष्टमणिकुण्डलाः । अस्तुवन्मागधैः सार्द्धं पुरा शक्रमिवर्षयः ॥ २० ॥ एनं नित्यमुपासन्त कुरवः किंकरा यथा । सर्वे च राजन् राजानो धनेश्वरमिवामराः ॥ २१ ॥ एष सर्वान् महीपालान् करदान् समकारयत् । वैश्यानिव महाभाग विवशान् स्ववशानपि २२ अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातकानां महात्मनाम् । उपजीवन्ति राजानमेनं सुचरितव्रतम् ॥ २३ ॥ एष वृद्धाननाथांश्च पंगूनन्धांश्च मानवान्। पुत्रवत् पालयामास प्रजाधर्मेण वै विभुः ॥ २४ ॥ एष धर्मे दमे चैव

इनकी कीर्त्ति लोकमें उदय होते हुए सूर्यकी प्रभाकी समान फैली हुई है ॥ १६ ॥ सूर्यका उदय होनेपर जैसे उसके तेजके पीछे २ उसकी किरणें उदित होती हैं तैसे ही इनके यशकी किरणें, इनके यशके पीछे पीछे उदयको प्राप्त होकर सब दिशाओंमें फैलगई हैं ॥ १७ ॥ हे राजन् ! यह धर्म्मराज जबतक कुरुदेशोंमें रहते रहे तबतक सवारीमें निकलते थे तो इनके पीछे २ वेगवाले दशहजार हाथी चलते थे ॥१८॥ और तब, सोनेकी मालायें पहिरेहुए ऊँची जातिके घोड़ोंसे जुते हुए तीस हजार रथ भी इनके पीछे चलते थे ॥ १९ ॥ जैसे ऋषि पहिले इन्द्रकी स्तुति किया करते थे, तैसे ही सुन्दर दमकदार मणियोंके कुण्डल पहरेहुए आठ सौ सूत, मागधोंके साथ इन राजाजीकी स्तुतियें गाते थे ॥ २० ॥ और हे राजन् ! जैसे देवता कुबेरकी उपासना करते हैं तैसे ही सब राजे और कौरव सेवककी समान सदा इनकी उपासना करते थे ॥ २१ ॥ इन महाभाग्य राजाने अपने वशमें कर लेने पर भी स्वतन्त्र किये हुए सब राजाओंको धनियोंकी समान कर देने वाले कर लिया था ॥ २२ ॥ और अट्ठासी हजार महात्मा स्नातक ब्राह्मण भी इन पवित्र चरित्र वाले राजाजीसे अपनी आजीविका चलाते थे ॥ २३ ॥ और यह शक्तिमान् राजा, बूढ़े, अनाथ लूले लँगड़े, और अन्धे मनुष्योंका तथा प्रजाका पालन अपने बेटेकी समान करते थे ॥ २४ ॥ यह धर्मनिष्ठ, दान्त तथा, क्रोधको जीतनेके व्रतधारी, बड़े प्रसन्न रूप, ब्राह्मणोंके रक्षक ब्रह्मवेत्ता और सत्यवादी

क्रोधे चापि जितव्रतः। महाप्रसादो ब्रह्मण्यः सत्यवादी च पार्थिवः २५ शौर्यतापेन चैतस्य तप्यते स सुयोधनः। सगणः सह कर्णेन सौबलेनापि वा विभुः ॥ २६ ॥ न शक्यन्ते ह्यस्य गुणाः प्रसंख्यातुं नरेश्वर। एष धर्मपरो नित्यमानृशंस्यश्च पाण्डवः ॥ २७ ॥ एवंयुक्तो महाराज पाण्डवः पार्थिवर्षभः। कथं नार्हति राजार्हमासनं पृथिवीपते ॥ २८ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि वैवाहिकपर्वणि पाण्डव-
प्रकाशे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

विराट उवाच। यद्येष राजा कौरव्य कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। कतमोऽस्यार्जुनो भ्राता भीमश्च कतमो बली ॥ १ ॥ नकुलः सहदेवो वा द्रौपदी वा यशस्विनी। यदा द्यूतजिताः पार्था न प्राज्ञायन्त ते क्वचित् ॥ २ ॥ अर्जुन उवाच। य एष बल्लवो ब्रूते सूदस्तव नराधिप। एष भीमो महाराज भीमवेगपराक्रमः ॥ ३ ॥ एष क्रोधवशान् हत्वा पर्वते गन्धमादने। सौगन्धिकानि दिव्यानि कृष्णार्थे समुपाहरत् ॥४॥ गंधर्व एष वै हंता कीचकानां दुरात्मनाम्। व्याघ्रानृक्षान् वराहांश्च हतवान् स्त्रीपुरे तव ॥ ५ ॥ यश्चासीदश्वबन्धस्ते नकुलोऽयं परन्तपः।

राजा युधिष्ठिर हैं ॥२५॥ इनके प्रतापसे दुर्योधन, उसके मनुष्य कर्ण और शकुनि भी नित्य सन्ताप पाया करते हैं ॥ २६ ॥ हे भूपते ! इनके गुण गिने नहीं जासकते, यह धर्मराज नित्य धर्मपरायण और दयालु हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! ऐसे गुणोंसे युक्त राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर राजसिंहासन पर बैठनेके योग्य क्यों नहीं हैं ? ॥ २८ ॥

सत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ * ॥

विराटने कहा, कि-यदि यह कुरुवंशी कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर हैं तो फिर इनमें इनका भाई अर्जुन कौनसा है ? और बलवान् भीम कौनसा है ॥१॥ नकुल कौनसा है और सहदेव कौनसा है तथा यशवाली द्रौपदी कौनसी है ? जबसे पाण्डवोंको कौरवोंने जुएमें जीता है तबसे कहाँ रहे, यह जाननेमें नहीं आया ॥२॥ अर्जुनने कहा, कि-हे राजन् ! यह जो तुम्हारा रसोइया बल्लव है हे महाराज ! यही भयङ्करवेग और पराक्रम वाला भीमसेन है ॥ ३ ॥ गन्धमादन पहाड़ पर क्रोधवश नामवाले देवताओंका नाश करके यह सौगन्धिक जाति के फूल द्रौपदीके लिए लाया था ॥ ४ ॥ और दुष्टात्मा कीचकोंको मारने वाला गन्धर्व भी ये ही है और इसने ही तुम्हारी स्त्रियोंके रन-

गोसंख्यः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ महारथौ ॥ ६ ॥ शृङ्गारवेषाभरणौ रूपवन्तौ यशस्विनौ । महारथसहस्राणां समर्थौ भरतर्षभौ ॥ ७ ॥ एषा पद्मपलाशाक्षी सुमध्या चारुहासिनी । सैरन्ध्री द्रौपदी राजन् यस्यार्थे कीचका हताः ॥ ८ ॥ अर्जुनोऽहं महाराज व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः । भीमादवरजः पार्थो यमाभ्यां चापि पूर्वजः ॥ ९ ॥ उषिताः स्मो महाराज सुखं तव निवेशने । अज्ञातवासमुषिता गर्भवास इव प्रजाः ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ यदार्जुनेन ते वीराः कथिताः पञ्च पाण्डवाः । तदार्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम् ॥ ११ ॥ पुनरेव च तान् पार्थान् दर्शयामास चोत्तरः ॥ १२ ॥ उत्तर उवाच । य एष जाम्बूनदशुद्धगौरतनुर्महान् सिंह इव प्रवृद्धः । प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्रस्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः ॥ १३ ॥ अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी

वासमें बाघ, रीछ और शूकरोंको मारा था ॥५॥ हे परन्तप राजन् ! यह जो तुम्हारे घोड़ोंका अध्यक्ष (सरदार) है, यह महातपस्वी नकुल कुमार है और गौओंकी रक्षा करने वाला तथा गिनती रखने वाला जो है वही सहदेव है ये दोनों महारथी माद्रीके पुत्र हैं ॥ ६ ॥ सजे हुए वेश वाले गहने पहरे हुए सुन्दर रूपवान् तथा यश वाले ये दोनोंजने हजारों महारथियोंसे भी अधिक शक्ति वाले हैं और ये भरतवंशमें श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ और यह कमलकी पंखरीकी समान नेत्रोंवाली सुन्दर कमर और मीठे हास्यवाली जो सैरन्ध्री है, हे राजन् ! ये ही द्रौपदी है, इसके कारणसे ही कीचक मार डालेगए थे ॥ ८ ॥ और हे महाराज ! मैं अर्जुन हूँ इस बातको तो आप स्पष्टरूपसे जान ही गए होंगे, मैं भीमका छोटा भाई और नकुल सहदेवका बड़ा भाई हूं ९ हे महाराज ! हम आपके घर सुखसे रहे हैं, जैसे बालक गर्भके भीतर रहता है तैसे ही हमने भी आपके घरमें रह कर अज्ञातवासको बिताया है ॥ १० ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-जब वीर अर्जुनने पाँचों पाण्डवोंकी पहिचान करा दी तब राजा विराटके पुत्र उत्तरने अर्जुनके पराक्रम कहना आरम्भ किये और वह पाण्डवोंका बतानेलगा. उत्तरने कहा, कि-हे राजन् ! यह जो सोनेकी समान शुद्ध गौर पीले शरीर वाले मालूम होरहे हैं. सिंहकी समान ऊँचे शरीर वाले प्रतीत होते हैं तथा जिनकी नाक ऊंची, नेत्र बिशाल लम्बे और ताँबेकी समान लाल लाल रंगके हैं यह कुरुराज महाराज युधिष्ठिर हैं ॥ ११-१३ ॥ यह मदमत्त गजराजकी समान चाल, तपे हुए सोनेकी समान गौर

प्रतप्तचामीकरशुद्धगौरः । पृथ्वायतांसो गुरुदीर्घबाहुर्वृकोदरः पश्यत पश्यतैनम् ॥ १४ ॥ यस्त्वेव पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मान् श्यामो युवा वारणयूथपोपमः । सिंहोन्नतांसो गजराजगामी पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः ॥ १५ ॥ राज्ञः समीपे पुरुषोत्तमौ तु यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ । मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति ययोर्न रूपे न बले न शीले १६ आभ्यान्तु पार्श्वे कनकोत्तमाङ्गी यैषा प्रभा मूर्त्तिमतीव गौरी नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव कृष्णा स्थिता मूर्त्तिमतीव लक्ष्मीः ॥ १७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं निवेद्य तान् पार्थान् पाण्डवान् पञ्च भूपतेः । ततोऽर्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम् ॥ १८ ॥ उत्तर उवाच । अयं स द्विषतां हन्ता मृगाणामिव केसरी । विचरद्रथवृन्देषु निघ्नंस्तांस्तान् वरान् रथान् १९ अनेन विद्धो मातङ्गो महानेकेषुणा हतः । सुवर्णकक्ष्यः संग्रामे दन्ताभ्यामगमन्महीम् ॥ २० ॥ अनेन विजिता गावो

शरीर, लंबे और पुष्ट खभे तथा लंबे और पुष्ट भुजदण्डों वाले जो डोल रहे हैं ये भीमसेन हैं, इनकी ओर दृष्टि करके आप देखिये ।१४। और इनके पास ही जो श्याम रङ्ग, तरुण अवस्था, सिंहकेसे ऊँचे खभे, गजराज कैसी चाल और कमलकी समान विशाल नेत्रोंवाले यूथपति गजराजसे बैठे हैं यह वीर अर्जुन हैं ॥ १५ ॥ और राजा युधिष्ठिरके पास जो उत्तम मनुष्योंका जोड़ा बैठा है, जो विष्णु तथा महेन्द्रकी समान हैं और सम्पूर्ण मनुष्यलोकके विषैं रूप, बल और स्वभावमें जिन दोनोंकी समान कोई नहीं है ऐसे ये नकुल और सहदेव हैं ॥ १६ ॥ और इन दोनोंके पास ही नीले कमलकी समान श्याम वर्णवाली जो सुन्दर माथेपर सोनेके उत्तम गहने पहरे मूर्त्तिवाली सूर्यकी प्रभासी, नगरकी स्वामिनी देवीकी समान अथवा मूर्त्तिमती लक्ष्मी देवीकी समान बैठी है यह द्रौपदी है १७ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! इसप्रकार राजा विराटके सामने उन पाँचों पाण्डवोंकी पहिचान करादेनेके अनन्तर उत्तरकुमार राजाके सामने अर्जुनके पराक्रमोंको कहने लगा ॥ १८ ॥ उत्तरने कहा, कि—जैसे केहरी पशुओंका संहार करता है तैसेही यह अर्जुन शत्रुओंका संहार करनेवाले हैं, यही रथियोंकी सेनाके समूहमें बड़े २ रथियोंको नाश करते फिरते थे ॥ १९ ॥ इन ही वीर पुरुषने एक बाणसे सोनेकी जंजीरवाले बड़ेभारी हाथीको मारडाला था और वह हाथी दो दाँतों के बल पृथिवी पर ढहगया था ॥२०॥ यही युद्धमें गौओंको जीतकर

जिताश्च कुरवो युधि। अस्य शंखप्रणादेन कर्णौ मे बधिरीकृतौ ॥२१॥ वैशम्पायन उवाच। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मत्स्यराजः प्रतापवान्। उत्तरं प्रत्युवाचेदमभिपन्नो युधिष्ठिरे ॥ २२ ॥ प्रसादनं पाण्डवस्य प्राप्तकालं हि रोचये। उत्तराञ्च प्रयच्छामि पार्थाय यदि मन्यसे ॥२३॥ उत्तर उवाच। आर्य्याः पूज्याश्च मान्याश्च प्राप्तकालं च मे मतम्। पूज्यन्तां पूजनार्हाश्च महाभागाश्च पाण्डवाः ॥ २४ ॥ विराट उवाच अहं खल्वपि संग्रामे शत्रूणां वशमागतः। मोक्षितो भीमसेनेन गावश्चापि जितास्तथा ॥ २५ ॥ एतेषां बाहुवीर्येण अस्माकं विजयो मृधे। एवं सर्वे सहामात्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्। प्रसादयामो भद्रं ते सानुजं पाण्डवर्षभम् ॥ २६ ॥ यदस्माभिरजानद्भिः किंचिदुक्तो नराधिपः। क्षन्तुमर्हति तत्सर्वं धर्मात्मा ह्येष पाण्डवः ॥ २७ ॥ वैशम्पायन उवाच। ततो विराटः परमाभितुष्टः समेत्य राजा समयं चकार।

लौटा लाये हैं; इन्होंने ही कौरवोंको हराया है और इनके ही शंखके शब्दसे मेरे कान बहरे गुंगे होगए थे ॥ २१ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—राजकुमार उत्तरकी इस बातको सुनकर प्रतापी राजा विराट कि—जिसने युधिष्ठिरका अपराध किया था वह कुमार उत्तरसे कहने लगा, कि—॥ २२ ॥ इस समय पाण्डवोंको प्रसन्न करना चाहिये, यही बात मुझे अच्छी मालूम होती है इसलिये तेरा भी विचार हो तो राजकुमारी उत्तराका अर्जुनके साथ विवाह करदूँ ॥ २३ ॥ उत्तर कहने लगा, कि—ये पाण्डव उत्तम गुणोंवाले, पूजनीय और मान्य हैं तथा मैं समझता हूँ कि—ऐसा करनेका यह अवसर भी आपके हाथ आगया है इसकारण पूजन करने योग्य महाभाग्यशाली पाण्डवोंका तुम सत्कार करो २४ विराटने कहा, कि—वास्तवमें मैं भी जब संग्राम में शत्रुओंके हाथमें पड़गया था तब भीमसेनने ही मुझे उनसे छुटाया था तथा गौएँ भी भीमसेनने ही जीती थीं ॥ २५ ॥ इन पाण्डवोंके बाहुबलसे ही संग्राममें हमारी जीत हुई है, इसलिये चलो, हम सब, राजकर्मचारियोंको साथ लेकर पाण्डवोंमें श्रेष्ठ कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको प्रसन्न करें, तेरा कल्याण हो, जो तूने मुझसे यह बात कही तदनन्तर विराटने पाण्डवोंसे कहा, कि—हमने अनजानमें जो कुछ राजा युधिष्ठिरसे कहा हो वह सब धर्मात्मा पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरको क्षमा करदेना चाहिये ॥ २६—२७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय! इस प्रकार धर्मराजके सामने क्षमा माँगकर राजा

राज्यञ्च सर्वं विससर्ज तस्मै सदण्डकोशं सपुरं महात्मा ॥ २८ ॥
पाण्डवांश्च ततः सर्वान् मत्स्यराजः प्रतापवान् । धनंजयं पुरस्कृत्य
दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रवीत् ॥ २९ ॥ समुपाघ्राय मूर्द्धानं संश्लिष्य च
पुनः पुनः । युधिष्ठिरञ्च भीमं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥३०॥ नातृ-
प्यद्दर्शने तेषां विराटो वाहिनीपतिः । स प्रीयमाणो राजानं युधि-
ष्ठिरमथाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ दिष्ट्या भवन्तः सम्प्राप्ताः सर्वे कुशलिनो
वनात् । दिष्ट्या सम्पालितं कृच्छ्रमज्ञातं वै दुरात्मभिः ॥ ३२ ॥
इदं च राज्यं पार्थानां यच्चान्यदपि किंचन । प्रतिगृह्णन्तु तत् सर्वे
पाण्डवा अविशंकया ॥ ३३ ॥ उत्तरां प्रतिगृह्णातु सव्यसाची धनंजयः ।
अयं ह्यौपयिको भर्ता तस्याः पुरुषसत्तमः ॥ ३४ ॥ एवमुक्तो धर्मराजः
पार्थमैक्षद्धनंजयम् ईक्षितश्चार्जुनो भ्रात्रा मत्स्यं वचनमब्रवीत् ॥३५॥
प्रतिगृह्णाम्यहं राजन् स्नुषां दुहितरं तव । युक्तश्चावां हि सम्बन्धो
मत्स्यभारतयोरिव ॥ ३६ ॥ एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

विराट परम सन्तोषको प्राप्त हुआ और पुत्रके साथ निश्चय करके महात्मा राजा विराटने, सब राजपाट, राज्यदण्ड और धनका भण्डार युधिष्ठिरके अर्पण करदिया ॥ २८ ॥ फिर प्रतापी मत्स्यराजने सब पाण्डवोंको तथा विशेष कर अर्जुनको, आपने बहुत अच्छा किया, ऐसा कहकर धन्यवाद दिया ॥ २९ ॥ और फिर युधिष्ठिर भीम अर्जुन, नकुल और सहदेवके माथेको सूंघकर उनको जीभरकर छाती से लगाया ॥ ३० ॥ सेनापति राजा विराट मानो पाण्डवोंको देखने से अघाया न हो, इसप्रकार बराबर उनके सामनेको ही देखनेलगा और अन्तमें प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिरसे कहनेलगा कि-।३१। तुम सब वनमेंसे कुशलपूर्वक मेरे घर आये यह बड़ा अच्छा हुआ और दुरात्मा कौरव जानने न पावें, इस प्रकार गुप्तवासरूपी दुःख भोगा, यह भी ठीक किया ॥ ३२ ॥ यह राज्य तथा और जो कुछ भी है वह सब मैं धर्मराजको अर्पण करता हूँ, सब पाण्डव उसको निःशङ्क होकर ग्रहण करें ॥ ३३ ॥ और सव्यसाची अर्जुनको मैं उत्तरा अर्पण करता हूँ, उसको अर्जुन स्वीकार करे, क्योंकि—यह महावीर मनुष्य इस कन्याका पति होनेके योग्य है ॥३४॥ इस प्रकार धर्मराजसे कहा तो वह अर्जुनकी ओरको देखनेलगे, बड़े भाईके देखने पर अर्जुनने राजा विराटसे कहा, कि—॥ ३५ ॥ हे राजन् ! मैं तुम्हारी कन्याको अपनी पुत्रवधू रूपसे स्वीकार करता हूँ और मत्स्य तथा भरतवंशके राजाओंका आज जो सम्बन्ध हुआ है यह योग्य ही है ॥ ३६ ॥

विराट उवाच। किमर्थं पाण्डवश्रेष्ठ भार्यां दुहितरं मम। प्रतिग्रहीतुं नेमां त्वं मया दत्तामिहेच्छसि ॥ १ ॥ अर्जुन उवाच। अन्तःपुरेहमुषितः सदा पश्यन् सुतां तव। रहस्यं च प्रकाशं च, विश्वस्तां पितृवन्मयि ॥ २ ॥ प्रियो बहुमतश्चाहं नर्तको गीतकोविदः। आचार्यवच्च मां नित्यं मन्यते दुहिता तव ॥ ३ ॥ वयस्थयां तया राजन् सहसम्वत्सरोषितः। अतिशंका भवेत्स्थाने तव लोकस्य वा विभो। तस्मान्निमन्त्रयेऽहन्ते दुहितां मनुजाधिप ॥ ४ ॥ शुद्धो जितेन्द्रियो दान्तस्तस्याः शुद्धिः कृता मया ॥ ५ ॥ स्नुषायां दुहितुर्वापि पुत्रे चात्मनि वा पुनः। अत्र शङ्कां न पश्यामि तेन शुद्धिर्भविष्यति ६ अभिशापादहं भीतो मिथ्यावादात् परन्तप। स्नुषार्थमुत्तरां राजन् प्रतिगृह्णामि ते सुताम् ॥ ७ ॥ स्वस्रीयो वासुदेवस्य साक्षाद्देवशिशुर्यथा।

विराटने कहा, कि-हे पाण्डवोंमें उत्तम अर्जुन ! मैं तुम्हें अपनी कन्या विवाहता हूँ उसको तुम किस कारणसे विवाहना नहीं चाहते? अर्जुन बोला, कि—हे राजन् ! मैं बहुत दिनोंसे तुम्हारे रणवासमें रहता था, और मेरे ऊपर पिताकेसा विश्वास रखनेवाली तुम्हारी कन्याको एकान्तमें तथा सबके सामने सदा ही देखा करता था २ मैं नाचने और गानेमें चतुर था, इसकारण तुम्हारी कन्या मुझको बड़ा ही प्यारा मानती थी और तुम्हारी कन्या मेरा गुरुकी समान आदर करती थी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! तुम्हारी कन्या, अवस्थामें आई हुई थी, उस समय मैं उसके साथ एक वर्ष तक रहा हूं, इस लिये तुम्हें या दूसरे मनुष्योंको खोटा सन्देह न हो, इसीसे हे राजन् ! मैं तुम्हारी कन्याको अपनी पुत्रवधूरूपसे स्वीकार करनेको कहता हूं ॥४॥ ऐसा करने से मैं शुद्ध, जितेन्द्रिय और दान्त गिनाजाऊँगा और ऐसा होनेसे ही मैंने उसको पवित्रभावसे रक्खा यह गिना जायगा ॥ ५ ॥ जैसे अपने में और पुत्रमें भेद नहीं होता है तैसे ही पुत्रीमें और पुत्रवधूमें भी भेद नहीं मानाजाता है, इसकारण आपकी बेटी यदि मेरी पुत्रवधू होजायगी तो फिर उसमें मुझे किसीप्रकारकी शंका करनेका अवसर नहीं रहैगा और ऐसा करनेसे तुम्हारी बेटीका चरित्र भी लोकमें शुद्ध ही माना जायगा ॥ ६ ॥ हे परन्त राजन् ! मैं लोगोंके खोटा कहनेसे और झूठे अपवादसे डरता हूँ, इसकारण ही तुम्हारी बेटीको अपनी पुत्रवधूरूपसे स्वीकार करता हूं ॥ ७ ॥ मेरा पुत्र कृष्णका भानजा है और साक्षात् देवकुमारकी समान सुन्दर है, चक्रधारी

दयितश्चक्रहस्तस्य सर्वास्त्रेषु च कोविदः ॥ ८ ॥ अभिमन्युर्महाबाहुः पुत्रो मम विशाम्पते । जामाता तव युक्तो वै भर्त्ता च दुहितुस्तव ९ विराट उवाच । उपपन्नं कुरुश्रेष्ठे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये । य एवं धर्मनित्यश्च जातज्ञानश्च पाण्डवः ॥ १० ॥ यत्कृत्यं मन्यसे पार्थ क्रियतां तदनन्तरम् । सर्वे कामाः समृद्धा मे सम्बन्धो यस्य मेऽर्जुनः ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं ब्रुवति राजेन्द्रे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । अन्वशासत् स संयोगं समये मत्स्यपार्थयोः ॥ १२ ॥ ततो मित्रेषु सर्वेषु वासुदेवे च भारत । प्रेषयामास कौन्तेयो विराटश्च महीपतिः ॥१३॥ ततस्त्रयोदशे वर्षे निवृत्ते पञ्च पाण्डवाः । उपप्लव्ये विराटस्य समपद्यन्त सर्वशः ॥ १४ ॥ अभिमन्युञ्च बीभत्सुरानिनाय जनार्दनम् । आनर्तेभ्योऽपि दाशार्हानानयामास पाण्डवः ॥ १५ ॥ काशिराजश्च शैब्यश्च प्रीयमाणौ युधिष्ठिरे । अक्षौहिणीभ्यां सहितावागतौ पृथिवीपती ॥ १६ ॥ अक्षौहिण्या च सहितो यज्ञसेनो महाबलः । द्रौप-

---

श्रीकृष्णका प्रेमपात्र और सब अस्त्रोंकी विद्यामें प्रवीण है ॥ ८ ॥ हे राजन्! यह मेरा महाबाहु पुत्र अभिमन्यु, तुम्हारा जमाई और तुम्हारी कन्याका पति होनेके योग्य है ॥ ९ ॥ विराटने कहा, कि—हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ! कुन्तीके पुत्र! तुमने जो बात कही वह सब प्रकारसे योग्य कही है, क्योंकि—तुम सदा इसप्रकार धर्मका वर्त्ताव करनेवाले ज्ञानी हो ॥ १० ॥ हे अर्जुन! अब तुम जो काम करना उचित समझो, उसको अब ही करो, अर्जुन मेरा सम्बन्धी बनता है इसलिये अब मेरी सब कामनायें मानों सफल होगईं ॥११॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—राजा विराटके इसप्रकार कह चुकने पर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने, विराट और अर्जुनका इस विषयमें एक विचार जानकर, उन दोनोंके सम्बन्धका योग्य समय पर अनुमोदन किया ॥ १२ ॥ और राजा विराट तथा राजा युधिष्ठिरने अपने २ मित्रोंको तथा श्रीकृष्णजीको समाचार देनेके लिये दूत भेजे ॥ १३ ॥ तेरहवाँ वर्ष बीतगया था, इसकारण पाँचों पाण्डव विराटके उपप्लव्य नामक देशमें प्रकट होकर रहनेलगे थे ॥ १४ ॥ अर्जुनने दूत भेजकर अभिमन्यु, श्रीकृष्ण और दशार्हकुलके यादवोंको सब मण्डलमेंसे बुलवाया ॥१५॥ पांडवोंके प्रकट होनेके और विवाहके समाचारको सुन कर युधिष्ठिरकेऊपर प्रीति रखने वाला काशीका राजा तथा राजा शैब्य अक्षौहिणी सेना सहित उपप्लव्यमें आये ॥ १६ ॥ द्रौपदीका पिता महाबली राजा यज्ञ-

याश्च सुता वीरा शिखण्डी चापराजितः ॥ १७ ॥ धृष्टद्युम्नश्च दुर्द्धर्षः सर्वशस्त्रभृताम्वरः । समस्ताक्षौहिणीपाला यज्वानो भूरिदक्षिणाः । वेदावभृथसम्पन्नाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ॥१८॥ तानागतानभिप्रेक्ष्य मत्स्यो धर्मभृताम्वरः । पूजयामास विधिवत् सभृत्यबलवाहनान् ॥ १९ ॥ प्रीतोऽभवद् दुहितरं दत्त्वा तामभिमन्यवे । ततः प्रत्युपयातेषु पार्थिवेषु ततस्ततः ॥ २० ॥ तत्रागमद्वासुदेवो वनमाली हलायुधः । कृतवर्मा च हार्दिक्यो युयुधानश्च सात्यकिः ॥ २१ ॥ अनाधृष्टिस्तथाक्रूरः शाम्बो निशठ एव च । अभिमन्युमुपादाय सह मात्रा परन्तपाः ॥ २२ ॥ इन्द्रसेनादयश्चैव रथैस्तैः सुसमाहितैः । आययुः सहिताः सर्वे परिसम्वत्सरोषिताः ॥ २३ ॥ दशनागसहस्राणि हयानाञ्च दशायुतम् । रथानामर्बुदं पूर्णं निखर्वञ्च पदातिनाम् २४ वृष्ण्यन्धकाश्च बहवो भोजाश्च परमौजसः । अन्वयुर्वृष्णिशार्दूलं वासुदेवं महाद्युतिम् ॥ २५ ॥ पारिबर्हं ददौ कृष्णः पाण्डवानां महात्म-

---

सेन अक्षौहिणी सेनाके साथ आया, द्रौपदीके वीर बेटे, अजित शिखण्डी, रणमें किसीसे न दबनेवाला सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न, यज्ञ करके बहुतसी दक्षिणा देनेवाले, वेदपाठ और यज्ञके अन्तमें स्नान करके पवित्र हुए, रणमें शरीरको त्यागनेवाले और भी कितने ही वीर राजे, अक्षौहिणी सहित तहाँ आये ॥ १७ ॥ १८ ॥ धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजा विराट, सेवक सेना और वाहनोंसहित आये हुए राजाओंसे मिला और शास्त्रमें कही रीतिसे पूजा करके उनको उत्तम स्थानोंमें ठहरादिया ॥ १९ ॥ राजा विराट अपनी पुत्री उत्तरा का अभिमन्युके साथ विवाह करके बड़ा प्रसन्न हुआ और उस विवाह के लिये अनेकों देशोंसे आयेहुए राजाओंका अच्छे प्रकारसे सत्कार किया ॥ २० ॥ वनमाली श्रीकृष्ण, बलदेव, कृतवर्मा, हार्दिक्य, युयुधान, सात्यकि, अनाधृष्टि, अक्रूर, साम्ब और निशठ आदि, वैरियोंको सन्ताप देनेवाले क्षत्रिय सुभद्रा सहित अभिमन्युको लेकर विवाहमें आये ॥ २१ ॥ २२ ॥ उनके साथ इन्द्रसेन आदि सब कुमार भी अच्छे प्रकार तयार किये हुए रथोंमें बैठकर तहाँ आये, जो किसब एक वर्षतक द्वारकामें रहे थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ परम कान्तिवाले श्रीकृष्णजी भानजेको विवाहनेके लिए पाण्डवोंके यहाँ आये थे उस समय उनके साथ दश हजार हाथी घोड़े एक अब्ज रथ, एक निखर्व पैदल, कितने ही महाबलवान् वृष्णि, अन्धक और भोज आदि राजे

नाम् । स्त्रियो रत्नानि वासांसि पृथक् पृथगनेकशः । ततो विवाहो विधिवद् ववृधे मत्स्यपार्थयोः ॥२६॥ ततः शंखाश्च भेर्यश्च गोमुखाडम्बरास्तथा । पार्थैः संयुज्यमानस्य नेदुर्मत्स्यस्य वेश्मनि ॥ २७ ॥ उच्चावचान्मृगान् जघ्नुर्मेध्यांश्च शतशः पशून् । सुरामैरेयपानानि प्रभूतान्यभ्यहारयन् ॥२८॥ गायनाख्यानशीलाश्च नटवैतालिकास्तथा स्तुवन्तस्तानुपातिष्ठन् सूताश्च सह मागधैः ॥ २९ ॥ सुदेष्णां च पुरस्कृत्य मत्स्यानाञ्च वरस्त्रियः । आजग्मुश्चारुसर्वाङ्ग्यः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ ३० ॥ वर्णोपपन्नास्ता नार्यो रूपवत्यः स्वलंकृताः । सर्वाश्चाभ्यभवत् कृष्णा रूपेण यशसा श्रिया ॥ ३१ ॥ परिवार्योत्तरां तास्तु राजपुत्रीमलंकृताम् । सुतामिव महेन्द्रस्य पुरस्कृत्योपतस्थिरे ३२ तां प्रत्यगृह्णात् कौन्तेयः सुतस्यार्थे धनंजयः । सौभद्रस्यानवद्याङ्गीं

भी बरातमें आये थे ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णने उस विवाहके समय महात्मा पाण्डवोंको भेटमें (भातमें) बहुतसी दासियें, अनेकों प्रकारके बहुत से रत्न भाँति २ के बहुतसे वस्त्र दिये थे इनके अनन्तर मत्स्यवंश और अर्जुनके कुटुम्बमें शास्त्रमें कही हुई विधिसे विवाह हुआ था ॥ २६ ॥ मत्स्यराज और पाण्डवोंका विवाहके द्वारा सम्बन्ध होते समय राजा विराटके घर शंख, भेरी, नरसिंगे आदि बड़े आडम्बर के साथ बजरहे थे ॥ २७ ॥ आयेहुए बरातियोंको भोजन करानेके लिये अनेकों प्रकारके पशु मारकर राँधेगए थे, सुरा और मैरेय आदि अनेकों प्रकारके जल भी पीनेके लिये तहाँ तयार किये थे और बराती उन जलोंको इच्छानुसार पीते थे ॥ २८ ॥ तहाँ गानेवाले और नकलें सुनानेवाले नट, वैतालिक तथा सूत मागधोंके साथ इकट्ठे होकर बरातमें आनेवाले राजाओंको स्तुतियें कररहे थे ॥२९॥ राजा विराट की सर्वाङ्गसुन्दरी रानियें भी कानोंमें दमकती हुई मणियोंके कर्णफूल पहर कर पटरानी सुदेष्णाके साथ विवाहमण्डपमें विराजमानथीं, राजा विराटकी वे सब रानियें रूपवती और अच्छेप्रकार शृङ्गार कियेहुए थीं और उनके शरीरोंका रङ्ग भी बहुतअच्छा था, तो भी ये सब रानियें द्रौपदीके रूप, यश और शोभाके सामने फीकी पड़गईं थीं ॥३०॥३१॥ राजा बिराटकी सब रानियें, इन्द्रकी कन्याकी समान कुमारी उत्तराको सजाकर उसके आसपास घिरगईं और उसको आगे करके विवाहमण्डपमें आईं ॥३२॥ तब कुन्तीनन्दन अर्जुन सुभद्रा की कोखमें पड़ेहुए अभिमन्युके लिये निर्दोष अङ्गोंवाली विराटकी

विराटतनयां तदा ॥ ३३ ॥ तत्रातिष्ठन्महाराजो रूपमिन्द्रस्य धारयन् स्नुषां तां प्रतिजग्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥ प्रतिगृह्य च तां पार्थः पुरस्कृत्य जनार्द्दनम् । विवाहं कारयामास सौभद्रस्य महात्मनः ॥ ३५ ॥ तस्मै सप्त सहस्राणि हयानां वातरंहसाम् । द्वे च नागशते मुख्ये प्रादाद्बहुधनं तदा ॥ ३६ ॥ हुत्वा सम्यक्समिद्धाग्निमर्च्चयित्वा द्विजन्मनः । राज्यं बलञ्च कोशञ्च सर्वमात्मानमेव च ॥ ३७ ॥ कृते विवाहे तु तदा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं यदुपोहरदच्युतः ॥ ३८ ॥ गोसहस्राणि रत्नानि वस्त्राणि विविधानि च । भूषणानि च मुख्यानि यानानि शयनानि च ॥ ३९ ॥ भोजनानि च हृद्यानि पानानि विविधानि च । तन्महोत्सवसङ्काशं हृष्टपुष्टजनायुतम् । नगरं मत्स्यराजस्य शुशुभे भरतर्षभ ॥ ४० ॥ ❀ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि वैवाहिकपर्वणि उत्तराविवाहे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

कन्याको अपनी पुत्रवधूरूपसे ग्रहण करनेको उद्यत हुआ ॥ ३३ ॥ विवाहमण्डपमें खड़े हुए इन्द्रकी समान रूपवाले राजा युधिष्ठिरने भी उत्तराको, पुत्रवधूरूपसे संकल्पपूर्वक स्वीकार किया ॥ ३४ ॥ इसप्रकार पार्थने कुमारी उत्तराको पुत्रवधूरूपसे ग्रहण करलिया तदनन्तर श्रीकृष्णको आगे करके पार्थने महात्मा अभिमन्युका उत्तरा के साथ विवाह किया ३५ वर और कन्याका विवाह होते समय, राजा विराटने अच्छे प्रकार प्रज्वलित हुए अग्निमें होम करके ब्राह्मणोंका सत्कार किया, फिर राजा विराटने दहेजमें वरको वायुकी समान वेगवाले सात हजार घोड़े, दो सौ उत्तम हाथी तथा बहुतसा धन दिया और अन्तमें पाण्डवोंको अपना सब राज्य, सब सेना, सब भण्डार और अपना आपा भी भेट रूपसे अर्पण कर दिया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ विवाह विधि पूरी होजाने पर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने जो धन श्रीकृष्णजीने भातमें भेट किया था वह सब तथा हजारों गौएं, भांति भांति के वस्त्र, रत्न, सवारियें, पलंग, मनको अच्छे लगनेवाले भांति भांतिके भोजन तथा पीनेके पदार्थ ब्राह्मणोंको अर्पण कर दिये, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजा जनमेजय ! उस विवाहके महोत्सवके समय विराट नगरके हजारों मनुष्य हृष्ट पुष्ट होगए थे और विराटनगरकी शोभाका तो वर्णन ही नहीं होसकता था ॥ ३८—४० ॥ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥

❀

॥ इति विराटपर्व समाप्त ॥